5-5

* श्री गणेशाय नमः *

गुरुमण्डल ग्रंथमालायाः अष्टमम्

सम्मतियां और उद्गार

"वेदवेदाङ्गविद्विप्रः कोटीधनपतिर्भवेत् ।"

(वृ० गौ० स्मृ०)

वेदञ्चैवाभ्यसेन्नित्यं शुचौ देशे समाहितः ।
धर्मशास्त्रं तथा पाठ्यं ब्राह्मणैः शुद्धमानसैः ॥
वेदवित्पठितव्यं च श्रोतव्यञ्च दिवानिशि ।
स्मृतिहीनाय विप्राय श्रुतिहीने तथैव च ॥
दानं भोजनमन्यच्च दत्तं कुलविनाशनम् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन धर्मशास्त्रं पठेद्द्विजः ॥
श्रुतिस्मृती च विप्राणां चक्षुषी देवनिर्मिते ।
काणस्तत्रैकया हीनो द्वाभ्यामन्धः प्रकीर्त्तितः ॥

(लघुहारित स्मृ०)

मनसुखराय मोर

५, क्लाइव रो,
कलकत्ता ।

वैक्रमाब्दः २००६

प्रथमं संस्करणम्

५०००

सृष्टि को विनाश से बचाइये—

ो यह उक्ति अधिकांश पाठकों को कुछ विचित्र-सी लगेगी, उन्हें आश्चर्य होगा, और शायद इससे उत्पन्न हों। ऐसे पाठकों से मेरा विनम्र अनुरोध है कि वे सृष्टि की रक्षा के व्यापक दृष्टिकोण को मस्तिष्क से इसपर विचार करें।

कृति-देवी ने प्रत्येक योनि के शिशु के लिये दूध उत्पन्न किया है। दूध वस्तुतः प्रत्येक योनि की शक्ति है। शिशु जब मां के गर्भ में होता है, उसी समय से मां दूध धारण कर लेती है। शिशु के बड़े हो जाने पर मां का यह दूध सूख जाता है। तात्पर्य यह कि जब तक शिशु को दूध की आवश्यकता होती है, तभी तक मां दूध धारण करती है। इससे स्पष्ट है कि प्रकृति अथवा जगन्नियन्ता ने केवल शिशु के लिये ही दूध का निर्माण किया है।

(२) सचाई तो यह है कि मानव द्वारा केवल पशुओं के लिये निर्मित दूध का पान किया जाना पशु के शिशु के मौलिक अधिकारों पर जबर्दस्त कुठाराघात करना है। पुरुषार्थी, ज्ञानी, समद्रष्टा, उदार, एवं पर-हित की भावनाओं से प्रेरित मनुष्यों का इससे और बड़ा अपराध क्या हो सकता है ?

(३) पशु का दूध हमारे लिये हितकर और आरोग्यदायक है, यह भी हमारा एक बड़ा भ्रम है। थोड़ा विचार करें। जिस मशीन में हम जो चीज देते हैं, उससे हमें वही वस्तु प्राप्त होती है दूसरी नहीं। गेहूँ डालने से गेहूँ का आटा प्राप्त होता है, तो तिलहन डालने से तेल। वह भी कम उपयोगी अंशों में। उसके मुख्य तत्त्व (Vitamin) की मात्रा कुछ कम हो जाती है। मनुष्य और पशु-पक्षी आदि भी मशीन ही हैं। जो वस्तु हम माता को देते हैं, वही दूध के रूप में शिशु को मिलती है। पशु प्रायः मिट्टी, कीचड़ मिला हुआ गंदा जल, खली, जिसका सार हम पहले ही ले लेते हैं, नीरस बिचाली आदि ग्रहण करते हैं। पशु के दूध के साथ इन्हीं अखाद्य और मनुष्यों के स्वास्थ्य के लिये अहितकर वस्तुओं का सार हमें प्राप्त होता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि दूध मनुष्यों के लिये सर्वथा अखाद्य वस्तु है। प्राकृतिक भोजन ही मनुष्य लिये कल्याणकारक है।

"घृतं दशविधं – गव्यमाहिषाजाश्वगार्दभौष्ट्राविकैडक मानुष्य हास्तिक भेदेन।" (वैद्यक शब्दसिन्धुः)

घृत दस तरह के हैं। गो, भैंस, बकरी, घोड़ी, गधी, ऊँट, भेड़, एडक, मनुष्य और हास्तिक भेद से। प्रकृति ने हरेक योनि में दूध का निर्माण किया है। दूध एक दूसरे का भक्ष्य नहीं है ? जबतक बालक के दांत मजबूत न हो जाय तबतक हर योनि के लिये दूध उपयुक्त है। बाद में तो सब के लिये अन्न ही उपयोगी है जो कि बलदायक, प्राणदाता, आयुवर्द्धक, अमृत तथा शरीर के सम्पूर्ण अवयवों को बढ़ानेवाला सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

(४) दूध प्रत्येक माता का जूठन है। चोंचवाला प्राणी अपनी चोंच से दाना लेकर उसे अपने थूक और लार से मिश्रित करता है। थूक और लार के मिश्रण बिना इसका निर्माण कदापि संभव नहीं, स्तनवाले सभी प्राणी अपना आहार मुंह से थूक और लार के साथ चबाकर पेटमें ले जाते हैं, और उसीका रस उनके पेट में दूध के रूप में बनता है, जो बाद में ... में से शिशुओं को प्राप्त होता है। पाचन क्रिया भी इसी से बनती है जो कि जीवन पर्यन्त काम देती है। इसलिये ... अमृत तुल्य है।

...क पदार्थों के सेवन से ही मनुष्य की देहमें चर्बी बढ़ जाती है। चर्बी का बढ़ जाना हमारे स्वास्थ्य के ... अकाल मृत्यु है। इसके अतिरिक्त पशुओं का दूध ग्रहण करने से मनुष्य कामो- ...जिससे उसके छहों शत्रु उसे जकड़ लेते हैं।

...र्वे सन्तुनिरामयाः"

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥

पृष्ठभूमि

कलकत्ते की सुप्रतिष्ठित व्यावसायिक फर्म—मेसर्स रामसहायमल मोर लि० के उत्साही नवयुवक श्री विश्वनाथजी मोर का नाम नगर के साहित्यिकों और पत्रकारों में पर्याप्त प्रसिद्धि पा चुका है तथा साहित्यिक जगत् में यह नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। प्रायः १०, १२ वर्षों तक इस नगर में एक पत्रकार और साहित्यिक का जीवन व्यतीत करते हुए मुझे कई बार श्रीविश्व बाबू के निकट सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, किन्तु श्री सेठ मनसुखरायजी मोर से मेरा साक्षात्कार पहली बार १३ जुलाई १९५१ को इनके द्वारा संगृहीत "गृहस्थ-धर्म" के सिलसिले में ही हुआ। सेठजी के विचारों को सुनने का अवसर मिला। मुझे यह देखकर बड़ा हर्ष हुआ कि हमारे ऋषि-मुनियों द्वारा प्रतिपादित सनातनी विचारों के अवलम्बन में प्रत्येक विषय में सेठजी के दृष्टिकोण में मौलिकता की अद्भुत पुट है। महर्षियों द्वारा निर्मित शास्त्रों में सम्पूर्ण आस्था रखते हुए भी आप लकीर के फकीर कदापि नहीं, अपितु, शास्त्रोक्त वाक्यों का आपका विश्लेषण इतना विशद और व्यापक है कि सुननेवाला मुग्ध हो अपने को सर्वथा प्रकाश की नवीन किरणों के मध्य पाता है। इससे भी विशेष बात तो यह है कि सेठजी द्वारा किये गये शास्त्रोक्त वाक्यों के विश्लेषण में सर्वत्र ही लोक-कल्याण की भावना दृष्टिगोचर होती है।

अबाध रूप से होनेवाले सृष्टि के विनाश को देखकर सेठजी मर्माहत हो उठे हैं। प्रथम श्रेणीके व्यवसायी और उद्योगपति होते हुए भी निरन्तर धर्म-ग्रंथों का मथन करते रहने के पश्चात् आप इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि जबतक विश्व में व्याप्त हिंसा बन्द न होगी, तबतक सृष्टि के विनाश को कदापि न रोका जा सकेगा। इस सम्बन्ध में संक्षेपतः आपकी विचार-धारा यह है कि चींटी तथा अन्य कीड़े-मकोड़ों से लेकर स्थूलकाय हाथी तक सभी जीव सृष्टि की परिचर्या में सहायक हैं। सृष्टि के किसी भी प्राणी को क्षति पहुंचाना अथवा उसकी शक्ति का ह्रास करना सृष्टि के विनाश में सहायक होना है। वेद शास्त्रों का आप जितना अधिक मनन और अध्ययन करते जाते हैं, आपकी यह विचार-धारा उतनी ही अधिक परिपक्व होती जाती है।

"ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।"

(यजु० अ० ४० मं० १)

शुक्ल यजुर्वेद के इस मंत्र को सेठजी ने अपने जीवन में ही नहीं उतार लिया है, अपितु इसमें निहित लक्ष्य बना व्यापक प्रचार करना—किसी भी प्राणी की शक्ति हरण करने की मन में भावना भी न लाकर ... अपने भोगको ही भोगने की ईश्वर की आज्ञा को जन-जन तक पहुँचाना—ही ... लिया प्रतीत होता है।

...ओं के भोजन पर भी विशेष ध्यान देते हैं। आपकी धारणा है कि जिस व्यक्ति का शरीर ... ठीक रहेगा, उसके मनमें किसी प्रकार का विकार उत्पन्न न होगा और वह समस्त विघ्न-बाधाओं को ... कर सकेगा। शारीरिक भोजन में आप अन्न को सर्वाधिक महत्त्व देते हैं, और आत्मिक भोजन में 'राम' नाम ...।

सेठजी का यह भी विश्वास है कि कृषि का उत्पादन बैल की सहायता से ही होता है, अतएव बैल को लेकर ही गौ माता का महत्त्व है। सेठजी के ये विचार सर्वथा मनन करने योग्य हैं। अस्तु;

आज का युग प्रचार अथवा पब्लिसिटी का युग है। लोग थोड़ा-सा कार्य कर उसका बृहत् प्रचार करना चाहते हैं। लेकिन सेठजी इसके सर्वथा अपवाद हैं। आत्म-प्रशंसा अथवा व्यक्तिगत प्रचार नाम की वस्तु से आप बहुत घबड़ाते हैं। अस्तु;

सेठजी के सम्पर्क में आनेके पश्चात् मुझे सेठजीके नाम प्रेषित उन सहस्रों पत्रोंको देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ, जिनमें 'गृहस्थ-धर्म' के पाठकों ने ऐसी बहुमूल्य और गृहस्थोपयोगी पुस्तक का संग्रह करने के हेतु आपके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए बधाई-सूचक संदेश भेजे थे। ऐसे पत्रों के बंडल के बंडल थे। इनकी संख्या ५०, ६० हजार से कम न होगी। मैंने प्रायः एक माह तक इन्हें एक-एक कर पढ़ा। इन बण्डलों में मुझे ऐसे अगणित पत्र मिले, जिनमें 'गृहस्थ-धर्म' तथा सेठजी के सम्बन्ध में अनमोल उद्‌गार प्रकट किये गये थे। इन्हें पढ़कर मेरी इच्छा हुई कि क्या ही अच्छा होता यदि इन्हें पुस्तकाकार कर दिया जाता। सेठजी से मेरा सम्पर्क नया-नया था। उनके स्वभाव से मैं पूर्ण परिचित न हो पाया था। मैंने एक दिन उनके सम्मुख अपना यह विचार प्रकट किया। मेरे प्रस्ताव को स्वीकार करना तो एक ओर रहा, आप मुझपर बिगड़ उठे। फिर भी मैं एक दम निरुत्साह न हुआ, और बिना सेठजी की अनुमति लिए मैंने इन्हें संग्रह करना प्रारम्भ किया। प्रायः सौ सम्मतियों को कापी में उतार कर मैंने सेठजी को दिखलाया। मुझे अपार हर्ष हुआ कि सेठजी ने मेरे इस कार्य का विरोध नहीं किया। सम्मतियों को कापियों में उतारने का क्रम जारी रहा। एक दिन मैंने पुनः साहस कर अपना पुराना प्रस्ताव दोहराया। "आप जानें" सेठजी के इस उत्तर से मुझे बड़ा उत्साह मिला और अन्त में इन्हें प्रकाशित करने की बात निश्चित हो ही गयी। संक्षेप में, "सम्मतियां और उद्‌गार" के प्रकाशन की यही पृष्ठभूमि है, और यही है इसका इतिहास!

सम्मतियों को प्रकाशित करवाने के अपने स्वप्न को सार्थक देखकर मुझे महान् हर्ष हो रहा है। 'गृहस्थ-धर्म' से जनता का कितना अधिक उपकार हुआ है, यह इन सम्मतियों से भलीभाँति स्पष्ट है। पुस्तकों के सम्बन्ध में प्रायः सम्मतियां प्रकाशित होती रहती हैं, किन्तु 'गृहस्थ-धर्म' की उपादेयता के सम्बन्ध में प्राप्त इन सम्मतियों के सम्बन्ध में विशेष रूप से उल्लेखनीय बात यह है कि इनके प्रेषकों ने कभी इस बात की कल्पना भी न की होगी और इस दृष्टिकोण से इन्हें न लिखा होगा कि कभी ये प्रकाशित भी होंगी। इन सम्मतियों के संग्रह और प्रकाशन का कार्य पूर्ण सतर्कता से सम्पन्न न हो सका, अतएव यह संभव है कि अनेक सज्जनों द्वारा प्रेषित सम्मतियां इस पुस्तक में स्थान पाने से रह गयी हों। ५०, ६० हजार पत्रों की छानबीन ... एक बृहत् कार्य था। एक महत्त्वपूर्ण सम्मति जो पुस्तक के कलेवर में स्थान न पा सकी, इस प्रकार है :—

5-5

पृष्ठभूमि

श्रीमान् माननीय सेठ मनसुखरायजी

प्रिय महोदय,

…आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' मेरे हाथ में है। अब यह हाथ से छूटने की नहीं। श्री बिड़लाजी (राजा डा॰ दासजी) को भी दिखायी है। उनसे मैंने कह भी दिया कि अब तक हमलोग समझते थे कि आप फर्दी ही हैं। परन्तु आपके ठीक जोड़ीदार सेठ मनसुखरायजी भी हो गये हैं। वही भाषण, वही मनवाने का तरीका, वही बातों की संगति बैठाने की तर्ज, और वही शास्त्रकी दुहाई, समन्वयका सिद्धान्त तथा मुख्य बात वही विद्वत्सकार की घोषणा एवं क्यों और क्या का उत्तर देने का दुन्दुभिनाद आदि-आदि सभी बातें आपके यहां भी अपने रूपमें उत्तमता के साथ संसारके सम्मुख वरदहस्त में लेकर खड़ी है। मैं तो कहूंगा धन्य है, उस महापुरुष को जो संसारके मन को सुप्रसन्न करनेकी राय से ही यथार्थता के साथ अन्वर्थ मनसुखराय के इस नाम को कृतार्थ करने के लिये ही हम लोगों के बीच राजस्थान में ही अवतीर्ण हुए हैं।………

आपका ही—

आचार्य मधुसूदन शास्त्री

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।

इस प्रकार की और भी न जाने कितनी ही सम्मतियां रह गयी हैं। अस्तु—

सम्पादन के सम्बन्ध में यह कह देना अभीष्ट है, कि इस पुस्तक में जो सम्मतियां दी गयी हैं, उनमें अधिकांश की भाषा को संशोधित अथवा परिमार्जित अवश्य किया गया है, किन्तु ऐसा करते समय इस बात का विशेष ध्यान रक्खा गया कि सम्मति के मूल भाव की विद्यमानता ज्यों की त्यों बनी रहे।

पत्र-प्रेषकों की पूर्व अनुमति प्राप्त किये बिना इन्हें प्रकाशित कर देने के लिये हम पत्र-प्रेषकों से क्षमा-याचना करना कर्त्तव्य समझते हैं। कृपालु पत्र-प्रेषकों ने पुस्तक और उसके संग्रहकर्ता के प्रति जो भव्य उद्गार प्रकट किये हैं, उसके लिये हम उन्हें हार्दिक धन्यवाद देते हैं

नन्दनकानन, लिलुआ,
१५ मार्च १९५२

—जगतसिंह बोरा

॥ प्रशस्तिपत्रम् ॥

माननीय श्री मनसुखराय मोर

सद्वैश्यवंशामृतसिन्धुजातं,
सुधाकरं भाग्यवशात् प्रदिष्टम् ।
को वा जनस्त्वा मुदितं सतृष्णो,
नैवाभिनन्देत् कुलभूषणञ्च ॥ १ ॥

श्रीमन् ते 'स्मृति सन्दर्भ,
धर्मशास्त्रस्य संग्रहम् ॥
गृहस्थधर्मसंज्ञं च,
दृष्ट्वा सम्मुदितं मनः ॥ २ ॥

श्रुत्वा च तव सौजन्यं ब्रह्मण्यं च वदान्यताम् ।
नैवाभिवाञ्छेत् को धीमन्! शरण्य! तव मङ्गलम् ॥
नररत्न! मतिस्तिष्ठेत् सर्वदा धर्मकर्मणि ।
पुत्र पौत्रादि सहितः सुखं जीव शतं समाः ॥

इति

राजेश्वर चौधरी शर्मणः

मिथिला-सरस्वतीभवनसंस्कृत-महाविद्यालयस्य भूतपूर्व प्रधानाध्यापकस्य

सुगोनाग्रामवास्तव्यस्य

मैथिलस्य

5-5

॥ श्री गणेशायनमः ॥

ईशावास्यमिद ँ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥

[शुक्ल यजुर्वेद अध्याय ४० मन्त्र १]

ईश्वरका कथन है कि सृष्टिके सारे प्राणी मेरी ही आत्मा (स्वरूप) हैं। ज्ञानके द्वारा प्राणीमात्रकी पूर्णरूपेण रक्षाका ध्यान रखते हुए अपना भोग—जो कि प्रकृति द्वारा निर्दिष्ट किया हुआ है—भोगो किसी की भी हिंसा मत करो। सभी प्राणी सृष्टि की परिचर्या में पूर्णरूपेण सहायक हैं। किसी भी प्राणी की शक्ति (दूध) को हरण करने की मन में भावना भी न आने दो। यही प्रशस्त कल्याण मार्ग है। "अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तः पुरुषार्थः" परमात्मा के आदेश पालन करने से ही त्रिविध दुःखों की निवृत्ति होगी इसी में मानव- जीवन की सार्थकता, सफलता एवं कल्याण निहित है। उपर्युक्त मन्त्र समस्त वेद मन्त्रों का सार (तत्त्व) है। "तस्माच्छास्त्रं प्रमाणम्"।

सम्पूर्ण विश्व में प्रलय के समय जल ही जल हो जाता है अर्थात् जहां तक स्थूल वायु चलती है जिस ऊँचाई तक बादलों की स्थिति है—वहां तक जल ही जल दिखलाई पड़ता है। उस समय सूर्य, चन्द्र और तारों का प्रकाश उसी सूक्ष्म वायु में सिमट जाता है और केवल सूक्ष्म वायु ही विद्यमान रहता है वही प्राण, चेतन, सर्वगत है उसे सर्व नियन्ता जो नाम दीजिये सम्पूर्ण भूमण्डलपर उसी का विलास है।

प्रलयकालीन अवस्था के बाद सृष्टि का आरम्भकाल होता है। सूक्ष्म वायु के प्रभाव से उस समय जल में क्रमशः गति आरम्भ हो जाती है। वह धीरे-धीरे स्थूल वायु को स्थान देने लगता है। इससे जल में काई पैदा होती है और उसपर निर्भर रहनेवाले जल के प्राणी मछली सर्पादि विषैले जन्तु उत्पन्न होते हैं। देखा भी जाता है कि जब शरीर में शिथिलता आ जाती है तो जहरीली औषध का प्रयोग किया जाता है ताकि चेतना और गर्मी आ जाय; वैसे ही जलमें जहरीले जन्तुओं से गर्मी व्याप्त होती है। यह उनका पूर्ण उपयोग है। उस गर्मी के कारण जलीय अंश सूखने लगता है और जलीय स्थानके केन्द्र समुद्र आदि यथास्थान अपना काम मर्यादित रूप में करने लगते हैं। इसी समय सूर्य, चन्द्रमा और तारागण में प्रकाश व्याप्त होने लगता है और स्थूल वायुकी क्रिया चालू हो जाती है। मिट्टीका भाग स्वतः ही ऊपर की ओर निकल आता है उस पर मिट्टी के जन्तु कीड़े-मकोड़े आदि पैदा होने लगते हैं। इसके बाद घास उगती है तब उसके खानेवाले पशु, मृग, हाथी, गाय और बैल उत्पन्न होते हैं—वेद में कहा है—

अग्निश्च म आपश्च मे वीरुधश्च म ओषधयश्च मे कृष्टपच्याश्च मे पशव आरण्याश्च मे वित्तञ्च मे वित्तिश्च मे [illegible] भूतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्। (शुक्ल यजुर्वेद १८ अ० १७ क०)

[illegible] ...पच्याः कृष्टे

अग्निः पृथिवीस्थो वह्निः। आपोऽन्तरिक्षस्थानि जलानि। वीरुधः गुल्माः। ओ[illegible]

पच्यन्ते इति कृष्टपच्याः राजसूय सूर्येत्यादिना (पा० ३, १, ११४) क्यबन्तो निपातः भूमि कर्षण बीज वापादि कर्म निष्पाद्या ओषधयः। तद्विपरीता अकृष्टपच्या स्वयमेवोत्पद्यमाना नीवार गवेधुकादयः। ग्राम्याः=ग्रामे भवाः पशवः गोऽश्व महिषाजाविगर्द-भोष्ट्रादयः। आरण्याः अरण्ये भवाः पशवः हस्तिसिंहशरभ मृगगवयमर्कटादयः। वित्तं=पूर्वलब्धम् वित्तिः=भाविलाभः। भूतं=जातपुत्रादिकम्। भूतिरैश्वर्यं स्वार्जितम्। एतानि यज्ञेन मम सम्पद्यन्ताम्॥ "सृष्ट्वापुराणि विविधान्यजयाऽऽत्मशक्त्या वृक्षान् सरीसृपपशून् खगदंशमत्स्यान्। तैस्तैरतुष्ट हृदयः पुरुषं विधाय ब्रह्मावलोकधिषणं मुदमाप देवः॥"

(भाग० स्कं० ११ अ० ९)

अब ज्यों ज्यों वनस्पतियों की अन्नमयी शक्तियां बढ़ने लगीं और अकृष्टपच्य अन्न की शक्ति व्यापक हुई तो उसपर आश्रित रहनेवाले ज्ञान के पुतले प्राणिश्रेष्ठ मानव की सब के बाद उत्पत्ति हुई। वही अपने ज्ञान की शक्ति के द्वारा प्रभु की विराट सृष्टि जलचर, थलचर और नभचर प्राणियों का एकमात्र स्वामी हुआ। चींटी से लेकर हाथी तक जो प्रथम उत्पन्न हुए वे अङ्गस्वरूप हैं और मनुष्य जो सब के अन्त में उत्पन्न हुआ वह सृष्टि का प्राण है उसी के हाथ में सृष्टि का परिचालन पूर्णतया रक्षित है। इसको ठीक रूप से समझने के लिये हमें देखना है। संस्कृत में एक उक्ति है "यत्पिण्डे तद्ब्रह्माण्डे" जो पिंड में है वही ब्रह्माण्ड में है। देखिये, माता के गर्भ में रज-वीर्य के संयोग से समयानुसार पहले बालक के अंग-प्रत्यङ्ग पूर्णतया बनने के बाद चेतन आत्मा की अभिव्यक्ति होती है। जीवके अधीन ही शरीर रहता है। यदि ज्ञान और विवेकसे आत्मा (जीव) शरीर को प्रकृति के नियमानुसार चलाता है वह पूर्णायु भोगता है यदि अज्ञान से चलाता है तो अल्पायु होता है यही सृष्टि का क्रम है। सृष्टि में सभी प्राणी मानव के अविभाज्य अंग हैं। सभी की रचना सृष्टि की परिचर्या के लिये पूर्ण आवश्यक है और उनकी वृद्धि एवं रक्षा का भार ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न मानव के कन्धों पर है। वस्तुतः शरीररूपी सृष्टि में अङ्ग-प्रत्यङ्गरूपी जीवमात्र की सत्ता में प्राणरूपी मानव ही सर्वेसर्वा है यह ही प्रभु की सृष्टि की रक्षा करनेवाला और मर्यादा का रक्षक विराट महामहिम ज्ञानशाली मनुष्य है। इस प्रकार मानव ज्ञान के द्वारा प्रकृति के नियमानुसार ईश्वरीय देन से सृष्टि की मर्यादा बनाये रखने से प्राणी मात्र की वृद्धि होगी और मर्यादा तोड़ने से जीव मात्र का ह्रास होगा।

साथ ही लगे हाथ हमें सृष्टि के सार्वभौम गुणों पर सरसरी दृष्टि डालनी है। सृष्टि में तीन प्रमुख गुणों का ही बोलबाला है, सत्व, रजस् और तमस्। जैसे; यामल में बतलाया गया है—

सत्त्वं रजस्तम इति गुणत्रयमुदाहृतम्।
साम्यावस्थितिमेतेषामवस्थाम्प्रकृतिम्विदुः॥
सैव मूलप्रकृतिः स्यात्प्रधानम्पुरुषोऽपि च।

सत्व, रजः और तमः ये तीन गुण बताये गये हैं इनकी साम्यावस्था को प्रकृति कहा गया है उसी का नाम मूल प्रकृति है और प्रकृति का नियन्ता पुरुष सञ्ज्ञक है। और भी—

सम्मतियाँ और उद्गार !

सत्त्वं रजस्तम इति गुणानां त्रितयम्प्रिये ।
यदा सा परमाशक्तिर्गुणाधिष्ठानमाचरेत् ॥
प्रकृतिस्त्वं भवेत्तस्याः पुरुषः स्यात्सदाशिवः ।

सत्त्व, रजस् और तमो गुणोंका अधिष्ठान जब परमाशक्ति बनती हैं तो उसकी प्रकृति सञ्ज्ञा और सदाशिव प्रधान पुरुषके रूप में अभिव्यक्त होते हैं । उन्हीं की इच्छानुसार त्रिगुणात्मिका सृष्टि का क्रम बराबर चलता रहता है । इस क्रममें सत्त्वगुण से मानव, रजोगुण से पशु-पक्षी और तमोगुण से कीट-पतङ्गादि उत्पन्न होते हैं ।

यहां सत्त्व का अभिप्राय है ज्ञान अर्थात् 'मानव' ; क्योंकि प्रकृति और मर्यादा से जीवन में मनुष्य ही अधिकाधिक नियमानुवर्तिता, आत्माभिव्यक्ति एवं विवेकशीलता द्वारा सर्वाधिक कला-सम्पन्न बन सकता है । वह अपने हाथ में सारी सृष्टि की वृद्धि एवं रक्षा के साथ अपने उत्थान की चतुर्दिक उन्नति की सामर्थ्य लिये हुए है । इसलिये सृष्टि के उत्थान-पतन, भले-बुरे और पाप-पुण्य का दायित्व उसीपर है । रजका अर्थ है भोग जिससे पशु-पक्षी अभिप्रेत हैं । इसका पर्यवसान विनाशमें है । ये भी भोग सृष्टिकी परिचर्या में पूर्ण उपयोगी हैं । ये भोग करनेवाले प्राणी हैं अज्ञानमें प्रकृति की प्रेरणा से । इनके द्वारा अपने लिये जो भी भोग की क्रियायें की जाती हैं उनसे इनके जिम्मे पाप लागू नहीं पड़ता । जिसे ज्ञान है उसे ही यह लागू होता है बल्कि अज्ञानी लिपायमान नहीं होते हैं । तम का अभिप्राय है नाश, जो कीट, पतंग और हिंसक आदि जन्तुओं का बोधक हैं । ये प्रकृति के नियमानुसार जो बढ़ी हुई सृष्टि है— आवश्यकता से अधिक है उसके समेटनें में अधिक उपयोगी हैं । इस सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति संहार का क्रम सत्वं रजस् और तमस् के साथ परस्परानुबन्धि है ।

प्रकृति की सत्ता ने इन्हीं गुणों के आधार पर प्राणियों के आहार का भी विधान किया है वसुन्धरा ने पौधों को उगाया और पौधों से फल फूल तथा अन्न आदि उत्पन्न हुए जिन्हें मानव ने ग्रहण किया जो उसके वंश को बढ़ाते गये । अन्न की शक्ति देखिये । अन्न कितना पौष्टिक, अपरिमित शक्ति स्फूर्तिदाता और बलवुद्धि-वर्धक है । इसके सेवन करनेवाले प्राणी मानव की जो कुछ चरमोन्नति हुई है उसे संसार में कौन नहीं जानता । इसी के प्रभाव से हजारों हाथियों का बल-प्राप्त किया गया ; सूक्ष्म देह से पर्वतों तक को उठाया गया और सिर्फ एक बाण से ही सारी सृष्टि को कम्पायमान कर दिया गया । अन्न की करामात आज हमलोग भूल गये परिणामतः अवनति, अज्ञान दुर्दैव अशक्तता यहाँ तक कि मानव दानव के रूप में अपनी शक्ति का दुरुपयोग कर विनाश के प्रलयङ्कारी ज्वालामुखी की झकझोर लपेटों में अपने को सपरिवार झोंकना चाहता है । अन्न ही ज्ञानोत्पत्ति का मूल स्रोत है जिससे पराक्रम, कौशल और बुद्धि बल जो मनुष्य को परम्परा से थाती के रूप में मिले हैं, प्रतिक्षण प्राणिमात्र के रक्षा और वृद्धि के काम में लिये जाकर श्रष्टि की महिमा को बढ़ावें । मोक्षपद तो अन्न पर आधार करनेवाले मानव का अन्तिम लक्ष्य है । मानव से यह अपेक्षित है कि वह अमरता का पुजारी बन अन्न जैसी सार वस्तु को ग्रहण कर अहिंसा की पृष्ठभूमि से वायुमण्डल पवित्र बनावे जिससे सार तत्व शान्ति, भ्रातृभाव, सर्वभूत हित समभाव और एकता द्वारा अपने को नारायण रूप में प्रकट कर भूमण्डल पर "जीवो और जीने दो" का अमर सिद्धान्त मूर्त रूप में उ[illegible] करे । काश ! आज मानव अपने चिरपरित्यक्त सात्विक मार्ग को अपनाकर भूल को ध्यान में रखते हुए सम्पूर्ण [illegible] उद्धारक, रक्षक, पालक, और त्राणकर्ता होता ।

सम्मतियाँ और उद्गार !

अन्न के निस्सार अंश घास-फूस आदि तथा फलों के स्थूल अंश छिलके आदि पशुओं ने ग्रहण किये मैले-कुचैले से कीट पतङ्गों की उत्पत्ति हुई। मनुष्य, पशु-पक्षी तथा कीट-पतङ्गों के लिये प्रकृति ने जो आहार निर्दिष्ट किया है उसी पर स्थिर रहने में सब जीवों का हित और सृष्टि की रक्षा निहित है। खटमल, मच्छर आदि की उत्पत्ति मैल से है। वे एक दूसरे को खाते गये और अन्त में मल की शक्ति सिंह तक पहुंच गई जिसका मतलब हुआ विनाश, किन्तु यह भी सृष्टि परिचालन के लिये बहुत उपयोगी है। अब घास-फूस की शक्ति पर विचार कीजिये, इसे ग्रहण करनेवाले पशु बकरी से लेकर हाथी तक का शरीर स्थूल काय हो गया, हाथी की शक्ति का स्रोत रज है। जिसका मतलब हुआ भोग, किन्तु यह भी सृष्टि परिचालन में पूर्ण सहायक है।

सृष्टि में कोई भी प्राणी अनुपयोगी नहीं है उनको हिंसा द्वारा नष्ट करने की बात सोचना ज्ञानी मानव का ज्ञान नहीं है, वह अज्ञान है न ही इष्ट और ध्येय है। हां, प्रकृति ने अवश्य कुछ ऐसे-ऐसे नियम बना दिये हैं, जिनसे बढ़ी हुई प्राणिसंख्या प्रकृति ही समेट लेती है न कि मानव। जैसे, छोटी मछली बड़ी मछलीका आहार है और हिंसक जन्तुओं का अन्य जन्तु। अतः उसे तो प्राणिमात्र को बढ़ने देकर अपना सर्वाङ्ग पूर्ण विकास करना चाहिये उसी के लिये जागरूक होकर चेष्टा करनी चाहिये। मानव का अवतार सृष्टि की रक्षा और शक्ति वृद्धि करने के लिये है। प्राणी मात्र ईश्वर की आत्मा है यदि किसी प्राणी की हिंसा की जाय या शक्ति को क्षीण किया जाय तो अपनी ही शक्ति का ह्रास करना है जो सीधे ईश्वर से ही सम्बद्ध है।

संक्षेप में, सम्पूर्ण प्राणी मात्र विराट पुरुष के अविच्छिन्न अंग हैं। "ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः" (गीता अ० १५ श्लोक ७) प्राणीमात्र ही प्रभु के अंश है। प्रभुमय ही संसार है प्रभु उनमें पूर्णतया व्याप्त हैं। जैसे, "मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय !" अतः प्रभुमय संसार में पुरुष का ज्ञान सहित पदार्थों का उपभोग साधुता से जीवन बिता कर अपना उद्देश्य परमात्मा की प्राप्ति करना ही लक्ष्य है।

इस प्रकार जहाँ एक ओर सृष्टि के सारे प्राणी किसी न किसी रूप में पूर्ण उपयोगी हैं वहाँ संसार के प्रधान प्राणी मनुष्य के परिवार के अभिन्न अंग हैं। जिस तरह मानव के सारे शरीर के अवयवों का—भले ही केश के रूप में क्यों न हो—पूरा उपयोग है। वैसे ही उपर्युक्त प्रतिपादित प्रकरण में प्राणीमात्र विराट पुरुष के अंग हैं और उनका पूर्ण उपयोग है।

वेद के अङ्ग निरुक्त में ऊर्ध्व मार्गगति प्रकरण में सृष्टि के सम्बन्ध में तात्त्विक उल्लेख पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किया जाता है :—

व्याख्यातं दैवतं यज्ञाङ्गं चाथात ऊर्ध्वमार्गगतिं व्याख्यास्यामः "सूर्य आत्मा" इत्युदितस्य हि कर्मद्रष्टा। अथैतदनुप्रवदन्ति। अथैतं महान्तमात्मानमेषर्गणः प्रवदन्ति। "इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुः" । अथैष महानात्मात्म जिज्ञासयात्मानं प्रोवाच। "अग्निरस्मि जन्मना जातवेदाः" "अहमस्मि "इत्य ताभ्याम् ॥ १ ॥

है और

सम्मतियाँ और उद्गार !

"अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतम्म आसन् । अर्क्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्रो घर्मो हविरस्मिनाम ।" "अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वन्देवेभ्यो अमृतस्य नाम । यो मा ददाति स इदेव मावदहमन्नमन्नमदन्तमद्मि ।।" इति । स ह ज्ञात्वा प्रादुर्बभूव। एवं तं व्याजहारा यं तमात्मानमध्यात्मजमन्तिक मन्यस्मा आचचक्ष्वेति ।।२।।

अन्न, ऋत और सत्य का पूर्ववर्ती है देवताओं से पूर्व भी अन्न ही विद्यमान था। अन्न से ही सृष्टि की सारी प्रक्रिया है। पृथ्वी ने जल को धारण किया और उससे अन्न उत्पन्न हुआ। अन्न से वीर्य हुआ और वीर्य से सृष्टि हुई। संसार में भोक्ता, भोग और भोक्तव्य सब अन्न की ही महिमा है।

"अपश्यं गोपामनिपद्यमान मा च परा च पथिभिश्चरन्तम् । स सध्रीचीः स विषूचीर्वसानः आ वरीवर्त्ति भुवनेष्वन्तः। आवरीवर्त्ति भुवनेष्वन्तरिति । अथैष महानात्मा सत्त्वलक्षणस्तत्परं तद् ब्रह्म तत्सत्यं तत्सलिलं तदव्यक्तं तदस्पर्शं तदरूपं तदरसं तदगन्धं तदमृतं तच्छुक्रं (क्रं) तन्निष्ठो भूतात्मा । सैषा भूतप्रकृतिरित्येके । तत्क्षेत्रं तज्ज्ञानात् क्षेत्रज्ञमनुप्राप्य निरात्मकम्। अथैष महानात्मा त्रिविधो भवति। सत्त्वं रजस्तम इति । सत्त्वं तु मध्ये विशुद्धं तिष्ठत्यभितो रजस्तमसी । रजः इति कामद्वेषस्तम इत्यविज्ञातस्य विशुध्यतो विभूतिं कुर्वतः क्षेत्रज्ञपृथक्त्वाय कल्पते । परिभातिलिङ्गो महानात्मा तमोलिङ्गः । विद्याप्रकाशलिङ्गस्तमः । अपि निश्चयलिङ्ग आकाशः ।।३।।

आकाशगुणः शब्दः । आकाद्वायुर्द्विगुणःस्पर्शेन । वायोर्ज्योतिस्त्रिगुणं रूपेण । ज्योतिष आपश्चतुर्गुणा रसेन । अद्भ्यः पृथिवी पञ्चगुणा गन्धेन । पृथिव्या भूतग्रामस्थावरजंगमाः । तदेतदहर्युगसहस्रं जागर्त्ति । तस्यान्ते सुषुप्स्यन्नङ्गानि प्रत्याहरति । भूतग्रामाः पृथिवीमपियन्ति । पृथिव्यपः । आपो ज्योतिषम् । ज्योतिर्वायुम् । वायुराकाशम् । आकाशो मनः । मनो विद्याम्। विद्या महान्तमात्मानम् । महानात्मा प्रतिभाम् । प्रतिभा प्रकृतिम् । - सा स्वपिति युगसहस्रं रात्रिः । तावेतावहोरात्रावजस्रं परिवर्त्तेते । स कालस्तदेतदहर्भवति । युगसहस्रपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः । रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदोजना इति ॥ ४ ॥

तं परिवर्त्तमानमन्योऽनुप्रवर्त्तते । स्रष्टा द्रष्टा विभक्तातिमात्रोऽहमिति गम्यते । स मिथ्या-दर्शनेदम्पावकं महाभूतेषु चिरोण्वाकाशाद्वायोः प्राणंचक्षुश्च वक्तारं च तेजसोऽद्भ्यः स्नेहं पृथि[illegible] मूर्त्तिः । पार्थिवांस्त्वष्टौ गुणान् विद्यात् । त्रीन् मातृतस्त्रीन् पितृतः । अस्थिस्नायु[illegible]

पितृतः । त्वङ्मांस शोणितानि मातृतः । अन्नं पानमित्यष्टौ । सोऽयं पुरुषः सर्वमयः सर्वज्ञानोऽपि क्लृप्तः ॥ ५ ॥

स यद्यनुरुध्यते तद्भवति । यदि धर्मोऽनुरुध्यते तद्देवोभवति । यदि ज्ञानमनुरुध्यते तदमृतो भवति । यदि काममनुरुध्यते संच्यवते । इमां योनिं सन्दध्यात् । तदिदमत्रमतम् । श्लेष्मा रेतसः सम्भवति । श्लेष्मणो रसः, रसाच्छोणितं, शोणितान्मांसं, मासान्मेदो, मेदसः स्नावा स्नाव्नोऽस्थीन्यस्थिभ्यो मज्जा, मज्जातो रेतः । तदिदं योनौ रेतः सिक्तं पुरुषः सम्भवति । शुक्रातिरेके पुमान्भवति, शोणितातिरेके स्त्री भवति । द्वाभ्यां समेन नपुंसको भवति । शुक्रेण भिन्नेन यमोभवति । शुक्रशोणित संयोगान्मातृपितृसंयोगाच्च । (तत्) कथमिदं शरीरं परं सयम्यते । सौम्यो भवति । एकरात्रोषितं कललं भवति । पंचरात्राद्बुद्बुदाः । सप्तरात्रात्पेशी । द्विसप्तरात्रादर्बुदः । पंचविंशतिरात्रःस्वस्थितो घनो भवति । मासमात्रात्कठिनो भवति । द्विमासाभ्यन्तरे शिरः सम्पद्यते । मासत्रयेण ग्रीवाव्यादेशो, मासचतुष्केण त्वग्व्यादेशः । पंचमे मासे नखरोमव्यादेशः । षष्ठे मुखनासिकाक्षिश्रोत्रंचसम्भवति । सप्तमे चलनसमर्थो भवत्यष्टमे बुद्ध्याध्यवस्यति । नवमे सर्वाङ्गसम्पूर्णो भवति । "मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहंपुनर्मृतः । नानायोनिसहस्राणि मयोषितानि यानि वै ॥ आहारा विविधा भुक्ताः पीता नानाविधास्तनाः । मातरो विविधा दृष्टाः पितरः सुहृदस्तथा ॥ अवाङ्मुखः पीड्यमानो जन्तुश्चैव समन्वितः । सांख्यं योगं समभ्यस्येत् पुरुषं वा पंचविंशकम् ।" इति । ततश्च दशमे मासे प्रजायते । जातश्च वायुना स्पृष्टो न स्मरति जन्ममरणे । अन्ते च शुभाशुभं कर्मैतच्छरीरस्य प्रामाण्यम् ॥ ६ ॥

अष्टोत्तरं सन्धिशतम् । अष्टाकपालं शिरः सम्पद्यते । षोडश वपापलानि । नव स्नायुशतानि । सप्तशतं पुरुषस्य मर्मणाम् । अर्द्धचतस्रो रोमाणि कोट्यो, हृदयं ह्यष्टकपालानि, द्वादशकपालानि जिह्वा, वृषणौ ह्यष्ट सुपर्णौ । तथोपस्थ गुदपायु । एतन्मूत्रपुरीषं कस्मात् । आहारपान सिक्तत्वात् । अनुपचितकर्माणावन्योन्यं जयेते इति । तं विद्याकर्मणी समन्वारभेते पूर्वप्रज्ञा च । अज्ञानतमसि मग्नो जरामरणक्षुत्पिपासाशोकक्रोधलोभमोहमदभयमत्सरहर्षविषादेर्ष्यासूयात्मकैर्द्व-[illegible]भूयमानः सोऽस्मादावर्जवञ्जीवीभावानां तन्निर्मुच्यते । सोऽस्मात्पापात्महाभूमिकाव-

च्छरीरान्निमेषमात्रैः प्रक्रम्य प्रकृतिरधिपरीत्य तैजसं शरीरं कृत्वा कर्मणोऽनुरूपं फलमनुभूय तस्य संक्षये पुनरिमँल्लोकं प्रतिपद्यते ॥ ७ ॥

अथ ये हिंसामाश्रित्य विद्यामुत्सृज्य महत्तपस्तेपिरे चिरेण वेदोक्तानि वा कर्माणि कुर्वन्ति ते धूममभिसम्भवन्ति । धूमाद्रात्रिं, रात्रेरपक्षीयमाणपक्षम् । अपक्षीयमाणापक्षाद्दक्षिणायनं, दक्षिणायनात्पितृलोकं, पितृलोकाश्चन्द्रमसं, चन्द्रमसो वायुं, वायोर्वृष्टिं, वृष्टेरोषधयश्चैतद्भूत्वा (तस्यसंक्षये) पुनरेवेमँल्लोकं प्रतिपद्यते ॥८॥

अथ ये हिंसामुत्सृज्य विद्यामाश्रित्य महत्तपस्तेपिरे ज्ञानोक्तानि वा कर्माणि कुर्वन्ति तेऽर्चिरभिसम्भवन्त्यर्चिषोऽहरन्ह आपूर्णमाणपक्षमापूर्णमाणपक्षादुदगयनमुदगयनाद्देवलोकं, देवलोकादादित्यमादित्याद्वैद्युतं, वैद्युतान्मानसम् । मानसः पुरुषोभूत्वा ब्रह्मलोकमभिसम्भवन्ति । ते न पुनरावर्तन्ते । शिष्टा दन्दशूका य इदं न जानन्ति । तस्मादिदंवेदितव्यम् । अथाप्याह ॥ ९ ॥

"न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव । नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थाशासश्चरन्ति ।" न तं विद्यया विदुषो यमेवं विद्वांसो वदन्त्यक्षरं ब्रह्मणस्पतिम् । अन्यद्युष्माकमन्तरमन्यदेषामन्तरं बभूवेति । नीहारेण प्रावृतास्तमसा जल्प्या चासुतृप उक्थशासः प्राणं सूर्यं यत्पथगामिनश्चरंति । अविद्वांसः क्षेत्रज्ञमनुप्रवदन्ति । अथाहो विद्वांसः क्षेत्रज्ञोऽनुकल्पते । तस्य तपसा सहाप्रमादमेत्यथाप्तव्यो भवति । तेनासन्ततमिच्छेत् । तेनसख्यमिच्छेत् । एष हि सखा श्रेष्ठः सञ्जानाति भूतं भवद्भविष्यदिति । ज्ञाता कस्माज्जायतेः । सखा कस्मात्सख्यतेः । सह भूतेन्द्रियैःशेरते । महाभूतानि सेन्द्रियाणि प्रज्ञया कर्म कारयतीति (वा) । तस्य यदापः प्रतिष्ठा । शीलमुपशम आत्मा ब्रह्मेति स ब्रह्मभूतो भवति । साक्षिमात्रो व्यवतिष्ठतेऽबन्धो ज्ञानकृतः ॥ अथात्मनो महतः प्रथमं भूतनामधेयान्यनुक्रमिष्यामः ॥१०॥

हंसः । घर्मः । यज्ञः । वेनः । मेघः । कृमिः । भूमिः । विभुः । प्रभुः । शम्भुः । राभुः । वधकर्मा । सोमः । भूतम् । भुवनम् । भविष्यत् । आपः । महत् । व्योम । यशः । महः । स्वर्णीकम् । स्मृतीक[illegible] स्वृतीकम् । सतीकम् । सतीनम् । गहनम् । गभीरम् । गह्वरम् । कम् । अन्नम् । हविः । सद्म । [illegible] ऋतम् । योनिः । ऋतस्ययोनिः । सत्यम् । नीरम् । हविः । रयिः । सत् । पूर्णम् । सर्वम् । [illegible]

बर्हिः। नाम। सर्पिः। अपः। पवित्रम्। अमृतम्। इन्दुः। हेम। स्वः। सर्गाः। शम्बरम्। अम्ब-रम्। वियत्। व्योम। बर्हिः। धन्व। अन्तरिक्षम्। आकाशम्। आपः। पृथिवी। भूः। स्वयम्भूः। अध्व। पुष्करम्। सगरम्। समुद्रः। तपः। तेजः। सिन्धुः। अर्णवः। नाभिः। ऊधः। वृक्षः। तत्। यत्। किम्। ब्रह्म। वरेण्यम्। हंसः। आत्मा। भवन्ति। बधन्ति। अध्वानम्। यद्वाहिष्ठ्या। शरीराणि। अव्ययंच संस्कुरुते। यज्ञः। आत्मा। भवति। यदेनं तन्वते। अथैतं महान्त-मात्मानमेतानि सूक्तान्येता ऋचोऽनुप्रवदन्ति ॥ ११ ॥

"सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः। जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः।" सोमः पवते जनयिता मतीनां जनयिता दिवो जनयिता पृथिव्या जनयिताग्नेर्जनयिता सूर्यस्य जनयितेन्द्रस्य जनयितोत विष्णोः। सोमः पवते। सोमः सूर्यः प्रसवनाज्जनिता मतीनां प्रकाशकर्मणामादित्यरश्मीनाम्। दिवो द्योतनकर्मणामा-दित्यरश्मीनाम्। पृथिव्याः प्रथनकर्मणामादित्यरश्मीनाम्। अग्नेर्गतिकर्मणामादित्यरश्मीनाम्। सूर्यस्यस्वीकरणकर्मणामादित्यरश्मीनाम्। इन्द्रस्यैश्वर्यकर्मणामादित्यरश्मीनाम्। विष्णोर्व्याप्तिकर्मणा-मादित्यरश्मीनाम्। इत्यधिदैवतम्। अथाध्यात्मम्। सोम आत्माप्येतस्मादेवेन्द्रियाणां जनितेत्यर्थः। अपि वा सर्वाभिर्विभूतिभिर्विभूतत आत्मा। इत्यात्मगतिमाचष्टे ॥ १२ ॥

"ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम्।
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥"

ब्रह्मा देवाना मिति। एष हि ब्रह्मा भवति देवानां देवनकर्मणामादित्यरश्मीनाम्। पदवीः कवीना-मिति। एष हि पदं वेत्ति कवीनां कवीयमानानामादित्यरश्मीनाम्। ऋषिर्विप्राणामिति। एष हि ऋषिणो भवति विप्राणां व्यापनकर्मणामादित्यरश्मीनाम् महिषो मृगाणामिति। एष हि महान् भवति मृगाणां मार्गणकर्मणामादित्यरश्मीनाम्। श्येनो गृध्राणामिति। श्येन आदित्यो भवति श्याय-तेर्गतिकर्मणः गृध्र आदित्यो भवति गृध्यतेः स्थानकर्मणः। यत एतस्मिंस्तिष्ठति। स्वधितिर्वना-नामिति। एष हि स्वयङ्कर्माण्यादित्यो धत्ते वनानां वननकर्मणामादित्यरश्मीनाम्। सोमः पवित्र भन्नित्येष हि पवित्रं रश्मीनामत्येति। स्तूयमानः एष एवैतत् सर्वमक्षरमित्यधिदैवतम्।

है और

सम्मतियाँ और उद्‌गार !

अथाध्यात्मम् ब्रह्मा देवानामित्ययमपि ब्रह्मा भवति देवानां देवनकर्मणामिन्द्रियाणाम् पदवीः कवीनामित्ययमपि पदं वेत्ति कवीनां कवीयमानानामिन्द्रियाणाम् । ऋषिर्विप्राणामित्ययमप्यृषिणो भवति विप्राणां व्यापनकर्मणामिन्द्रियाणाम् । महिषो मृगाणामिति । अयमपि महान् भवति मृगाणां मार्गणकर्मणामिन्द्रियाणाम् । श्येनो गृध्राणामिति श्येन आत्मा भवति श्यायतेर्ज्ञानकर्मणः । गृध्राणीन्द्रियाणि, गृध्यतेर्ज्ञानकर्मणो यत एतस्मिंस्तिष्ठति । स्वधितिर्वनानामिति । अयमपि स्वयं-कर्माण्यात्मनि धत्ते वनानां वननकर्मणामिन्द्रियाणाम् । सोमः पवित्र मत्येतिरेभन्निति । अयमपि पवित्रमिन्द्रियाण्यत्येति । स्तूयमानोऽयमेवैतत्सर्वमनुभवति । आत्मगतिमाचष्टे ।। १३ ।।

"तिस्रो वाच ईरयति प्र वन्हिर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् ।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ।।"

वन्हिरादित्यो भवति । स तिस्रो वाचः प्रेरयत्यृचो यजूंषि सामानि । ऋतस्यादित्यस्य कर्माणि ब्रह्मणो मतानि । एष एवैतत् सर्वमक्षरम् । इत्यधिदैवतम् । अथाध्यात्मम् । वन्हिरात्मा भवति स तिस्रो वाच ईरयति प्रेरयति विद्या मतिबुद्धिमताम् । ऋतस्यात्मनः कर्माणि ब्रह्मणो मतानि । अयमेवै तत् सर्वमनुभवति आत्मगतिमाचष्टे ।। १४ ।।

"सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः ।
सोमः सुतः पूयते अज्यमानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सन्नवन्ते ।।"

एत एव सोमं गावो धेनवो रश्मयो वावश्यमाना कामयमाना आदित्यं यन्ति । एवमेव सोमं विप्रा रश्मयो मतिभिः पृच्छमानाः कामयमाना आदित्यं यन्ति । एवमेव सोमः सुतः पूयते अज्यमानः । एतमेवार्काश्च त्रिष्टुभश्च सन्नवन्ते । तत एतस्मिन्नादित्य एकं भवन्तीत्यधिदैवतम् । अथाध्यात्मम् । एत एव सोमं गावो धेनव इन्द्रियाणि वावश्यमानानि कामयमानान्यात्मानं यन्त्ये-वमेव सोमं विप्रा इन्द्रियाणि मतिभिः पृच्छमानानि कामयमानान्यात्मानं यन्त्येवमेव सोमः सुतः पूयते अज्यमानः । इममेवात्मा च सप्त ऋषयश्च सन्नवन्ते तानीमान्येतस्मिन्नात्मन्येकं भवन्तीत्या-त्मगतिमाचष्टे ।। १५ ।।

"अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मञ्जनयन् प्रजा भुवनस्य राजा ।
वृषा पवित्रे अधिसानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे सुवान इन्दुः ।।"

अत्यक्रमीत् समुद्रः आदित्यः परमेव्यवने वर्ष कर्मणा जनयन् प्रजा भुवनस्य राजा सर्वस्य राजा। वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे सुवान इन्दुरित्यधिदैवम्। अथाध्यात्ममत्यक्रमीत् समुद्र आत्मा परमे व्यवने ज्ञानकर्मणा जनयन् प्रजा भुवनस्य राजा सर्वस्य राजा। वृषा पवित्रे अधिसानो अव्ये महत्सोमो वावृधे सुवान इन्दुरित्यात्मगतिमाचष्टे ॥ १६ ॥

"महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान्।
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥"

महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत। देवानामाधिपत्यमदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दुरादित्यः इन्दुरात्मा ॥ १७ ॥

विधुन्दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥

विधुं विधमनशीलं दद्राणं दमनशीलं युवानं चन्द्रमसं पलित आदित्यो गिरति। सद्यो म्रियते स दिवा समुदिता। इत्यधिदैवतम्। अथाध्यात्मम्। विधुं विधमनशीलं दद्राणं दमनशीलं युवानं महान्तं पलित आत्मा गिरति। रात्रौ म्रियते। रात्रिः समुदितेत्यात्मगतिमाचष्टे ॥ १८ ॥

"साकञ्जानां सप्तथमाहुरेकजं षलिद्यमा ऋषयो देवजा इति।
तेषामिष्टानि विहितानि धामशः स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः ॥"

सहजातानां षण्णामृषीणां आदित्यः सप्तमः। तेषामिष्टानि वा कान्तानि वा क्रान्तानि वा गतानि वा मतानि वा नतानि वाद्भिः सह सम्मोदन्ते। यत्रैतानि सप्तऋषीणानि ज्योतींषि तेभ्यः पर आदित्यः। तान्येतस्मिन्नेकं भवन्तीत्यधिदैवतम्। अथाध्यात्मम्। सहजातानां षण्णामिन्द्रियाणामात्मासप्तमस्तेषामिष्टानि वा कान्तानि वा क्रान्तानि वा गतानि वा मतानि वा नतानि वाऽन्नेन सह सम्मोदन्ते। यत्रेमानि सप्तऋषीणानीन्द्रियाणि। एभ्यः परआत्मा। तान्येतस्मिन्नेकं भवन्तीत्यात्मगतिमाचष्टे ॥ १९ ॥

"स्त्रियः सतीस्ताँ उभे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान्न वि चेतदन्धः।
कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात् स पितुष्पितासत् ॥"

है और प्र

स्त्रिय एवैताः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धहारिण्यस्ता अमुं पुंशब्देन निराहारः प्राण इति पश्यन् कष्टाक्ष विजानात्यन्धः कविर्यः पुत्रः स इमा जानाति । यः स इमां जानाति स पितुष्पितासदित्यात्मगतिमाचष्टे ॥ २० ॥

सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि ।
ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परिभवन्ति विश्वतः ॥

सप्तैतानादित्यरश्मीनयमादित्यो गिरति मध्यस्थानोदूर्ध्वशब्दो यान्यस्मिंस्तिष्ठन्ति तानि धीतिभिश्च मनसा च विपर्य्ययन्ति । परिभुवः परिभवन्ति सर्वाणि कर्माणि वर्षकर्मणेत्यधिदैवतम् । अथाध्यात्मम् । सप्तैतानीन्द्रियाण्ययमात्मा गिरति मध्यस्थानोदूर्ध्वशब्दः । यान्यस्मिंस्तिष्ठति तानिधीतिभिश्च मनसा च विपर्य्ययन्ति । परिभुवः परिभवन्ति सर्वाणीन्द्रियाणि ज्ञानकर्मणेत्यात्मगतिमाचष्टे ॥ २१ ॥

"न विजानामि यदि वेदमस्मि निण्यः सन्नद्धो मनसा चरामि ।
यदा मागन् प्रथमजा ऋतस्यादिद्वाचो अश्नुवे भागमस्याः ॥"

न विजानामि यदि वेदमस्मि । निण्यः प्रसन्नद्धो मनसा चरामि । न हि विजानन् बुद्धिमतः पुष्टिः पुत्रः परिवेदयन्तेऽयमादित्योऽयमात्मा ॥ २२ ॥

"अ पाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्योमर्त्येना सयोनिः ।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्तान्यं१न्चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम् ॥"

अपाञ्चयति प्राञ्चयति स्वधया गृभीतोऽमर्त्य आदित्यो मर्त्येन मनसा सह । तौ शश्वद्गामिनौ विश्वगामिनौ बहुगामिनौ वा । पश्यत्यादित्यं न चन्द्रमसमित्यधिदैवतम् । अथाध्यात्ममपाञ्चयति प्राञ्चयति स्वधया गृभीतोऽमर्त्य आत्मा मर्त्येन मनसा सह । तौ शश्वद्गामिनौ विश्वगामिनौ बहुगामिनौ वा । पश्यत्यात्मानं न मनः इत्यात्मगतिमाचष्टे ॥ २३ ॥

"तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः ॥"

तद्भवति भूतेषु भुवनेषु ज्येष्ठमादित्यं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णो दीप्तिनृम्णः । स[illegible]

निरिणाति शत्रूनिति। निरिणातिः प्रीतिकर्मा दीप्तिकर्मा वा। अनुमदन्ति यं विश्व ऊमाः इत्यधिदैवतम्। अथाध्यात्मं तद्भवति भूतेषु भुवनेषु ज्येष्ठमव्यक्तं यतो जायते उग्रस्त्वेषनृम्णो ज्ञाननृम्णः। सद्यो जज्ञानो निरिणाति शत्रूनिति निरिणातिः प्रीतिकर्मा दीप्तिकर्मा वानुमदन्ति यं सर्व ऊमा इत्यात्मगतिमाचष्टे ॥ २४ ॥

"को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून्।
आसन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून्य एषां भृत्यामृणधत्स जीवात् ॥"

क आदित्यो धुरि गा युङ्क्ते रश्मीन् कर्मवतो भानुमतो दुराधर्षानसून्यसुनवन्तीषूनिषुणवन्ति मयोभूनि सुखभूनि। य इमं सम्भृतं वेद कथं स जीवतीत्यधिदैवतम्। अथाध्यात्मं क आत्मा धुरि गा युङ्क्ते इन्द्रियाणि कर्मवन्ति भानुमन्ति दुराधर्षानसून्यसुनवन्तीषूनिषुणवन्ति मयोभूनि सुखभूनि। य इमानि सम्भृतानि वेद चिरं स जीवतीत्यात्मगति माचष्टे ॥ २५ ॥

"क ईषते तुज्यते को बिभाय को मंसते सन्तमिन्द्रं को अन्ति।
कस्तोकाय क इभायोत रायेऽधि ब्रवत्तन्वे३ को जनाय ॥"

क एव गच्छति, को ददाति, को बिभेति, को मंसते सन्तमिन्द्रम्। कस्तोकायापत्याय महते च नो रणाय रमणीयाय दर्शनीयाय ॥ २६ ॥

"को अग्निमीडे हविषाघृतेन स्रुचा यजाता ऋतुभिर्ध्रुवेभिः।
कस्मै देवा आवहानाशु होम को मंसते वीतिहोत्रः सुदेवः ॥"

क आदित्यं पूजयति हविषा च घृतेन च स्रुचा यजाता ऋतुभिर्ध्रुवेभिरिति। कस्मै देवा आवहानाशु होमार्थान् को मंसते वीतिहोत्रः सुदेवः कल्याणदेवः। इत्यधिदैवतम्। अथाध्यात्मं क आत्मानं पूजयति हविषा च घृतेन च स्रुचा यजाता ऋतुभिर्ध्रुवेभिरिति। कस्मै देवा आवहानाशु होमार्थान्। को मंसते वीतिहोत्रः सुप्रज्ञः कल्याणप्रज्ञ इत्यात्मगतिमाचष्टे ॥ २७ ॥

"त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम्।
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥"

है और प्र[illegible] त्वमङ्ग प्रशंसीर्देवः शविष्ठमर्त्यं न त्वदन्योऽस्ति मघवन् पाता वा पालयिता वा जेता वा [illegible]वेन्द्र ब्रवीमितेवच इति स्तुतिसंयुक्तम् ॥ २८ ॥

सम्मतियाँ और उद्‌गार !

"हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम् ।।"

हंस इति । हंसा सूर्यरश्मयः । परमात्मा परं ज्योतिः। पृथिवी व्याप्तेति । व्याप्तं सर्वं व्याप्तं वननकर्मणानभ्यासेनादित्यमण्डलेनेति । त्ययतीति लोको त्ययतीति । हंसयन्त्ययतीति । हंसाः परमहंसाः । परमात्मा सूर्यरश्मिभिः प्रभूतगभीरवसतीति । त्रिभिर्वसतीति वा । रश्मिर्वससीति वा । वन्हिर्वसतीति वा । सुवर्णरेताः पूषा गर्भा रिभेति रिभन्ता वनकुटिलानि कुटन्ता रिभन्तान्तरिक्षा चरत्पथान्तरिक्षा चरदिति दिवि भुवि गमनं वा सुभानुः सुप्रभूतो होतादित्यस्य गता भवन्त्यतिथिर्दुरोणसत् सर्वे दुरोणसद् द्रवं सर्वे रसाविकर्षयति। रश्मिर्विकषयति । वन्हिर्विकर्षयति । वननम्भवति । अश्वगोजा अद्रिगोजा धरित्रिगोजाः सर्वे गोजा ऋतजा बहुशब्दा भवन्ति। निगमो निगमव्यति भवव्यत्येष निर्वचनाय ।। २६ ।।

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ।।"

द्वौ द्वौ प्रतिष्ठितौ सुकृतौ धर्मकर्त्तारौ दुष्कृतं पापं परिसारकमित्याचक्षते । सुपर्णा सयुजा सखायेत्यात्मानं दुरात्मानं परमात्मानं प्रत्युत्तिष्ठति । शरीर एव तज्जायते । वृक्षम् । रक्ष शरीरम् । वृक्षं पक्षौ प्रतिष्ठापयति । तयोरन्यद्भुक्त्वान्नमनश्नन्नन्यां सरूपतां सलोकतामश्नुते य एवं विद्वान् । अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति । इत्यात्मगतिमाचष्टे ।। ३० ।।

आयाहीन्द्र पथिभिरीलितेभिर्यज्ञमिमं नो भागधेयञ्जुषस्व ।
तृप्तां जुहुर्मातुलस्येव योषा भागस्ते पैतृष्वसेयी वपामिव ।।

आगमिष्यन्ति शक्रो देवतास्ताभिस्त्रिभिस्तीर्थैभिः शक्रप्रतरैरीलितेभिस्त्रिभिस्तीर्थैर्यज्ञमिमन्नो यज्ञ भागमग्नीषोमभागाविन्द्रो जुषस्व । तृप्तामेवं मातुलयोगकन्याभागं सतृकेव सा या देवतास्तास्तत्स्थाने शक्रं निदर्शितम् ।। ३१ ।।

"विप्रं विप्रासोऽवसे देवं मर्त्तास ऊतये। अग्निं गीर्भिर्हवामहे ।" विप्रं विप्रासोऽवसे विदुः विन्दतेर्वेदितव्यम् । विमलशरीरेण वायुना । विप्रस्तु हृत्पद्मनिलयस्थितमकारसंहितमुकारं

कार निलयंगतं क्षिप्रं प्राणेषु बिन्दुसिक्तं विकसितं वह्नितेजः प्रभञ्जनकपद्मेष्वमृतशरीरममृतजात-स्थितममृतवाचामृतमुखे वदन्ति। अग्निञ्जीमिर्हवामहे। अग्नि सम्बोधयेदग्निः सर्वा देवता इति। तस्योत्तरा भूयसे निर्वचनाय॥ ३२॥

"जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः॥"

जातवेदस इति। जातमिदं सर्वं सचराचरं स्थित्युत्पत्तिप्रलयन्यायेनाच्छाय सुनवाम सोम-मिति प्रसवेनाभिषवाय सोमं राजानममृतमरातीयतो यज्ञार्थमिति स्मो निश्चये निदहाति दहति भस्मीकरोति सोमो ददादित्यर्थः। स नः पर्षदति दुर्गाणि दुर्गमनानि स्थानानि नावेव सिन्धुं यथा कश्चित्कर्णधारो नावेव सिन्धोः स्यन्दनान्नदीं जलदुर्गा महाकूलांतारयति दुरितात्यग्निरिति तानि तारयति। तस्यैषापरा भवति॥ ३३॥

"इदन्तेऽन्याभिरसमानमद्भिर्याः काश्च सिन्धुं प्र वहन्ति नद्यः।
सर्पो जीर्णामिव त्वचं जहाति पापं सशिरस्कोऽभ्युपेत्य॥"

इदन्तेऽन्याभिरसमानाभिर्याः काश्च सिन्धुं पतिं कृत्वा नद्यो वहन्ति। सर्पो जीर्णामिव सर्पस्त्वचन्त्यजति। पापं त्यजन्त्याप आप्नोतेस्तासामेषा भवति॥ ३४॥

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम्पुष्टिवर्द्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मा मृतात्॥

त्र्यम्बको रुद्रस्तं त्र्यम्बकं यजामहे। सुगन्धिं सुष्ठुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनं पुष्टिकारकमिवो-र्वारुकमिव फलं बन्धनादारोधनान्मृत्योः सकाशान्मुञ्चस्व माम्। करुणादिति। एषामितरेषापरा भवति॥ ३५॥

शतं जीव शरदो वर्द्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान्।
शतमिन्द्राग्नी सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषेमं पुनर्दुः॥

शतं जीव शरदो वर्द्धमान इत्यपि निगमो भवति। शतमिति शतन्दीर्घमायुः मरुत एना [illegible] यन्ति। शतमेनमेव शतात्मानं भवति। शतमनन्तं भवति। शतमैश्वर्यं भवति। शतमिति [illegible] वै [illegible]मायुः॥ ३६॥

सम्मतियाँ और उद्गार !

मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसोऽस्मान्कदाचना दभन् ।
विश्वा च न उप मिमीहि मानुष वसूनि चर्षणिभ्य आ ॥

मा च ते धामानि माच ते कदा च नः सरिषुः । सर्वाणि प्रज्ञानान्युपमानाय मनुष्यहितः । अयमादित्योऽप्यात्मा । अथैतदनुप्रवदन्त्यथैतं महान्तमात्मानमेषर्ग्गण प्रवदति वैश्वकर्मणे । "देवानान्नु वयज्ञाना" "नासदा सीन्नो सदासीत्तद् नीम् ।" इति च । सैषात्मजिज्ञासा । सैषा सर्वभूतजिज्ञासा । ब्रह्मणः सारिष्टं सरूपतां सलोकतां गमयति य एवं वेद । नमो ब्रह्मणे । नमो महते । नमो भूताय । नमः पारस्कराय । नमो यास्काय । ब्रह्म शुक्लमसीय । ब्रह्मशुक्लमसीय ॥ ३७ ॥

जीवन में उच्च लक्ष्य प्राप्त करने का साधन है ज्ञान, कर्म और उपासना । मनुष्य की कर्मकाण्ड द्वारा बाह्याभ्यन्तर की शुद्धियां हो शनैः-शनैः उसकी ऊंचे स्तर पर प्रगति होती जाती है फलस्वरूप ज्ञान द्वारा अन्त में आत्मसाक्षात्कार होकर ब्राह्मी तनु प्राप्त हो जाती है । दूसरे शब्दों में अज्ञान का मार्ग स्थूल प्रवृत्तियों को लेकर है जिनसे स्थूल गति ही प्राप्त होती है और ज्ञान का मूल अहिंसात्मक, सात्त्विक एवं शान्तिपूर्ण मार्ग है जिसके द्वारा प्राणी की सूक्ष्म गति हो जाती है ।

जो पुरुष हिंसा का आश्रय लेकर अज्ञान द्वारा शरीर के भोगादि के लिये ही बड़ी-बड़ी कठिन तपस्या कर अपनी आत्मा और शरीर को कष्ट देते हुए चिन्तित रहते हैं वे स्वार्थ मूलक प्रवृत्ति के उपासक हैं और मृत्यु के अनन्तर धूमिल दक्षिणार्चिमार्ग द्वारा रात्रि पक्ष और दक्षिणायन को चले जाते हैं, परन्तु जब उनका कर्मक्षय हो जाता है तो वे फिर इस लोक को प्राप्त हो वृष्टि द्वारा औषध एवं अन्न रूप में आ जाते हैं ।

श्रीमद्भगवद्गीता में—

"धूमो रात्रिस्तथाकृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥" अ० ८ श्लो० २५

यह अज्ञान या हिंसामूलक गन्तव्य मार्ग है कृष्ण अथवा दक्षिणार्चिमार्ग की प्राप्ति और पुनरावर्तन इसके सहज फल हैं । अब शुक्लमार्ग जो अतीव प्रोज्ज्वल है उसे बताया जाता है—जो मनुष्य अज्ञान को तिलांजलि देकरवेदोक्त कर्मों को ईश्वरार्पण बुद्धि से करते हैं वे उत्तरोत्तर चरम सत्य का साक्षात्कार कर परमात्म प्राप्ति कर लेते हैं ।

"नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्र मिहविद्यते ।"

श्री मद्भगवद्गीता ।

ऐसे व्यक्ति अर्चिरूप में दिन, पक्ष, उद्गयन, देवलोक, आदित्यलोक, वैद्युतलोक, मानसलोक और स्वयं पुरुष रूप में ब्रह्मलोक की प्राप्ति करते हैं जहां से फिर आवागमन का सदा के लिये अन्त हो जाता है।

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते।
एकया यात्यनावृत्ति मन्यया वर्ततेपुनः ॥ अ० ८ श्लो० २६ ॥

यहां अहिंसा एवं ज्ञान द्वारा सम्पूर्ण प्राणिहित में लगे हुए ज्ञानी की सूक्ष्मगति हो जाने से उत्तरोत्तर उच्चात्युच्च भूमिका पर ब्रह्मलोक भगवत्प्राप्ति रूप चरम लक्ष्य जाना जाता है। जो पुरुष अज्ञानजन्य हिंसामार्ग का अवलम्बन करते हैं उनकी स्थूल गति रहती है परिणामतः उनका आवागमन नहीं मिटता जो अन्तिम लक्ष्य प्राप्ति में बड़ा भारी विघ्न है एवं विघातक है।

अतः प्राणीमात्र की किसी भी रूप में हिंसा द्वारा शक्तिक्षीण न होने दी जाय यही चरम उन्नति का लक्ष्य है, इसी को प्राप्त कर हम जीवन में सफल हो सकते हैं।

भगवद्वचनों में यही तत्त्व कितनी विशेषता से प्रतिपादित किया है। देखिये—

"मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।"

सर्वप्रथम "अप एव ससर्जादौ तासु बीजमथासृजत्" श्रीमद्भागवत के वचनानुसार जल और उसमें उत्पन्न बीज का पृथ्वी में वपन होने से सृष्टि के सारभूत तत्व अकृष्टपच्य वनस्पति के अन्तिम विकाश के रूप में ज्ञान के समान अन्न की उत्पत्ति हुई जो सृष्टि का मूल कारण है।

यहां यह बतलाना अप्रासंगिक न होगा कि सूर्य की स्थावरजंगम सृष्टि में जीवन प्रदान करनेवाली रश्मियां ही पृथ्वी की अनन्त शक्ति के समान वर्णनातीत लाभ संसार को प्रदान करती हैं। निरुक्त के १० अध्याय ३पा० २ ख० में 'विश्वकर्मा सर्वस्य कर्ता' प्रकरण में निरूपण किया गया है।

'विश्वकर्मा' "सर्वस्य कर्ता" परमात्मा, प्रति शरीरं क्षेत्रज्ञत्वेन वर्तमानः, तत्कृतत्वाद् वायोः क्रियापरिस्पन्दस्य। न केवलं सर्वक्रिया शक्तिमान्, किं तर्हि? 'विमनः' च "विभूतमनाः" सर्वप्रज्ञानः। सर्वतोमुखाभिः विशेषविज्ञान शक्तिकः 'आद्विहायाः अपि च विहायाः, महान्, विज्ञायते हि—"स वा एष महानात्मा अन्नादो वसुदानः" इति। न केवलं महान् किन्तर्हिः, 'धाता' स्रष्टा, स्वशक्तिविशेषस्य। 'विधाता' च तद्योग्यानां विषयाणां विक्षिप्तविहितानाञ्च। तेषां [illegible]मः' उत्कृष्टः "इन्द्रियाणां संदर्शयिता" तत्कृतत्वाद् विषयविषयिसम्बन्धस्य, इन्द्रियाणाञ्च [illegible] वे [illegible]ष्ठितानां प्रति विषयमालोकसामर्थ्योपजनात् तस्य विश्वकर्मणः परमात्मनः। तेषां स्वश-

क्तिविक्षेपात् क्षेत्रज्ञविभूतीनां यानि इष्टानि पूर्ववत् परमात्मज्ञानश्रद्धोपासनाभावनाप्रक्षयित-दुरितानि तानि। 'इषा' "अन्नेन" सह "सम्मोदन्ते" तृप्यन्ति। क्व ? यत्रा सप्तऋषीन् "यत्र इमानि सप्तऋषीणानि इन्द्रियाणि" द्रष्टृणि, इन्द्रियाणि "ज्योतींषि" एकमाहुः। क्व ? बुद्धौ। तस्यामपि ह्येतेषामेकत्वमस्त्विति। किं तत्रैव ?— इति, उच्यते— "पर एकमाहुः। न यतः परतरमस्ति तस्मिन् परतरे विश्वकर्मणि यदन्नं शक्तिमात्रं यदुपविष्टं भात् परमात्मा नित्यतृप्तः, तेनान्नेन परमात्मनि तद्विज्ञानोपासनात् तादृभाव्यमुपगतास्तेन सहभूता मोदन्ते निरशनापिपासाः नित्यतृप्ताः, अतीतशोकमोहजरामृत्यवः आत्मविद इत्येवमाहुः स तत्त्वदर्शो ब्राह्मणाः। यथा चानुपक्षीणस्वधाशक्ति नित्यतृप्तं सर्वभावपरं तत् परम्ब्रह्म यदात्मविदः प्रतिपद्यन्ते।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि उपर्युक्त विवरण में सूर्य का अन्नादि के उत्पादन में प्रधान हाथ है। इसलिये वह विश्वकर्मा सम्पूर्ण प्राणियों का कर्त्ता है। वेद इसकी महती शक्ति की अन्नाद और वसुदान के रूप में प्रशंसा करते हैं इसकी सप्तरश्मियां ज्ञान-विज्ञान की परम्परा को अतिशय प्रकाशित करती हैं अर्थात् असत्य से सत्य का ज्ञान-अज्ञान का आवरण हटाकर ज्ञान का प्रसार एवं सब से ऊपर मरणधर्मत्व को हटाकर अमर बनाने की ऊर्ध्वरेता प्रवृति को मनुष्य में उत्पन्न करनेवाला ही सूर्य तत्व है। अतः ज्ञानी मनुष्य के ऊपर सृष्टिरक्षा का भार आता है।

इस सम्बन्ध में विष्णुपुराणान्तर्गत वैन्य पृथु राजा द्वारा पृथिवी के दोहन प्रकरण का निरूपण प्रस्तुत किया जाता है जो अवश्य ही पाठकों के कृषि उत्पादन सम्बन्धी जिज्ञासा को बढ़ायेगा।

आरम्भ में पृथ्वी का भाग समतल नहीं था, वेन पुत्र पृथु राजा के समय इसे समधरातल बनाने की योजना एवं प्रजा के लिये निवासादि का विस्तार किया गया।

तदनन्तर बड़े परिश्रम से प्रजा के लिये भोजन प्राप्त करने के भगीरथ प्रयत्न किये गये जिसमें राजा ने मनु को वत्स बनाया और अपने हाथों पृथ्वीरूपी गौ का दोहन किया।

अभिप्राय यह है कि ऊपर भूमि को जो पड़तल (बिना जोती हुई) पड़ी थी उसे कृषि के सुन्दर साधनों द्वारा फलदात्री बनाया। उसमें से फल, फूल एवं अन्न प्रभूत मात्रा में उत्पन्न होने लगे जो सम्पूर्ण सृष्टि के प्राणाधार हैं। निस्सन्देह वेही कन्द, मूल, फल, अन्न, मेवे आदि आज तक सृष्टि की उत्पत्ति, संवर्धन और भरण-पोषण कर रहे हैं।

पृथ्वी को इस प्रकार प्राणदान देने से उसे अभयदान दिया गया और उन्हीं के पीछे इसकी पुत्रीरूपेण पृथ्वी संज्ञा पड़ी।

जीवन में अन्नमय कोष के सुदृढ़ होने से ही आगे प्राणमय विज्ञानमयादि चतुर्विध कोशों की परिपुष्टि होती है अधिकाधिक बल, बुद्धि और बीज का समीकरण होता है।

इसीलिये वेद भगवान् हमारे आहार के विषय में उपदेश करते हैं—

व्रीहिमत्तं यवमत्तमथो माषमथो तिलम् एषवां भागो निहितो रत्नधेयाय दन्तौ मा हिंसिष्टं पितरं मातरञ्च ।

(अथर्ववेद ६)

मनुष्य का स्वाभाविक भोजन क्या है, इस सम्बन्ध में प्रभु का उपदेश है कि, हे मनुष्यो ! तुम व्रीहि अर्थात् चावल, यव (एवं गेहूं मकई आदि) ; माष—(उड़द, मूंग, मसूर चना आदि दाल) ; एवं तिल (तेलहन जिनमें मेवे आदि भी सम्मिलित हैं) का सेवन करो अर्थात् अन्न और फल ही खाया करो ।

रमणीयता के लिये अर्थात् तुम सुखपूर्वक रहना चाहते हो तो तुम्हारा भाग यही है । हे मनुष्यो ! पशु-पक्षी आदि जो तुम्हारे रक्षक और मान्यकर्ता हैं उनके लिये तुम्हारे दांत कदापि घातक न हों । पशु-पक्षी आदि मनुष्य के रक्षक एवं पालक हैं । अतएव शतपथ ब्राह्मण में पशुओं को भी प्रजापति कहा गया है । यहां पर उन्हीं को पिता-माता कहा गया है ।

उनकी हिंसा करना अपना पेट पालना अथवा उनके आहार स्वरूप उनकी माताओं का दूध अपने लिये लेकर उनकी शक्ति का ह्रास करना ही माता-पिता की हिंसा करना कहा गया है, जो मनुष्य मात्र के लिये परमात्मा की आज्ञा के विरुद्ध सर्वथा त्याज्य है ।

चींटी से लेकर हाथी तक कीट, पतङ्ग, पशु, पक्षी आदि सभी हमारे रक्षक हैं । जिस गन्दगी को सूर्य शोषण नहीं कर सकता, वायु सुखा नहीं सकता, उस गन्दगी को नष्ट करने के लिये प्रकृति देवी ने नाना प्रकार के मच्छर, कीट, पतङ्ग, चींटी, बिच्छू आदि बनाये हैं । पृथ्वी पर से मल हटने के पश्चात् जो बदबू रह जाती है उसे नष्ट करने के लिये लट कीड़े बने हैं । मच्छर आदि को खाने के लिये छिपकली मेंढक आदि हैं तथा छिपकली, मेंढक आदि को बिल्ली आदि । ऐसे ही गीदड़, कूकर, सूकर, सिंह, व्याघ्र आदि का उपयोग है ।

मल को नष्ट करने के लिये प्रकृति देवी ने एक से एक का सम्बन्ध जोड़ रक्खा है । सभी पक्षीगण ऊपरी दूषित वायु को खा लेते हैं जो वायु हमारे लिये हानिप्रद है यह प्रकृति का नियम है । इसी प्रकार जल के कीटाणु आदि को खाकर मगर मछली आदि जल को स्वच्छ बना देते हैं वह हमारे लिये हितकर हो जाता है । सूकर, कूकर जमीन के मैल को साफ करते रहते हैं, बकरा-बकरी आदि पृथ्वी पर जो विषवाले आक, धतूर आदिपौधे हैं उनको खाते हैं और उनके घर में रहने से राजयक्ष्मा के कीटाणुओं का प्रसार नहीं होने पाता । बैल खेती-बारी में हमारे भाग्यविधाता हैं जिनसे प्रभूत धनधान्य (अन्न) मिलता है, सृष्टि के लिये जीवनाधार अन्नाद्युत्पादन की उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए बैल, प्राणीमात्र की समान रूप से आवश्यकता पूर्ण करने में सहयोगी हैं । यह तो सर्वविदित ही है कि खेती बिना सृष्टि नहीं, बैल बिना खेती नहीं और गाय [illegible] बैल नहीं । इसी को लेकर गौ का सम्पूर्ण भूमण्डल पर मान-सम्मान है एवं उनकी सर्वतोभावेन रक्षा करना मनुष्य का है और [illegible]य है । पाराशर स्मृति में बैल और गो-पालन के महत्त्व पर कितना सुन्दर लिखा है—

सम्मतियां और उद्गार !

उक्षा गौर्वेधसा सृष्टा तस्यह्युत्पादनाय च ।
तैरुत्पादितशस्येन सर्वमेतद्धि धार्यते ॥
यश्चैतान्पालयेद्यत्नाद् वर्द्धयेच्चैव यत्नतः ।
जगन्ति तेन सर्वाणि साक्षात्स्युः पालितानि च ॥
यावद्गोपालने पुण्यमुक्तं पूर्वमनीषिभिः ।
उक्ष्णोऽपि पालने तेषां फलं दशगुणं भवेत् ॥

(५ अ० ४४—४६ श्लो०)

उत्पादयन्ति शस्यानि सर्द्धयन्ति वहन्ति च ।
आनयन्ति दवीयस्तदुक्षतः कोऽधिको भुवि ॥

स्कन्धेन दूराद्वहन्ति भार—
माख्याति पत्युर्न च भारयुक्ताः ।
स्वीयेन देहेन परस्य जीवान्
पुष्यन्ति रक्षन्ति च वर्धयन्ति ॥

(५ अ० ५०—५१ श्लो०)

एकेन दत्तेन वृषेण येन
भवन्ति दत्ता दश सौरभेय्यः
माहेद्यपीयं धरणीसमानात्त-
स्मादृवृषात्पूज्यतमोऽस्ति नान्यः ॥
उत्पाद्य शस्यानि तृणञ्चरन्ति तदेव भूयः सततं वहन्ति ।
न भारखिन्नाः प्रवदन्ति किञ्चिद्दहोवृषैर्जीवतिजीवलोकः ॥

(वृ० पारा० ५ अ० ५३—५४ श्लो०)

य उत्पाद्येह शस्यानि सर्वाणि तृणचारिणः ।
जगत्सव धृतंयैस्तु पूज्यन्ते किन्न ते वृषाः ॥

सम्मतियाँ और उद्गार !

येनैकेन प्रदत्तेन दत्तं गोदृशकम्भवेत् ।
यद्रूपेण स्थितो धर्मः पूज्यन्ते किन्नतेवृषाः ॥

(वृ० पा० ५ अ० १०४—१०५ श्लो०)

अन्नार्थमेतानुक्षाणः ससर्ज परमेश्वरः ।
अन्नेनाप्यायते सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥

(वृ० पा० ५ अ० १०९)

अन्नं प्राणो बलं चान्नमन्नाज्जीवितमुच्यते ।
अन्नं सर्वस्यचाधारः सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम् ॥
सुरादीनां हि सर्वेषामन्नं वीजं परं स्थितम् ।
तस्मादन्नात्परं तत्त्वं न भूतं न भविष्यति ॥

(वृ० पा० ५ अ० १११—११२ श्लो०)

ऊंट, घोड़े आदि हमारी सवारी, सामान ढोने एवं हमारे शहरों की रक्षा करने में और हमारे माङ्गलिक कामों में भी पूरी मदद करते हैं । सभी सृष्टि के जीव हमारे पूर्ण रक्षक हैं । सृष्टि के नियमों में इनकी रक्षा पूर्णतया अनिवार्य है ।

अभी हमलोग अज्ञान से रक्षक भी भक्षक होकर पतन की ओर जा रहे हैं—जैसा ऊपर बताया गया है मांसाहारी पशु-पक्षी ही प्रकृति द्वारा बनाये गये हैं इनका परस्पर भक्ष्यभक्षक का सम्बन्ध सृष्टि के सुचारु रूप से संचालन में अतीव उपयोगी है । मानव जीवन की सार्थकता यह है कि जीवन को सन्मार्ग से चलाकर कर्मप्रधान मानव से देवता बन सर्वभूत हित का लक्ष्य रखते हुए महादेव रूप में वह अपना क्रिया-कलाप सिद्ध करना । सत्य का पालन ही जीवन का मुख्य कर्तव्य है । सत्याचरण मर्यादापालन और कर्तव्यपरायणता ही मनुष्य को ऊँचा उठाते हैं इसके विपरीत असत्याचरण, असत्य भाषण और अमर्यादित जीवन से मनुष्य पतन की ओर बढ़ता है । (यहां यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अहिंसा द्वारा ही सत्यपालन सम्भव है) समय पर मनुष्य इससे पशुता को अपनाता हुआ अपने सम्पूर्ण परिवार के लिये— सृष्टि के लिये—अन्त तक दुष्प्रवृत्तियों में लग इन्हें विनाश के गर्त में ढकेल देता है । इस लिये सत्य, मर्यादा और कर्तव्यपरायण रहते हुए हमें अपने ध्येय सृष्टि परिचर्या उसके रक्षण और सम्वर्धन में सफलता प्राप्त कर प्रभु के योग्यतम पुत्र बनने की पदवी अन्वर्थनाम करनी चाहिये ।

वेद...
...य है ... मनुष्य के लिये प्रकृति ने नाना प्रकार के कन्द, मूल, फल, अन्न और तेलहन उत्पन्न किये हैं जिनका उपदेश वेद
प्र... हमे उपर्युक्त मन्त्रों द्वारा करते हैं ।

...पक्षियों के मांस एवं उनकी शक्ति स्वरूप दूध, घी से मनुष्य को कोई भी सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती ।

सम्मतियाँ और उद्गार !

कहा जाता है—जैसा अन्न वैसा मन। उक्त वस्तुओं के उपयोग से हम में पशुत्व, पाशवी शक्ति एवं पशुबुद्धि आयेगी जो हमें अन्त में मानवता से भी च्युत करे तो असम्भव नहीं।

आधुनिक विज्ञान तो वनस्पतियों को ही शक्ति का आधार बता रहा है। अतः रक्षणीय की रक्षा करने से ही हमारा कल्याण होगा। अन्न की अनन्त शक्ति के ऊपर आगे लिखा जायगा।

मनुष्य रूपी वत्स के लिये पृथ्वी रूपी गौ का ही दोहन लिखा है। हिन्दू की व्युत्पत्ति ही यह है कि "हिङ्कृण्वती गां दुग्धे यः स हिन्दुः" अर्थात् वर्षा के समय जब पृथ्वी के ऊपर बून्दें पड़ती हैं तो जैसे वत्स को गाय हिं ह्रिं शब्द करती हुई उद्बोधन करती है और उसे स्तन्यपान कराती है वैसे ही मनुष्यरूपी वत्स को वह (पृथ्वी) कर्तव्य पुरुषार्थ के लिये उद्बोधन करती है इसीसे शस्यादि उत्पन्न कर मनुष्य उसे दोहता है। जैसे, ऋग्वेद संहिता के ऋ० २ अ० ३, २९, ३, में प्रतिपादन किया है—

"गौरमीमेदनु वत्सं मिषन्तं मूर्द्धानं हिङ्ङ्कृणोन्मातवा उ। सृक्काणं घर्ममभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥"

गौ "माध्यमिका वाग्" 'वत्सम्' पुत्रम् अन्नमीमेत् अनुशब्दयति, महद्भिः स्तनयित्नुशब्दैः "आदित्यम्" स हि तस्या रसहरणाद्वत्सः। 'मिषन्तम्' "अनिमिषन्तम्" अव्यवहित दर्शनं सर्वदा। अपि च 'मूर्द्धानम्' शिरोरश्मीन् "अस्य" मध्यस्थानप्राप्तं प्राप्य। 'हिङ्ङ्कृणोत्' हिङ्कारेणोपशब्दयति। मातवै—सर्वलोकज्ञानाय। उदकानां 'सृक्काणं' "सरणम्" अनवस्थायिनमादित्यम्। 'घर्मं' "हरणं" रसानाम्। 'अभिवावशाना' पुनः पुनः वाश्यमाना, वाशन्ती प्रतिसंवत्सरमेव 'मिमाति मायुं' शब्दं करोति। 'पयते' "प्रप्यायते" च प्रकर्षेण वर्द्धते "पयोभिः" उदकैः ॥

गौरेव "गौः" "अन्वमीमेत्" अनुशब्दयति ; वत्समेव "वत्सं" 'मिषन्तं' तमेवोन्मुखं पश्यन्तं। अपि च प्राप्य "मूर्द्धानम्" अस्य उपघ्राय हिङ्ङित्येवं शब्दं करोति। स हि गोः स्वभावः "मातवै" कथं नामायं मां जानीयात् मातामसेयमिति। 'सृक्काणं' तामेव प्रत्यभिमुखं "सरणं" घर्मं "हरणं" पयसाम्। 'अभिवावशाना' पुनः पुनर्वाश्यमाना, प्रत्यहमेव शब्दं करोति, 'प्रप्यायते' च 'पयोभिः' वत्समस्मांश्च या वर्द्धयति, सा नित्यमेवमस्त्विति ॥

"धेनुः" "धयतेः वा"। धयतेऽसौ वत्सेनेति, "धिनोतेः वा" तर्पयत्यसौ उदकेन पयस

सम्मतियां और उद्गार !

उपर्युक्त व्युत्पत्ति में 'हिन्दु' मानव मात्र का उपलक्षण है पृथ्वी माता सब के लिये अन्न, घास, फूस, फलादि देकर पालन करती है हमें उसी रूप में इसे समझना चाहिये। धेनु का अभिप्राय है कामधेनु पृथ्वी माता जो सम्पूर्ण मनइच्छित फल देनेवाली है। जैसे तैत्तिरीयरण्यक में प्रपा० १० अनु० १।

उद्धृताऽसि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना। भूमिर्धेनुर्धरणी लोकधारिणी।

हे मृत्तिके त्वं भूमिरूपा सती कृष्णवर्णेन शतसंख्याकबाहुयुक्तेन वराहावतारेण पूर्वमुद्धृताऽसि। धेनुः कामधेनुवत्प्रीणयित्री। धरणीसस्यानांधारयित्री। लोकधारिणी-प्राणिनामपि धारयित्री।

विष्णु पुराण के दशमाध्याय के २५ वें श्लोक से...निम्नलिखित वर्णन आदिकालीन कृषि एवं अन्नोत्पादन के सम्बन्ध में दिया गया है जिससे पाठक सहज ही जान सकेंगे कि अन्नाहार ही जीवन है उसी से अनादि काल से सृष्टि के ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न मानव का पालन-पोषण और ऐहिक आमुष्मिक चरमोन्नति हुई है।

"धनुः कोट्या तदा वैण्यस्ततः शैला विवर्जिताः।"
नहि पूर्वविसर्गे वै विषमे पृथिवीतले।
प्रविभागः पुराणां वा ग्रामाणां वा तदाभवत्॥
न शस्यानि न गोरक्ष्यं न कृषिर्न वणिक्पथः।
वैण्यात्प्रभृति मैत्रेय! सर्वस्यैतस्य सम्भवः॥
यत्र यत्र समं तस्या भूमेरासीन्नराधिप।
तत्र तत्र प्रजानां हि निवासं समरोचयत्॥
आहारः फलमूलानि प्रजानामभवत्तदा।
कृच्छ्रेण महता सोऽपि प्रनष्टा स्वौषधीषु वै॥
स कल्पयित्वा वत्सं तु मनुं स्वायम्भुवं प्रभुः।
स्वे पाणौ पृथिवीनाथो दुदोह पृथिवीं पृथुः॥
शस्यजातानि सर्वाणि प्रजानां हितकाम्यया।
तेनान्नेन प्रजास्तात वर्त्तन्तेऽद्यापि नित्यशः॥

सम्मतियाँ और उद्गार !

प्राणप्रदानात्सपृथुर्यस्माद्भूमेरभूत्पिता ।
ततस्तु पृथिवींसञ्ज्ञामवापाखिलधारिणी ॥
गन्धर्वैरुरगैर्यक्षैः पितृभिस्तरुभिस्तथा ।
तत्तत्पात्रमुपादाय तत्तद्दुग्धा मुने पयः ॥

सृष्टि का प्रारम्भ मनु एवं शतरूपा से होता है, फिर धीरे-धीरे जैसे-जैसे मनुष्य की आवश्यकतायें बढ़ती गई उसी के अनुसार ज्ञान द्वारा तत्त्वों से सृष्टि की वृद्धि होती गयी। यह सृष्टि अरबों वर्षों से चली आ रही है इसकी रचना कोई एक दिन की नहीं है। हमारे पूर्वज ऋषि-महर्षियों ने ज्ञान, पुरुषार्थ एवं सत्य द्वारा सृष्टि की वृद्धि की। इसे निर्माण करने में किसी व्यक्तिविशेष का हाथ नहीं है। सृष्टि वृद्धि तो निरन्तर ज्ञानीजनों द्वारा होती रहती है। जैसे, पहले बताया जा चुका है कि पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग, जलचर, थलचर, नभचर, विषधर आदि जन्तु और अन्न, मेवे, फल, तेलहन आदि पदार्थ समय-समय पर आवश्यकतानुसार ज्ञान द्वारा रचे गये हैं। एक समय इसी ज्ञान पुरुषार्थ, संयम और सत्य के द्वारा सृष्टि की चरमावस्था तक उन्नति, प्राकृतिक गुणों द्वारा मानव ने की। सृष्टि में सत्य, ज्ञान, ब्रह्मचर्य और अहिंसा के बल पर प्राणीमात्र के लिये मनुष्य ने क्या किया यह महाभारत काल के युगपुरुषों ने बता दिया है। देखिये, सत्य द्वारा ही सत्यवादी युधिष्ठिर सशरीर स्वर्गलोक में पधारे। आजन्म ब्रह्मचारी भीष्मपितामह ने इच्छामृत्यु प्राप्त की, सत्य एवं पुरुषार्थ के द्वारा महाभागवत चक्रवर्ती श्रेष्ठ धृतराष्ट्र ने साठ हजार हाथियों का बल प्राप्त किया था और सत्य ज्ञान के द्वारा अश्वत्थामा को महामहिमशाली द्रोणाचार्य ने अमर बना दिया था। यह था हमारा आदर्श और यह थी उससे प्राप्त होनेवाली ज्ञान की अति अप्रतर्क्य अलौकिक सफलतायें—अन्तिम पराकाष्ठायें जिनके लिये संसार को दाँतों तले अंगुली दबानी पड़ती है। ऐसे नरपुङ्गवों से वसुन्धरा धन्य थी। सत्य एवं मर्यादा के कारण ही हम इतने उच्च शिखर पर पहुंचे। आज के समान वे अवसरवादी कभी नहीं थे बल्कि सत्य तथा मर्यादा की आन से कभी भी विचलित नहीं होते थे। जैसे कि महाभारत में लिखा है—

आत्महेतोः परार्थे वा नर्महास्याश्रयात्तथा ।
ये मृषा न वदन्तीह ते नराः स्वर्गगामिनः ॥
वृत्त्यर्थं धर्महेतोर्वा कामकारात्तथैव च ।
अनृतं ये न भाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥
श्लक्ष्णां वाणीं निराबाधां मधुरां पापवर्जिताम् ।
स्वागतेनाभिभाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

अहा ! सत्य की कितनी अगाध महिमा है। जीवन में हम जो भी अनुभव करें उसे उसी रूप में व्यक्त

सम्मतियाँ और उद्गार !

कितना अधिक आनन्द आता है और जब यह भावना जीवन के साथ श्वास-प्रश्वास के रूप में घुलमिल जाती है तो बस वह पुरुष कृतकृत्य हो जाता है। 'सत्यं ज्ञानम्' ज्ञान ही सत्य है सारी सृष्टि की महती शक्तियां इसी सत्य के ऊपर चलकर प्राणीमात्र का उपकार साधन करती हैं। सकल प्राणियों की सर्वस्वभूता मा पृथ्वी को ही लीजिये—सत्य की कितनी महती प्रतिष्ठा है इस में। आप कोई भी बीज उसमें वपन कीजिये वर्षा के जल को पाते ही वह बीज को बाहर निकाल देगी। गर्भ में बीज धारण कर उसे बाहर वनस्पति पौधे अन्नादि के रूप में उत्पन्न कर देती है। इसी प्रकार समुद्र में भी कुछ कीमती पदार्थों को छोड़कर कोई भी वस्तु छिपी नहीं रह सकती। आप जैसे-जैसे सत्य की विशेषता का अनुभव और मनन करेंगे यह सत्त्वरूप में ईश्वररूप में हमें उपलब्ध होता जायगा। सत्य की प्रतिष्ठा में सब संसार का जीवन है सद्भावनापूर्वक सभी प्राणी एक दूसरे वर्गका हानि-लाभ का ध्यान रख आचरण करते हैं जिससे सुख, समृद्धि, ऐश्वर्य्य विभूतियां बढ़ती हैं और संसार में सच्चे अर्थों में रामराज्य स्थापित हो जाता हैं।

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं
सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।
सत्यस्य सत्यमृत सत्यनेत्रं
सत्यात्मकं त्वां शरणम्प्रपन्नाः॥

प्रभु सत्यव्रत हैं, सत्यपरक हैं, त्रिकालाबाधित सत्य रूप से उनकी प्रतिष्ठा है, सत्य में ही उनका आविर्भाव है और सत्य ही उनका निवास स्थान है सर्वत्र सत्य का ही स्वत्व है। इस विराट पुरुष के ऋत और सत्य ये दो नेत्र हैं इस प्रकार सत्यस्वरूप सत्यात्मा प्रभु की हम शरण जाते हैं। इसीलिये वेद भगवान् कहते हैं "सत्यमेव जयते नानृतम्"। भला जड़ जगत् की थोड़ी-थोड़ी सफलतायें तो क्या विशाल-महान्-हिमालय के समान दुर्गम कठिनाईयां भी कभी सत्यवादी को डिगा नहीं सकतीं। इसी सत्य का पालन जिस युगमें हुआ था उसमें पूर्ववर्त्ती समयमें जो धुरन्धर महापुरुष हुए उनका नाम आज भी संसारके इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा हुआ है। द्वापर में इसका पूर्ण उत्कर्ष सत्यवादी महानुभाव युधिष्ठिर ने दिखाया जिससे उन्हें सशरीर स्वर्गलोक को शोभित करने का सौभाग्य मिला। यह सत्यवादिता केवल युधिष्ठिर तक ही सीमित नहीं थी बल्कि शत-प्रतिशत इनके चरणचिन्हों पर चलनेवाले महानुभाव इस सर्वंसहा वसुमती पर होते थे।

ज्ञान की भी कसौटी अतीव विलक्षण है। ज्ञान की चरम सीमा का उत्कर्ष न तो आज के अणुबम के युग में दूसरों के नकेल डालकर डरा-धमका कर काम निकालने में है न ही सांसारिक भोगादि में सम्भव है जिससे जीवन भार रूप होता है, बल्कि ज्ञान वह है जिससे पुरुषार्थके द्वारा अमरता प्राप्त हो। 'सा विद्या या विमुक्तये' अर्थात् इस जीवनका लक्ष्य सर्वविध ज्ञानकी प्राप्ति ...य है। ...ए पराविद्याके साक्षात्कार से अमरत्व प्राप्ति है। भगवान् श्री कृष्ण ने गीतामें सभी भक्तप्राणियों में "ज्ञानवान्मां प्रपद्यते" ...त्वात्मैव मे मतम्" कहकर ज्ञानी को अपना साक्षात् स्वरूप ही बता दिया है। अतः ज्ञान का साधक उनके समान

ही अमर है कभी मर नहीं सकता। इस तत्त्व की पूर्ण पराकाष्ठा का दृष्टान्त हमें महामहिम तपः पूत, आचारपूत, सत्यपूत ज्ञानी व्रती गुरु द्रोणाचार्य द्वारा अपने पुत्र चिरंजीव अश्वत्थामा को अमर बना देने के रूप में उपलब्ध होता है।

इसी प्रकार ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में देखिये। ब्रह्मचर्य—इन्द्रियों का संयम ही नहीं बल्कि वेदादि सच्छास्त्रों के आधारभूत सभी सिद्धान्तों का—मनसा वाचा कर्मणा विषयादि से विरत होकर—पालन करना और प्रभुमय संसार को देखना है। यह सृष्टि की विकासावस्था के पूर्ण उत्कर्ष की कसौटी है। जीवन में सत्य और ज्ञान के बिना सब कुछ छूंछा सूना है वैसे ही ब्रह्मचर्य की साधना बिना यह जीवन बेकार है—व्यर्थ है। ब्रह्मचर्य सत्य ज्ञान के साक्षात्कार की पृष्ठभूमि है जिससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का फल तो है ही साथ ही इच्छामृत्यु से काल को जीतना भी इसका अनिवार्य परिणाम है। ऐसे महापुरुष धन्य थे जिनके लिये महाभारत में प्रशस्ति गाई गई है।

परस्वे निर्ममा नित्यं परदारविवर्जिताः।
धर्मलब्धान्नभोक्तारस्तेनराः स्वर्गगामिनः॥
मातृवत्स्वसृवच्चैव नित्यं दुहितृवच्च ये।
परदारेषु वर्तन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः॥
स्तैन्यान्निवृत्ताः सततं सन्तुष्टाः स्वधनेन च।
स्वभाग्यान्युपजीवन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः॥

(महा० अनुशासनपर्व १४४ अ० १०—१२ श्लो०)

यह साधना जगत्पूज्य बाल ब्रह्मचारी भीष्मपितामह ने की और कोई काल को कैसे वश में कर सकता है यह हमें प्रत्यक्ष दिखला दिया। अथर्ववेद काण्ड ११ में इन आदर्श व्रती देवताओं की कितनी सुन्दर प्रशंसा की है। ऐसे महापुरुष वास्तव में इतने निष्कपट और शुद्ध अन्तःकरणवाले थे कि अपना मृत्युकाल बतलाने में भी उन्हें किसी प्रकार की हिचकिचाहट नहीं हुई (इससे यह स्पष्ट है कि रागद्वेषेतन्य उस समय तक युद्धादि नहीं होते थे) यह थी ब्रह्मचर्य की पराकाष्ठा।

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत। इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वरा १ भरत्॥

ब्रह्मचर्यरूपेण तपसा देवाः अग्न्यादयो मृत्युं मरण मपाघ्नत अप हतवन्तः। अमर्त्याः सम्पन्ना इत्यर्थः। इन्द्रो ह—इन्द्रोऽऽपि ब्रह्मचर्येणैव साधनेन देवेभ्यः देवानामार्थे स्वः स्वर्गम्। आमरत् आहरत्।

यह तो निर्विवाद है कि सत्य, ज्ञान, एवं ब्रह्मचर्य का मूल भूत आधारस्तम्भ, अहिंसा एवं स्वच्छ, शुद्ध, प्रकृ[illegible] अन्न ही है; स्थायी शक्ति के स्रोत भी ये हैं।

सम्मतियाँ और उद्गार !

जैसे राजा के सुयोग्य शासन में प्रजा सुख-शांति, सुरक्षा और जीवन को उन्नतिमय बनाकर राजा की प्रजा-वत्सलता का लाभ उठाती हैं उसी प्रकार सुयोग्य चक्रवर्ती राजा अपने दान, दया, दाक्षिण्यादि उदात्त गुणों से सात्विक जीवन बिताते हुए जनता के सामने दैवी सम्पत् का आदर्श रखते हैं।

ऐसे ही समृद्ध गुणशाली चक्रवर्ती महाराज धृतराष्ट्र ने पूर्ण उत्कर्ष की पराकाष्ठा के लिये अहिंसावादी बन "राजा प्रकृति रञ्जनात्"का यथार्थ आदर्श रक्खा था। इन्होंने अपने राज्य में सत्य, ब्रह्मचर्य और ज्ञान के आधारभूत स्तम्भ अहिंसा को मर्यादापूर्वक पालन करवाया।

सुदीर्घकाल से सृष्टि की वृद्धि राजाओं के सुशासन और प्रजा के द्वारा मर्यादापालन करवाते रहने से हुई हैं। सत्य के बिना ज्ञान एवं ब्रह्मचर्य नहीं पनप सकते उसी प्रकार अहिंसा बिना सत्यपालन आकाश कुसुम के समान है। इससे यह स्पष्ट है कि अहिंसा ही सब गुणों में शिरस्थानीय रहीहै।

"अहिंसा परमोधर्मः" अहिंसा में सम्पूर्ण भूमण्डल के दैवी गुणों का विकाश करने का अभिप्राय निहित है। अहिंसक जीवन की बड़ी से बड़ी साधना पुरुषार्थ चतुष्ट्य के फल के साथ सम्पूर्ण प्राणी मात्र की पूर्ण रक्षा करते हुए परमात्मतत्व प्रदान करती है।

धन्य हैं वे चक्रवर्ती धृतराष्ट्र जिन्होंने "नायमात्मा बलहीनेनलभ्यः" का प्रत्यक्ष दृष्टान्त अहिंसक जीवन द्वारा जनता के सामने रक्खा, क्योंकि मर्यादापालन करवाने की बागडोर चक्रवर्ती राजा के हाथ में रहती है।

इससे प्रगट है कि महाराज धृतराष्ट्र तक अखिल भूमण्डल पर परम्परा प्राप्त अहिंसा की साधना फैली हुई थी यावन्मात्र मनुष्यों में सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य के पालन-द्वारा ज्ञान का पूर्ण उत्कर्ष प्रत्यक्ष रूप में परिलक्षित था। फलतः सृष्टि पूर्णरूप से वृद्धि को प्राप्त थी उसका कोई भी अंग किसी रूप में क्षत-विक्षत नहीं था। अतः दैवी गुणों के साथ-साथ सृष्टि की वृद्धि का अहिंसात्मक सफल प्रयोग महाराज धृतराष्ट्र के समय तक पूर्णतया चला।

यथा राजा तथा प्रजा के अनुसार जब राजाओं में कर्तव्यपालन की इतनी भावना थी तो प्रजा भी किसी रूप में राजा से पीछे नहीं रही। सभी सदा सत्यवादी, अहिंसक, मर्यादा रूप में पूर्ण संयम जीवन बितानेवाले स्वावलम्बी थे। अर्थात् कोई भी किसी के आश्रित नहीं था वे अपने ही पुरुषार्थ द्वारा पृथ्वी माता से अपना निर्वाह करते थे। उनकी मर्यादा ही वेद थे और वे वेदानुकूल मर्यादा में आबद्ध थे। प्रकृति के अनुसार जीवन-यापन कर उसे सफल बनाना उनका परम धर्म था। वे धर्म भीरु, सत्यवादी और ईश्वरपरायण थे। जैसेः—

वेदोनारायणःसाक्षाद् वेदाभ्यासान्महान् भुवि।

(हेमाद्रि—पराशर)

... बल की प्राप्ति में जैसे ब्रह्मचर्य साधन की विशेषता है वैसे ही सात्विक जीवन— अहिंसक जीवन की प्रधानता है। ... और प्र... गये हमारे चतुर्विध पुरुषार्थ का मार्ग बल से ही सुलभ है। इसकी महती साधना सत्य के बल से महापराक्रमी

महाराजाधिराज धृतराष्ट्र ने की थी जिससे उन्होंने ६० हजार हाथियों का बल संग्रह किया था। इसी के बलपर उन्होंने महाभारत युद्ध के अनन्तर १०१ पुत्रों की असामयिक वीरगति से विह्वल और आतुर हो भीम की सप्त धातु की बनी मूर्त्ति को बदला लेने की भावना से, (प्रतिशोध की इच्छा से) एक ही आलिङ्गन में चकनाचूर कर दिया। आज ये सब अतीत के स्वप्न बने हैं, यही बिडम्बना है। ऐसे सद्वृत्त महापुरुषों के लिये महाभारत के प्रणेता ने कितनी प्रशंसा लिखी है देखिये—

अरण्ये विजने न्यस्तं परस्वं दृश्यते यदा।
मनसापि न हिंसन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः॥
ग्रामे गृहे वा ये द्रव्यं पारक्यं विजनेस्थितम्।
नाभिनन्दन्ति वै नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः॥
तथैव परदारान्ये कामवृत्तान्रहोगतान्।
मनसापि न हिंसन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः॥
शत्रुं मित्रञ्च ये नित्यं तुल्येन मनसा नराः।
भजन्ति मैत्राः सङ्गम्य ते नराः स्वर्गगामिनः॥
श्रुतवन्तो दयावन्तः शुचयः सत्यसङ्गराः।
स्वैरर्थैः परिसन्तुष्टास्ते नराः स्वर्गगामिनः॥
अवैरा ये त्वनायासा मैत्री चित्तरताः सदा।
सर्वभूतदयावन्तस्ते नराः स्वर्गगामिनः॥
श्रद्धावन्तो दयावन्तश्चोक्षाचोक्षजनप्रियाः।
शुभानामशुभानाञ्च कर्मणां फलसंचये।
विपाकज्ञाश्चये देवि ते नराः स्वर्गगामिनः॥
न्यायोपेता गुणोपेता देवद्विजपराः सदा।
समुत्थानमनुप्राप्तास्ते नराः स्वर्गगामिनः॥

(महा० अनु० पर्व १४४ अ० ३१—३९ श्लो०)

उसका यदि मनुष्य प्रयत्न करे—ज्ञान से साधुतापूर्वक पृथ्वी में रहे तो ये सब जीवन की सफलतायें—फिर से उसे मिल सकते हैं।

सम्मतियाँ और उद्गार !

यह हुई उन्नति की पराकाष्ठा—अब देखिये किस प्रकार ऐसे महामहिमशाली धृतराष्ट्र की शक्ति के उत्थान ने पलटा खाया। किसी भूलके कारण—मनुष्य भूलोंका पुतला है महाराज धृतराष्ट्र ने हिंसावृत्ति से मारे गये हंसोंका मांस भूल से खा लिया और जब उन्हें इस कुचक्र का पता लगा तो बहुत अधिक पछतावा किया परन्तु अभक्ष्य भोजन से ज्ञानतन्तु विकृत हो गये अब क्या था दुर्भाग्य से शरीर में खाये हुए मांस का वीर्य तो बना ही इससे इतनी निर्वीर्य सन्तानें हुई कि एक ही महारथी ने उन १०१ पुत्रों को पराजित कर दिया। (यहां यह ध्यान रखना आवश्यक है कि सैकड़ों हंस एक-एक स्थान पर उस समय तक बराबर मिलते थे। आज उनका नामोनिशां हीं नहीं रहा और भी कितनी अधिक पशु-पक्षियों की जातियां सदा के लिये हिंसा की बलिवेदी का शिकार हो गई जिनका उल्लेख हमारे इतिहासों में बराबर मिलता है।) इससे यह सिद्ध होता है कि हिंसा का प्रचलन उसी समय सें हुआ था। उसीका परिणाम यह हुआ कि सृष्टि का पतन-ह्रास आरम्भ हो गया। राग-द्वेष, छल-कपट का प्रचलन हो गया। अहिंसा से च्युत होकर मनुष्य का मन कहीं भी छल-छिद्र से नहीं बच सका। संक्षेप में, इस समय से ही आमिषभोजन अभक्ष्य भोजन चालू हुआ। यह अज्ञान-हिंसा का प्रारम्भकाल था। इसी प्रकार पशु दूध के सम्बन्ध में भी महत्त्वपूर्ण आख्यायिका है। गुरु द्रोण के पुत्र अमर चिरञ्जीवी अश्वत्थामा अपने बाल-साथी राजकुमारों के साथ खेल रहे थे। बात करते-करते घर के मामलों पर वार्तालाप आरम्भ हो गया। घर में क्या खाना-पीना होता है इसी पर राजपुत्रों ने दूधपान करने की बात कही। इस पर अश्वत्थामा ने भी अपने दूध पीने का कार्यक्रम बताकर होड़ में हेठी रक्खी; परन्तु राजपुत्रों ने हँसकर कहा कि तुम्हें दूध के बदले में घोला हुआ आटा दिया जाता है। अतः आप समझ गये होंगे कि उस समय से ही मनुष्य दूध—पशु का दूध पीने लगे थे—इसके पहले कदापि नहीं। अन्न में ही महती शक्ति व्याप्त है। जिन देशों में अन्न प्रभूतमात्रा में हुआ है वे ही राष्ट्र सदैव शक्तिशाली समृद्ध एवं उन्नतिशील रहे हैं। अन्न ही आयु है, "अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्" "ज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्" वेदादि शास्त्रों ने अन्न को अनन्त नामों से गाया है।

देखिये—अन्न की शक्ति तो इतनी जबर्दस्त हुई कि आटा घोलकर बना हुआ पानी अश्वत्थामा को अमर बना देता है और दूध पीनेवाले राजपुत्र मरणधर्मा प्राणी ही रहते हैं। महाभारत का युद्ध इस पतन की ओर बढ़ती हुई सृष्टि का अनिवार्य परिणाम हुआ इसमें महापराक्रमी एवं महा-ज्ञानी पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण, पराक्रमी उदारचेता कर्ण, अद्वितीय राजनीतिज्ञ शल्य एवं कृपाचार्य आदि नररत्न इस सृष्टि से सदा के लिये अपनी वीर गाथा और सद्गुणों की कथावशेष कर परमधाम को सिधार गये। इन ज्ञानी महापुरुषों के न रहने से ही पीढ़ी-दरपीढ़ी हम लोग अधोमुख गति की ओर जा रहे हैं।

महाभारतकालीन पतन की आरम्भावस्था में मानव मात्र के भावी पतन को अपनी दिव्य दृष्टि से अवलोकन कर कर्तव्य से विमुख मनुष्यों का अज्ञानान्धकार से उद्धार करने के लिये उनमें विवेक बुद्धि द्वारा वेदादि सच्छास्त्रों की विमल ज्योति का प्रकाश अनेकानेक ग्रन्थरत्नों द्वारा सुलभ बनानेवाले, धर्म की प्रतिष्ठा हो— धर्मचक्र का प्रवर्तन ह्रसिमान न हो—प्राणीमात्र की [illegible]दिन उन्नति वृद्धि होती रहे इसी लक्ष को लोक-संग्रह एवं जन कल्याणार्थ सामने रखनेवाले एवं इसीलिये अपरिमित ज्ञान [illegible] रूप में मानवता को महती देन देनेवाले हुए प्रातःस्मरणीय महर्षिप्रवर भगवत्पाद शास्त्रप्रचारक त्रिगुणातीत अवधूतप्रधान [illegible] मुनि के पितृपाद भगवान् वेदव्यास।

और प्र

सम्मतियाँ और उद्गार !

प्राणीमात्र के प्रति आपकी अकारण करुणा इसीसे प्रगट है कि मानव के कर्तव्यज्ञान को लेकर आपने महाभारत अष्टादश पुराणादि अनेकानेक सद्ग्रन्थ निर्मित किये तथा धर्म—किसी रूप में कभी भी निर्बल न हो जाय इसी हेतु नाना उपाख्यान सरल कथादि से मानव को समझाने के लिये साधुपरित्राण एवं धर्म संस्थापना को दृढ़ भूमि पर आधारित करने का अथक परिश्रम किया।

आजतक भी हम वेद के इन धुरन्धर द्रष्टा को अपने ऊपर किये गये ऋण एवं उपकार को याद कर नत-मस्तक हो श्रद्धा के प्रसून इन शब्दों में अर्पित करते हैं :—

अचतुर्वदनो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरिः।
अभाललोचनः शम्भुर्भगवान्बादरायणः॥

अहो क्या थी प्राचीन भारतीय बालकों की जीवन-चर्य्या ? उनमें प्राक्तन संस्कारों द्वारा इतने व्यापक रूप में अहिंसा, त्याग, शौर्य एवं प्राणिहित की भावना भर दी जाती थी कि वे अपने सिर पर हाथ रखनेवाले माता-पितादि अभिभावकों से भी सत्य के शाश्वत मार्गपर चलते रहने और कभी न डिगने की होड़ में—प्रतिस्पर्द्धा में आगे निकल जाते थे। भक्त शिरोमणि ध्रुव एवं भागवतप्रधान प्रह्लाद जैसे बालक रत्न भारत की दिव्य विभूति अहिंसक व्रत, प्रेम और सत्य के सफल आग्रही होकर अपनी उज्ज्वल गौरव-गाथा से भारतीय जनता को ही नहीं अपितु समग्र विश्व को अनुकरणीय आदर्श की प्रेरणा आज भी दे रहे हैं।

ऐसे सत्यनिष्ठ अहिंसक विश्वहितैषी भगवन्नामैकपरायण बालक अपनी अमर थाती हमारे लिये छोड़ गये। अतः हम निःसंकोच कह सकते हैं कि पृथ्वीभर में स्थावरजंगम सृष्टि का पालन करनेवाली इस दैवी सम्पद् अहिंसा का एक छत्र राज्य समस्त संसार को उनकी देन हुई।

सृष्टि को तात्विक ज्ञान-द्वारा सही मार्ग में अहिंसक जीवन के मार्ग दर्शनार्थ श्री शुकदेव मुनि, पराशर, गौतम, कपिल, कणाद एवं पतञ्जलि आदि धर्मशास्त्र प्रणेता तथा सूत्रकार, अथच जैनधर्म प्रवर्त्तक भगवान महावीर ऋषभदेव हुए। तदनन्तर श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तक श्री वीरबुक्कभूपालसाम्राज्य धुरन्धर सायणाचार्य, लौगाक्षि, महीधराचार्य, उवट आदि वेद भाष्यकार, यास्काचार्य, दुर्गाचार्य; दर्शन व्याख्याता, शेषकृष्ण, वाचस्पति मिश्र आदि तथा कालिदास, भवभूति आदि साहित्यस्रष्टा, अद्वैत मत के प्रबल समर्थक शंकर, मीमांसक कुमारिल, मण्डन मिश्र, वाचस्पति मिश्र आदि विद्वन्मूर्धन्य एवं सत्सम्प्रदायाचार्य रामानन्द, रामानुजाचार्य, माध्वाचार्य निम्बार्क स्वामी; कबीर, मीराबाई, नानक, सूरदास, तुलसीदास और सन्तमत के अनेकानेक प्रतिष्ठापक महापुरुषों ने जीवों के उद्धारार्थ यथाशक्ति पूर्ण प्रयत्न किया। अपनी ज्ञानमयी, अमर रचनाओं से इन विशिष्ट विभूतियों ने सृष्टि को ह्रास से बचाने के लिये हमें अमूल्य देन दी।

धन्य हैं विश्ववन्द्य ऐसी विभूतियाँ और धन्य हैं उनकी जननी-जन्मभूमि जिनकी कोख से तथा जहां ऐसे पुरुष-पुङ्गव धर्मरक्षक महाभाग जन्म लें।

यह अत्यन्त खेद और दुःख का विषय है कि इतने विशाल हृदय से बनाये हुए सृष्टि की नियमावलीरूप में पथ[illegible] करनेवाले इन सच्छास्त्रों के होते हुए हमारा बड़े से बड़ा ह्रास हो रहा है।

सम्मतियाँ और उद्गार !

फिर समय-समय पर अहिंसादि दिव्यगुणों के प्रचार के लिये एवं मूक-निर्दोष प्राणी पशु-पक्षियों की दयनीय दशा से दयार्द्र हो उनके कल्याणार्थ व्यापक आन्दोलन नर-रत्नों ने किये।

इन युग-पुरुषों ने ह्रास की ओर जानेवाली सृष्टि के उद्धार की पूर्णरुपेण चेष्टा की परन्तु उस समय असाधु पुरुषों की संख्या अधिक होनेसे एवं चक्रवर्ती राजाओं के हिंसावादी होने के कारण उन्हें अपने मिशन में कोई सफलता नहीं मिली।

इसका ही परिणाम है कि सारे प्राणी ह्रास के चक्कर में बुरी तरह जकड़ गये हैं। अब आप देख चुके हैं कि जो चीज उस समय चालू हुई उसका ध्यान न रख हम सम्हले नहीं न अपने भविष्य को कभी सोचा और अज्ञान में सब कुछ खो बैठे।

इस सम्बन्ध में भारत का उदाहरण लें तो १० वीं शताब्दी के अनन्तर वैदेशिक आक्रमणकारियों ने अपने दुर्दान्त कृत्यों लूट-मार हिंसादि से जनता का जीवन अशान्त, विपद्ग्रस्त एवं कलुषित बना दिया। यही नहीं शारीरिक पराधीनता के साथ-साथ ऊपर से मानसिक असंतुलन और चारित्रिक पतन इतना भयानक कर दिया कि भारतीय नैतिक तथा सामाजिक आर्थिक उत्थान सदा के लिये आंखों से ओझल-सा हो गया।

हमारे पतन का क्रम उत्तरोत्तर बढ़ता रहा उस समय फैली हुई ज्ञान-विज्ञान की राशि पुस्तक-भण्डारों को नष्ट-भ्रष्ट किया गया। सत् साहित्य के प्रचारक—जीवन-दर्शन और आचार के प्रवर्तक सच्छास्त्रों पर भयंकर वज्रपात हुआ। इससे ज्ञान का ह्रास होकर अज्ञान की वृद्धि होती रही। पारस्परिक द्रोहजनक युद्धों द्वारा वीर पुरुषों की कमी एवं शास्त्रों की उपेक्षा होती गई। मनुष्यों में संकुचित भाव बढ़ते गये। हाँ, उपर्युक्त युग पुरुषों ने बराबर उत्साहहीन व्यक्तियों को जीवन में कर्तव्य एवं धर्म मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। जिनके आधार पर सृष्टि का प्राक्कालीन ह्रास होते रहने पर भी व्यवहार चलता गया। ज्ञान-विज्ञान के साथ बल पौरुष भी निम्न स्तर पर आ गया। परन्तु मध्ययुग के प्रतापी प्रताप, छत्रपति शिवाजी जैसे नरपुङ्गव महापराक्रमी वीर हुए जिन्होंने धर्मप्रचार में—मर्यादा-प्रचार में प्राणपण से सुयोग देकर बढ़ती हुई अनर्थ परम्परा से जनता की रक्षा की।

१७ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मुसलमानों के पतन के बाद अंग्रेजी साम्राज्य का प्रादुर्भाव हुआ। गुलामी की जंजीरों से जकड़े हुए देशों का भगवान ही मालिक है। शारीरिक, मानसिक, नैतिक एवं बौद्धिक सभी प्रकार की उन्नति में भयानक व्याघात आगया—रही सही साहित्यनिधि का बुरे रूप में उपयोग किया गया। अब तो हमारे साहित्य में उपलब्ध जीवन दर्शन की भावनाओं पर तुषारापात ही कर दिया गया। उस समय तक हमारा साहित्य मूल वेदादि एवं भाष्य वैदिक भाषा और संस्कृत में था। यह मूल साहित्य मानव की स्थिति बनाने और जीवन को प्राकृतिक रूप से बिताने की प्रेरणा देने के लिये पर्याप्त था। पुनः मुद्रणादि प्रसार से सोचा यह गया था कि विश्व की अमर अभिलाषायें—युग-निर्माण की भावनायें साहित्य के मूलरूप में ही जनता को मार्ग दिखायेंगी, परन्तु दुर्भाग्य से हुआ उलटा। हस्तलिखित ग्र[illegible]का पुनः संशोधन स्वार्थी दृष्टिकोण से किया जाकर मूल पुस्तकों की विशेषता समाप्त कर दी गई। उन्हें प्रेसों में हिन्दी प्र[illegible] साथ छपवाकर महान् उदार भावों के स्थान में संकुचित भावों को भर दिया गया। शनैः-शनैः हमलोग कृत्रिमता

में फँसते गये और प्रकृतिगत जीवन से दूर होते गये। उस समय तक हमलोग अन्न (पृथ्वी) पर ही आधारित थे तथा पृथ्वी (अन्न) में ही शक्ति मानते थे। साहित्य बदलने के बाद हम पशु पर आधारित हो गये। अनन्त शक्तिशालिनी पृथ्वी को छोड़ पशु को अपने जीवन का आधार मानकर उसे ही सब कुछ समझ बैठे यह हुई हमारी संकुचित मनोवृत्ति। प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों और आधुनिक प्रकाशित पुस्तकों के देखने से इस बात की पुष्टि होती है।

पृथिवी की रक्षा (गो रक्षा) से हमारा अभिप्राय है उसकी उर्वरा शक्ति को बढ़ाते हुए शस्यश्यामला बनाना; ऋतु कालानुसार सभी प्रकार के धान्यों का उसमें बीजारोपण किया जाय जिससे कोई भी भाग बिना जोते हुए न रहे। सभी देवता और मनुष्य परम्परा से पृथ्वी माता की रक्षा करते आ रहे हैं। ब्रह्माजी भगवान् की स्तुति कर वराहावतार में समुद्र में ले जाई गई पृथ्वी का उद्धार करवाया। विष्णु की यह साक्षात्पत्नी पृथ्वी माता है। "विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यम्"। औढर दानी पशुपतिनाथ महादेवजी का पार्वती (पृथ्वी) के साथ तादात्म्य सम्बन्ध अनादि काल से है। देवराज इन्द्र इस पर समय-समय पर पर्जन्य वर्षा कर शस्य सम्पन्न बनाते हैं; मरुद्गण इस पर उगे हुए अन्न को पकाने में सहायता कर रक्षा करते हैं। पुरुषार्थ से ऋषिराज वशिष्ठजी ने कामधेनु नन्दिनी (पृथ्वी) के द्वारा ही अतिथि सत्कार किया जो अनूठा आदर्श सदैव स्पृहणीय रहेगा। भगवान मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने सीता माता रूपी पृथ्वी की रक्षा की। चिन्मयी शक्ति राधिकाजी (पृथ्वी) का लीला नटवरवपु श्री कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द ने तन मन से मनोयगोपूर्वक सृष्टि का उद्धार किया। गो पालन श्रीकृष्ण के जीवन का अभिभाज्य अंग था।

चक्रवर्ती सम्राटों ने अपने जीवन भर प्राणीमात्र की रक्षा के लिये पृथ्वी पर कृषि पालन का आदर्श रखकर अपना नाम अमर कर दिया। मिथिलेश जनकजी तथा बाबा नन्दजी ने यावत् जीवन इसकी रक्षा का व्रत लेकर कृषि एवं प्राणि रक्षा को महत्व दिया। इस प्रकार पृथ्वी की सब तरह से रक्षा करना सम्राट् स्वराट् विराट् से लेकर साधारण मानव तक का समान कर्तव्य है इससे ही सम्पूर्ण प्राणियों की रक्षा अवश्यम्भावी है। जैसे;

सर्वकामदुघा दोग्ध्री पृथिवी भूतभाविनी।
सैषा धात्री विधात्री च धारिणी च वसुन्धरा॥
दुग्धा हितार्थं लोकानां पृथुना इति नः श्रुतम्।
चराचरस्य लोकस्य प्रतिष्ठायोनिरेव च॥

(वायु० पु० उत्त० अ० १ श्लो० १८९-९०)

सर्वकाम दुघा पृथ्वी को महामहिम महर्षियों ने वेदों में असंख्य नामों से गाया है। जिनमें कतिपय नाम पाठकों की जानकारी के लिये नीचे दिये जाते हैं। यथा:—

गौ, वसुन्धरा, आग्नेयी, सावित्री, गायत्री, उषा, शक्ति, महिषी, निर्ऋति, अदिति, अग्निगर्भा, उर्वशी, [illegible] विश्वायु, पृश्नि, इड़ा, विश्वधा, विष्णुपत्नी, इन्द्रपत्नी, देवयजनी, अम्बिका, लक्ष्मी, सरस्वती, प्रजापति आदि।

"द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्।
उत्तानयोश्चम्वो३र्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥"

[ऋ० सं० २,३,२०,३]

"द्यौर्मे पिता"—इति (ऋ० सं० २, ३, २०, ३)। इममस्यवामीयं दीर्घतमस आर्षम्। तृतीयसवने वैश्वदेवे शस्यते।

'द्यौर्मे पिता' येमं द्यौः, उपरिस्थिता द्युलोकाख्या, सैव एव मम पिता। द्यौरहमित्येवं वैवाहिके कर्मणि द्युलोकभावेन पित्रा आत्मानमभिसम्पाद्यमानं दृष्ट्वैवमाह मन्त्रदृक्—'द्यौर्मे पिता—इति। 'जनिता' जनयिता, उत्पादयितेत्यर्थः। आह,—कथम्? उच्यते,—'नाभिरत्र' नहनमेव नाभिः, अत्र एतस्मिन् द्युलोकलक्षणे पितर्युदकदानेनानुग्रहीतरि सति सन्तानोत्पत्त्य-नुग्रहक्रमेणैव शुक्रात्मनोत्पत्तिरुपपद्यते,—इत्येवमभिसमीक्ष्योक्तम्। 'द्यौर्मे पिता' जनिता, नाभिरत्र'—इति। 'बन्धुः मे अङ्गसम्बन्धकारणाद् बन्धुः मे 'माता पृथिवी महीयम्'—इति। मातुर्मन्त्रेण पृथिवीत्वं सम्पाद्यमानं दृष्ट्वैवमाह,—'बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्' इति। उदकं हि द्युलोकात् पतितम्, पार्थिवेन धातुना सम्पृक्तम्, ओषधिभावमागम्य, शरीरभावेनावतिष्ठते,—इत्येतदपेक्ष्य सर्वभूतानां द्यावापृथिव्यौ मातापितरौ उच्येते तत्र तत्र। तद्यथा,—"द्वे सृती अशृणवं पितृणामहं देवानामुत मर्त्यानाम्। ताभ्यामिदं विश्वमेजत् समेति यदन्तरा पितरं मातरञ्च ॥"—इति (ऋ० सं० ८, ४, १२, ५) इत्येवमादि। तत्कृतस्य ह्युपकारस्याभावे सतीतरौ मातापितरावकिञ्चित्करावेव भवतः। तस्मादुपपद्यते द्यावा पृथिव्योर्मातृपितृभावः। आह,—किमेते द्यावापृथिव्यौ अन्यत् किञ्चिदनपेक्ष्यैव सर्वभूतानां मातृपितृभावं बिभृतः, उत अन्यदपि किञ्चिदपेक्षेते? इति। उच्यते,—अनयोः 'चम्वोः', द्यावा पृथिव्योः 'उत्तानयोः, ऊर्ध्वमेव ह्यनयोः अन्तरा च प्रति धारणीयोऽन्तः प्राणः तत् इति उत्ताने द्यावा पृथिव्यौ, प्राणेव होमे वायुना सूत्रभूतेन विधृते तिष्ठतः, एतयोः द्यावापृथिव्योरुत्तानयोः य एषोऽन्तरिक्षाख्य—"अन्तः" मध्ये 'योनिः' 'अत्र' एतस्मिन्नवकाशदानोपकारप्रवृत्ते सति 'पिता' "पर्जन्यः" द्युलो-[illegible], द्यौरेव हि रसान् प्रार्जयति, तस्मात् सैवात्र पर्जन्यशब्देन भाष्यकारेणोक्ता। 'दुहितुः' [illegible]" उपरि 'गर्भं' सर्वभूतगर्भोत्पत्तिहेतुभूतोदकम् 'आधात्' आदधाति, ददातीत्यर्थः।

सम्मतियाँ और उद्गार !

अत्र पृथिव्येव दुहितृशब्देनोक्ता, सा हि द्युलोकात् 'दूरे विहिता' अथवा सा हि द्युलोकं 'दोग्धीति दुहिता,—सा हि द्युलोकात् पतितमुदकमुपजीवत्येवादूरे निहिता, दोग्धि वा। एवं द्यावापृथिवीभ्यामन्तरिक्षेण चावकाशदानेनानुगृह्यमाणान्येतान्यस्यादादीनि भूतान्युत्पद्यन्त इति एतदनेन मन्त्रेण मन्त्रदृशा ख्यापितम्। अत्र मातृपितृसम्बन्धात् पितृशब्दः पितर्य्येवेत्युत्पत्तिः। पिता माता चायमेतदाशासनं मन्येत॥

अपने यहाँ मातायें करीब पाँच वर्षों के बाद बच्चों को जन्म देती थी और बच्चा जनने के तीन वर्ष बाद ऋतुमती होती थी जो स्वाभाविक था। इससे गोद के बच्चे को माता के दूध को पीने का पर्याप्त समय मिल जाता था। भाग्यवश यदि माता के दूध नहीं होता तो भूवा, दादी, चाची, ताई और निकट सम्बन्धवाली स्त्री का दूध पिलाकर बालक को पाला जाता परन्तु आज की भांति उपर के दूध से कदापि नहीं। इसी हमारी परम्परा से बच्चे स्वस्थ, सुन्दर और शतायु भोगनेवाले होते थे। ध्यान रहे पाँच वर्ष की जननावधि के कारण ही शतायु हो सकती है। यह सब बातें उनमें प्रकृति से परम्परा प्राप्त थीं। इस स्थिति का आधार था पृथ्वी पर निर्भर रहना। आज हम उससे कोसों दूर चले गये और पशु दुध को अपना आधार बना लिया।

जब पशु दूध और मनुष्य दूध एक हो गया तो पशु और मनुष्य में भेद कैसा। इसी का परिणाम हुआ कि मनुष्य में मानसिक स्थिरता नहीं रही। जैसे पशु का मन परिणाम को सोचे-समझे बिना किसी वस्तु पर चला जाता है ठीक वही स्वभाव मनुष्य का भी हो गया। पशु से मनुष्य का सम्पर्क होने से सृष्टि की स्थिति पर बड़ा बुरा परिणाम हुआ। मनुष्य सृष्टि के प्राण हैं और प्राण पर बुरा प्रभाव पड़ने से सृष्टि की स्थिति पर अनिवार्य प्रभाव हुआ ही। पशु की स्थिति होने से बालक जल्दी-जल्दी होने लगे इस बढ़ती हुई जनसंख्या से अन्न मँहगा और दुर्लभ हो गया। मनुष्य परमुखापेक्षी बन गये मनुष्य द्वारा पशु की स्थिति अपना लिये जाने का ही फल है मनुष्य पशुवत् गाड़ियों में भी जोते जाने लगे। अनेकानेक कष्ट जाल मानव सृष्टि में आ गये। जिनकी दुरवस्था की कल्पना को प्रत्यक्ष होते देख हृदय टीस मार-मारकर रो पड़ता है। क्या थी प्राचीन कालीन उन्नत मानवता और क्या हो गई आधुनिक मानवीय गुणरहित पशुतायुक्त दानवता! पशु की स्थिति से मनुष्य मानवोचित गुणों से वंचित हो गया। आज मातायें भी पशु के दूध और डिब्बे के दूध को देख अपने बच्चों को स्तनपान कराने में संकोच करती है यह कैसा ज्ञान है! जब माता ही बच्चे को स्तनपान कराने से दूर भागती हैं तब फिर मानवता कैसी।

आज सभ्य परिवारों में नौकर ही बच्चों को पालते हैं। देखिये, ब्रह्मवैवर्त पुराण के उत्तर खण्ड में माताओं और गृहिणियों के लिये अपने हाथों बालकों की परिचर्या, घर के कार्य, बड़े बूढ़ों की सेवा और पति के लिये सन्तुष्टि के [illegible] का वर्णन कितना उत्कृष्ट है—इस श्लोक में यह बताया है कि गृहस्थ-जीवन का उनपर कितना दायित्व है:—

सम्मतियाँ और उद्गार !

गृहकृत्यं सुनिर्वृत्य भोजयित्वा पतिं सती ।
अतिथिम्पूजयित्वा च स्वयम्भुक्तं सुखं सती ॥

यह वाल बच्चों से परिपूर्ण घर पितरेश्वरों की देन है । अन्न को वलिवैश्वदेव के बाद पितरों को उद्देश्य कर अह्नतानिकाल अतिथि सत्कार कर बच्चों तथा बड़े बूढ़ों को अपने हाथ से परोस कर अपनी देख-रेख में खिलाने का काम घर में सद्गृहिणियों का है । नौकरों का घर के पितरों से क्या नाता है और वे होते भी क्या हैं ? अतः घर की मालकिन पूज्य गृहिणियों से मेरी साञ्जलि प्रार्थना है कि अपने हाथ से अन्न सिद्ध कर शास्त्रोक्तविधि को ध्यान में रख काम में लें तथा बालकबच्चों और बड़े बूढ़ों को खिलाकर फिर पतिदेव को परोसें । इसी से पितर तृप्त होकर वंश की सर्वतः सुरक्षा करेंगे और गृहस्थ की पालनचर्या से हमें बच्चों को सन्मार्ग ग्रहण कराने में पूरी सहायता मिलेगी । अपने हाथों काम कर पितरों को निवेदन करने से वे तृप्त होंगे साथ ही बालकों की रुचिपरिस्कृति तथा स्वभाव, गुणादि का भी माता को पूर्ण परिचय मिलता रहेगा जिसकी जानकारी अपने बालक की बौद्धिक, नैतिक और शारीरिक उन्नति को देखते हुए प्रत्येक माता के लिये आवश्यक है । साथ ही माताओं में आलस्य की मात्रा को छोड़ने की भावना आवेगी । जगन्माता सीता और महासती सम्राज्ञी द्रौपदी कृष्णा का उदाहरण अपने सामने है । वे कितनी उदार हृदया कृपालु तथा स्वभाव से मृदुल थीं हजारों अतिथियों को अपने हाथों खिलाने में जरा भी उन्हें संकोच नहीं होता था । इससे उनके पुरुषार्थ और हृदय की विशालता का पता लगता है ।

माताओं का उनके प्रति आजका ऐसा उपेक्षापूर्ण कर्तव्य कैसे निभ सकेगा और कैसे बच्चा मा का स्नेह साधन करेगा इसमें सन्देह है । मातृ दुग्ध से जो शक्ति प्राप्त होती है वह हमें किसी भी पदार्थ से नहीं मिल सकती । माता के दूध से प्राप्त शक्ति के आधार पर ही हम जीवन भर सुख-सम्पत्ति का उपभोग करते हैं । माता के दूध से ही अस्थि निर्माण होना कहा है जिनके बलपर यह मानव शरीर खड़ा है । मातृ-दुग्ध से ही मानव को पुरुषार्थ की प्राप्ति होती है । यदि हम किसी कारणवश बचपन में मातृ-दुग्ध से वंचित रह गये तो समझिये मनुष्य योनि पाकर पुरुषार्थ से हीन रह गये । हमारे प्राचीन ग्रन्थों में मातृ-दुग्ध के पराक्रम की कथायें स्थान-स्थान पर आयी हैं उन्हें सभी महानुभाव भलीभांति जानते हैं । आजकल जिस प्रकार बच्चों को दायी ग्वाले आदि नौकरों को सौंप मातायें अपने कर्तव्य को पूरा समझ लेती हैं, यह बड़ी भारी भूल है । माता के चरित्र का जो प्रभाव बच्चे पर पड़ना चाहिये वह न पड़ उन नौकरों का प्रभाव बच्चों के जीवन पर आजीवन बना रहता है जो उनके संसर्ग में आरम्भ से रहते हैं । सद्गृहिणियों के कर्तव्यच्युत होने से अनुकरणशील बालकों को भी गृहसम्बन्धी कार्यों का ज्ञान नहीं होता और वे घर के उत्थान में सदा ही बाधक सिद्ध होते देखे गये हैं ।

सृष्टि की आधार भूता शक्ति मातायें हैं । उनके कार्य अन्य से शक्य नहीं । बच्चों को पालन-पोषण कर उन्हें योग्यतम …नाना माता का ही पूर्णतया प्रधान कर्तव्य है । मार्कण्डेय पुराण २६ वीं अध्याय की कथा है कि माता मदालसा ने अपने …५ वर्ष तक पालन-पोषण करते समय ही देहाभ्यास बताने के बहाने उन्हें परमार्थ का मार्ग बतलाया था ।

है और प्र

सम्मतियाँ और उद्गार !

"शुद्धोऽसिरे तात ! न तेऽस्तिनाम
कृतंहिते कल्पनयाऽधुनैव ।
पंचात्मकं देहमिदं तवैत-
न्नैवास्य त्वं रोदिषि कस्य हेतोः ।
तातेति किञ्चित्तनयेतिकिञ्चि-
दम्बेतिकिञ्चिद्दयितेति किञ्चित् ।
ममेति किञ्चिन्न ममेति किञ्चित्
त्वं भूतसङ्घं बहु मानयेथाः ॥

फिर राजा ऋतध्वज के आग्रह करने पर रानी मदालसा ने अपने अन्तिम पुत्र को व्यावहारिक शिक्षा देकर उत्तम चक्रवर्ती राजा बनाया । ऐसे अगाध मातृतत्त्व को हमारा शतशः नमस्कार है माता मदालसा पालने में झुलाते-झुलाते पुत्र अलर्क से कहती है :—

धन्योऽसि रे यो वसुधामशत्रु-
रेकश्चिरं पालयितासि पुत्र ! ।
तत्पालनादस्तु सुखोपभोगो
धर्मात्फलं प्राप्स्यसि चामरत्वम् ।
धरामरान्पर्वसु तर्पयेथाः
समीहितं बन्धुषु पूरयेथाः ।
हितं परस्मै हृदि चिन्तयेथाः
मनः परस्त्रीषु निवर्त्तयेथाः ।
यज्ञैरनेकैर्विबुधानजस्र-
मर्थैर्द्विजान् प्रीणय संश्रितांश्च ।
स्त्रियश्चकामैरतुलैश्चिराय
युद्धैश्चारीं स्तोषयिताऽसि वीर ।

सम्मतियाँ और उद्गार !

वालो मनो नन्दय वान्धवानां
गुरोस्तथाज्ञाकरणैः कुमारः ।
स्त्रीणां युवा सत्कुलभूषणानां
वृद्धो वने वत्स वनेचराणाम् ।
राज्यं कुर्वन् सुहृदो नन्दयेथाः
साधून्रक्षंस्तात ! यज्ञैर्यजेथाः ।
दुष्टान्निघ्नन् वैरिणश्चाजिमध्ये
गोविप्रार्थे वत्स ! मृत्युंव्रजेथाः ।

षडविंशाध्याय । ३५—३९

आजकी उपेक्षा बुद्धि से माता और बच्चे के प्रेम में भारी बाधा पहुँचती है । आजकी मातायें इसका विशेष ध्यान रखें यह निवेदन है । स्नेह सूत्र से ही सृष्टि का व्यवहार है । प्राचीनकाल में माता को अपने दूध पर कितना गौरव था कि अपनी सन्तान को किसी वीरतापूर्ण साहसिक कार्यके लिये आशीर्वाद देती हुई वे उससे माता का दूध न लजाने की आशा रखती थीं ।

अब देखना यह है कि माता के दूध की बच्चे को क्यों आवश्यकता है ? माता की जूठन (थूक लार से मिलकर) ही दूध के रूप में बच्चे को प्राप्त होती है । इसका स्पष्ट प्रभाव बच्चे की हाजमाशक्ति को पूर्ण सबल बनाने पर पड़ता है । यह तो सर्वविदित ही है कि बालक जब तीन वर्ष का होता है तब तक उसके थूक लार कम मात्रा में उत्पन्न होते हैं इससे हाजमा कमजोर हो रस का पाचन बराबर नहीं हो पाता । मातृ दुग्ध के पान से यह शक्ति उसमें उत्पन्न हो जाती है । माता के दूध से जो केलसियम बच्चे को मिलेगा वह उसे जीवन पर्यन्त काम देगा । इस महत्त्वपूर्ण तथ्य का पालन करने से सभी प्राणियों को निर्बाध रूप से अपने बाल्य में पर्याप्त मा का (योनि सम्बन्धी) दूध मिलता था यह निर्विवाद है ।

जहां हमारी भारत भूमि पर स्वच्छ आहार सादा प्राकृतिक भोजन का प्रचलन था और दूध लेना तथा बेचना शास्त्रों से सर्वथा वर्जनीय था । दूध ही पूत है पूत ही दूध है और दूध ही हर योनि की शक्ति है इसका सदा ध्यान रखा जाता था । वहां आज स्थान-स्थान पर हम दूध बेचने के कारखाने खुले हुए देखते हैं । आज ऐसा कोई भी स्थान नहीं रहा जहां दूध न बिकताहो । यहां तककि गली-गली में मिठाई की दुकानों में ३६ सों प्रकार के व्यञ्जनों में भी मावा छेने की मिठाई घी से तले हुए पकान्न विशेषतया बिकने को प्रस्तुत रहते हैं । पशु का दूध लेकर पशुपालन करने का दम भरने का दावा अपने लिये ...यह कैसा है हमारा ज्ञान ! इससे तो बेचारे पशुओं का भारी अहित हुआ न ।

...र्युक्त विवेचन से हम स्पष्ट रूप में देख चुके हैं कि साहित्य के संकुचित अर्थ को लेने से अत्यधिक पतनकारी है और प्र...

परिणाम हमारे लिये उत्पन्न हो चुके हैं महापुरुषों द्वारा निर्मित शास्त्रों को विशाल महान् भावों से देखने से ही हमारा कल्याण होगा। इन सबकी शीघ्र चिकित्सा न की गई तो हमें रसातल में जाते देर न लगेगी। मनुष्य का सम्बन्ध पशु से जोड़े जाने के कारण तथा पशु की वार्षिक प्रजनन शक्ति मनुष्य में आ जाने से मनुष्य की स्थिति समाप्त हो गई और हो गई अज्ञान की पराकाष्ठा। आज अज्ञान, असत्य, हिंसा और भोगवाद का इतना नग्न ताण्डव हो रहा है कि भले-सज्जन पुरुषों का ऐसे कुत्सित वातावरण में दम-सा घुटने लग जाता है एक बार इस पृथ्वी माता को अपने सुपुत्र मानव की करनी पर तरस-सी आती है देखिये, आज की इस विषम परिस्थिति का कितना तथ्यपूर्ण चित्रण निम्नलिखित श्लोक में किया गया है।

धर्मः संकुचितस्तपो विगलितं सत्यं च दूरंगतम्।
क्षोणी मंदफला नृपाश्चकुटिलाः शास्त्रेतरा ब्राह्मणाः ॥
लोकाः स्त्रीवशगाः स्त्रियोऽतिचपला लोकानुरक्ताजनाः।
साधुः सीदति दुर्जनः प्रभवति प्रायः प्रवृत्ते कलौ ॥

अर्थात् छलकपटरूपी कलियुग के आगमन से धर्म संकुचित हो गया आज तो धर्म के नाम से ही चिढ़ हो रही है फिर धर्म पालन सत्य का आचरण तो दूर की बात है। तप मार्ग से लोग हट गये, सत्य का अभाव हो गया। पृथ्वी के ऊपर पूरा परिश्रम न करने के कारण बोये हुए अन्नादि का जितना फल होना चाहिये वह नहीं रहा। पृथ्वी मन्दफल देनेवाली हो गई। राजा लोग कुटिल हो गये। पुराने समय में भी ऐसे शासकों का अभाव नहीं रहा जिन्होंने स्वार्थ के वशीभूत होकर मनमाने कानून बनाकर निःसहाय जनता को अपनी शासन शक्ति से नाना प्रकार के कष्ट पहुंचाकर शान्ति-सुरक्षा को खतरे में न डाला हो। इसी प्रकार अपने पैरों खड़े रहने की शक्ति क्षय करना, अपने बनाये हुए कानूनों द्वारा निर्दोष व्यक्ति को दोषी ठहराकर निरन्तर शोषण करना, यह सब असहाय व्यक्तियों के साथ अन्याय ही नहीं बल्कि उनको हर तरह से यातना, कष्टदेकर असह्य अत्याचारों द्वारा उत्पीड़ित करना आज के शासकों का अन्यतम धर्म हो गया। फलतः आज हम लोग इतनी विपरीत दशा में आ गये हैं कि धर्माधर्म का ज्ञान जिन शास्त्रों से होता है उनके रक्षक लोग स्वार्थवश शास्त्रीय जीवन की मर्यादा से विमुख हो गये। सत्य एवं विद्या के सच्चे उपासक बिल्कुल इने-गिने रह गये। राज्य में भी सत्य का गला घोंटा जाकर नाना प्रकार के कानून बनाये जाने लगे हैं कि लोग अपना बचाव येन-केन उपायेन झूठ छल-कपट से कर कानूनी सिकञ्जे से निकलने में लग गये। आज तो कानूनों का अर्थ हो गया है झूठ सिखाना फलतः झूठ ही लेना झूठ ही देना का सब जगह बोलबाला हो गया है। राजा प्रजा के ऊपर करों का इतना भारी बोझ लाद देता है कि प्रजा शोषित हो जाती है फिर दैन्य, दुर्भिक्ष, रोग और भय आकर सुराज्य में बड़ी बाधा डाल देते हैं।

ज्ञानी लोग शास्त्र मार्ग से भ्रष्ट हो गये फिर तो पतन अनिवार्य है ही। संसार के मनुष्यमात्र स्त्रियों में लोलु[illegible] गये। कामवासना ही क्षय का मूल है यह आज के युग में अधिकाधिक स्त्री-पुरुषों को अपने मायावी [illegible] इतना अधिक जकड़े हुए है कि विनाशकाल सन्निकट ही मालूम देता है। स्त्रियां स्वच्छन्द विचरणशील [illegible]

सम्मतियाँ और उद्‌गार !

जैसा कि स्त्री और श्री में कोई अन्तर नहीं है, उन सभी अबलाओं की शक्ति की रक्षा अत्यावश्यक है जिससे जाति, राष्ट्र और समाज की उन्नति हो ; परन्तु स्थिति है इसके विपरीत। सभी प्राणी मर्यादा से गिर गये परिणाम स्पष्ट है साधु (सज्जन) दुःख पाने लगे दुर्जनों की वृद्धि होने लगी। यह हुआ सब सत्य के अभाव और ज्ञान की कमी होने से। अतः मेरी स्वतन्त्र भारत के कर्णधारों से विनम्र प्रार्थना है कि प्रकृति प्रदत्त कानूनों की रक्षा कर अप्राकृतिक (जिसके द्वारा किसी का भी अहित होता हो) कानूनों का त्याग कर निःसहाय जनता को सत्य एवं ज्ञान की शिक्षा देकर प्राणी मात्र के हित में संलग्न होवें यही वेद भगवान् की आज्ञा हैं इसी में अपना कल्याण है।

आधुनिक समय में दुरवस्था यहाँ तक पहुंच गई कि सभी भौतिक ज्ञान में ही सभ्यता का विकाश समझ अपने आन्तरिक सद्‌गुणों का अर्जन करना भूल गये और कहने लगे कि येन-केनाप्युपायेन विश्व भर के भोग, सुख, रूप, रस, गन्ध स्पर्श के क्षणिक आनन्द सदा के लिये हमें मिलते रहें। आज एक विलक्षण प्रतिद्वन्द्विता मची है इन सब के अर्जन में। यह सब कितने से जीवन के लिये ? बाल्यकाल की अज्ञानावस्था इसका आनन्द नहीं उठा सकती। यौवन का उद्दाम वेग अवश्य इसकी कृतकार्यता पर गर्व अनुभव कर सकता है अवशिष्ट वृद्धावस्था तो केवल रोगाविर्भूत होकर खट्वासीन होनेके लिये है ही। अतः केवल जीवनके असीम प्रवाहमें यौवन सुख की लहलहाती हुई हरियाली को उन भोग सुखों से तृप्त कर सदा अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिये ही तो यह सब प्रपञ्च हो रहा है। याद रखना चाहिये कि जब कभी अल्प फल के हेतु अधिक वस्तु के नाश करने की कामना की जाय वह अज्ञान है। हम अपनी मानवोचित गुणग्राहकता, सहिष्णुता, आत्मानुभव और परस्पर सहयोग की भावना को भूलने की तैयारी में हैं। शास्त्र की शरण में जाइये तथा अपने इष्ट ध्येय को प्राप्त कर आत्मसाक्षात्कार के आदेशों का पालन कर शिघ्रातिशिघ्र इस जबर्दस्त भीषण अज्ञानपरम्परा से बचिये।

मनुष्य एवं पशु में इतना ही भेद है कि मानव विवेक द्वारा इन्द्रियों पर अंकुश रखते हुए पुरुषार्थ करता है और पशु अज्ञान से इन्द्रियों के जाल में फँस अपना सर्वस्व खो बैठता है। यथा—'कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्गमीनाहताःपञ्चभिरेवपञ्च। एकः प्रमादी स कथं न हन्यते निषेवते यः स धुरन्धरो नरः॥' मृग, हाथी, पतङ्ग, भौंरा और मछली यदि एक-एक इन्द्रिय विषय की प्रधानता से ही विनाश के गर्त में जा गिरते हैं तो मनुष्य ही कैसे सुर्खाब के पर लगाकर आया कि उसका कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हिरण कर्ण मधुर नाद के श्रवण पर मुग्ध होकर मृत्यु का शिकार होता है। हाथी (मातङ्ग) विषय सुख की तीव्रतम रागात्मिका वृत्ति से बन्धता है। पतिङ्गा दीपक शिखा की प्रकाशमय आभा से उसपर निछावर होकर रूप माधुरी को सर्वस्व अर्पण कर देता है—भस्म हो जाता है। भृङ्ग कमल के दलों में घ्राणेन्द्रिय की परितृप्ति में अपने को लगाकर जीवन की इति श्री कर देता है और मछली अपने स्वभाव सुलभ जिह्वालौल्य के द्वारा कांटे में लगे हुए अन्न को पाने के प्रयत्न में स्वयं को फंसी हुई पाती है, यहां तक कि जीवन से उसे हाथ धोना पड़ता है, परन्तु [illegible]त्र इन साङ्घातिक आपदाओं से बच निकलता है। ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न मनुष्य को ये सब प्राप्ति होनेपर भी भोग-विलास का [illegible] आज्ञा से त्याग ही अन्तिम लक्ष्य इष्ट हुआ। उसने विवेकरूपी ढाल से इस शरीररूपी दुर्ग की इन प्रबल शत्रुओं से है और प्र[illegible]ा की। परन्तु अब उसकी थाती विनाश की शरण हुआ चाहती है।

सम्मतियां और उद्गार !

जीवन में ज्ञान, अज्ञान, अहिंसा, हिंसा, दैव—आसुर पशु-मनुष्य भावों की सङ्घर्षात्मक परिचर्या चलती रहती है। उसमें प्राप्तकाल की विषम परिस्थिति तो कामिनी-काञ्चन की अत्यन्त बलवती भोग कामना उत्पन्न कर मनुष्य को नरपिशाच बनानेपर तुली हुई है। मनुष्य के जीवन का यह परीक्षा काल है। आज उसे अज्ञान, ज्ञान, सत्, स्थायी, क्षणिक, अधर्म और धर्म के बीच सन्तुलन कर कर्तव्य और अधिकार स्थिर करना है। उसे यह देखना है कि "यत्प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम" की प्राप्ति का कौन राज मार्ग है ? अभी भले ही कुछ काल के लिये मनुष्य अपने लक्ष्य से हट चुका हो भले ही उसे पथभ्रष्ट होने में ही आनन्द आता हो फिर भी प्रकृति प्रदत्त अधिकारों का दुरुपयोग तो उसकी थाती नहीं। आज यही हो रहा है वह सभी वस्तुओं पर एकाधिपत्य की भावना रख स्वार्थी बना हुआ है वह मारे जिसे मारे और जिलावे जिसे जिलावे। मूक प्राणी पशु-पक्षी आदि समान रूप से सद्भावपूर्वक वर्ताव की आकांक्षा से उसके हाथों अपनी रक्षा की आशा रखता है और पूर्व प्रतिपादित उपयोगिताओं को अपने प्रकृतिसिद्ध गुणों से बताता हुआ अपनी रक्षा का भार मानव के कन्धों पर डाल देता है।

उपरोक्त दुरवस्था का सहज कारण है शास्त्र का मनन न होकर कर्तव्य से विमुख हो जाना। स्वयं भगवान अर्जुन को आदेश करते हैं कि मेरे लिये तीनों लोकों में कोई कर्तव्य कर्म शेष नहीं हैं न मेरे लिये कोई प्राप्तव्य पदार्थ है परन्तु यदि सावधान होकर मैं कभी कर्म न करूँगा—कर्म छोड़ दूंगा तो दुनियां मेरे पीछे कर्तव्यच्युत हो जायगी सृष्टि के नियमों में बाधा खड़ी हो जायगी जिससे यह ह्रासोन्मुख हो जायगी।

"यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ ! सर्वशः ॥
उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
संकरस्य च कर्तास्यामुप हन्यामिमाः प्रजाः ॥
सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत !
कुर्याद्विद्वांस्तथा सक्तश्चिकीर्षु र्लोकसंग्रहम् ॥

गीता अ० ३ श्लो० २३—२५।

पुराने समय में राजा से लेकर रंक तक सभी पुरुषार्थ में संलग्न रहते थे। यह क्रम मुसलमानी आक्रमण से पूर्व तक परम्परा से चला आता था। धीरे-धीरे वे उत्पादन सम्बन्धी पुरुषार्थ प्राणिमात्र की रक्षा और सृष्टि का हित सम्पादन छोड़ पुरुषार्थ से दूर चले गये। अपने आप आरामी जीव बन गये। उनके सम्पर्क में आनेवाले अमीर-उमराव क्षत्रिय लोग कर्तव्य से हटने लगे। उन्हींके संसर्ग से विद्वत्समाज को भी हवा लगी जिससे समाज में पुरुषार्थ करनेवाले कम होते चले गये और रोग यहां तक बढ़ा कि एक दूसरे की देखा-देखी से वैश्य महाजन लोग भी पुरुषार्थ कर्म से हटते जा रहे हैं। आज [illegible] माताओं ने भी उसे धत्ता बता दिया है। मनुष्य कर्मप्रधान संसार में ज्ञानी होने के नाते सर्वाधिक पुरुषार्थी [illegible] कर्म द्वारा ही श्रेष्ठ जनकादि राजाओं ने उत्तम आदर्श रक्खा। परन्तु आज दुरवस्था यहां तक पहुँच चुकी है [illegible]

सम्मतियाँ और उद्गार !

सभ्य समाज में माता-पिता अपनी लड़की को काम करनेवाले घर में देने में भी संकोच करते हैं। यह कैसा ज्ञान ! मनुष्य तो कर्मप्रधान योनि है भोग तो पशु योनि का धर्म है। पुरुषार्थ से ही पुरुषार्थ बढ़ता है। अतः मानवमात्र को सूर्योदय से पहिले ही स्नानशौच सन्ध्यावन्दन आदि से निवृत्त हो अपने पुरुषार्थ कर्म में लग जाना चाहिये। पुरुषार्थ से पाचनक्रिया सुदृढ़ होती है जिससे अन्न का रस बन स्फूर्ति एवं शक्ति की वृद्धि होती है। भोजन के बाद जब तक अन्न घुल न जाय तब तक पुरुषार्थ कर्म न करें। पुरुषार्थ की कमी से पाचनक्रिया में शिथिलता आती है तथा अन्न का परिपाक नहीं होता है। जिससे मानव में आलस्य की अभिवृद्धि होती है। यथा :—

"आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्य महान्रिपु"

आलस्य ही मनुष्य का महान् शत्रु है जिससे रोग-शोक की वृद्धि होती है। पुरुषार्थ कर्म किये बिना शक्ति और ज्ञान की वृद्धि नहीं होती और न मनुष्य-यात्रा ही सफल होती है।

"शरीर यात्राऽपि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः।
कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः॥"

(श्री गीता)

कर्तव्य बिना ज्ञान नहीं है इसीसे अज्ञान की वृद्धि दिन-प्रतिदिन होती रही है। बस आधुनिक दुरवस्था का यही कारण है। यह पुरुषार्थ खेती से ही शक्य है देखिये हारीत स्मृतिः—

"कृषिस्तु सर्ववर्णानां सामान्यो धर्म उच्यते।"

सभी वर्णों के लिये खेती करना सामान्य धर्म बताया है।

"कृषिर्भृतिः पशुपाल्यं सर्वेषान्न निषिध्यते।"

खेती, भृति और पशुपालन सब को करना इष्ट है।

"ब्राह्मणस्तु कृषिं कुर्वन्नाहयेदिच्छया धराम्।
न किञ्चित्कस्यचिद्द्यात्स सर्वस्य प्रभुर्यतः॥
ब्रह्मा वै ब्राह्मणानां स्यात्प्रभुस्त्वसृजदादितः।
तद्रक्षणाय बाहुभ्यामसृत् क्षत्रियानपि॥
पशुपाल्याब्जनोत्पत्त्यै उरुभ्याञ्च तथा विशः।
द्विज दास्याय पण्याय पद्भ्यां शूद्रमकल्पयत्॥

पराशर अध्याय ५ श्लोक १३५-१५०

है और प्र... ।

कृषे रन्यतमो धर्मो न लभेत्कृषितोऽन्यतः ।
न सुखं कृषितोऽन्यत्र यदि धर्मेणकर्षति ॥

पराशर स्मृति ५ । १८५

षट् कर्माणि कृषिं येतु कुर्युर्ज्ञान विधि द्विजाः ।
ते सुरादिवर प्राप्ताः स्वर्गलोकमवाप्नुयुः ॥

पराशर स्मृति ५ । १९४ श्लोक

वर्ण धर्मों की महत्ता के विषय में विष्णुपुराणान्तर्गत तृतीय अंश के अष्टम अध्याय में और्व सगर सम्वाद में द्रष्टव्य कितना सुन्दर निरुपण है व्यवस्थित समाज के अङ्गभूत वर्णों और उनकी कार्यव्यवस्था का ; इसे हृदयङ्गम करने से आधुनिक भेद दृष्टि, अधिकारलिप्सा, सबल के द्वारा निर्बल को दबा देने का प्रयत्न, विश्रृङ्खल समाज का दृश्य और उससे प्राप्त होनेवाले भौतिकवादी अशान्त जीवन का पूर्ण समाधान मिलता है । यथा :—

सगर उवाच

तदहं श्रोतुमिच्छामि वर्णधर्मानशेषतः ।
तथैवाश्रमधर्मांश्च द्विजवर्य ! ब्रवीहि तान् ॥

और्व उवाच

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणाञ्च यथाक्रमम् ।
त्वमेकमना भूत्वा शृणु धर्मान्मयोदितान् ॥
दानं दद्याद् यजेद्देवान् यज्ञैः स्वाध्याय तत्परः ।
नित्योदकी भवेद्विप्रः कुर्याच्चाग्निपरिग्रहम् ॥
वृत्त्यर्थं याजयेच्चान्यानन्यानध्यापयेत्तथा ।
कुर्य्यात्प्रतिग्रहादानं गुर्वर्थं न्यायतो द्विजः ॥
सर्वभूतहितं कुर्य्यात् नाहितं कस्यचिद् द्विजः ।
मैत्रीसमस्तभूतेषु ब्राह्मणस्योत्तमं धनम् ॥
ग्रावे रत्ने च पारक्ये समबुद्धिर्भवेद्द्विजः ।
ऋतावभिगमः पत्न्यां शस्यते चास्य पार्थिव ! ॥

दानानि दद्यादिच्छातो द्विजेभ्यः क्षत्रियोऽपिहि।
यजेच्चविविधैर्यज्ञैरधीयीत च पार्थिव ! ॥
शस्त्राजीवो महीरक्षा प्रवरा तस्य जीविका।
तस्यापि प्रथमे कल्पे पृथिवी परिपालनम् ॥
धरित्रीपालनेनैव कृतकृत्यो नराधिपः।
भवन्ति नृपतेरंशा यतो यज्ञादिकर्मणाम् ॥
दुष्टानां त्रासनाद्राजा शिष्टानां परिपालनात्।
प्राप्नोत्यभिमतान् लोकान् वर्णसंस्थाकरो नृपः ॥
पाशुपाल्यं वाणिज्यञ्च कृषिंच मनुजेश्वर।
वैश्याय जीविकां ब्रह्मा ददौ लोक पितामहः ॥
तस्याप्यध्ययनं यज्ञो दानंधर्मश्च शस्यते।
नित्यनैमित्तिकादीनामनुष्ठानञ्च कर्मणाम् ॥
द्विजातिसंश्रयं कर्म तादर्थ्यं तेन पोषणम्।
क्रयविक्रयजैर्वापि धनैः कारूद्भवेन वा ॥
दानञ्च दद्यात् शूद्रोऽपि पाकयज्ञैर्यजेत च।
पित्र्यादिकाञ्च वै सर्वं शूद्रः कुर्वीत तेन वै ॥
भृत्यादिभरणार्थाय सर्वेषांच परिग्रहः।
ऋतुकालाभिगमनं स्वदारेषु महीपते ॥
दया समस्तभूतेषु तितिक्षानभिमानिता।
सत्यं शौचमनायासो मङ्गल्यं प्रियवादिता ॥
मैत्री स्पृहा तथा तद्वत् अकार्पण्यं नरेश्वर।
अनसूया च सामान्या वर्णानां कथिता गुणाः ॥
आश्रमाणां च सर्वेषामेते सामान्यलक्षणाः ॥

हे और प्र

सम्मतियाँ और उद्गार !

महाराज सगर ने महर्षि और्व से सम्पूर्ण वर्णधर्म और आश्रम धर्मों को बताने के लिये सानुरोध प्रश्न किया। इसके उत्तर में उन्होंने कहा राजन्, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के क्रमशः धर्म-प्रतिपादित करता हूं उन्हें एकाग्र होकर सुनिये। ब्राह्मण को चाहिये कि वह दान दे, यज्ञों से देवताओं का यजन करें, नित्य स्वाध्याय में लगा रहकर देव ऋषि पितृ-तर्पण और अग्निहोत्रादि करता रहे। जीवन-यापन के लिये पढ़ावे और यज्ञ करावे ब्राह्मण लोग शास्त्रों के गूढ़ार्थ को सरल भाषा में जनता के कर्तव्य ज्ञान के लिये उपदेश करें इससे अपनी वृत्ति अर्जन करें तथा गुरु के लिये न्याय से प्राप्त प्रतिग्रह ले। ब्राह्मण का यह उत्तम धन है कि वह सब प्राणियों का हितचिन्तन करे किसी का अहित मन से भी न सोचे दूसरे के अमूल्य रत्नादि धनपर कदापि मन न चलावे। ऋतुकाल में स्त्री सहवास सदा ही कल्याणकारी है। क्षत्रिय प्रसन्नचित्त अर्थात् मुक्त हस्त होकर दान दें तथा नाना यज्ञों से परमात्मा का यजन करे, विद्याभ्यास करें। शस्त्र द्वारा पृथ्वी की रक्षा उनकी जीविका है। सम्पूर्ण प्रजा को मर्यादा में रखना राजा का धर्म है। पृथ्वी परिपालन से ही क्षत्रिय कृतकृत्य होते हैं। प्रथम कल्प में उनको पृथ्वी पालन करनेके लिये ही कहा गया है। दुर्जन पुरुषों को दण्ड देनेसे तथा सज्जन पुरुषोंका पालन करने से समाज में उच्छृङ्खलता नहीं आती इससे राजा को अभिमत पुण्यलोक प्राप्त होते हैं। ब्रह्मा ने वैश्यों के लिये पशुपालन, व्यापार और खेती करना बताया। उनके लिये भी अध्ययन, यज्ञ, दान, धर्म तथा नित्य-नैमित्तिक कर्मों का अनुष्ठान प्रशंसनीय है। शूद्र बड़ों की सेवा करें एवं क्रय-विक्रयादि द्वारा अपना भरण-पोषण करें। क्रय-विक्रय (खरीद बेचाण) और कारीगरी के पेशे से अपनी आजीविका चलावें और अपने आश्रितों का पोषण करें। यह अर्जन सब सद्व्यवहार द्वारा ही करे उससे दान, पाक-यज्ञादि से भजन और पित्र्यादि कार्य सम्पन्न करें।

सब वर्णों के सामान्य धर्म कहे जाते हैं। अपने यहाँ समागत अतिथि एवं बड़े बूढ़ों की सेवा-सुश्रूषा करना तथा अपने आश्रित बाल-बच्चे और पशु-पक्षियों का पालन करना इसके लिये आवश्यकतानुसार धन (अन्न) सञ्चय करे।

स्वदार में ऋतुकालाभिगामी रहना, सब भूतों पर दया रखना, सुख-दुःखादि द्वन्द्वों को सहन करने की शक्ति, अनभिमानता, सत्य, शारीरिक और आन्तरिक शुद्धि, मङ्गल भाषण, मित्रता, अकृपणता (यथा-शक्ति दान) और दूसरे के गुणों में दोष न देखना आदि चारो वर्णों के समान धर्म हैं।

इसके साथ ही यह भी देखिये:—

उपाध्यायाद्दशाऽऽचार्य्य आचार्य्याणांशतं पिता ।
पितुर्दशशतं माता गौरवेणातिरिच्यते ॥
तस्मात्तेषां वशे तिष्ठेत्तच्छुश्रूषापरोभवेत् ।
अवमानात्तु तेषांहि नरकान्याति सर्वशः ॥

वृद्ध गौतम अध्याय १४ श्लोक ६१-६२

सम्मतियाँ और उद्गार !

गौरव की दृष्टि से उपाध्याय से आचार्य दशगुणा बड़ा है आचार्य से पिता सौगुणा बड़ा है और पिता से हजारगुणा माता बड़ी (गुरु) है। इसलिये अपने पूज्य माता-पिता आदि गुरुजनों को जो कि रक्षक एवं पालक हैं उनकी शुश्रूषा करना सभी मनुष्यों का प्रधान कर्त्तव्य है। इनका अपमान कदापि नहीं करना चाहिये। इन पूज्यजनों का अपमान करने से मनुष्य नरकगामी होता है।

श्री भगवानुवाच

* * *

क्षान्तो दान्तो जितक्रोधो जितात्मा हि जितेन्द्रियः।
तमेव ब्राह्मणं मन्ये शेषा शूद्रा इतिस्मृताः॥
अग्निहोत्र व्रतपरान् स्वाध्याय निरतान् शुचीन्।
उपवासरतान् दान्तास्तान्देवा ब्राह्मणान्विदुः॥
न जातिः पूज्यते राजन्! गुणाः कल्याणकारकाः।
चण्डालमपि वृत्तस्थं तं देवा ब्राह्मणं विदुः॥
अग्निहोत्रपरि भ्रष्टः प्रसक्तः क्रय विक्रये।
वर्णसङ्करकर्त्ता च ब्राह्मणो वृषलैः समः॥
यस्यवेदश्रुतिर्नष्टा कर्षकश्चापि यो द्विजः।
विकर्मस्थोऽपि कौन्तेय! स वै वृषल उच्यते॥

वृद्ध गौतम स्मृति अध्याय २१ श्लोक ६—१२

भगवान युधिष्ठिर को कहते हैं:—

क्षमा एवं दमनशील, काम क्रोध लोभ मोहादि को जीतनेवाला, इन्द्रियजयी व्यक्ति ही ब्राह्मण है। ये गुण जिसमें नहीं वह शूद्र है। अग्निहोत्र करनेवाले, व्रत रखनेवाले, स्वाध्यायपरायण, सदा शारीरिक मानसिक शुद्धि रखनेवाले, उपवास में लगे हुए (मर्यादा ईश्वरीय नियमोंको पालनेवाले) संयमी पुरुषों को ही ब्राह्मण कहा गया है। हे राजन्! जाति की कोई पूजा नहीं होती सदा गुणों से ही कल्याण होता है। चण्डाल भी यदि सद्वृत्त हो तो उसे ब्राह्मण कहा गया है। संसार में ...ी सबसे बड़ा है पूजा जो है वह ज्ञान की है, ज्ञान की वृद्धि करना सभी का कर्त्तव्य है। अग्निहोत्र न करनेवाला ...तुओं के क्रय विक्रय में लगा हुआ वर्णसङ्करता करनेवाला ब्राह्मण पतितों के समान है। वेदमय सांस्कृतिक जीवन से ...है और ...े कर्म से हीन व्यक्ति ब्राह्मण होने पर भी पतित ही कहा जायगा।

सम्मतियाँ और उद्गार !

माता हरिः, पिता देवता, गुरु विष्णु अर्थात् तन, मन, धन से सम्पूर्ण संकटों को हरनेवाली, पालन-पोषण करनेवाली रक्षिका है एवं विश्व की शक्ति का स्रोत भी यही है। अपनी सन्तान को चारित्रिक शिक्षा देकर उच्च बनाना ही उनके जीवन का उद्देश्य है। पिता देवता (देनेवाला)। हमें जो भी जरूरत होती है उसे पिता ही पूर्ण करता है अतः देव स्वरूप है। गुरुः—सच्चे ज्ञान को देकर अन्धकार को नाश करनेवाला जो रक्षक है वह विष्णु स्वरूप है। प्रकृति की रक्षा करते हुए मर्यादा में अटल रहना ही जिनका प्रधान ध्येय है ऐसे चक्रवर्ती राजा (पृथ्वी पालक) जो प्राणीमात्र की समग्र आपदाओं से रक्षा करते हैं एवं प्रजा के हित में ही निरन्तर रहते हैं वे जगद्गुरु हैं। महर्षि, परिव्राजक, परमहंस जिनको अपने शरीर की भी सुधबुध नहीं है तथा जिन्होंने अपने जीवन को प्राणी हित में लगा दिया है—"सर्वभूतहितेरताः" वे जगद्गुरु हैं। भगवान् विष्णु सृष्टि की रचना, पालना एवं रक्षा करनेवाले हैं अतः परम गुरु है।

न पत्नीं दीक्षयेद्भर्ता न पिता दीक्षयेत् सुताम्।
न पुत्रश्च तथा भ्राता भ्रातरं नैव दीक्षयेत् ॥ ८६ ॥

सिद्धमन्त्रो यदि पतिस्तदा पत्नीं स दीक्षयेत्।
शक्तित्वेन भैरवस्तु न च सा पुत्रिका भवेत् ॥ ८७ ॥

मन्त्राणों देवता ज्ञेया देवता गुरुरूपिणी।
तेषां भेदो न कर्तव्यो यदिच्छेच्छुभमात्मनः ॥ ८८ ॥

स्त्रियो दीक्षा शुभा प्रोक्ता मंत्राश्चाष्टगुणाःस्मृता।
पुत्रिणी विधवा ग्राह्या केवला ऋणकारिणी ॥१११॥

सिद्ध मंत्रं यदि भवेद् गृह्णीयाद्विधवामुखात्।
केवलं सुफलं तत्र मातुरष्टगुणं ध्रुवम् ॥११२॥

यदि माता स्वकं मन्त्रं ददाति स्वसुताय च।
तदाऽष्टसिद्धिमाप्नोति भक्तिमार्गे न संशयः ॥
तदैव दुर्लभं देव! यदि मात्रा प्रदीयते ॥११४॥

सधवा स्वप्रवृत्त्या च ददाति यदि तन्मनुम्।
ततोऽष्टसिद्धिमाप्नोति यदि सा पुत्रिणी सती ॥११३॥

आदौ भक्तिं ततो मुक्तिं संप्राप्य कालरूपधृक्।
सहस्रकोटि विद्यार्थं जानाति नात्र संशयः ॥११५॥
स्वप्ने तु मातः यदि वा ददाति शुद्धमन्त्रकम्।
पुनर्दीक्षां सोऽपिकृत्वा दानवत्वमवाप्नुयात् ॥११६॥
विचार्य्य चक्रसारञ्च मन्त्रं गृह्णाति यो नरः।
वैकुण्ठनगरे वासस्तेषां जन्मशतैरपि ॥१२२॥
आत्ममन्त्रं गुरोर्मन्त्रं मन्त्रं चाजपसंज्ञकम्।
पितुर्मन्त्रं तथा मातुर्मन्त्रसिद्धिप्रदम् शुभम् ॥ ११ ॥

(रुद्रयामल प० २, ३)

अर्थात्—ब्रह्माण्ड की जो लीला है वह पृथ्वी की है वैसे ही इस भौतिक जगत् की सम्पूर्ण लीला स्त्री (माया) की है। गृहस्थ के समस्त सुख दुःख गृहिणी पर ही अवलम्बित है। अतः पुरुष को उसे दीक्षा देने का अधिकार नहीं है। स्त्री को अपनी माता एवं सास आदि से ही दीक्षा लेने का अधिकार है। ऊपर बताया जा चुका है कि स्त्री पूज्या है इस कारण पति उसे बस्त्र अलङ्कार आदि से प्रसन्न चित्त रक्खे। पुरुष मात्र उनको पूज्यभाव से देखते हुए सदैव मानसत्कार करे। इसी में सृष्टि का कल्याण निहित है।

सम्पूर्ण विश्व के चारों तरफ मेखलायमान समुद्रों की परिधि है। महाद्वीपों को सामुद्रिक तूफानों से रोकने के लिये पर्वतों की अमेय श्रृङ्खला प्राकृतिक रूप से रक्षापंक्ति (आड़) का काम करती है। इन भूधरराज पर्वतों के कारण ही पृथ्वी दृढ़ एवं अविचल बनी हुई है जिनसे समुद्रों का धारण बराबर होता रहता है। संक्षेप में, पृथ्वी की दृढ़ स्थिरता के ये भूधर प्रतीक हैं—सर्वदेव जागरूक ये अडिग प्रहरी पृथ्वी को सभी प्रकार की आपत्तियों से बचाते रहते हैं। इनका वर्णन प्रायः सभी पुराणों में उपलब्ध है। यहां अग्निपुराण का विशेष स्थल पाठकों के अवलोकनार्थ प्रस्तुत किया जाता है। यथा :—

अग्निरुवाच

जम्बू प्लक्षाह्वयौ द्वीपौ शाल्मलिश्चापरोमहान्।
कुशः क्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करश्चेति सप्तमः ॥
एते द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्तसप्तभिरावृता।
जम्बूद्वीपो द्वीपमध्ये तन्मध्ये मेरुरुच्छ्रितः।
चतुरशीतिसाहस्रो भूयिष्ठः षोडशाद्रिराट् ॥

सम्मतियाँ और उद्गार !

भारताः केतुमालाश्च भद्राश्वाः कुरवस्तथा ।
पत्राणि लोकपद्मस्य मर्यादाशैलबाह्यतः ॥
जठरो देवकूटश्च मर्यादा पर्वतावुभौ ।
तौ दक्षिणोत्तरायामौ आनीलनिषधायतौ ॥
गन्धमादनकैलासौ पूर्वपश्चायतावुभौ ।
अशीतियोजनायामौ अर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ॥
निषधः पारियात्रश्च मर्यादापर्वतावुभौ ।
मेरोः पश्चिमदिग्भागे यथा पूर्वौ तथास्थितौ ॥
त्रिशृङ्गो जारुधिश्चैव उत्तरौ वर्षपर्वतौ ।
पूर्वपश्चायतावेतौ अर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ॥
इत्येतेमुनिवर्योक्ता मर्यादापर्वतास्तव ।
जठराद्याःस्थिता मेरो स्तेषां द्वौ द्वौ चतुर्दिशम् ॥

पृथ्वी की रक्षा से सम्बन्धित पर्वत-श्रेणी द्वारा बँधी हुई परिधि का हमें सदा ही ध्यान रखना चाहिये। हमारे प्राचीन पूर्वजों को अपने महान् रक्षक इन पर्वतों का किसी भी प्रकार ह्रास न होने देना इष्ट था। महर्षि लोग इनको बराबर जानते थे इसलिये सात्विक प्राकृतिक जीवन बिताकर ही उन्होंने अपना ऊँचा आदर्श जनता-जनार्दन के सामने रक्खा। भविष्य का परिणाम जानते हुए प्रकृति की रक्षा करने में ही वे तत्पर रहे। प्रकृति की रक्षा करने से ही प्राणिमात्र का कल्याण होगा। उन्होंने विज्ञान की तथाकथित ऊपर से जनमानस को चकाचौंध बना देनेवाली भौतिकवादी उन्नति से सदा के लिये हाथ हटाकर नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्त परब्रह्म की प्राप्ति के लिये अनवरत चेष्टा की। इसीके लिये वे मरे जिये और मानवमात्र के लिये अनुपम आदर्श रख उसकी संस्कृति सभ्यता को कल्पकल्पान्तों तक स्थायी बनाये रखने की हमें सीख दे गये। आज सारे पर्वतों को खोद कर पृथ्वी के अन्तस्तल में निहित खनिज सम्पत्ति को प्राप्त कर हम कृतकृत्य हो रहे हैं। परन्तु क्या हमने ठंडे दिमाग से इसके अनिवार्य आनेवाले कुपरिणामों को कभी सोचा है? क्या इन सब का परिणाम प्रकृति के विरुद्ध अपने जीवन को बना राष्ट्र जाति और सम्पूर्ण विश्व में विनाश का बीज बोना नहीं है?

आज इन मर्यादा गिरियों की उपयोगिता को भूलकर हम अपने मनचले उच्छृङ्खलमार्ग पर चलते रहे तो एक न एक दिन प्रकृति पर किये गये इन अत्याचारों का दण्ड हमें भुगतना होगा।

सृष्टि-रक्षा के व्यापक पहलू को लेते हुए चक्रवर्ती राजा लोग ही सदा से अपना योग प्राणिमात्र के पालनार्थ दे[illegible] हैं। आज भी इन्हीं के अधीन सृष्टि की रक्षा है। जब राज्यशासन के एकमात्र अधिकारी चक्रवर्ती ही प्राकृतिक[illegible]

हट प्रकृति के विरुद्ध अपनी प्रजा का जीवन बनावेंगे तो प्रलयङ्कारी दृश्य अत्यन्त सन्निकट समझिये। अतः पृथ्वी के शासकों से मेरी सानुरोध विनती है कि समुद्र के बीच में स्थित पृथ्वी के चारों ओर फैली पर्वत श्रृङ्खला जो समुद्री तूफानों से पृथ्वी को बचाती हैं और वर्षा आदि से भूभाग को उर्वर बनाती हैं, इसके बढ़ते हुए खनन को सदाके लिये बन्द करा मानवता का उपकार साधन करें। हमें मानवजाति को सदा दी जानेवाली इस पर्वत श्रेणी की अमूल्य निधि का कतई दुरुपयोग नहीं होनें देना चाहिये।

नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि। तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ॥

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नर सूनवः।
अयनं तस्यताः प्रोक्तास्तेन नारायणः स्मृतः ॥

(मनु०)

विष्णु का प्रधान स्थान जल है। इसके कारण ही उन्हें क्षीरशायी कहा जाता है। तात्पर्य यह है कि—"अप एव ससर्जादौ" सृष्टि का आदि कारण जल ही है। यह सम्पूर्ण विष्णु (जल) की लीला है। हम जीवन के आधारभूत तत्व अन्न को जल की करामात से ही खेती द्वारा प्राप्त करते हैं। इसी जल के समुद्र, नदी, नद वर्षादि स्थूल रूप हैं सूक्ष्मरूप वाय्वादि में उपलब्ध है और अति सूक्ष्म रूप सर्वत्र (नक्षत्रों में) है।

हमें समुद्र से चतुर्दश रत्नों की प्राप्ति का आख्यान यह बताता है कि समुद्र सर्वस्व दाता है। जितनी भी औषधि आदि प्राणिमात्र का हितसाधन करनेवाली वस्तु यें हैं वे समुद्र से वृष्टि रूप में हमें उपलब्ध होती हैं। यथाः—

ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ततो रात्र्यजायत। ततः समुद्रोऽअर्णवः समुद्रादर्णवादधि सम्वत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्यमिषतो वशी। सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वकल्पयत् ॥

ये अनन्तानन्त गुण राशि के आगार जलधि अपनी अनुपम लीलाओं से प्रशंसित हुए हैं।

नमो वः सर्वसिन्धूनामाधारेभ्यः सनातनाः।
जन्तूनां प्राणदेभ्यश्च समुद्रेभ्यो नमोनमः ॥

क्षीरोदकाज्य दधि माधुरलावणेक्षु।
सारामृतेन भुवनत्रयजीवसङ्घान् ॥
आनन्दयन्ति वसुभिश्च यतो भवन्त।
स्तस्मान्ममाप्यघ विघातमलं दिशन्तु ॥

सम्मतियाँ और उद्गार !

यस्मात्समस्तभुवनेषु भवन्त एव ।
तीर्थामरासुरसुवद्धमणिप्रदानम् ॥
पापक्षयामृतविलेपनभूषणाय ।
लोकस्य बिभ्रति तदस्तु ममापि लक्ष्मीः ॥

(मत्स्य पु० अ० २८६)

सम्पूर्ण जीवों को प्राण देनेवाले (जल रूप में) समुद्रों को नमस्कार है। क्षीर, उदक, आज्य, दधि, मधुर, लवण एवं इक्षु के रूप में सम्पूर्ण संसार को सार रूप में अमृत देनेवाले आप हमें पापों से छुड़ावें। "यथा नाम तथा गुणा" के अनुसार ये सब गुण जल में व्याप्त है। अतः ये सातों नाम समुद्र के जल में षट्रस रूप में है।

"या आपो नदीसमुद्रादिगताः सन्ति यश्च ज्योतिरादित्यादिकमस्ति योऽपि ।
रसो मधुराम्लादिः षड्विधोऽस्ति यद्यमृतं देवैः पीतमस्ति" ॥ कृष्ण यजु० तैत्ति० अनु० ३५

"रस मात्रं ससर्ज ह" सम्भवन्ति ततोऽम्भसि । रसा धाराणि तानि च ।

(विष्णु पु० द्वि० अ० ४० श्लोक)

सृष्टि में यावन्मात्र पदार्थ षट्रस के अन्तर्गत है। ये षट्रस समुद्र के जल से प्राप्त हुए हैं। समुद्र के सात नामों में एक नाम जल का और छै नाम छहो रसों के हैं।

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के नियन्ता सूर्य की उत्पत्ति समुद्र से ही कही गई है। "अप्सु योनिर्वा अश्वः (सूर्यः)" कृष्ण यजु० तैत्तरीय्यक प्रपा० १० अनु० १

सूर्य की रश्मियों की गर्मी से समुद्र के जल में से भाप उठी फिर उसका जलकणों के साथ संयोग होने से बादल बने और संसार को वृष्टि द्वारा मधुर जल प्राप्त हुआ। देखिये—

मधुव्वाता ऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ।

निघण्टु में जल के १०१ नाम बताये गये हैं उनके अन्तर्गत निम्नलिखित कतिपय नाम पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किये जाते हैं :—

उदकम्, घृतम्, मधु, क्षीरम्, रसः, पयः, हविः, सर्पिः अन्नम् आदि ।

जल से ही अन्न पैदा हुआ अतः जलवाचक नाम भी अन्न के ही बोधक हैं।

गोधूमः स्निग्धो वातघ्नः पित्तदाहकृत् गुरुः श्लेष्मप्रदो बल्यो रुचिरो वीर्य वर्द्धनः ।

अन्न फलादि में जो स्निग्धता है वह जलान्तर्वर्ति आज्य रस से है। अन्न में मधुराधि रस जल के कारण है। [illegible] रस रूप दधि (जल) से श्लेष्मा की वृद्धि जल में उपलब्ध लवण रस से अन्न में रुचि की अभिवृद्धि होती है। अन्न फलादि सब पदार्थों में षट्रस का कारण समुद्र ही है। अन्न में उष्णता गर्मी का कारण सूर्य है। अन्न में [illegible]

बल का कारण वायु है एवं वीर्यवर्द्धकत्व गुण पृथिवी से है। पृथिवी में निहित लौहादि सप्तधातुओं का सार अन्न को मिलता है।

इतना सब होते हुए भी हमें यह न भूलना चाहिये कि पञ्चतत्त्वों से ही सम्पूर्ण सृष्टि बनी है। पृथ्वी में पाँचों तत्त्व व्याप्त हैं। यथा—

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्म्माता स पिता स पुत्रः। विश्वेदेवा अदितिः पञ्चजना अदिति अतिमदितिर्ज्जनित्वम्।

अदितिः एव देवमाता, द्यौः अदितिः अदितिरेव चान्तरिक्षम्। अदितिः एव माता सर्वभूत निर्मात्री, स एव च पिता पालकः, स एव हि पुत्रः। सैव हि परितुष्टा सती स्तोतारं पुरुणः बहुनः पापात् त्रायते। अथवा सैव निपृणाति। सर्वभूतानां यन्निवर्त्तन्यम् दातव्य मित्यर्थः।

और भी "गावस्त्रैलोक्यमातरः" (अथर्ववेद)।

प्राणिमात्र की जननी पृथिवी है और सम्पूर्ण प्राणियों का पोषण भी उसीसे है। शक्तिस्वरूपिणी वह है ही। इन सब के होते हुए भी अर्थात् सब का कारण भूत होते हुए भी पृथिवी प्रभु के विराट् स्वरूप (ज्ञान स्वरूप) के अधीन है। इसे मानव जब तक साधुवृत्ति से भोगते रहे तब तक प्राणीमात्र की शक्तिवृद्धि निरन्तर होती रही। सृष्टि की सुख समृद्धि और ज्ञान चरम सीमा तक पहुंच गये। अब जब इस पृथ्वी को असाधुवृत्ति से भोग जा रहा है उसका परिणाम दुर्भिक्ष, मरण, भय आदि शक्ति के ह्रास के रूप में हमारे सामने हैं।

"न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति" कहा जाता है कि स्त्री शक्ति रूपा है एवं शक्ति का स्रोत है। उसे कभी भी स्वतन्त्र नहीं रहने देना चाहिये। उनकी रक्षा सदा ही करना इष्ट है। अतः परमपुरुष के प्रतिनिधि रूप मानव को इसे सर्वथा रक्षित कर सर्वशस्य सम्पन्न एवं प्राणीमात्र की रक्षा द्वारा अपना कर्तव्य पालन करना चाहिये। मनुष्यमात्र के एकमात्र प्रतिनिधि सम्राट् चक्रवर्ती हैं इसलिये सृष्टि की रक्षा का दायित्व उन्हीं पर है।

अतः पर्वतों के साथ-साथ हमें समुद्रों के जल को भी आटम बम्ब, हाइड्रोजन बम आदि असंख्य प्रकार के परीक्षणों से विकृत नहीं करना चाहिये अन्यथा हमें अमर्यादित प्रकृति से सामना कर विनाश के लिये तैयार होना पड़ेगा।

अतः समय की पुकार है कि अपने पूर्वजों के बताये हुए सुगम राजमार्ग प्रकृतिमय जीवन से हम अपना और अपने आधीन प्राणिमात्र का जीवन निरापद्, स्वस्थ और प्रकृतिस्थ बनावें। जब तक प्रकृतिप्रदत्त जीवन हमारा ध्येय था, मानवमें पूर्ण शक्ति का विकास था। विज्ञजनों में ज्ञान विज्ञान का उत्कर्ष इतना था कि वे अपने भविष्य को बता देते थे साथ ही अति ...ण चमत्कार वे अपने आत्मबल से कर लेते थे। आज सब उसको भूल बैठे हैं। हमारा जो लक्ष्य अदिति पृथ्वी माता ...ग्रहण करना था उससे ही सुख ऐश्वर्य, निरापद जीवन आनन्दोपभोग हो सकता था आज हम उसे भूल गये हैं और ...मात्र निदान यही है।

सम्मतियाँ और उद्गार !

अदिति (पृथ्वी) और अन्य आकाशादि तत्वों द्वारा चेतनको पैदा किये जाने पर भी इनका उपयोग ज्ञानस्वरूप मनुष्य के अधीन है और उसके ज्ञान-विज्ञान का चमत्कार प्रत्यक्ष प्रस्तुत करते हैं। अतः उसका कर्तव्य है कि प्रकृति की रक्षा करे और उसके अहर्निश चलते रहनेवाले कर्म में व्याघात न आने दें।

हमारे पूर्वजों ने जो आदर्श रक्खा उसका भी कारण यही था कि सात्विक जीवन से आध्यात्मिक तत्त्व का सम्यक् साक्षात्कार किया जा सकता है। सभी विजयों में प्राकृतिक जीवन द्वारा आत्मतत्त्व की विजय प्राप्ति ही श्रेष्ठ है, क्योंकि इससे शक्ति का कहीं भी ह्रास नहीं होता और प्रतिदिन मनुष्य सत्य की शोध में आगे बढ़ सभी प्राणियों की सुरक्षा समृद्धि कर सकता है। हमें अब अपनी सब विशेषताओं के साथ प्रकृतिप्रदत्त अधिकारों की उपेक्षा न कर अपना नव-निर्माण करने को प्रयत्नशील होना होगा। अपनी ह्रास की ओर उन्मुख जीवन की गति को विकास वृद्धि की ओर मोड़ देना होगा इसी से हमें शाश्वत, शान्ति, आनन्द, क्षेम सब कुछ उपलब्ध हो सकेगा। संक्षेप में यही मनुष्य का मनुष्यत्व है।

उपर्युक्त प्रकरण में सृष्टि की प्राणि परम्परा में सारभूत अन्न के सेवन करनेवाले ज्ञानशाली मानव की कितनी अधिक प्रशंसा बतलाई गई है यह पाठक महानुभाव भलीभांति जान गये होंगे। इस गतिशील संसार में अपने लिये प्राकृतिक नियमों का पालन करने से ही मनुष्य ईश्वरीय विभूतियां प्राप्त कर सकता है। ये नियम कोई एक देशीय नहीं हैं न ही इनका प्रभाव किसी कालविशेष, देशविशेष या अवस्थाविशेष पर पड़ता है ये तो सदा सर्वदा एक रस और साधन को उत्तरोत्तर उन्नति की ओर अग्रसर करते हैं और मनुष्य को परमात्मतत्व तक पहुँचाते हैं। परन्तु आज हम जैसी विपरीत परिस्थितियों में पड़े हैं वह दयनीय है। हम अपने को घृणा, रागद्वेष, क्रोध और लोभ की भट्टी में बराबर जलाते रहते हैं उससे छुटकारे के लिये छटपटाते हैं तड़पते हैं और न मालूम कितने आकाश-पाताल के कुलाबे एक करते हैं परन्तु शान्ति का मार्ग असम्भव है। इससे सम्बन्धित महत्वाकांक्षा सम्पन्न व्यक्तियों का जीवन निराशामय होने लगता है और वे चिन्ता पिशाचिनी के पास में पड़ बड़ी-बड़ी आशायें लेकर खिलनेवाले कुसुम असमय में कुम्हला जाते हैं जीवन का आनन्द नहीं ले सकते। आइये अब इसी का कारण खोजा जाय—वह है अनेकानेक आविष्कार एवं कृत्रिमता को अपनाना। अपने पूर्वज बुद्धिमान् ऋषियों ने—महापुरुषोंने जिस दृष्टि से इन ईश्वरीय प्राकृतिक नियमों के आधारभूत सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया था उसका हम गलत अर्थ लगाने लग गये। कृत्रिमता को अपनाने से हमारे में संकुचित मनोवृत्ति घर कर गई है जिससे उन महापुरुषों के भावों को हमलोग स्वार्थी दृष्टिकोण से देखते आ रहे हैं उनके असली पारमार्थिक सिद्धान्तों को बिलकुल नहीं समझ पाते। वेदों और धर्मशास्त्रों के शब्दों के अर्थ में कोई भी विभेद नहीं है। अर्थ जो भी लें परन्तु वह होना चाहिये प्राणिमात्र के हित में ओत-प्रोत। अर्थ के विषय में हमारा बराबर दृष्टिकोण समष्टिरूप में होना चाहिये। अर्थ दो तरह के होते हैं एक व्यावहारिक तथा दूसरा वेदान्तिक अर्थात् आध्यात्मिक। दोनों ही सत्य है परन्तु यदि कहीं भी प्राणिमात्र के हित का खयाल न रखकर अर्थ ले लिया गया तो वही अनिष्ट कर हो जायगा।

यहाँ मेरा निवेदन है कि शब्दों को देखकर संकुचित अर्थ की सृष्टि के लिये हमें अपने भावों में विकार नहीं [illegible] चाहिये। शास्त्रों के वचनों में श्रद्धापूर्वक मनन; निदिध्यासन और चिन्तन से सब कुछ प्रकृति के अनुकूल [illegible]

सम्मतियां और उद्गार !

प्राणियों की कल्याण कामना को दृष्टि में रखकर ही हमें उनका तात्पर्य समझना चाहिये। लोग परिस्थितियों के अनुसार स्वार्थ-साधन के लिये उनके मनमाने अर्थ लगाकर ज्ञान का ह्रास और मर्यादा भङ्ग करते रहे हैं। अतः हमारे में संकीर्ण विचार-धारा उत्पन्न हो गई। कृत्रिम विचारों का आवरण हटाकर हमें ईश्वरीय नियमों का महत्व समझना चाहिये और उसी के अनुसार कार्य करना चाहिये।

मनुष्य प्राकृतिक नियमों के सेवन करने से ऊपर उठता है। ज्ञान, पुरुषार्थ एवं सत्यनिष्ठा द्वारा हमें ऊपर उठना चाहिये। अपने भावुक, कोमल हृदयवाले, ज्ञानी महापुरुषों के विचारों को समझकर प्रेरणा लेनी चाहिये और अपना जीवन भी वैसाही बनाना चाहिये। धर्म और मर्यादा पर जो पर्दा इस समय पड़ा हुआ है उसे उठाने की आवश्यकता है, इसीसे हमारी सब-प्रकार की बुराईयां दूर होंगी और हम अपने निर्दिष्ट उद्देश्य को प्राप्त कर सकेंगे। अब हमारा कर्तव्य है कि हम अपने महापुरुषों के विचारों का अनुशीलन करें, उनकी सच्ची बातों को समझें। उनके द्वारा बताये हुए वेदादि धर्म के प्रतिपादक शास्त्रोंका अर्थ प्राकृतिक, व्याकरण से पूर्ण संगत प्रसंगानुसार, प्राणीमात्र के हित के परिणाम को समझ कर अपनी भूलोंका सुधार करते हुए समझे, तभी हमारी मर्यादा सुदृढ़ होगी और हमें सुख की प्राप्ति होगी।

वेदञ्चैवाभ्यसेन्नित्यं शुचौ देशे समाहितः।
धर्मशास्त्रं तथा पाठ्यं ब्राह्मणैः शुद्धमानसैः ॥ २२ ॥
स्मृतिहीनाय विप्राय श्रुतिहीने तथैव च।
दानं भोजनमन्यञ्च दत्तं कुलविनाशनम् ॥ २३ ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन धर्मशास्त्रं पठेद्द्विजः।
श्रुतिस्मृती च विप्राणां चक्षुषी देवनिर्मिते ॥ २४ ॥

(लघुहारीत अ० प्र० १)

समाहित मन से शुद्ध देश में वेद का अभ्यास करे। उच्च भावों से धर्मशास्त्रों का पठन-पाठन करे। स्मृति एवं श्रुति (वेद) हीन जो मनुष्य हैं उनका भोजन नित्यकर्म व्यवहार आदि अपने तथा कुल के लिये हानिकारक है। अतः यत्नपूर्वक धर्मशास्त्र को पढ़े। महर्षियों द्वारा रचित वेद स्मृति एवं पुराणादि धर्मशास्त्र मानव मात्र के नेत्र (प्रकाश) हैं।

मानव मात्र से मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि संस्कृत भाषा पढ़ें। महर्षि प्रणीत श्रुति स्मृति आदि का उच्च आदर्श रखते हुए प्राणीहित की भावना से मनन कर सच्चे ज्ञान की प्राप्ति करें। इसी में अपना कल्याण है।

संसार के प्रत्येक प्राणी तिनके से लेकर समुद्र तक जड़ चेतन, छोटे बड़े सब, सत्य और धर्म की मर्यादा में बंधे हुए हैं। ग्रहणी बात का हमारे वेदादि आर्ष ग्रन्थों ने बार-बार उपदेश दिया है। संसार के प्रत्येक धर्म, प्रत्येक राष्ट्र सत्य की महत्ता को मात्र निदाकरते हैं। सत्य ही परमात्मा का साक्षात् स्वरूप है। सत्य की महिमा से सूर्य, चन्द्रादि तत्व अपने कार्यसम्पादन करने यहां तक कि सृष्टि के समस्त व्यवहार सत्य पर ही स्थित है।

सम्मतियाँ और उद्गार !

"यद्भूतहितमत्यन्तं वचः सत्यस्यलक्षणम् ॥"

(अग्निपुराण ३७१ अ०)

सत्येन वायुरावाति सत्येनाऽऽदित्यो रोचते, दिवि सत्यं वाचः प्रतिष्ठा सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितं तस्मात्सत्यं परमं वदन्ति ।—इति । कृष्ण यजु० तैत्ति० परि० अ० ७६

योऽयं वायुरन्तरिक्षे वाति सोऽयं पूर्वजन्मनि मनुष्यः सन्सत्यवादित्वं परिपाल्य तेन सत्येन वायुदेवतात्वं प्राप्येदानीं लोकानुग्रहार्थमन्तरिक्षे वाति । तथैवाऽऽदित्योऽपि पूर्वजन्मानुष्ठितेन (सत्येन) दिवि रोचते द्युलोके प्रकाशते । एतत्सत्यं वाचो वागिन्द्रियस्य प्रतिष्ठा स्थिरं स्थानमनृतं तु वाचोक्तमपि परैर्निशाङ्क्यत इति न वाचः प्रतिष्ठा । तस्य स्वर्ग (था सति) लोकेऽस्मिन्सत्ये भाषणे [सर्वं] प्रामाणिकव्यवहारजातं प्रतिष्ठितं तस्मात्कारणात्सत्यमेव परमं साधनमित्येवं केचिदनुष्ठातारोवदन्ति ।

अर्थातः—जो यह वायु अन्तरिक्ष में बहती है वह पूर्व जन्म में मनुष्य रूप में सत्यत्व के परिपालन से वायु देवत्व को प्राप्त कर इस समय लोक के अनुग्रह के लिये आकाश में बहती है । उसी प्रकार आदित्य भी पूर्वजन्मानुष्ठित कर्म से द्युलोक में प्रकाशित हो रहा है । वाणी की प्रतिष्ठा भी सत्य से ही है न कि अनृत से । स्वर्गलोक में भी इस सत्य भाषण के प्रामाणिक व्यवहार की ही प्रतिष्ठा है अतः सत्य ही परम साधन है ।

धनं फलति दानेन जीवितं जीवरक्षणात् ।
रूपमैश्वर्यमारोग्यमहिंसाफलमश्नुते ॥ ७१ ॥ बृ० स्मृ०

कारुण्यं प्राणिषु प्रायः कर्तव्यं पुण्यहेतवे ।
अहिंसापरमोधर्मस्तस्मादात्मवदाचरेत् ॥१४८॥
कारुण्यात्सर्वभूतेषु आत्मवंतः सतः सतः ।
उक्तकर्मसु सर्वत्र तदामांस निषधनम् ॥ १५० ॥

(प्रजापति स्मृ०)

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ।
अहिंसया च भूतात्मा मनः सत्येन शुध्यति ॥

प्राणिहिंसापरोयस्तु धन हिंसा परस्तथा ।
महादुःखमवाप्नोति धनहिंसापरस्तयोः ॥
जीवितं धर्म्मकामौ च धनेयस्मात् प्रतिष्ठितौ ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन धन हिंसांविवर्जयेत् ॥
(विष्णु स्मृ० ५२)

गृहे गुरावरण्ये वा निवसन्नात्मवान् द्विजः ।
नावेदविहितां हिंसामापद्यपि समाचरेत् ॥
योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया ।
स जीवंश्च मृतश्चैव न क्वचित् सुखमेधते ॥
यो बन्धनवधक्लेशान् प्राणिनां न चिकीर्षति ।
स सर्वस्य हितप्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते ॥
यद्ध्यायति यत्कुरुते रतिं न वध्नाति यत्र च ।
तदवाप्नोति यत्नेन यो हिनस्ति न किञ्चन ॥
ना कृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित् ।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ॥
समुत्पत्तिञ्च मांसस्य वधबन्धौ च देहिनाम् ।
प्रसमीक्ष्य निवर्त्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात् ॥
अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी ।
संस्कर्त्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः ॥ विष्णु० स्मृ० ५१

भूतापीड़ा ह्यहिंसास्यादहिंसा धर्म्म उत्तमः ।
यथा गजपदेऽन्यानि पदानि पथगामिनाम् ॥ ४ ॥
एवं सर्वमहिंसायां धर्मार्थमभिधीयते ।
उद्व गजननं हिंसा सन्तापकरणन्तथा ॥ ५ ॥

सम्मतियाँ और उद्‌गार ।

रुक्कृतिः शोनित कृतिः पैशुन्यकरणन्तथा ।
हितस्याति निषेधश्च मर्मोद्घाटनमेव च ॥ ६ ॥
सुखापह्नुतिः संरोधो वधो दशविधा च सा ।
सर्ववेदान्त तत्वार्थ सर्वयज्ञमयः प्रभुः ।
यज्ञो वै विष्णुरित्यत्र प्रत्यक्षं श्रुयतेश्रुतिः ॥७॥
इज्यते यत् समुद्दिश्य परमोधर्म उच्यते ।
भगवन्तमनुद्दिश्य हूयते यत्र कुत्र वै ॥८॥
तत्र हिंसाफलं पापं भवेदत्रविगर्हितम् ।
तस्मात् सर्वस्य यज्ञस्य भोक्तारं पुरुषं हरिम् ॥९॥

वृद्ध हारित अ० ५

भावार्थः—दान करने से धन फलता है, जीव-रक्षा से आयु की वृद्धि होती है एवं अहिंसा से रूप, ऐश्वर्य तथा आरोग्यता की प्राप्त होती है। हमेशा ही पुण्य-प्राप्ति के हेतु प्राणिमात्र पर दया करनी चाहिये क्योंकि अहिंसा ही परम धर्म है अतः आत्मवत् आचरण करे। जल से शरीर शुद्ध होते हैं, ज्ञान से बुद्धि शुद्ध होती है, अहिंसा से प्राणियों की आत्मा शुद्ध होती है एवं मन सत्य से शुद्ध होता है। प्राणिहिंसा एवं धन हिंसा करनेवालों में धन (बल) हिंसा करनेवाला महा दुःख को प्राप्त होता है। जीवन में धर्मकामादि के लिये धन (बल) की पूर्ण आवश्यकता है अतः सम्पूर्ण यत्न से धन हिंसा का त्याग ही इष्ट है। जो मनुष्य आत्मसुख की इच्छा से अहिंसक प्राणियों का वध करता है वह इहलोक तथा परलोक में कहीं भी सुख को प्राप्त नहीं होता है। जो प्राणियों के वध बन्धन एवं क्लेश की इच्छा नहीं करता है तथा सब के हित की भावना रखता है वह अत्यन्त सुख को प्राप्त होता है। प्राणि हिंसा को प्रोत्साहन देनेवाले, तलवार से मारनेवाले, ताड़ना देनेवाले, आमिष को खरीदने बेचनेवाले, संस्कार करनेवाले, हरण करनेवाले एवं भक्षण करनेवाले को घातक (दोषी) बताया है। किसी को न सताना ही अहिंसा है। जैसे पथगामियों के पद हाथी के पैर में समा जाते हैं वैसे ही सम्पूर्ण धर्मार्थादि अहिंसा के अन्तर्गत हो जाते हैं। अशान्ति, पर पीड़ा, भय देना, रक्त निकालना, चुगली, हित का निषेध, छिद्र उघाड़ना, सुख में बाधा डालना, बलात्कार से रोंधना और वध ये दश तरह की हिंसा है। अतः अहिंसा ही सबसे उत्तम धर्म है। वेदों में यज्ञ को ही विष्णु कहा गया है। विष्णु सृष्टि का पालन करनेवाला है। अतः विष्णु को उद्देश्य कर जो यज्ञ (कर्म) किये जाते हैं वहाँ हिंसा करने को पाप एवं निन्दनीय बताया है कारण सम्पूर्ण यज्ञों का भोक्ता भगवान् हरि है इसलिये हिंसा सर्वत्र वर्जनीय है।

धर्म और सत्य में कोई भी भेद नहीं है इनका चोली-दामनका-सा सम्बन्ध है। धर्म के द्वारा ही

होता है। धर्म के द्वारा ही इहलौकिक एवं पारलौकिक कल्याण सम्भव है। ऋषि प्रतिपादित धर्म ही हमारे लिये कल्याणकर है। हम अपने धर्म पर गर्व करते हैं और धर्म के विषय में भगवान् श्रीकृष्ण ने हमें यहां तक उपदेश दिया है कि "स्वधर्मे निधनं श्रेयः पर धर्मो भयावहः" अतः हमारा कर्तव्य स्पष्ट है। बिना धर्म (आत्मज्ञान) के कल्याण सम्भव नहीं।

सत्य धर्म की मर्यादा से ही सृष्टि के प्रत्येक कार्य सम्पन्न होते हैं। जैसे, कुल की मर्यादा, जाति की मर्यादा, देश की मर्यादा, अवस्था की मर्यादा, राज्य की मर्यादा, कार्य की मर्यादा, उद्योग की मर्यादा, कृषि उत्पादन की मर्यादा, धर्म की मर्यादा आदि किसी भी मर्यादा का उल्लङ्घन न करे। मर्यादा के अन्तर्गत ही सब कुछ बंधा हुआ है। ईश्वरीय प्राकृतिक नियम भी मर्यादा पर ही आश्रित हैं।

श्री भगवानुवाच

अन्नेन धार्यते सर्वं जगदेतच्चराचरम्।
अन्नात्प्रभवति प्राणः प्रत्यक्षोनास्ति संशयः ॥२६॥
अन्नं च पीडयित्वा तु देशकाले च भक्तितः।
दातव्यं विप्रुवेचान्नमात्मनो हितमिच्छता ॥३०॥
अन्नदः प्राणदो लोके प्राणदः सर्वदो भवेत् ॥३७॥
तस्मादन्नं प्रयत्नेन दातव्यं भूतिमिच्छता।
अन्नं ह्यमृतमित्याहुरन्नं पूजितकंस्मृतम् ॥३८॥
अन्न प्रणाशे सोदन्ति शरीरे सर्वधातवः।
बलं बलवतो न स्यादन्नं तस्य च देहिनः ॥३६॥
तस्मादन्नं प्रदातव्यं श्रद्धयाऽश्रद्धयापि वा।
आदित्योऽपि रसं सर्वमादत्ते सगभस्तिभिः ॥४०॥
वायुस्तस्मात्समाधाय रसमन्ने निषिचयेत्।
तत्तु मेघगतं भूमौ शक्रोवर्षति पाण्डव ॥४१॥
तस्यां शस्यानि रोहन्ति यैर्जीवन्त्यखिलाः प्रजाः।
मांस मेदोऽस्थिमज्जानां सम्भवस्त्वन्न एवहि ॥४२॥
एवमन्नंञ्च सूर्यश्च पवनः शक्र एव च।
एक एव स्मृतोराशिर्यतो भूतानि जज्ञिरे ॥४३॥

सम्मतियाँ और उद्‌गार ।

वरं ददाति भूतानां तेजश्च भरतर्षभ ! ॥
अन्न दानेन सम्प्रीता देवाश्च पितृभिः सह ॥४४॥
तस्मात्तेजो यशोवीर्यं बलायुर्वृद्धयः सदा ।
श्रद्धयान्न प्रदातव्यमिति पौराणिकी श्रुतिः ॥४५॥

वृद्ध गौतम अ० १२ ।

सम्पूर्ण चराचर जगत की धारणा अन्न में ही है क्योंकि अन्न से ही प्राणियों की उत्पत्ति है यह प्रत्यक्ष सिद्ध है । देशकालानुसार भक्तिपूर्वक आत्मकल्याण की इच्छा से भूखे-प्यासे के लिये अन्न का दान करे । लोक में अन्न ही प्राणों को देनेवाला है प्राण (जीवन) देने से सम्पूर्ण देनेवाला हो गया । अतः यत्नपूर्वक कल्याण की इच्छा रखनेवाले मनुष्य को अन्न का दान करना चाहिये । अन्न ही अमृत है । मानव को अन्न न मिलने पर शरीर की समस्त धातुयें नष्ट हो जाती है, कारण शरीरधारियों में अन्न का ही बल है । सूर्य भगवान् अपनी रश्मियों से रस को ग्रहण कर खींचता है तथा उसी रस को वायु द्वारा अन्न में निषेचन करता है । वही रस (जल) मेघगत होकर इन्द्र द्वारा पृथ्वी पर वृष्टि रूप में आता है जिससे अन्न की उत्पत्ति होती है एवं समग्र प्रजा को जीवन मिलता है । अन्न से ही मांस, मेदा, अस्थि तथा मज्जा का निर्माण सम्भव है । अतः अन्न, सूर्य, पवन तथा इन्द्र का स्मरण कल्याणकारक है कारण ये अन्न के निर्माणकर्ता है । हे भरतर्षभ ! अन्न दान से ये सब देवता पितरेश्वरों सहित वरदान देते हैं । इनके प्रसन्न होनेपर तेज, यश, वीर्य, बल एवं आयु की वृद्धि होती है । इस प्रकार श्रद्धापूर्वक अन्न दान करनो चाहिये यह पौराणिकी श्रुति है ।

सुवासिनीं कुमारीश्च भोजयित्वा नरानपि ।
बालवृद्धांततः शेषं स्वयं भुञ्जीत वा गृही ॥ ६४ ॥
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि मौनी च मितभाषकः ।
अन्नमादौ नमस्कृत्य प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ६५ ॥
एवं प्राणाहुतिं कुर्यान्मन्त्रेण च पृथक् पृथक् ।
ततः स्वादुकरान्नश्च भुञ्जीत सुसमाहितः ॥ ६६ ॥
आचम्य देवतामिष्टां संस्मरन्नुदरं स्पृशेत् ।
इतिहासपुराणाभ्यां कञ्चिचत् कालं नयेद्बुधः ॥६७ ॥
ततः सन्ध्यामुपासीत बहिर्गत्वा विधानतः ।
कृत होमस्तु भुञ्जीत रात्रौ चातिथिभोजनम् ॥६८ ॥

सायं प्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिचोदितम् ।
नान्तरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्र समोविधिः ॥६६ ॥

लघुहारित अ० ४

गृहस्थ प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में उठकर स्नान शौचादि से निवृत्त हो भगवान् भास्कर को अर्घ्य दे तदन्तर समागत अतिथि का यथोचित आदर सत्कार करे कारण अतिथि को शास्त्रों में विष्णु की छाया कहा है। एतदर्थ गृहस्थ को अतिथि की पूजा समाहित चित्त से करना शास्त्र विहित बताया है। तदन्तर पाक सिद्ध होनेपर सर्वप्रथम बलिवैश्वदेव कर्म कर सुवासिनी (भूआ बहिन आदि) को एवं कुमारी को भोजन करावे। पश्चात् बाल-वृद्धों को तथा घर में आये हुए मनुष्यों को भोजन करावे। सब के भोजन कर चुकने पर स्वयं गृहस्थ भोजन करे। भोजन करते वक्त पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख हो मौन रखता हुआ या मित-भाषी हुआ प्रसन्नचित्त से सर्वप्रथम अन्न को नमस्कार करना चाहिये। तत्पश्चात् पृथक-पृथक मन्त्रों से प्राणाहुति करे फिर सुस्वादु अन्न को मन लगाकर खावे। सुपाच्यता के लिये बीच-बीच में थोड़ा-थोड़ा जल पीवे। यथाः—

अत्यम्बुपानान्न विपच्यतेऽन्नम् ।
अनम्बुपानाच्च स एवदोषः ॥
तस्मान्नरो वन्हि विवर्धनाय ।
मुहुर्मुहुर्वारि पिवेद्भूरि ॥

भोजनोत्तर आचमन कर देवता का ध्यान करता हुआ उदर को छुवे अर्थात् पेटपर शनै-शनै हाथ फेरे। बाद में ज्ञानी पुरुष कुछ समय तक इतिहास पुराण पढ़े। तदनन्तर सायं सन्ध्या की उपासना करे एवं हवन कर अतिथि को भोजन करा खुद भोजन करे। मानवमात्र के लिये श्रुति प्रतिपादित सायंकाल तथा प्रातःकाल दो वक्त ही भोजन करना सगत बताया है। दो समय के अलावा भोजन नहीं करे इस विधि कों अग्निहोत्र के समान कहा है। भोजन बनाने में किसी भी प्रकार का आलस्य न करें।

मानव को सांसारिक यात्रा चलाने के लिये सर्वप्रथम नितान्त आवश्यकता है शारीरिक भोजन एवं आत्मा के भोजन की। हमें सर्वप्रथम शारीरिक भोजन पर ध्यान देना चाहिये कारण मानव सम्पूर्ण कर्मों का सम्पादन शरीर द्वारा हो करता है। अतः शरीर को स्वस्थ रखना परमावश्यक है। जैसे भगवान् कृष्ण ने भी गीता में कहा है—"शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्" तात्पर्य यह है कि शरीर की रक्षा करना मानव का अन्यतम धर्म है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिये प्राकृतिक ... सुपाच्य भोजन की जरूरत है। भोजन ऐसा होना चाहिये जो शरीर में जाकर रग-रग में फैल जाये। साबित अन्न(सिट्टा ... निदानें) हम खायेंगे तो वह मलरूप होकर वैसे का वैसा ही वापिस आ जायेगा। उससे हमें कोई शक्ति प्राप्त नहीं हो ... रहा। इसलिये अन्न फल मेवा आदि जो कि प्रकृति निर्दिष्ट मानव का भोजन है। चक्की में पीसकर तथा सिद्ध (पका)

कर खाना चाहिये। कभी भी बासी भोजन नहीं करना चाहिये। हमारे लिये वही भोजन हितकर होगा जो खाते वक्त ही शरीर में पानी होकर प्रवेश करे अर्थात् अन्न का मुख में ही थूक लार से मिश्रित हो पानी हो जाय जिससे वह शरीर के अन्दर जाकर नस--नस में घुल जाय। इस तरह भोजन करने से हमें आरोग्यता की प्राप्ति होगी तथा पुरुषार्थ करने की शक्ति बढ़ेगी। मानवको भोजनका ज्ञान होना परमावश्यकीय है। भोजनकी अज्ञानतासे ही नाना तरहकी बीमारी, कष्ट अल्पायु एवं अकाल मृत्यु आदि का नग्न ताण्डव आज हमारी आँखों के सामने हो रहा है जो निःसन्देह इसी का परिणाम है। भक्ष्याभक्ष्य बेमेल तथा अति भोजन देश, काल, अवस्था, मौसम आदि का ज्ञान महर्षियों द्वारा रचित धर्मशास्त्रों से जान लेने में ही हमारा कल्याण है। शारीरिक स्वस्थता के साथ-साथ परम आवश्यकता है आत्माके के भोजन की। अब विचारणीय विषय है कि आत्मा का भोजन क्या है ? जैसे शरीर को भोजन की जरूरत है वैसे ही आत्मा को नितान्त आवश्यकता है ईश्वर चिन्तन की। इस पाञ्चभौतिक शरीर को उन्नत एवं मुक्त होने के लिये आनन्दनिधान पूर्ण पुरुष की प्राप्ति करना ही मानव का प्रधान ध्येय है वह बिना भगवत् स्मरण के सम्भव नहीं।

भावेन लभ्यते सर्वं भावाधीनमिदं जगत्।
भावं बिना महाकाल ! न सिद्धिर्जायते क्वचित्॥

भावेन लभ्यते सर्वं भावेन देवदर्शनम्।
भावेन परमं ज्ञानं तस्माद्भावावलम्बनम्॥

भावात् परतरं नास्ति येनानुग्रहवान् भवेत्।
भावादनुग्रहप्राप्तिरनुग्रहान्महासुखी॥

सुखात् पुण्य प्रभावः स्यात् पुण्यादच्युतदर्शनम्।
सदा शुचिर्दिव्यभावमाचरेत् सुसमाहितः॥

देवताया प्रियार्थश्च सर्वकर्म कुलेश्वर !।
साधवो मौनशीलाश्च सदासाधनतत्पराः॥

दिव्यवीरस्वभावेन पश्यन्ति मत्पदाम्बुजम्।
भावद्वयं ब्राह्मणानां महासत्फलकांक्षिणाम्॥

अथवा चावधूतानां भावद्वयमुदाहृतम्।
भावद्वयप्रभावेण महायोगी भवेन्नरः॥

सम्मतियां और उद्गार !

मूर्खोऽपि वाक्पतिश्रेष्ठौ भावद्वयप्रसादतः ।
भावात् परतरं नास्ति त्रैलोक्यसिद्धिमिच्छताम् ॥
भावं हि परमं ज्ञानं ब्रह्मज्ञानमनुत्तमम् ।
भावेन ज्ञानमुत्पन्नं ज्ञानान्मोक्षमवाप्नुयात् ॥
कोटिकन्याप्रदानेन वाराणस्यां शताटनैः ।
किं कुरुक्षेत्रगमने यदि भावो न लभ्यते ? ॥
गयायां श्राद्धदानेन नानापीठाटनेनकिम् ? ।
नाना होमक्रियाभिः किं ? यदि भावो न लभ्यते ॥

उच्च भावनाओं के द्वारा मानव परमात्मतत्व को प्राप्त कर सकता है यहां तक कि सृष्टि की सम्पूर्ण वस्तुएं उसे अनायास ही दिव्यभावनाओं द्वारा प्राप्त हो जाती है । "भावाधीनमिदं जगत्" हे महाकाल बिना भावना के कोई भी सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती । भावना के आश्रय से ही देव दर्शन एवं परम ज्ञान प्राप्त होता है । दिव्य भावनाओं से ही करुणामय प्रभु का अनुग्रह होता है तथा अनुग्रह से महासुख की प्राप्ति एवं सुख से पुण्योत्पत्ति तदनन्तर अच्युत की प्राप्ति होती है । सदैव दिव्यभावनाओं से साधुतापूर्वक देवप्रियार्थ सम्पूर्ण कर्मों का आचरण करे । निरन्तर साधन में रत मौन एवं शीलादि से युक्त दिव्य वीर स्वभाव से ही भगवान् के दर्शन होते हैं । दिव्य एवं वीर भावों से ही महायोगी होता है । मूर्ख अज्ञानी भी यदि पवित्र भावना रखता है तो बृहस्पति के समान बुद्धिमान हो जाता है । उत्कृष्ट भावना से ही ब्रह्मज्ञान एवं मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है । कोटि कन्यादान, शत बार काशीगमन, कुरुक्षेत्रगमन, गया श्राद्ध एवं नाना देव-मन्दिर पीठादि में भ्रमण बिना पवित्र भावना के मनुष्य को कोई भी फल नहीं देते ।

नारायणोऽच्युतः श्रीमान् वात्सल्य गुणसागरः ।
नाथः सुशीलः सुलभः सर्वज्ञः शक्तिमान्परः ॥१०॥
आपद्बन्धुः सदा मित्रं परिपूर्ण मनोरथः ।
दयासुधाब्धिः सविता वीर्यवान् द्यु तिमानविभुः ॥११॥
प्रपद्ये चरणौ तस्य शरणं श्रेयसे मम ।
श्रीमते विष्णवे नित्यं सर्वावस्थासु सर्वदा ॥१२॥
इन्दीवरदलश्यामं कोटि सूर्योग्निवर्चसम् ॥१६॥
...र्भु जं सुन्दराङ्गं सर्वाभरण भूषितम् ।
...हो ...स्थं देवेशं पुण्डरीक निभेक्षणम् ॥२०॥

रक्तारविन्द सदृश दिव्यहस्त पदाञ्चितम् ।
माणिक्य मुकुटोपेतं नीलकुन्तल शीर्षजम् ॥२१॥
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं वनमाला विराजितम् ।
दिव्यचन्दन लिप्ताङ्गं दिव्य पुष्पावतंसकम् ॥२२॥
हार कुण्डल केयूर नूपुरादि विराजितम् ।
कटकै रङ्गुलीयैश्च पीतवस्त्रेण शोभितम् ॥२३॥
शङ्ख पद्म गदा चक्र पाणिनं पुरुषोत्तमम् ।
वामाङ्के चिन्तयेत्तस्य देवीं कमललोचनाम् ॥२४॥

तरुणीं सुकुमाराङ्गीं सर्वलक्षण शोभिताम्।
दुकूलवस्त्र संयुक्तां सर्वाभरण भूषिताम् ॥२५॥
तप्तकाञ्चनसङ्काशां पीनोन्नतपयोधराम् ॥
रत्नकुण्डलसंयुक्तां नीलकुन्तलशीर्षजाम् ॥२६॥
दिव्यचन्दन लिप्ताङ्गीं दिव्यपुष्पावतंसकाम्।
श्री भूमि सहितं देवमासीनं परमासने।
तत्र चाधार शक्त्याद्यैर्धर्माद्यैः सूरिभिर्धृतैः ॥२८॥
दिव्यरत्नमये पीठे पङ्कजेऽष्टदले शुभे।
तत्कर्णिकोपरितले तप्तकाञ्चनसन्निभे ॥१२७॥
देवीभ्यां सहितं तस्मिन्नासीनं पङ्कजासने।
चिन्तयेद्दक्षिणे पार्श्वे लक्ष्मीं काञ्चनसन्निभाम् ।१३०।
पद्महस्तविशालाक्षीं दुकूलवसनां शुभाम्।
वामे दूर्वादलश्यामां विचित्राम्बरभूषिताम् ॥१३१॥
चिन्तयेद्धरणीं देवीं नीलोत्पल धरां शुभाम्।
माहिष्यष्टदलाग्रेषु चिन्तयेद्धृत चामराम् ॥१३२॥
षडक्षरं दाशरथेस्तारक ब्रह्म कथ्यते।
सवश्वर्यप्रदं नृणां सर्वकामफलप्रदम् ॥
एतमेव परं मन्त्रं ब्रह्मरुद्रादिदेवताः ॥
ऋषयश्च महात्मानो मुक्त्वाजप्त्वा भवाम्बुधौ।
एतन्मन्त्रमगस्त्यस्तु जप्त्वा रुद्रत्वमाप्नुयात् ॥
ब्रह्मत्वं काश्यपो जप्त्वा कौशिकस्त्वमरेशताम्।
कार्तिकेयो मनुत्वञ्च इन्द्रार्कौ गिरिनारदौ ॥
बालखिल्यादिमुनयो देवतात्वं प्रपेदिरे।
एष वै सर्वलोकानामैश्वर्यस्यैव कारणम् ॥
इममेव जपेन्मन्त्रं रुद्रस्त्रिपुरघातकः।
ब्रह्महत्यादि निर्मुक्तः पूज्यमानोऽभवत्सुरैः ॥
अद्यापि काश्यां रुद्रस्तु सर्वेषांत्यक्तजीविनाम्।
दिशत्येतन्महामन्त्रं तारकब्रह्मनामकम् ॥
तस्य श्रवणमात्रेण सर्व एव दिवङ्गताः।

श्रीरामाय नमो ह्येष तारक ब्रह्मनामकः ॥
नाम्नां विष्णोः सहस्राणां तुल्य एव महामनुः।
अनन्तो भगवन्मन्त्रो नानेव तु समाः कृताः ॥
श्रियोरमण सामर्थ्यात्सौकर्यगुणगौरवात्।
श्रीराम इतिनामेदं तस्य विष्णोः प्रकीर्तितम् ॥
रमया नित्ययुक्तत्वाद्राम इत्यभिधीयते।
रकारमैश्वर्यवीजं मकारस्तेन संयुतः ॥
अवधारणयोगेन रामेत्यस्मान्मनोः स्मृतः।
शक्तिः श्रीरुच्यते राजन्! सर्वाभीष्टफलप्रदा ॥
श्रियो मनोरमो योऽसौ स राम इति विश्रुतः।
ध्यायेत्कमलपत्राक्षं जानकीसहितं हरिम् ॥
नैव ध्यानं प्रकुर्वीत विग्रहे सति शार्ङ्गिणः।
चन्दनागुरुकर्पूरवासिते रत्नमण्डपे ॥
वितानैः पुष्पमालाद्यैर्धूपैर्दिव्यैर्विराजिते।
तन्मध्ये कल्पवृक्षस्यच्छायायां परमासने ॥
नानारत्नमये दिव्ये सौवर्ण सुमनोहरे।
तस्मिन् बालार्क सङ्काशे पङ्कजेऽष्टदलेशुभे ॥
वीरासने समासीनं वामाङ्काश्रितसीतया।
सुस्निग्धशाद्वलश्यामं कोटिवैश्वानरप्रभम् ॥
युवानं पद्मपत्राक्षं कनकाम्बरशोभितम्।
सिंहस्कन्धानुरूपांसं कम्बुग्रीवंमहाहनुम् ॥
पीनवृत्तायतस्निग्ध महाबाहुचतुष्टयम्।
विशालवक्षसं रक्तहस्तपादतलं शुभम् ॥
बन्धूकस्मितमुक्ताभदन्तौष्ठद्वयशोभितम्।
पूर्णचन्द्राननंस्निग्धं भ्रूयुगं घननासिकम् ॥
रम्भोरुद्वयमानील कुन्तलं स्मितचन्दनम्।
तरुणादित्य सङ्काश कुण्डलाभ्यां विराजितम्
हारकेयूरकटकरङ्गुलीयैश्च भूषणैः।
श्रीवत्सकौस्तुभाभ्याञ्च वैजयन्त्या वि[illegible]

हरिचन्दन लिप्ताङ्गं कस्तूरीतिलकाश्चितम्।
शङ्खचक्रधनुर्बाणान् बिभ्राणं दोर्भिरायतैः॥
वामाङ्के सुस्थितां देवीं तप्तकाञ्चनसन्निभाम्।
पद्माक्षीं पद्मवदनां नीलकुन्तलशीर्षजाम्॥
आरूढ यौवनां नित्यां पीनोन्नतपयोधराम्।
दुकूलवस्त्रसम्वीतां भूषणैरुपशोभिताम्॥
भज तां कामदां पद्महस्तां सीतां विचिन्तयेत्।
लक्ष्मणं पश्चिमे भागे धृतच्छत्रं महाबलम्॥
पार्श्व भरतशत्रुघ्नौ वालव्यजनपाणिनौ।
अग्रतस्तु हनूमन्तं बद्धाञ्जलिपुटं तथा॥
सुग्रीवं जाम्बवन्तश्च सुषेणञ्च विभीषणम्।
नीलं नलञ्चाङ्गदञ्च ऋषभं दिक्षुपूजयेत्॥
वशिष्ठो वामदेवश्च जाबालिरथ कश्यपः।
मार्कण्डेयश्च मौद्गल्यस्तथा पर्वत नारदौ॥
द्वितीयावरणं प्रोक्तं रामस्य परमात्मनः।
धृष्टिर्जयतो विजयः सुराष्ट्रो राष्ट्रवर्धनः॥
अलर्को धर्मपालश्च सुमन्तुश्चाष्टमन्त्रिणः।
तृतीयावरणं तस्य तत्र चन्द्रादिदेवताः।
कुमुदाद्याश्च चण्डाद्या विमाने चान्तरीयकाः॥
एवं ध्यात्वा जगन्नाथं पूजयेन्मनसाऽपि वा।
षट्सहस्रं जपेन्मन्त्रं जुहुयाच्च सहस्रकम्॥
जुहुयाद्वारुणा वापि शतं पुष्पाञ्जलिन्यसेत्।
एवं संपूज्य देवेशं यावज्जीवमतन्द्रितः॥
तद्देहपतने तस्य सारूप्यं परमे पदे।
विद्या स्त्री राज्यवित्ताद्यं यं यं कामयते हृदि॥
प्रहण... तमेव पूजयेद्रामं तन्मन्त्रं वै जपेत् सदा।
...त्र निदानें यथा नाशमाप्नोति इह लोके परत्र च॥
...यहां ; यदा मन्त्रं तारकब्रह्मनामकम्।
...पेद्धिमाप्नोति अन्यथा नाशमाप्नुयात्॥

यावज्जीवं जपेद्यस्तु भक्त्या राममनुस्मरन्।
सदारपुत्रः सगण प्रेत्य स्वर्गे महीयते॥
सहस्रन्तु जपेन्मन्त्रं सर्वापद्भ्यो विमुच्यते॥
सूर्योदये यथा नाशमुपतिध्वान्तमाशु वै।
तथैव रामस्मरणाद्विनाशं यान्त्युपद्रवाः॥
एवं श्रीराममन्त्रस्य विधानं ज्ञायते नृप।
वि...नं कृष्णमन्त्रस्य वक्ष्यामि श्रुणु पार्थिव!
श्रीकृष्णाय नमो ह्येष मन्त्रः सर्वार्थ साधकः॥
कृष्णेति मङ्गलं नाम यस्य वाचि प्रवर्त्तते।
भस्मीभवन्ति राजेन्द्र! महापातक कोटयः॥
सकृत् कृष्णेति यो ब्रूयाद्भक्त्या वापि च मानवः।
पापकोटिविनिर्मुक्तो विष्णुलोकमवाप्नुयात्॥
सकृद् (कृषि) भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः।
उभयोः सङ्गतिर्यत्र तद्ब्रह्म ह्यभिधीयते॥
विचित्र शुभपर्यङ्के दिव्यकल्पतरोरधः।
सुगन्धपुष्पसङ्कीर्णे सर्वतः सुविचित्रिते॥
तस्मिन्देव्या समासीनं रुक्मिण्या रुक्मवर्णया।
नीलोत्पलाभं कन्दर्पलावण्यं पद्मलोचनम्॥
अलंकृताभिः सत्यादिमहिषीभिः समावृतम्।
कालिन्दी सत्यभामा च मित्रविन्दा च सत्यवित्॥
सुनन्दा च सुशीला च जाम्बवती सुलक्षणा।
एता महिष्यः संप्रोक्ताः कृष्णस्य परमात्मनः॥
ताभिश्च राजकन्यानां सहस्रैः परिसेवितम्।
तारकावृत्तराजेव शोभितं निधिभिर्वृतम्॥
एवं धात्वा हरिं नित्यमर्चयित्वा जपेन्मनुम्।
शालग्रामे च तुलसीवने वा स्थण्डिले हृदि॥
स्मृत्वा जपेत् त्रिसन्ध्यासु षट् सहस्रं मनुं द्विजः।
विष्णुतुल्यवपुः श्रीमान् विष्णुलोकमवाप्नुयात्॥
सर्वसिद्धिमवाप्नोति इहलोके परत्र च।

द्वारकायां सुधर्मायां रत्नसिंहासने स्थितम् ॥
शङ्खादिनिधिभी राजकुलैरपि सुसेवितम् ।
हारादिभूषणैर्युक्तं शङ्खाद्यायुधधारिणम् ॥
ध्यात्वा संपूज्य होमं च जपश्चायुत संख्यया ।
अब्जबिल्वदलैर्वाऽपि होमं मधु विमिश्रितम् ॥
शाश्वतीं श्रियमाप्नोति कुबेर सदृशो भवेत् ।
रूपलावण्यकामी तु रासमण्डलमध्यगम् ॥
ध्यायन्स्त्रिमासमयुतं जप्त्वा लावण्यवान् भवेत् ।
एवं कृष्णमनोरस्य माहात्म्यं परिकीर्तितम् ॥
अनन्तान् भवन्मन्त्रान् वक्तुं शक्यं न ते मया ।
वाराहं नारसिंहञ्च वामनं तुरगाननम् ॥
क्रमेणैव तु वक्ष्यामि यथावच्छृणु पार्थिव ! ।
हुङ्कारं प्रथमं बीजमाद्यं वाराहमुच्यते ॥
पश्चात्तु धरणीबीजं लक्ष्मीबीजं ततः परम् ।
त्रीन् बीजानादितः कृत्वा पश्चान्मंत्रप्रयोजनम् ॥
ओं नमोः भगवते पश्चाद्वराहरूपाय भूर्भुवः ।
स्वः पतयेति भूपतित्वं मे देहीति तदाप्यायस्वेति ॥
अङ्गुलीषु यथाऽङ्गेषु बीजेनाऽऽद्येन वै क्रमात् ।
यथा सन्न्यासवद् भूत्वा पश्चाद्ध्यानं समाचरेत् ॥
बृहत्तनुं बृहद्ग्रीवं बृहद्दंष्ट्रं सुशोभनम् ।
समस्तवेदवेदाङ्गसाङ्गोपाङ्गयुतं हरिम् ॥
रजताद्रिसमप्रख्यं शतबाहुं शतेक्षणम् ।
उद्धृत्य दंष्ट्रया भूमिं समालिङ्ग्य भुजैर्मुदा ॥
ब्रह्मादित्रिदशैः सर्वैः सनकाद्यैर्मुनीश्वरैः ।
स्तूयमानं समन्ताच्च गीयमानञ्च किन्नरैः ॥
एवं ध्यात्वाहरिं नित्यं प्रातरष्टोत्तरं शतम् ।
जप्त्वा लभेच भूपत्वं ततो विष्णुपुरं व्रजेत् ॥
नमो यज्ञवराहाय इत्यष्टाक्षरको मनुः ।
उक्तबीजत्रयं पूर्वं कृत्वा मन्त्रं जपेद्बुधः ॥

मूलमन्त्रमिदं प्राहुर्वाराहं मुनिपुङ्गवाः ।
एतमेव परं मन्त्रं जप्त्वा भूमिपतिर्भवेत् ॥
नित्यमष्टसहस्रन्तु जपेद्विष्णुं विचिन्तयन् ।
कमलैर्बिल्वपत्रैर्वा जुहुयाच्च दशांशकम् ॥
एवं सम्वत्सरं जप्त्वा सार्वभौमो भवेद्ध्रुवम् ।
राज्यं कृत्वा च धर्मेण पश्चाद्विष्णुपदं व्रजेत् ॥
विधानं नारसिंहस्य मनोर्वक्ष्यामि सुव्रत ।
उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् ॥
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्योर्मृत्युं नमाम्यहम् ।
ओं नमो भगवते वासुदेवाय नमो नरसिंहाय ज्वालामालिने दीर्घदंष्ट्राय अग्निनेत्राय सर्वरक्षोघ्नाय सर्वभूतविनाशाय दह दह पच पच रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा । इति ज्वालामालिपातालनृसिंहाय नमः ।
बीजेनैवन्यासः । आं ह्रीं क्ष्रौं क्रौं हुं फट् ।
ओंकार पूर्वो नृसिंहो द्विर्जयाद्युपरि स्थितः ।
त्रिः सप्त कृत्वो जप्तुः स्यान्महाभयनिवारणम् ॥
माणिक्याद्रिसमप्रभं निजरुचा सन्त्रस्तरक्षोगणम् ।
जानुन्यस्तकराम्बुजं त्रिनयनं रत्नोल्लसद्भूषणम् ॥
बाहुभ्यां धृतशङ्खचक्रमनिशं दंष्ट्रोल्लसद्वक्त्राननम् ।
ज्वालाजिह्वमुदग्रकेशनिचयं वन्दे नृसिंहं प्रभुम् ॥
उद्यत्कोटिरविप्रभं नरहरिं कोटिक्षपेशोज्ज्वलम् ।
दंष्ट्राभिः सुमुखोज्ज्वलं नखमुखैर्दीर्घैरनेकैर्भुजैः ॥
निर्भिन्नासुरनायकन्तु शशभृत्सूर्याग्निनेत्रत्रयम् ।
विद्युद्जिह्वसटाकलापभयदं वह्निं वहन्तं भजे ॥
कोपादालोलजिह्वं विवृतनिजमुखं सोमसूर्याग्निने[illegible]
पादादानाभिरक्तं प्रसभमुपरि संभिन्नदैत्येन्[illegible]
चक्रं शङ्खं सपाशांकुशमुसलगदा शार्ङ्गब[illegible]
भीमं तीक्ष्णाग्रदंष्ट्रं मणिमयविविधाक[illegible]

एवं देवीं नृसिंहस्य वामाङ्कोपरिसंस्थिताम् ।
ध्यात्वा जपेज्जपं नित्यं पूजयेच्च यथाविधि ॥
॥ क्ष्रौं ह्रीं श्रीं श्रीं नृसिंहाय नमः ॥
इमं लक्ष्मीनृसिंहस्य जपेत् सर्वार्थदं मनुम् ।
सूर्य कोटि प्रतीकाशं पूर्णचन्द्रनिभाननम् ॥
मेखलाजिनदण्डादिधारणं बटुरूपिणम् ।
कलधौतमयं पात्रं दधानं वसुपूजितम् ॥
पीयूषकलशं वामे दधानं द्विभुजं हरिम् ।
सनकाद्यैः स्तूयमानं सर्वदेवै रुपासितम् ॥
एवं ध्यात्वा जपेन्नित्यं स्वासने च समाहितः ।
कुबेर सदृशः श्रीमान् भवेत्सद्यो न संशयः ॥
ओं नमो विष्णवेपतये महाबलाय स्वाहा ॥
॥ इति वामनमन्त्रः ॥
ह्रीं श्रीं श्रीवामनाय नमः इति मूलमन्त्रः
हुं ऐं हयग्रीवाय नमः ।
॥ ओं नमो भगवते महासुदर्शनाय हुं फट् ॥
कल्पान्तार्कप्रकाशं त्रिभुवनमखिलं तेजसापूरयन्तम् ।
रक्ताक्षंपिङ्गकेशं रिपुकुलभयदं भीमदंष्ट्राजहासम् ॥
शङ्खं चक्रं गदाब्जं पृथुतरमुशलं चापपाशाङ्कुशाढ्यम् ।
बिभ्राणन्दोर्भिराद्यं मनसि मुररिपुं भावयेच्चक्रसंज्ञम् ॥
(वृद्धहारीत ३)
वायवी शक्ति श्रीराकिणी-राधा ।
श्रीपतिः श्रीमहाकाली किरणी वायुरूपिणी ।
वाय्वाहारी वायुनिष्ठा वायुबीजो यशस्विनी ॥
हैरानन्दफलोपेतैः सत्वसम्भोगकारिणी ।
महाविष्णुर्महामाया चन्द्रताराखरूपिणी ॥
मुक्तिदा भोगदा भोग्या शम्भोराद्यामहेश्वरी ।
करुणाबलदा घोरा कालसंहार हंसिनी ॥
यहा [illegible]या यस्य कल्पनार्थे च वीरहा ।
[illegible]गतां लोकान् तस्याधीनमिदं जगत् ॥

नाकाले म्रियतेकश्चिद् यदि जानाति वायवीम् ।
वायवी परमाशक्तिरिति तन्त्रार्थनिर्णयः ॥
सूक्ष्मागमनरूपेण सूक्ष्मसिद्धिं ददाति या ।
नराणां भजनार्थाय अष्टैश्वर्य्यजयाय च ॥
कथितं ब्रह्मणा पूर्वं सिद्धाय तनुजाय च ।
लोभमोह भयक्रोध मदमात्सर्य्यकाय च ॥
तत् क्रमात् परमा प्रीति-वर्द्धनं भूतले प्रभो ? ।
आज्ञाचक्रस्य मध्ये तु वायवी परितिष्ठति ॥
चन्द्रसूर्याग्निरूपा सा धर्माधर्म विवर्जिता ।
मनो रूपं शरीरं हि व्याप्य तिष्ठति खेचरी ॥
आज्ञाद्विदलमध्ये तु चतुर्दशमुदाहृतम् ।
वेददले वेदवर्णं वादिशान्तं महाप्रभम् ॥
तदाभिरूपसम्पन्नं ऋग्वेदादिसमन्वितम् ।
शृणु तत्वेन माहात्म्यंक्रमशः क्रमशः प्रभो ॥
वाञ्छातिरिक्तदातारं कृष्णं योगेश्वरं प्रभुम् ।
राधिकाराकिणी देवी वायवी शक्तिलालितम् ॥
महाबलं महावीरं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
पीताम्बरं सारभूतं यौवनामोदनाभितम् ॥
श्रुतिकन्यासमाक्रान्ता श्रीविद्या राधिका प्रभुम् ।
दैत्यदानवहन्तारं शरीरस्थ सुखावहम् ॥
भावदं भक्तिनिलयं दयासागरचन्द्रकम् ।
गरुडासनमारूढं मनोरूपं जगन्मयम् ॥
राकिणी राधिकाव्याप्तं त्रिलोकरक्षणं परम् ।
परमाकाशनिलयं त्रैगुण्यं वारिरूपिणम् ॥
एतत् षड्दलवर्णानां भावानां हि करोति यः ।
तस्य साक्षाद्भवेद्विष्णु राकिणी सहितः प्रभो ? ॥
सदा दुःखहन्ता सदा दुःखहन्त्री ।
प्रभातार्कवर्णा प्रभातारुण श्रीः ॥
महापर्वतप्रेमभारोपपन्नी ।

महादेवपत्नीशभावोपपन्ना ॥
कीर्त्तिस्था मम कीर्तिचक्रनिलयं, लाक्षारुणावल्लरी ।
लीलाचक्रनिवासिनी ममसदा जीवंमुदा पातु सा ॥
सा राकिणीप्रकृति तेजसि रक्तवर्णा ।
मायामयी सुरकला किल पातुमेऽङ्गम् ॥
कल्पद्रुमाश्रयलता फलरूपिणी या ।
स्वर्गस्थिता निखिलसिद्धगणैर्नमस्या ॥
सा मे कुलेश्वररसं हरिहस्तपूज्या ।
क्षान्तिः सदा मम धनं परिपातुराधा ॥
क्षेमङ्करी वरकरी सुकरि हरिस्था ।
या सौकरी भयकरी त्रिपुरामहेशी ॥
वायुस्थिता लयमयी स्थितिमार्गसङ्गा ।
भङ्गप्रिया सुवसना परिपातु राधा ॥
श्रीकृष्णचित्तहरणे कुशलारसज्ञा ।
रासेश्वरी शुभकरी जगदम्बिका सा ॥
चैतन्यस्थलवासिनी हृदिगता ।
गोविन्द सुप्रिस्थला ॥
चैतन्यं सततं प्रपातु तरुणीं धात्री परक्षेत्रगा ।
मध्यापिङ्गललोचनाम्बुजमुखी चैतन्यकर्मप्रिया ॥
मां सर्वत्र शुभङ्करी सुनियतं शक्तिः क्षमाकर्त्तृका ।
एकान्तभक्तिः श्रीनाथे जोवात्मपरमात्मनि ॥
विवेकी विचरेदेको ज्ञातो ब्रह्मशरीरधृक् ।
वायवीशक्तिमाश्रित्य सदाध्यानपरायणः ॥
वशीज्ञानरसाच्छन्नो ज्ञातो ब्रह्मशरीरधृक् ।
शक्तिः कुण्डलिनी देवी जगन्मातास्वरूपिणी ॥
प्राप्यते यैः सदा भक्त्या मुक्तेरेवागमं फलम् ।
आद्यपत्रे प्रतिष्ठन्ति वर्णजालसमाश्रिताः ॥
वायवी शक्तयः कान्ता ब्रह्माण्डमण्डलस्थिताः ।
राशिनक्षत्रतिथिभिः सर्वदाजननायिकाः ॥
भ्रान्ति ब्रह्मसिद्धये ता अवश्यमेवमाश्रयेत् ।
असंख्यानाखण्डं खगगणमनोरञ्जनपरं ॥
यदिध्यायेदेको विविधविभवं याति सहसा ।
महेन्द्रं स्थानाङ्कं कमलसुखदं कृष्णनिलयं ॥
प्रियं सिद्धिक्षेत्रं परसुखमयं भावयति यः ।
नकारं चन्द्रस्थं विधुशतकरं विन्दुनिलयं ॥
विशालाक्षीराधामधुरवचनालाप कलितम् ।
महादेवी तुष्टं सकलकरणं शापहरणं ।
विभाव्यश्रीनाथं भजति स नरोध्याननिपुणः ॥
ततोध्येया महाविद्याराकिणीशक्तिरुत्तमा ।
श्रीविष्णुसहिता नित्यं योगैर्भोगविवर्जितैः ॥
अकलङ्की कुलानन्दो मन्दहास्यावृतो महान् ।
स योगी परमं राज्यं प्राप्नोति नात्र संशयः ॥

कुमारी पूजा

एकवर्षा भवेत् सन्ध्या द्विवर्षा च सरस्वती ।
त्रिवर्षा च त्रिधा मूर्त्तिश्चतुर्वर्षा च कालिका ॥६३
सूर्य्यगा पञ्चवर्षा च षड्वर्षा चैव रोहिणी ।
सप्तभिर्मालिनी साक्षादष्टवर्षा च कुब्जिका ॥६४
नवभिः कालसन्दर्भा दशभिश्चापराजिता ।
एकादशे च रुद्राणी द्वादशेऽब्दे तु भैरवी ॥६५
त्रयोदशे महालक्ष्मीर्द्विसप्तपीठनायिका ।
क्षेत्रज्ञा पञ्चदशभिः षोडशे चाम्बिका मता ॥६६
एवंक्रमेण संपूज्य यावत् पुष्पं न विद्यते ।
प्रतिपदादिपूर्णान्तं वृद्धिभेदेन पूजयेत् ॥६७
महापर्वसु सर्वेषु विशेषाच्च पवित्रके ।
महानवम्यां देवेश ! कुमारिश्च प्रपूजयेत् ॥६८
तस्मात् षोड़शपर्य्यन्तं युवतीति प्रचक्षते ।
तत्र भावप्रकाशः स्यात् स भावः परमोम[illegible]
रक्षितव्यं प्रयत्नेन रक्षितास्ताः प्रकाश[illegible]

महापूजादिकं कृत्वावस्त्रालङ्कारभोजनैः ।
पूजयेन्मन्दभाग्योऽपि लभते जयमङ्गलम् ॥१००

रुद्र यामल० षष्ठः पटलः

अथ पूजां प्रवक्ष्यामि कुमार्य्याश्चातिदुर्लभाम् ।
व्याधिवर्गविहीनानां शीघ्रं सिध्यति भूतले ॥१
तत्प्रकारं महादेव ! वीराणामधिपाधिप ! ।
पूजास्थानं महापीठं देवालयमथापि वा ॥२
सुन्दरीं परमानन्द-वर्द्धिनीं जयदायिनीम् ।
कलारात्रिस्वरूपां श्री गौरीं रक्ताङ्गरागिणीम् ॥३
कन्यां देवकुलोद्भूतां राक्षसीं वा नरोत्तमाम् ।
नटीकन्यां हीनकन्यां तथाकापालिकन्यकाम् ॥४
रजकस्यापि कन्याञ्च तथा नापितकन्यकाम् ।
गोपालकन्यकाञ्चैव ब्राह्मणस्यापि कन्यकाम् ॥५
शूद्रकन्यां वैश्यकन्यां वणिक्कन्यामथापि वा ।
चण्डालकन्यकां वाऽपि यत्र कुत्राश्रमेस्थिताम् ॥६
सुहृद्वर्गस्य कन्याञ्च समानीय प्रयत्नतः ।
पूजयेत् परमानन्दैरात्मध्यानपरायणः ॥७

रुद्रयामल ७ पटल

सरस्वतीस्वरूपा च पूज्यते सर्वनायकः ।
शिवभक्तिर्विष्णुभक्तैस्तथान्यदेवपूजितैः ॥१५
सर्वलोकैः पूजिता सा चावश्यं पूज्यते बुधैः ।
भक्तः कुमार्य्याः सततं पूजया लभतेश्रियम् ॥१६
पूजया धनमाप्नोति पूजया लभते महीम् ।
पूजया लभते लक्ष्मीं सरस्वतीं महौजसाम् ।
महाविद्या प्रसीदन्ति सर्वैदेवान संशयः ॥१७
कुमारी पूजनं कृत्वा त्रैलोक्यं वशमानयेत् ।
...री योगिनी साक्षात् कुमारी पर देवता ।
...नागाश्च ये ये दुष्टग्रहाअपि ॥
...र्वा डाकिनीयक्षराक्षसाः ।

ये चान्ये देवताः सर्वाभूर्भुवः स्वश्च भैरवाः ॥
पृथिव्यादीनि सर्वाणि ब्रह्माण्डं सचराचरम् ।
ब्रह्माविष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ॥
ते तुष्टा सर्वतुष्टाश्च यस्तु कन्यां प्रपूजयेत् ।
निधियुक्तां कुमारिन्तु पूजयेश्चैव भैरव ॥

रुद्रयामल-पटल २६

ओं मृत्युञ्जयरुद्रादि—लाकिन्यादिसरस्वती ।
मृत्युजेता महारौद्री महारुद्र सरस्वती ॥
महारौद्रो मृत्युहरो महामणिविभूषिता ।
महादेवो महावक्त्रो महामाया महेश्वरी ॥
मारवीजो महामानी हरवीजादिसंस्थिता ।
अनन्तवायुकीशानो लाकिनी काकिनी द्विधा ॥१०७
कोटिध्वजो वृद्धगर्भाश्चामुण्डा रणचण्डिका ।
उमेशो रत्नमालेशो विकुम्भगणपूजिता ॥
निकुम्भपूजितः कृष्णो विष्णुपत्नी सुधात्मिका ।
कम्पकालहरो कुम्भो महाकुम्भास्त्रधारिणी ॥
ब्रह्मास्त्रधारकः क्षिप्रो वनमालाविभूषिता ।
एकाक्षरो द्व्यक्षरश्च षोडशाक्षरसम्भवा ॥
अतिगम्भीरवातात्थो महागम्भीरवाग्यगा ।
त्रिदिवेशस्त्रिदशात्मा तृतीया त्राणकारिणी ॥
कियत्कालबलानन्दो विहङ्गमार्गनाशना ।
गीर्वाणो बाणहस्तश्च बाणहस्ता विधुच्छला ॥
विन्दुधर्मोज्वलोदारो वियज्ज्वलनकारिणी ।
विरामन्यासपूज्यश्च नवदेशी प्रधानिका ॥
कामाख्यो निरहङ्कार कामाकामविकाशजा ।
सुलभो दुर्लभा क्षीणा सूक्ष्मातिसूक्ष्मरूपिणी ॥
श्रीवीजजापको क्रूरो विमोहगुणनाशिनी ।
अकुलोऽतिकुलोद्भासो विभुरूपा सरस्वती ॥

सम्मतियाँ और उद्गार !

यदा मनोयोगविशुद्धये मनो,
लयं सदा यः कुरुतेऽप्यहर्निशम्।
स एव मुक्तो गुणसिन्धुरूपकः,
कालग्निरूपेण तदैव दैवतम् ॥४८
महामना योगविकारवर्जितः,
कामक्रियाकाण्डविशुद्धिमण्डितः।
हितो गतीनां मतिमान्निरस्तो,
महालयस्थोऽमर एवभक्तः ॥४६
मानी विचारार्थविवेकचित्ते,
चातुर्यचित्तोल्वणताविवर्जितः।
योगी भवेत् साधकचक्रवर्ती,
व्योमाम्बुजे चित्तविसर्जनं सदा ॥५०

रुद्रयामल पटल ५२

प्रभु के जितने भी अवतार हुए हैं वे एक ही सत्ता के अभिन्न अङ्ग हैं। वह सत्ता है विष्णु जो सम्पूर्ण विश्व का नियन्ता है। तात्पर्य यह है कि मत्स्य, कूर्म, वराह नृसिंह, वामन, राम, कृष्ण आदि सभी अवतारों का निकाश विष्णु (जल) से है। अतः ये विष्णु स्वरूप हैं। जैसे—"यथा नदीनां बहवोम्बुवेगा समुद्रमापः प्रविशन्ति तद्वत्" अर्थात् जैसे सम्पूर्ण नदियां चाहे किसी भी ओर बहनेवाली हों परन्तु अन्त में समुद्र में आ समाती है उसी प्रकार एक ही उस प्रभु के अन्तःस्थल में सम्पूर्ण अवतारों का निवास है इसलिये ये समग्र तद्रूप ही है। इसी तरह वायवी शक्ति राधा, पार्वती, लक्ष्मी, जानकी, दुर्गा, सरस्वती आदि शक्ति (पृथ्वीं) स्वरूप है। जल और वायु समस्त भूमण्डल के प्राण हैं। प्राण के तीन रूप है—स्थूल, सूक्ष्म एवं अति सूक्ष्म। इन सबका मूल तारक मन्त्र "राम" है। इसका अभ्यास मनुष्य को बचपन से ही बना लेना चाहिये।

"कर्मलोपमकुर्वन्वै कृषिं कुर्वीत वै द्विजः। हरेः पूजो यथाकालं कृषिलोपे समाचरेत् ॥

सम्पूर्ण कर्मों को करते हुए भी हरि पूजा का लोप न करें। यदि हम प्रमादवश हरि पूजा से विमुख हो गये तो हमें स्थूलता की प्राप्ति होकर चौरासी लाख योनियों से छुटकारा नहीं मिलेगा। हमें मानवता से हाथ धोना पड़ेगा। अर्थात् मानव को अति सूक्ष्म की प्राप्ति बिना हरि स्मरण के सम्भव नहीं। जो मनुष्य का प्रधान लक्ष्य है। अतः मानव को अहर्निश जीवन-पर्यन्त नाम जप करने से भूत, भविष्यत्, वर्तमान "करामलकवत्" दिखने लग जायगा। अर्थात् उसे सम्पूर्ण दैवी शक्ति का चमत्कार प्रत्यक्ष हो जायगा। जैसे ध्रुव, प्रह्लाद आदि। इसी नाम जप के विषय में रुद्र यामल में बड़ा ही सुन्दर वर्णन है। जो इस प्रकार है।

अथ मौन जपं कृत्वा ततः सूक्ष्मानिलं मुदा। सहस्रारे गुरुं ध्यात्वा योगि भवति योगिराट् ॥
सूक्ष्म वायुक्रमेणैव सिद्धो भवति योगिराट्। करोति स्तम्भनं योगी सोऽमरो भवति ध्रुवम् ॥
एतद् योगप्रसादेन जीवन्मुक्तस्तु साधकः। जराव्याधिमहापीड़ा—रहितो भवति ध्रुवम् ॥
प्राणवायु स्थिरो यावत्तावत्मृत्युभयं कुतः ?। उर्द्धरेता भवेत् यावत्तावत्कालभयं कुतः ? ॥

अभिप्राय यह है कि हृतकमल में गुरु का ध्यान करता हुआ मौन जप करै। जिससे सूक्ष्म वायु की सिद्धि होकर मानव योगीराज बन जायगा। निरन्तर भगवद् ध्यान में लगा हुआ योगी विश्व को स्तम्भन करने में समर्थ होगा तथा निश्चय अमर हो जायगा। इस जप योग के प्रसाद से मानव जीवन्मुक्त होकर जरा; व्याधी, महापीड़ा से रहित हो जायगा यह ध्रुव सत्य है। जब प्राणवायु स्थिर हो जायगी तब मृत्यु भय कहां है कारण प्राणवायु के स्थिर होने से मानव उर्द्धरेता हो जायगा जिससे उसे काल भी अपनी पास में नहीं जकड़ सकता अर्थात् वह जीवन्मुक्त होकर जगन्नाथ भगवान के धाम को चला जायगा। एतदर्थ मानव को भगवद् चिन्तन से कभी भी बहिर्मुख नहीं होना चाहिये। मन्त्र अनेक हैं वे विशेष कामाओं [illegible] लिये विशेषावसरों पर अनुष्ठित करने चाहिये।

मेरी सभी महानुभावों से करबद्ध प्रार्थना है कि बहुत हो चुका हमारे अज्ञानताजन्य पाप का फल। [illegible] रहते हमें हिंसक प्रवृत्ति को सम्पूर्ण विश्व से जड़मूल से मिटा कर अहिंसा, प्रेम, त्याग और सत्यमार्ग द्वारा संसार [illegible]

सम्मतियाँ और उद्गार !

चाहिये। सत्य मार्ग ही जय है, सत्य ही ईश्वर है और सत्य ही ज्ञान है, और उसीसे मनुष्य देवरूप है "सत्यवदनाद्देव" (शत० अ०)। अतः इस ज्ञानयज्ञ के अधिकाधिक प्रचार में योग देकर आप सब यश और पुण्य के भागी बनें। मैंने अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार आप लोगों की सेवा में यह विनम्र निवेदन प्रस्तुत किया, यद्यपि मेरी ओर से आप लोगों की अमूल्य सम्मतियों को प्रकाश में लाने का गत दो वर्षों से प्रयत्न होता रहा फिर भी आज की शुभवेला ही इस के प्रकाशन का हेतु बनी। "गृहस्थ-धर्म" की प्रकाशन प्रवृत्ति आपलोगों की इस अहैतुकी कृपा का फल है। मैंने जो कुछ टूटे-फूटे शब्दों में सङ्कलन किया है वह जहां तक उपादेय बना उसमें आप सब महानुभावों का शुभाशीर्वाद, अकृत्रिम स्नेह और अकारण अनुग्रह ही एक मात्र कारण है। मैं अनुक्षण आपके शुभाशीर्वाद की ही एक मात्र कामना करता हुआ इसी प्रकार आपलोगों की सेवा करता रहूँ। जो कुछ इसमें प्रमादादि से अशुद्ध, अस्पष्ट एवं अग्राह्य है वह सब मेरा अपना दोष है कृपाकटाक्षनिक्षेप से गुणग्रहणैकपक्षपाती सद्गृहस्थ वृन्द मुझे इसके लिये क्षमा करेंगे।

साथ ही मेरे तुच्छ हृदय को इन भावों से अगर कोई लाभ हो तो वह आप महानुभावों की सद्भावना और शुभाशीर्वाद का ही फल है। आप सभी मुझे इसी प्रकार अपनी चरणचञ्चरी एवं कृपा-कटाक्ष से अनुग्रहभाजन बनाये रहें, यह बार-बार विनती है।

गृहस्थ-धर्म के लिये सहस्रों की संख्या में पत्रादि आये हैं परन्तु बीच में दो अतिमहत्त्वपूर्ण गुरुमण्डल के प्रकाशन "स्मृति सन्दर्भ" नवमपुष्प और "निरुक्त" वैदिक शब्द निर्वचनका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ दशमपुष्प को छपानेका कार्य हाथमें ले लिया गया। इनके सम्पादन कार्य को श्री पूज्य चरण हरिदत्तजी शास्त्री विद्यारत्न विद्यालङ्कार धर्मधुरीण महोदय की सन्निधि एवं श्री पं० महेश्वर मिश्र ज्योतिष तीर्थ, पं० कजोड़ीलाल मिश्र, पं० रामनाथ दाधीच साहित्य शास्त्री तथा ब्रह्मदत्त त्रिवेदी एम० ए० शास्त्री साहित्यरत्न का सहयोग प्राप्त हुआ है। इन्हें किन शब्दों में आभार प्रदर्शन करूँ। गुरुमण्डल परिवार के आप लोगों की तरह वे भी अभिन्न अंग हैं। इन प्रकाशनों को आपके करकमलों में उपहार रूप में समर्पण करने की शीघ्र चेष्टा हो रही है, इस कार्य के अनन्तर ही जगन्नियन्ता भगवान् की कृपा और आप लोगों के सहज अनुग्रह से गृहस्थ-धर्म के प्रकाशन कार्य में क्षम होने का विचार है तब तक के लिये कृपालु पाठक हमें क्षमा करते हुए प्रतीक्षा करें।

अपनी बाल सुलभ चपलता से जो कुछ कटु सत्य लिखा गया है उसके लिये स्वस्थ एवं शान्त चित्त से पढ़कर मनन करनेके लिये मेरी साग्रह बारम्बार प्रार्थना है। भविष्य में अप्रिय शब्दों को बचाने की यथाशक्ति चेष्टा करूँगा।

अन्त में, विश्व के समस्त राष्ट्रों, विद्वानों, राजनीतिज्ञों, धर्मगुरुओं, साहित्य महारथियों और प्रत्येक मानव से करबद्ध प्रार्थना कर मैं यह भीख मांगता हूं कि वे जलचर, थलचर, नभचर सभी पशु-पक्षियों की रक्षा का अभयदान प्रदान करने की उदारता दिखलाएँ। मानवता और सृष्टि की रक्षा तभी संभव है।

संसाररूपी रङ्गमञ्च के सूत्रधार परमपिता परमात्मा की प्रकृति नटी के अविच्छिन्न सृष्टि-प्रवाह की उत्तरोत्तर वृद्धि होकर संसार-सज्जन पुरुषों की भोगभूमि हो जिसके लिये कवीन्द्र रवीन्द्र ने समता, बुद्धि से ऊपर विवेक, सत्य, अहिंसा, प्रेम, भ्रातृभाव और सर्वभूत हित-रति का ही सुखद स्वप्न सोचा था फिर से वह लोक अवतीर्ण हो और अमरादिसेव्य होकर फिर से ज्ञानालोक से आलोकित हो।

"कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्ति नाशनम्।"

आप लोगोंका अनुग्राह्य—

मनसुखराय मोर

ग्रहण

ात्र निदा

है औ

सम्मतियां और उद्गार !

[गुरुमण्डल प्रकाशनके छठे पुष्प "गृहस्थ-धर्म" के सम्बन्धमें प्राप्त प्राय: ५० सहस्र पत्रोंमें से कुछ पत्रोंका संकलन]

"गृहस्थ-धर्म" के सम्बन्धमें भारतके विभिन्न भागोंसे सहस्रोंकी संख्यामें हमें जो पत्र प्राप्त हुए हैं, और नित्य-प्रति प्राप्त होते रहते हैं, उनमें पत्र-प्रेषकोंने पुस्तकके सम्बन्धमें अपने हृदयके उद्गार प्रकट किये हैं, उसके लिये मैं उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। जनता जनार्दनने किस भांति इस पुस्तकको अपनाया है, और उसके प्रति अपना प्रेम-भाव प्रकट किया है, वह इन पत्रोंसे भली भांति स्पष्ट हो जाता है।

१—आध्यात्मिकवाद, पुस्तकका आधार।

श्री बी० एस० खनोला, नं० १, पार्टी सर्वे आफ इण्डिया, देहरादूनसे लिखते हैं :—

"आपके द्वारा भेजी हुई "गृहस्थ-धर्म" पुस्तक प्राप्त हुई, जिसे पढ़कर मुझे अपना अज्ञान मालूम हुआ। **इस पुस्तकने मुझे कुमार्गपर जानेसे बचा लिया।** इसके लिये आपको कोटिशः धन्यवाद ! यह पुस्तक सचमुच बड़ी उपादेय और हृदयसे लगाने योग्य है। आपने शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध कर दिया है **कि स्त्री-पुरुष एक दूसरेके लिये भोग्य साधन नहीं वरन् मोक्ष प्राप्तिके साधन हैं।** मुझे इस बातसे और भी प्रसन्नता हुई कि आपकी पुस्तकका आधार आध्यात्मिकवाद है, न कि भौतिकवाद। पुस्तकके अन्तमें भजन और स्तोत्रोंने इसमें चार चांद लगा दिये हैं, जो मनको एकाग्र करनेके लिये उत्तम सामग्री है।

श्री खनोलाने आगे चलकर लिखा है :—"मैं जीवन भर आपका आभारी रहूँगा; क्योंकि आपकी पुस्तकने मुझे गड्ढे में गिरनेके पहले ही सावधान कर दिया। मन तो आपके चरणोंमें लोटनेको चाहता है। आपसे आशीर्वादका इच्छुक हूँ। उपकारीका उपकार कैसे भूला जा सकता है ?"

२—श्री रामनारायण मिश्र, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, लिखते हैं :—

"...यह पुस्तक तो हर एक घर में रहनी चाहिये।"

नवयुवक चरित्रवान बनेंगे

३—श्री प्राणनाथ मिश्र, अध्यापक सार्वजनिक पाठशाला, मु० नैकी, पो० रफीगञ्ज, जिला गयासे लिखते हैं :—

"इस पत्र द्वारा मैं सेठ श्री मनछखराय-जी मोरको हार्दिक धन्यवाद देना चाहता हूँ। श्रीमान् सेठजीकी "गृहस्थ-धर्म" नामक पुस्तक का जितना अधिक देश-व्यापी प्रचार होगा, उतना ही अधिक वर्तमान समयके युवक-युवतियोंको सन्मार्गपर चलकर सच्चरित्र बनने-का अवसर प्राप्त होगा। आजके नवयुवकों की नश-नशमें जो बुराई घुसी हुई है, मेरा विश्वास है कि इस अनुपम ग्रन्थके अध्ययनसे वह बुराई समूल नष्ट हो जायेगी। इस ग्रंथसे नवयुवक निश्चय ही चरित्रवान बनेंगे। इस पुस्तकके पन्ने-पन्नेमें हमारे पूर्वजों, ऋषि-मुनियों और श्रुति-स्मृतिके सदुपदेश भरे हुए हैं। हमारे जो नवयुवक अपना ब्रह्मचर्य खो बैठे हैं, इस ग्रन्थका अध्ययन कर उन्हें कुपन्थ पर चलनेकी हिम्मत ही न होगी। कहनेका तात्पर्य यह है कि इस ग्रंथमें अनुपम शिक्षाएं भरी पड़ी हैं।

श्रीमान् सेठजीसे हमारा यह विनम्र अनुरोध है कि वे इस पुस्तक का प्रति वर्ष नया संस्करण प्रकाशित कर उसे देशके कोने-कोनेमें पहुं-चानेका कष्ट करें।

वास्तवमें सेठजी धन्य हैं, और उनकी कीर्तिका विस्तार करनेवाला ग्रन्थ—"गृहस्थ-धर्म" भी धन्य है।

ग्रहण

पात्र निवार

है औ

हिन्दीमें एक विशेष अभावकी पूर्त्ति

१—श्री रामनरेश द्विवेदी 'शास्त्री' पत्रकार, दतियाना (विक्रम) पटनाके उद्गार :—

—"श्रद्धेय महानुभाव !—'गृहस्थ-धर्म' द्वारा हमारी प्राचीन संस्कृतिके उद्धार और संवर्द्धनका प्रशंसनीय प्रयत्न किया गया है। यह एक उच्च कोटिका सांस्कृतिक-ग्रंथ है, जिसपर हमें अभिमान है। इसकी सम्पूर्ण सामग्री ज्ञान-वर्द्धक और उपादेय है। इसके द्वारा हिन्दीमें एक विशेष अभावकी पूर्ति हुई है, इसमें सन्देह नहीं। इस महत्वपूर्ण कार्यके लिये हिन्दीवाले आपके अवश्य कृतज्ञ रहेंगे। मैं इस ग्रंथकी पूर्ण सफलता चाहता हूं।"

२—शारीरिक, मानसिक, नैतिक उन्नतिमें सहायक :—

श्री नन्दलाल साहू, ग्राम सारजमडीह, पो० तमाड़ (रांची)।

"आपकी किताब—'गृहस्थ-धर्म' से बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ। इस पुस्तकके द्वारा मनुष्य अपनी शारीरिक, मानसिक और नैतिक उन्नति कर सकता है। इसे पढ़नेवाला अपने साथ दूसरेको भी उन्नतिशील बना सकता है। आजके युगमें यह पुस्तक बहुत ही उपादेय है। इससे अपरिमित लाभ है।

३—नारी जातिका उपकार

श्रीमती भागीरथी देवी, ग्राम वड़ेत, (गरुड़) पो० बैजनाथ, जिला अल्मोड़ा (कमायूं) ने अपने पत्रके सिलसिलेमें नीचे लिखे विचार व्यक्त किये हैं :—

—आपकी अद्भुत पुस्तक—"गृहस्थ-धर्म" स्त्री और पुरुष, युवक और युवती सबोंको सच्चरित्र बननेकी प्रेरणा देती है। पुरुषका सदाचारी होना ही नारी-जातिके सम्मानकी समुचित गारण्टी मानी जा सकती है। "गृहस्थ-धर्म" में नारीका समुचि[illegible] सम्मान करनेके लिये [illegible] उपदेश दिये हैं, उस[illegible] आपकी सदैव उपकृत[illegible]

४—गृहस्थाश्रमको उन्नत बनानेका साधन

श्री दुर्गा पाण्डेय, ग्राम समस्तीपुर, पो० बुनियादगञ्ज, गया।

—आपके द्वारा प्रकाशित "गृहस्थ-धर्म" नामक पुस्तक वास्तवमें गृहस्थाश्रमको उच्च स्तरपर ले जानेवाला एकमात्र साधन है।

५—सत्य और अहिंसाकी ओर ले जानेवाला महान ग्रंथ

श्री पूर्णानन्द सिंहा, ग्राम बाकरगंज, पो० जाट धुमरी, जिला पटना की सम्मति :—

"विदित हो कि आपकी पुस्तक "गृहस्थ-धर्म" का जोरोंसे प्रचार हो रहा है। सनातन धर्म अथवा वैदिक धर्म भारतवर्षसे लुप्त-प्रायः हो गया है। आज प्रत्येक मानव अपने स्वार्थोंमें लिप्त है। सारा विश्व नर-संहारकी ओर लिप्त है। भौतिक विज्ञानसे विश्वका कल्याण कदापि सम्भव नहीं। दर्शन और आध्यात्मिकवादकी ओर किसीका ध्यान नहीं। ऐसी विकट स्थितिमें आपका ध्यान सनातन धर्मकी ओर आकृष्ट हुआ है और इसके प्रचारके हेतु आप तन, मन, धनसे जुट गये हैं। 'गृहस्थ-धर्म' हमें सत्य और अहिंसाकी ओर ले जानेवाला एक महान ग्रंथ है।

६—मानवको विनाश मार्गसे बचानेवाली पुस्तक।

श्री नन्दलाल शर्मा, सहायक अध्यापक, माध्यमिक विद्यालय, दामोदरपुर, बलिया :—

"गृहस्थ-धर्म को देखकर विशेष प्रभावित हुआ। मानवको विनाश-मार्गसे बचानेवाली यह अद्भुत पुस्तक है।"

७—पुस्तकमें कामकी बातें भरी पड़ी हैं।

मंत्री, श्री दास पुस्तकालय, बलवापुर, पो० अस्थांवा, जिला पटना :—

"गृहस्थ-धर्म" एक बहुत अच्छी पुस्तक है। इस तरहकी पुस्तकोंका ग्राम-पुस्तकालयोंमें रहना बहुत आवश्यक है। इस पुस्तकमें कामकी अनेक बातें भरी पड़ी हैं।

८—मानव-जातिका उपकार।

श्री झपसी यादव, ग्राम बड़गाँव, पो० रफीगंज, गया :—

"आपके गृहस्थ-धर्म" ने जनताके दिल पर वास्तवमें, एक अनोखा प्रभाव डाला है। सचमुच, यह एक बहुमूल्य ग्रंथ है। इस ग्रंथके अध्ययनसे निरीह मानव-जातिका बड़ा भारी उपकार हो रहा है।

९—स्त्रियोंके लिए उपयोगी।

श्री धनेश्वर साहू, नदिया हिन्दू हाई स्कूल लोहरडांगासे लिखते हैं :—

"आप अंधकूपमें पड़े हुए मानवोंमें अपने "गृहस्थ-धर्म" का प्रचार कर उन्हें असली रूपमें लानेका प्रयत्न कर रहे हैं। ... "गृहस्थ-धर्म" को देखकर मुझे अत्यंत हर्ष हुआ कि अब भी हमारे भारतवर्षमें ऐसे सज्जन हैं, जिनपर धर्मकी गहरी छाप है ... कारके लिए अपना अपरिमित धन व्ययकर मानवोंको ऊँचा उठाते हैं।.........

इस पुस्तकका अध्ययन कर मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूँ कि यह पुस्तक देश तथा समाजको उचित राहपर ला सकती है।"

१०—ग्रामीणोंके लिए लाभदायक।

श्री शिवशंकर पण्डित, पटना बेसिक ट्रेनिंग स्कूल महेन्द्रू (पटना) का अभिमत :—

"अपनी प्राचीन संस्कृति, धर्म आदिके पुनरुत्थानके लिए आप जो कार्य कर रहे हैं, उसके लिये आपको किस भाँति धन्यवाद दूं ?..."गृहस्थ-धर्म" हम ग्रामीण-वासियोंके लिए बहुत ही उपयोगी और लाभदायक है। आपकी इस बहुमूल्य पुस्तककी प्राप्तिके लिए हमारे ग्राम चकोर पक्षीकी तरह स्वाति बूंद पानेके लिए टकटकी लगाये बैठे हैं।

११—लोगोंका असीम उपकार।

श्री लक्ष्मीदत्त मगहरिया, वकील, सारंगढ़, जिला रायगढ़से लिखते हैं :—

"गृहस्थ-धर्म" को देखकर अति आनन्दित हुआ। आप इस पुस्तकका बिना मूल्य वितरण कर असीम पुण्य सञ्चय कर रहे हैं। आपके इस सत प्रयत्नसे लोगोंका असीम उपकार हो रहा है। आशा है, आप इसी तरह जनता जनार्दनकी सेवामें लगे रहकर इस पुण्य-भूमिमें रामराज्य स्थापन करनेमें योगदान देते रहेंगे। आजकल इस तरहके ग्रंथोंकी बड़ी जरूरत है। मैं चाहता हूँ कि आपके इस ग्रंथका ज्यादासे ज्यादा प्रचार हो। क्या मैं आशा करूँ कि आप कुछ प्रतियां मेरे पतेसे भेजकर मुझे तथा यहाँ की जनताको अनुग्रहीत करेंगे। मैं इस तरफ इस ग्रंथका प्रचार करना चाहता हूँ।"

१२—घर-घर की जरूरतकी चीज।

श्री चन्द्रिका प्रसाद सिंह, मुरादपुर, पटना।

"गृहस्थ-धर्म" सचमुच ही अत्यंत उत्तम पुस्तक है। यह घर-घर की जरूरतकी चीज है। इसमें तमाम दिनचर्य्या नियमानुकूल दी गयी है। ईश्वर-भजन आदि देनेसे पुस्तक और भी उपयोगी हो गयी है। ऐसी श्रेष्ठ और कल्याणकारी पुस्तकके प्रकाशन तथा उसे निःशुल्क वितरित करनेके लिये आपको कोटिशः धन्यवाद !

१३—सैकड़ों मनुष्य धर्मकी ओर मुड़ रहे हैं।

श्री रामलखन सिंह, इमादपुर, पो॰ बिहार-शरीफ, अपने पत्रके अन्तर्गत लिखते हैं :—

"आपकी ख्याति आज समूचे भारतवर्षमें नहीं, तो एक बहुत बड़े विस्तृत प्रदेशमें अवश्य ही फैल गयी है। इसका एकमात्र कारण आपकी धार्मिक पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' है। पुस्तकमें प्रदर्शित आपके विचारोंसे प्रभावित होकर आज सैकड़ों मनुष्य फिर अपने धर्मकी ओर मुड़ रहे हैं। यह पुस्तक इस विषम युगमें बड़ी लाभदायक सिद्ध हो रही है।

१४—समाजकी बहुत बड़ी सेवा।

श्री श्याम सुन्दर शर्मा, ग्राम शाहपुर, पो॰ घोघा, जिला भागलपुर :—

"आपने गृहस्थ-धर्म" पुस्तक निकालकर समाजकी बहुत बड़ी सेवा की है। आशा है, आपका यह कल[illegible] कार्य समाजमें बहुत बड़ा स्थान प्राप्त करेगा और आपका यश दिनोदिन उत्तरोत्तर होता जायेगा।

१५—जीवन सुखी बन सकता है।

श्री सुरेन्द्र प्रसाद, ग्राम औंगारी, जिला पटना से लिखते हैं :—

"मैंने अनेक व्यक्तियोंके मुंहसे सुना है कि "गृहस्थ-धर्म" अति सुन्दर पुस्तक है। इसके सदुपयोगसे मनुष्य अपने जीवनको सुखी एवं सुन्दर बना सकता है।

१६—हृदय धर्ममें विलीन हो जाता है।

श्री प्रफुल्लदेव पाण्डेय, ग्राम खड़सारी, पो० मझवे, जिला मुंगेर ने अपने पत्रके अन्तर्गत लिखा है :—

"गृहस्थ-धर्म" को पढ़कर हृदय धर्ममें विलीन हो जाता है। इस घोर कलिकालमें यदि आप महानुभावोंके तुल्य सत्पथ-प्रदर्शक न हों, तो धर्म सदाके लिये लुप्त हो जाय। हमलोग सदैव परमात्मासे प्रार्थना करते हैं कि "गुरुमण्डल" का एक न एक अंक इस तरहका प्रकाशित होता रहे, जिससे धर्माचारियोंकी सदैव बनी रहे।

१७—धर्म-ग्रंथोंका सार।

ठा० मंगल सिंह, मुकाम छोटी आस्टी, पो० रींगस, जयपुर (राजस्थान) से लिखते हैं :—

"आपके द्वारा लोक-कल्याणके लिये संग्रहित तथा प्रकाशित पुस्तक "गृहस्थ-धर्म" में श्रुति, स्मृति, वेद और पुराण आदि हमारे सभी शास्त्रोंका सार भरा हुआ है। शास्त्र-वाक्योंका सत्य-अर्थ बतलाकर हमें बतलाया गया है—असत्य मार्गसे सत्य मार्ग। इस पुस्तकसे हमें ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम तथा प्राकृतिक नियमानुसार चलनेकी उच्च कोटिकी शिक्षा मिलती है। आशा है, इस पुस्तकके पढ़नेसे और इसके अनुसार चलनेसे हिन्दू-जातिका ही नहीं, वरन् मानव-मात्रका कल्याण होगा।

१८—श्री अकबाल लाल, ग्राम कवलापुर, जिला बनारस।

—आपकी धर्मोपदेशक पुस्तकें जगत् प्राणियोंके धर्मकी महान् रक्षा कर रही हैं। आपका नाम भी तो वैसा ही है। मनको सुख पहुंचानेवाले सज्जनको ही मनसुख कहा जाता है। अतएव, आपके नामकी पूर्ण सार्थकता है।

१९—श्री देवकीनन्दन प्रसाद, पो० बिहार शरीफ।

—मुझे आपकी बनाई हुई पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। वास्तवमें गृहस्थ-धर्म सम्बन्धी जितनी भी पुस्तकें अबतक निकली हैं, उनमेंसे आपकी पुस्तककी गणना अनमोल रत्नोंमें की जा सकती है।

२०—श्री अनिरुद्ध प्रसाद सिंह, शारदा पाठशाला, कहलगांव, जिला भागलपुर।

—आपने इस पुस्तक द्वारा सत्यका प्रदर्शन किया है। सारा भारतवर्ष आपका ऋणी रहेगा।

२१—श्री हरिकृष्ण कुमार, पटना बेसिक ट्रेनिङ्ग स्कूल, पटना।

—मैंने आपकी किताबकी एक झांकी देखी। उससे इतना प्रभावित हुआ कि न दिनमें चैन और न रातमें नींद

ही आयी। मानव-जीवनका उच्चतम् लक्ष्य आनन्द और सुखकी प्राप्ति ही है, और यह वास्तविक आनन्द 'गृहस्थ-धर्म' में ही मिलता है।

२२—श्री भगवान विश्वकर्मामित्र पुस्तकालय, बुद्धमार्ग, लोदीपुर, पटना।

—"गृहस्थ-धर्म" के कुछ ही अंशोंको पढ़कर मैं काफी प्रभावित हुआ। सचमुच यह प्रत्येक गृहस्थके लिये पठनीय और मननीय है। 'गृहस्थ-धर्म' की एक प्रति प्रत्येक परिवारमें उचित मार्ग-प्रदर्शनकी क्षमता रखती है—विशेषकर नवयुवकोंके लिये, जिनपर गृहस्थीका बोझ पड़नेवाला है, यह अत्यन्त ही उपयोगी है।'

२३—श्री गोपीमोहन मिश्र, ग्राम कसौटी, पो० उसरी, जिला गया।

—इस पुस्तकमें दिये गये उपदेशों और मंत्रोंको पढ़कर नियमपूर्वक काममें लाया जाय, तो मनुष्य इस संसार-रूपी समुद्रमें आसानीसे पार हो सकता है।

२४—श्रीकान्त पण्डित, मु० अकरौजा, पो० सहर-तेलपा, जिया गया।

—जो लोग अधर्मकी ओर प्रवृत्त हो रहे हैं, उन्हें सन्मार्गपर लानेके लिये "गृहस्थ-धर्म" एक अमूल्य ग्रन्थ है। आपके समान परोपकारी व्यक्तियोंको भगवान् चिर-जीवी बनाये।

२५—मंत्री, श्री विश्वबन्धु पुस्तकालय, फजल चौक, पो० वीर, जिला पटना।

श्रीयुत सम्पादक महोदय, 'गृहस्थ-धर्म' :—

"गृहस्थ-धर्म" के मुफ्त वितरण द्वारा मानव-समाज तथा राष्ट्रकी सेवा हुई है। सेठ मनसुखरायजी मोर धन्यवादके पात्र हैं, जिन्होंने इस तरहकी कल्याणकारी पुस्तक जनता जनार्दनकी सेवामें अर्पित की है।"

२६—श्री सत्यनारायण शास्त्री, चौबा, पो० मु० बगोदर, जिला हजारीबाग।

श्रीमान् मनछखरायजी,
आपकी कीर्ति और नहीं, तो विहार प्रांतमें खूब ही फैल गयी है। ऐसी सुन्दर पुस्तककी रचना के लिये मैं आपको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। मैं हिन्दू हाई स्कूलमें संस्कृत मास्टर हूँ। मेरे विचारसे विद्यार्थियोंको नयी शिक्षा देनेके लिये इस पुस्तककी अनिवार्यतः आवश्यकता है।

२७—बाबू भगवत सिंह, ग्राम बाबूपुर, पो० सदीसोपुर, जिला पटना।

'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक गृहस्थोंके लिये बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुई है। इस स्वाधीन भारतमें इसकी ख्याति दिन दुगुनी और रात चौगुनी हो रही है। सभी व्यक्ति इसकी प्रशंसा कर रहे हैं।

क—श्री आयोध्यानाथ मिश्र, प्रधानाध्यापक, हाईस्कूल अखल, पो० अखल, गया।

'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकके प्रकाशन एवं उसके निःशुल्क वितरणके लिये कोटिशः धन्यवाद। हिन्दू युवकोंके लिये यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी प्रतीत हुई है।

ख—श्री रामेश्वर प्रसाद, लंगर टोली, पटना।

—इस पुस्तकमें लिखित विभिन्न विषयों को पढ़कर पथ-भ्रष्ट व्यक्ति पवित्र मार्ग पर आ सकते हैं। ऐसी कल्याणकारी पुस्तकको प्रकाशित करने के लिये अनेक धन्यवाद।

ग्रहण २
पात्र निव
है औ —मैंने

२८—प्रकाश ! अन्धकारमें प्रकाशकी झलक !

श्री दीवान मानचन्द्र बी० ए० (आनर्स) एल० एल० बी०, एडवोकेट, 'सनी विला', कांगड़ा [पूर्व पञ्जाब] ने 'गृहस्थ-धर्म' का अध्ययन करनेके पश्चात् निम्न उद्गार प्रकट किये हैं :—

श्री दीवान मानचन्द्रजी अपने पत्रके सिलसिलेमें लिखते हैं :—

"आपकी पुस्तकको पढ़कर बड़ा ही आनन्द मिला। 'गृहस्थ-धर्म' का अध्ययन कर मुझे वास्तवमें वर्तमान अन्धकारमें प्रकाशकी एक स्पष्ट झलक दिखलाई पड़ी। **मेरा विश्वास है कि यह पुस्तक हमारे इस प्रान्तमें, [पूर्व पञ्जाब] जो गत वर्षोंसे साम्प्रदायिक झगड़ोंसे पीड़ित है, शान्ति और सुख देनेवाली होगी।** आपने इस पुस्तकमें मनुष्यके जीवनको सुखी और आदर्शमय बनानेके लिये, जो कठिन परिश्रम किया है, उसके लिये हिन्दू समाज आपका सदैव कृतज्ञ रहेगा। यह है समय और धनका सदुपयोग !.........कृपया 'गृहस्थ-धर्म' की ५ कापियां V. P. P. द्वारा मेरे नाम भेजकर कृतार्थ करें।"

२९—देहातोंके लिये संजीवनी।

श्री परमधन सिंह, ग्राम छतिआना, पो० बेलागञ्ज, जिला गयाकी सम्मति :—

"आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' देहातोंके लिये संजीवनी-तुल्य है। इससे जनताका कितना अपार हित हुआ है, उसे जनता ही जानती है।"

३०—गृहस्थ-जीवनका सच्चा मार्ग !

श्री दुर्गालाल, ग्राम गोविन्दपुर, पो० फतवा, जिला पटना :—

"गृहस्थ-धर्म" में मानव-जीवनको उच्च बनानेके उपाय बतलाये गये हैं। इस पुस्तक द्वारा आपने "गृहस्थ-जीवन" का सच्चा मार्ग बताया है। इस पुस्तकको प्रकाशित कर वास्तवमें आप अमर हो चुके हैं। ऐसी बहुमूल्य कृतिके लिये आपको कोटिशः प्रणाम !"

३१—आश्चर्यकी बात !

श्रीमती रामेश्वरी देवी, ग्राम गोबर्द्धन बिगहा, पो० कतरी सराय, जिला गयासे लिखती हैं :—

"मैं आपकी "गृहस्थ-धर्म" नामक पुस्तककी बड़ी बड़ाई सुन रही हूँ। मैं सुनती हूँ कि इस पुस्तकमें बड़ी कामकी बातें मौजूद हैं और सबसे आश्चर्यकी बात तो यह है कि आप इतनी बड़ी पुस्तक मुफ्तमें बांट रहे हैं। आप इसे निःशुल्क बांटकर अपने देश, अपने समाजको बहुत जल्द उन्नतिके शिखरपर पहुँचा देंगे।

......आपकी इस बहुमूल्य देश-सेवाके लिये मैं आपको हृदयसे धन्यवाद देती हूँ।"

३२—अच्छी शिक्षाओंका भण्डार !

श्री रामकृष्ण सिंह, सहायक-शिक्षक जी० एम० के० एच० ई० स्कूल, इसलामपुर, [illegible] सराय, जिला पटनाकी सम्मति :—

"...पुस्तक क्या है; अच्छी शिक्षाओंका भण्डार है। "गृहस्थ-धर्म" वास्तवमें संग्रहणीय है। आपने इस अमूल्य पुस्तकको मुफ्तमें वितरण करनेकी कृपा करके समाजके सामने एक आदर्श उपस्थित किया है। स्वतन्त्र-भारतको आप ही ऐसे उदार तथा धर्माचार-प्रेमी महानुभावोंकी परम आवश्यकता है। आपने ज्ञान-यज्ञ प्रारम्भ किया है, जो एक आदर्श पुरुषका आदर्श कार्य है। आपने समाज-सेवाका बहुत बड़ा व्रत लिया है। यह परम श्लाघ्य है।"

३३—कोटिशः धन्यवाद !

श्री तनसुखराय शर्मा गौड़, मु० पो० जहानाबाद, गया :—

"गृहस्थ-धर्म" का अध्ययन करके अपूर्व और अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ। आपको कोटिशः धन्यवाद। भगवान सभी धनवानोंको आपकी ही तरह सुबुद्धि प्रदान करे।

३४—मरणोन्मुख मानवके लिये सुधाकी भेंट !

श्री दिनेश्वर पाठक "प्रभाकर", मु० रस्तिमपुर, पो० सम्हरी, जिला गयाके उद्‌गार :—

"धर्म प्रचारार्थ फैलते हुए आपके अनुभवोंका समुदाय (भण्डार) "गृहस्थ-धर्म" नामक पुस्तक है। इस कठोर परिश्रम द्वारा संकलित, आपके मस्तिष्ककी गहनतम् धर्म-भावनाएँ अवश्य ही आदर्शसे च्युत और मरणोन्मुख मानव समुदाय के लिये सुधाकी भेंट सिद्ध होगी। धन्य है आपकी उदारता !

......आजके स्वार्थ-मय युगमें इस प्रकार निःस्वार्थ भावसे कठोर परिश्रम और अत्यन्त धन खर्च करके निःस्वार्थ परोपकारमें लगा देना यह आप जैसे महात्माओंका ही काम है।"

३५—"आजतक किसीने भी ऐसा कार्य नहीं किया।"

श्री नत्थूलाल दुबे, मु० पो० आरंग, जिला रायपुर [सी० पी०] :—

"गृहस्थ-धर्म" मुझे अत्यन्त रुचिकर मालूम हुआ। आजकल किसीने भी ऐसी पुस्तक तैयार कर जन-साधारणके कल्याणार्थ उसका प्रचार नहीं किया।"

३६—"आप ही जैसे व्यक्ति भारत-माताकी गोद भर सकते हैं।"

श्री सन्तप्रसाद, मु० पो० पुनपुन, जिला पटनाने पुस्तककी मांग करते हुए निम्न उद्‌गार प्रकट किये हैं :—

आपकी किताबकी और आपकी बहुत प्रशंसा सुनकर मुझे अपार हर्ष हुआ। आप ही ऐसे व्यक्ति आज भारत-माताकी गोद भर सकते हैं और जमानेसे खोयी हुई संस्कृतिको फिर अपना सकते हैं। आजके जमानेमें आप ही ऐसे महानुभावोंकी जरूरत है, जो अपने दुःखको दुःख न समझकर दूसरोंके उत्थानमें सहयोग प्रदान करें। भगवान आपकी [illegible]द्धिको सदैव ऐसी ही बनाये रखें।

[illegible]७—डा० श्री राजाराम शर्मा, आयुर्वेद शास्त्री, घोशी जिला गयाः—

[illegible] "[illegible]स्थ-धर्म" नामक पुस्तक देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। धर्ममें आपकी ऐसी श्रद्धा और अभिरुचि देखकर

आपके यश और आयुकी उत्तरोत्तर वृद्धि के लिये ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ। आपकी इस पुस्तकसे बड़ा उपकार हो रहा है। मुझे विश्वास है, कि स्मृति-पुराण प्रतिपादित धर्मका पुनरुत्थान अवश्य होगा। ईश्वर आपके इस विनोदको सफल करे।"

३८—श्री जदुनन्दन सिंह, ग्राम वहोलिया बिगहा, पोस्ट टिकारी, जिला गया:—

—बहुत प्रसन्नताकी बात है कि आपने 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक की रचनाकर अपनी अद्भुत विद्वताका परिचय दिया है। हम गृहस्थों की भलाई के लिये आपने बहुत ही अनुपम रत्न की रचना कर हम लोगोंका बड़ा ही उपकार किया है।

३९—माधो पाण्डे, ग्राम पण्डुरा पो० रामपुर, जिला शाहाबाद:—

—हमें यह सूचित करते हुए अपार आनन्द हो रहा है कि 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक गृहस्थों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। इसे पढ़कर हमें जो आनन्द हुआ, उसके लिये हम आपके हमेशा आभारी हैं।

४०—श्री कपिलदेव पाण्डे, १०वीं श्रेणी हाई स्कूल पुनपुन, पटना:—

—आपकी पुस्तकसे जन-समुदाय की कितनी भलाई हुई है, इसे लिखना सूर्यको दीपक दिखाना है। पुस्तक सचमुच अनमोल रत्न है।

४१—श्री शिवनाथ साहु, मोकाम लोदाम पोस्ट जशपुरनगर, जिला रायगढ़ सी० पी०:—

—आपकी धर्म-सेवा दुनिया में विख्यात होती जा रही है, और होती जायेगी। आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तक सभी ओर अपना यश फैला रही है। भगवान आपकी जय-जयकार करें।

४२—गयादत्त प्रसाद शर्मा मु० सिमरा जमशेद, पोस्ट जाखिम, जिला गया:—

—'गृहस्थ-धर्म' में परमोपयोगी विषय-उपदेश, प्रार्थना तथा मन्त्र प्रकरण आदिका समावेश करने के लिए हृदय से बधाई है।

४३—पण्डित मोहनदेव पन्त शास्त्री, चीड़बाग, लक्ष्मण चौक देहरादून।

—आपकी संग्रहित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' वर्तमान धार्मिक ह्रासके युग में संशय-ग्रस्त जनताके लिये वास्तव में शांति-प्रदायिनी तथा कल्याण पथ-प्रदर्शक का काम करने वाली है। इसको छापकर और सर्व जनता के लाभार्थ वितरण कर आप धर्मकी वास्तविक सेवा तथा जनताका उपकार कर रहे हैं। यह आपका स्तुत्य कार्य है।

४४—श्री देवकृष्ण चौधरी, पशु-पालन-विभाग कार्यालय खगौल।

—'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तक बड़ी सुख-दायिनी और प्रकाशिनी है। इसके अन्दर जीवनकी ज्योति है [illegible] मनुष्यने अपना जीवन खो दिया है, वह उसे पुनः किस प्रकार पा सकता है, इसका इसमें पूर्ण ढं[illegible] दिया गया है।

४५—श्री साधुप्रसाद, ग्राम बाजीतपुर, पोस्ट खलीलाबाद, जिला पटना।

'कृपा सिन्धु ! आपकी दयालुता, उदारता और यश चारों ओर गूंज रहा है। मनुष्य शरीर पाना अतिदुर्लभ है। सज्जन मनुष्य वही है, जो अपना सारा जीवन परोपकारमें बिताता हो। दुनियामें ज्ञानदानसे बढ़कर कोई भी दान नहीं है। आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक सच्चे मार्ग पर चलने में सहायता देती है। इसका अध्ययन करने से मनुष्य सचमुच सच्चा मानव बन सकता है। आपने किसी महात्मासे कम काम नहीं किया, जो लोगोंको इसे मुफ्तमें-इसे बांट रहे हैं।

४६—श्री बलदेवप्रसाद सिंह, मिडिल स्कूल, बख्तियारपुर।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक हमारे इलाके के प्रत्येक मानवके हृदय में नवीन भाव का संचार कर रही है।

४७—प्रोफेसर हीरालाल चोपड़ा एम० ए०, २ रामलोचन मल्लिक स्ट्रीट, कलकत्ता ने अंग्रेजीमें लिखे गये अपने पत्रमें नीचे लिखे उद्गार प्रकट किये हैं :—

"मुझे आपकी बहुमूल्य कृति 'गृहस्थ-धर्म' को देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ, और मैंने इसे हिंदू-धर्मके स्वच्छ दर्पण के रूप में पाया। आपकी यह रचना अत्यन्त सराहनीय है। इससे नवयुवकों की पीढ़ी में, जिन्होंने विदेशी शासन के प्रभाव के कारण पश्चिमी सभ्यता का दास बन जाने से अपने निजी धर्म को भुला दिया है, निश्चय ही दिलचस्पी उत्पन्न होगी। आपका बहुमूल्य ग्रन्थ समुचित मार्ग का पथ-प्रदर्शन करता है। मेरी सम्मति तो यह है कि हमारे नवयुवकों में धर्म की भावना जागृत करने के पावन उद्देश्य से इसे समस्त स्कूलों और कालेजों की पाठ्य-पुस्तकों में सम्मिलित करना चाहिये।"

(अंग्रेजी से अनुदित)

४८—श्री बनारसीप्रसाद मिश्र, बुनियादी विद्यालय, रसिकपुर, दुमका (संथाल परगना) से लिखते हैं :—

"हिंदू समाज अभी जिस अवस्था को प्राप्त है, तथा दिनोदिन जिस अधोगति की ओर अग्रसर होता जा रहा है, उसके लिए आपकी पुस्तक "गृहस्थ-धर्म" अत्यन्त उपादेय है। इसका प्रसार आवश्यक ही नहीं, बल्कि अनिवार्य भी है। हमारी संस्कृति पर पश्चिमी सभ्यता का जो गहरा असर पड़ रहा है, उसे उखाड़ फेंकने के लिए यह पुस्तक पर्याप्त है। इसका प्रचार अधिक से अधिक मात्रा में होना चाहिये।"

४९—श्री इन्दर सिंह, मोरम्म थैलपुर पो० हथियारा, जिला गयाने अपने पत्रमें निम्न उद्गार प्रकट किये हैं :—

प्रहण [illegible] "गृहस्थ-धर्म" को देखकर बड़ा ही हर्ष हुआ। पुस्तक को देखकर यह विचार पैदा होता है, कि आज भी हमारे [illegible] [illegible]पुरुष हैं, जो हम भूले हुए मनुष्यों को रास्ता दिखायेंगे। जो भी व्यक्ति इस पुस्तक को पढ़ेगा, उसे आत्म-शांति है औ[illegible] इससे पारिवारिक और सामाजिक उन्नति होगी।"

सम्मतियाँ और उद्गार !

५०—श्री नारायणप्रसाद, पो० हरनौत, जिला पटनाने अपने पत्रमें लिखा है :—

आपने घोर अंधकार में पड़े हुए गृहस्थों को प्रकाश देने के लिए, भटके हुए लोगों के पथ-प्रदर्शन के लिए एवं गृहस्थ-जीवन में स्वर्ग के समान सुख का उपभोग करने के लिए "गृहस्थ-धर्म" नामकी जिस पुस्तक का निर्माण किया है, और उसे आप विना मूल्य दे रहे हैं, यह आपके महान हृदय का ही द्योतक है।"

५१—गौरीशंकर प्रसाद, पो० माधर, मुजफ्फरपुर।

आपने 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक वितरित कर एक महान सेवा की है। विशेषकर, कलियुग में अंधकार को नाश करने के लिए यह पुस्तक प्रकाश पैदा करने की शक्ति संचारित करती है।

५२—सीताराम प्रसादसिंह, ग्राम बनछल्हिम, गया।

—यह पुस्तक तो लोगों पर जादू का असर फेर रही है।

५३—सुखीलाल, ग्राम गरई विघहा, पो० हरनौत, पटना।

आपकी पुस्तक "गृहस्थ-धर्म" हम अज्ञान से भरे हुए लोगों में ज्ञान की ज्योति जगाने में समर्थ हो रही है।

५४—भूदेव मण्डल, कटौरिया टोला, पो० धनौरा।

यह पुस्तक आपकी अमूल्य देन है। वास्तव में, आपकी इस पद्धति से विश्व-कल्याण होगा। जन-साधारण को भी इससे अतिलाभ होगा।

५५—"अन्तःकरण-रूपी वाटिकामें गुलाबकी कलियां खिल उठीं !

श्री चतुर्भुज लाल, हेडमास्टर, एम० पी० स्कूल काको, जिला गया से लिखते हैं :—

"आपकी ओरसे पुस्तक वितरण सम्बन्धी चर्चा सुनकर हमारे अन्तःकरणकी वाटिकामें गुलाबकी कलियां खिल उठी हैं। किसी एक व्यक्तिकी कृपासे 'गृहस्थ-धर्म' के पन्ने उलटनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसमें स्थान-स्थान पर गीतादि धर्मशास्त्रोंको सुन्दर ढंगसे समावेश कर अमृत-तुल्य उपदेशों द्वारा सन्मार्ग पर चलनेका निर्देश है, जो मानवोंके लिए परम कल्याणकारी है।"

५६—बहुत अच्छी पुस्तक !

पण्डित रमेशचन्द्र मिश्र, मुहल्ला रानीगंज, पो० टिकारी, जिला गया की सम्मति :—

"गृहस्थ-धर्म" वास्तवमें बहुत अच्छी पुस्तक है। मेरी समझमें यही आता है कि अब भी हिन्दुस्तानमें ऐसे व्यक्ति हैं, जो लाखों रुपये धर्मके काम में खर्च कर सकते हैं।"

५७—गृहस्थोंके लिए सचमुच अत्यंत हितकर !

श्री दिनेश्वर प्रसाद, ग्राम मसिया, पो० हुसैनपुर, पटना :—

"मुझे यह जानते हुए अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि आप "गृहस्थ-धर्म" मुफ्त में दे रहे हैं। ऐसी अमूल

दान-स्वरूप देनेसे आपकी ख्यातिं दिन दूनी, रात चौगुनी हो रही है। सचमुचमें यह पुस्तक गृहस्थोंके लिए अत्यन्त हितकर है।"

५८—इस पुस्तकसे गृहस्थोंका जीवन सुखमय बन सकता है !

श्री दुलारे प्रसाद, मौजा बसाड़ी सपलपुर, पो० बोधगया, गया :—

आपकी पुस्तक "गृहस्थ-धर्म" बहुत प्रसिद्ध हो चुकी है। यह पुस्तक वास्तवमें गृहस्थोंके जीवनको सुखमय बना सकती है। इस पुस्तकको पढ़कर प्रत्येक मनुष्य अपने आपको सुमार्ग पर अग्रसर कर सकता है। कृपया मेरे लिए एक प्रति भेजकर मेरे जीवनको सफल बनावें।

५९—नाम अमर रहेगा !

श्री सच्चिदानन्द प्रसाद सिंहा, हाईस्कूल होस्टल, आटासराय, जिला पटना के उद्गार :—

"गृहस्थ-धर्म" को देखकर आनन्दका ठिकाना न रहा। इस संसारमें जबतक यह पुस्तक विद्यमान रहेगी, तबतक आपका नाम भी अमर रहेगा। आपके हृदयमें संसारकी भलाई करनेकी जो धुन समाई है, इसका फल एक न एक दिन जरूर मिल जायेगा। यह पुस्तक बहुत ही अच्छी है। इसे पढ़नेमें मन इतना निमग्न हो जाता है कि समयका कोई ख्याल ही नहीं रहता।"

६०—महान उपदेशक !

श्री चन्द्रेश्वर प्रसाद, ग्राम केन्दुआ, पो० सरता, गया :—

"गृहस्थ-धर्म" को पढ़कर और आपकी दानशीलताको सुनकर मेरे दिलमें एक नयी लहर, उत्तेजना, उल्लास और उमंग उठने लगती है। यह पुस्तक वास्तवमें महान उपदेशकका काम करती है।

६१—अहिंसासे कूट कूट कर भरी हुई !

श्री भोला प्रसाद सिंह, मिडिल स्कूल तेल्हाड़ा, पटना :—

हमारे देशके ९० प्रतिशत व्यक्तियोंको गृहस्थीकी जिम्मेदारीका बोझ सम्हालना पड़ता है। अहिंसासे कूट कूट कर भरी हुई "गृहस्थ-धर्म" पुस्तकसे देशके इन ९० प्रतिशत व्यक्तियोंको बहुत लाभ पहुँचेगा।

६२—गरीबोंपर दया !

श्रीमती परमेश्वरी देवी, ग्राम विष्णुपुर, पो० दहा बिगहा मण्डल, जिला पटनाके उद्गार :—

गरीबोंको सब लोग हीन दृष्टिसे देखते हैं। लेकिन धन्य हैं, "गृहस्थ-धर्म" के संग्रहकर्त्ता, जिन्होंने इस पुस्तक द्वारा ग्रहण [illegible]ों पर दया की है। उन्होंने गृहस्थोंके लिए बहुत ही परिश्रम किया है।

[illegible]३—श्री नारायण मिश्र, मु० बारा पो० कुरथा (गया)।

[illegible]धर्म' पढ़ने से अति लाभ होता है। ज्ञान प्राप्ति का तथा ईश्वर-भक्ति का एकमात्र यही 'गृहस्थ-धर्म' ही साधन [illegible] है औ[illegible]

है। आपको कोटिशः धन्यवाद है कि ऐसी सुयोग्य पुस्तक का आयोजन कर आप प्राणीमात्र को ज्ञान का प्रकाश दिखला रहे हैं।

६४—श्री शिवचन्द्र प्रसाद त्रिपाठी, ग्राम बहूपुर, पो० छिवलहा, जिला रायबरेली (उत्तर-प्रदेश)।

—आप लाखों रुपये खर्च कर 'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तक धर्म प्रचार के हेतु बांट रहे हैं। ऐसे धार्मिक कार्य के लिए आपकी जितनी प्रशंसाकी जाय, वह बहुत थोड़ी होगी।

६५—रामखिलावन चौधरी गुरारू मिल, जिला गया।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर मेरे हृदय में तूफान आ गया।

६६—रामनारायणलाल, एच० ई० स्कूल, गोनावन, टोशी, जिला पटना।

इस पुस्तकको पढ़कर मैं फूला नहीं समाया। ऐसी सुन्दर पुस्तक के लिए मैं आपको हार्दिक बधाई देता हूँ कि आप कितनी सुन्दर कृति देने में समर्थ हुए हैं।

६७—तामिनी प्रसाद मण्डल, ग्राम कोटद्वारा, पो० घोघा, जिला भागलपुर।

—आपने 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक प्रकाशित कर देश का बड़ा कल्याण किया है।

६८—रामलखन सिंह, बोर्ड माध्यमिक शिक्षालय रफीगंज, (गया)।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक समाज को शिक्षित, सभ्य तथा एक अच्छे रास्ते पर चलाने के लिए एक आदर्श का नमूना है। यह बहुत ही अच्छी पुस्तक है। इससे निस्संदेह जनता की बड़ी भलाई हो सकती है।

६९—गोपाल कृष्णदास, चुनार (मिर्जापुर)।

'गृहस्थ-धर्म' मनुष्योंके लिए संसारमें रहते हुए भी सुख और शांतिसे भवसागर पार करनेका सुगम उपाय है। इसमें आप अपना अमूल्य समय और धन लगा रहे हैं। इस समय संसारमें आप जैसे त्यागी गृहस्थोंकी बड़ी आवश्यकता है।

७०—आनन्दराम वैद्य, दतौद, पो० जैजैपुर, जिला विलासपुर।

"—'गृहस्थ-धर्म' को जो भी पढ़ता है, वही उसकी बड़ी प्रशंसा करता है।"

७१—अयोध्याप्रसाद, टाउन हाई इंगलिश स्कूल, विहारशरीफ, पटना।

आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक बड़ी ही सुन्दर है। यह आधुनिक युग के पथ-प्रदर्शन का कार्य करती है।

७२—युगलसिंह, मुकाम साहोपुर, पो० लारी, जिला पटना

यह हम ग्रामीणों को लाभ देने वाली अत्यन्त सुन्दर पुस्तक है। जो गृहस्थ इसे पढ़ कर उसीके अनुसार कार्य करेगा, वह असफलता की कठोर चट्टान से कभी नहीं टकरा सकता है।

७३—कुलदीप मिश्र, मुकाम मरपा, पो० हरिहरगंज, (गया)

—श्रीमान् को सूचित करते बहुत ही हर्ष होता है कि श्रीमान् का 'गृहस्थ-धर्म' मूर्तिमान होकर समस्त हिंदू जाति का पथ-प्रदर्शन कर रहा है।

७४—जगतनारायण सिंह, बराह, पो० डिहरी (पटना)।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक को पढ़कर मैं आनन्द के सागर में डूब गया।

७५—श्री राजनरायण ओझा, ग्राम सोनवर्षा टोला, पो० बुढ्ढूचक, जिला भागलपुरः—

—इस 'गृहस्थ-धर्म, पुस्तक के आधार पर कोई भी व्यक्ति अपने जीवनको सार्थक बना सकता है। इससे मनुष्यको सत्कर्म करने की प्रेरणा मिलती है।

७६—श्री रामप्रसाद साव, गंगापुर, कुर्था, गया।

—आपकी किताब 'गृहस्थ-धर्म' से मानव समाज में फैली हुई बुराइयोंका बहुत हद तक उद्धार होगा। इस धर्म-कायडसे आपका नाम धर्मके इतिहास में सोनेके अक्षरों से लिखा जायेगा। आप निश्चय ही महापुरुषों में हैं। आपकी बराबरी करने वाला कोई नहीं है।

७७—श्री हरियादव, ग्राम पण्डितपुर, पो० राजगीर, पटना।

—'गृहस्थ-धर्मके कुछ पृष्ठोंका अध्ययन कर हृदय गद्‌गद् हो गया। सचमुच में यह पुस्तक एक अनुपम रत्न है। आपने इसकी रचनाकर इस मानवताको जगानेका प्रयत्न किया है तथा जर्जर सनातन धर्मको नव-जीवन प्रदान करने का उपाय सोचा है। यह पुस्तक एक बार पढ़ लेनेकी चीज नहीं है बल्कि प्रतिदिन पाठ करने की चीज है। ऐसी ही पुस्तक के द्वारा मनुष्य उज्ज्वल चरित्रका निर्माण कर सकता है।

७८—पण्डित सत्यदेव पाण्डेय, मु० नैनी, पोस्ट नूर सराय (पटना)

—प्रत्येक गृहस्थ सिर्फ इस एक पुस्तक के द्वारा ही अपना जीवन सुखमय व्यतीत करते हुए मोक्ष-पद तक का अधिकारी हो सकता है इस पुस्तक की अधिक बड़ाई करना सूर्यको दीपक दिखाना है।

७९—श्री आर० एन० दुबे, एग्रीकल्चर-आफिस, बीना, मध्यभारत

—काल के प्रभाव से आर्य जाति में से धर्म शिक्षा उठी जा रही है। ऐसी अवस्था में आर्य जातिको इस विपत्ति से बचाने के लिये आपने जो 'गृहस्थ-धर्म' लिखा है, और उसे बिना किसी मूल्यके वितरित कर रहे हैं, यह आपकी महान उदारताका परिचायक है।

८०—श्री नवलकिशोर प्रसाद, नालन्दा कालेज बिहार।

—'गृहस्थ-धर्म' से मैं विशेष प्रभावित हुआ हूँ। आपकी दया से जो अधर्म का पलड़ा बढ़ रहा था, शायद अब [illegible] फेर झुक न सकेगा। मानव-मात्र के लिये यह पुस्तक कितनी उपयोगी है, इसका अन्दाजा लगाना कठिन ही है [illegible]

नहीं, वरन् असम्भव है। इस पुस्तक की रचना कर आपने जिस विलक्षण एवं अलौकिक विचार तथा प्रखर बुद्धिका परिचय दिया है, वह सर्वथा सराहनीय है। आशा है, आगामी पीढ़ीके स्त्री-पुरुष आपके सुन्दर उपदेशोंसे फायदा उठाकर जीवन-क्षेत्रमें किसी प्रकार की कमी नहीं मालूम करेंगे। समस्त पुरुष एवं स्त्री-समुदाय से मेरी प्रार्थना है कि वे इस अमूल्य पुस्तक को अपनाकर अपना लौकिक एवं पारलौकिक सुधार करने की चेष्टा करेंगे।

८१—श्री रघुवंश सिंह, पोस्ट बख्तियारपुर ।

—अपने इस पुण्य-कार्य से आप भारतवर्ष में एक ऊंचा आसन पा गये हैं। जनता की आंखें आपकी ओर न जाने क्यों लग गयी हैं ? आपकी इस पुस्तकसे न जाने कितने गृहस्थों को लाभ पहुंचा है ।

८२—श्री बृजनन्दनराम मु० मेन, जिला गया।

—पुस्तक की मुख्य मुख्य बातें पढ़कर मैंने शिक्षा ग्रहण की है, जिससे मेरे जीवन में काफी सुधार हुआ है। यदि यह पुस्तक मेरे पास सदाके लिये रहती, तो न जाने मेरे जीवन में कितना सुधार होता और कितना आनन्द (लौकिक एवं पारलौकिक सुख) प्राप्त होता, जितना कि मरते हुए मनुष्यको संजीवनी बूटी मिलने से प्राप्त होता है। इस पुस्तक में कितने ही विषयोंका समावेश है, कितने ही धर्म-ग्रन्थोंका तत्व दिया गया है। मानो गागरमें सागर भर दिया गया है।

८३—श्री प्रह्लाद शर्मा, सहायक शिक्षक, पाठशाला लखाली, पो० पौड़ी-शंकर, जिला विलासपुर।

—पुस्तककी उपादेयता और उत्तमताके बारेमें लिखना तो सूर्यको दीपक दिखाना है। आपके सदृश्य जन-जनार्दन-सेवीसे ही समाज-सुधार और कल्याण होगा।

८४—श्री भागवत शरण त्रिपाठी 'शास्त्री', गोयनका संस्कृत महाविद्यालय, बुलानाला, बनारस।

—सद्गृहस्थ बननेके लिये यह पुस्तक परमावश्यक है। इसमें लोकोपयोगी साधनोंका समावेश है ।

८५—श्री लखनप्रसाद सिंह, ग्राम विष्णुपुर, पो० बिगहा मण्डल, पटना।

—सब लोग गरीबोंको नीची दृष्टिसे देखनेका प्रयत्न करते हैं। धन्य हैं इस पुस्तकके संग्रहकर्त्ता, जिन्होंने इसे मुफ्त देनेका आदेश प्रकट किया है।

८६—श्री श्याम नारायण प्रसाद सिंह, अपर प्राइमरी स्कूल रहुई, पटना।

"अत्यन्त प्रसन्नताकी बात है कि 'गृहस्थ-धर्म' द्वारा आप जनताकी महान् सेवाएं कर रहे हैं। अतः अ[illegible] के पात्र हैं। वास्तवमें यह किताब विद्यार्थियों और साधारण जनताके लिये बहुत उपयोगी है।"

८७—श्री कृष्णदेव सिंह, ग्राम मानो, पो० लखीसराय, जिला मुंगेर।

—इस पुस्तकसे अनभिज्ञ समाजको आगे बढ़नेका अवसर मिल रहा है। यह पुस्तक सभीके लिये अति हित-कारक और उन्नति प्रथ-प्रदर्शक है।

८८—श्री ब्रजभूषण तिवारी, १६१।१, अपर चितपुर रोड, कलकत्ता।

—पुस्तक प्रत्येक गृहस्थके लिये उपयोगी है। सेठजीने धर्म तथा उसकी शिक्षाओंको एकत्रित कर अनूठे ढङ्गसे लेखबद्ध किया है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि इसे बिना मूल्य वितरण करनेकी व्यवस्था की गयी है। इस पुस्तक की जितनी भी प्रशंसा की जाय थोड़ी है।

८९—श्री रामलगन प्रसाद यादव, ग्राम सुजानपुर, पो० कुर्रे, (घोसी) गया।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक हम मानवोंके लिये कल्याण मार्ग प्रदर्शक हैं। इससे मनुष्योंके हृदयका घोर अन्धकार शीघ्र ही दूर हो जाता है। इस पुस्तक की एक एक पंक्ति उच्च-विचारसे ओत-प्रोत एवं उपदेशसे परिपूर्ण है। जिस व्यक्तिकी अभिलाषा आपके द्वारा प्रकाशित इस ग्रंथके अध्ययनकी ओर रहेगी, उसका दुर्विचार शीघ्र ही अन्तःकरणसे विदा हो जायेगा।

९०—श्री राजदेव सिंह, एच० ई० स्कूल खिजरसराय, गया।

—मैंने आपकी उज्ज्वल कीर्तिके बारेमें सुना है कि आपने भारतवासियोंके लिए एक अमूल्य वस्तु निकाली है, जो देशकी गिरी अवस्थाको ऊंचा उठा सकती है। इस इलाकेमें धर्मकी कमी है। मैं ग्रामीण जनताके मध्य आपकी कीर्तिको सुनाकर धर्म प्रचार करना चाहता हूँ।

९१—पं० लक्ष्मी विश्वकर्मा, अंदर किला, टिकारी, पो० टिकारी, गया।

—कृपया एक प्रति 'गृहस्थ-धर्म' हमारे बच्चोंके लिए भी शीघ्रातिशीघ्र भेजनेकी अनुकम्पा कीजिये, ताकि हम सब भी लाभ उठा सकें। इस महादानसे आपका यश संसार ही गा रहा है। सचमुच ऐसे व्यक्ति बहुत ही कम दिखाई पड़ते हैं। परमात्मा करें, आप और भी जन-धनसे सम्पन्न हो जांय।

९२—श्री रामस्वरूप महतो, पो० नोझावां, गया, जहानाबाद।

—बड़े सौभाग्यकी बात है कि लोक-हितार्थ ऐसी उपयोगी किताब मुफ्तमें दे रहे हैं, इसके लिए आपको कोटिशः धन्यवाद है। किताब तो ऐसी उपयोगी है कि जीवनकी नौका आसानीसे पार लगानेवाली यही किताब है। विशेषकर-नवयुवकोंको, जिनके ऊपर गृहस्थीका बोझ पड़नेवाला है, इस पुस्तककी एक प्रति हमेशा अपने पास रखना चाहिये।

९३—श्री बद्रीनाथ तिवारी, जूना, बिलासपुर।

—मैंने आपके जन-हितार्थ छपाये गये ग्रंथकी उपयोगिताके बारेमें अनेक व्यक्तियोंसे मुक्तकंठसे प्रशंसा सुनी है। ... कि इसकी शिक्षाएँ ग्राह्य हैं। मेरे लिए भी इसकी एक प्रति भेजनेकी कृपा करें।

९४—श्री नसीबलाल, ग्राम भोकिला, पो० हिलसा ।

—अहा ! इस मानव-जीवनके उद्धारके लिए आपका उपकार सर्वोपरि है। आप मानव-जीवनके अंधकारको हटाकर उसमें प्रकाश डालनेके लिए जो सेवा कर रहे हैं, उसके लिए आपको सहस्त्रों धन्यवाद है।

९५—श्री राजदेव सिंह, हेडमास्टर, मिडिल हिन्दी स्कूल अमर सिंह बिगहा, पो० पाई बिगहा, जिला गया ।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक भारतके कोने-कोने में गृहस्थोंको सद्धर्मोपदेशके द्वारा परम कल्याण कर रही है। आप निःशुल्क धर्म-सेवा प्रचारसे भारतका कल्याण करते हुए विद्युत प्रकाश फैला रहे हैं। कल्याणकी इच्छा रखनेवाले व्यक्ति 'गृहस्थ-धर्म' के पथ पर चलनेके लिए एवं उसके सदुपदेश ग्रहण करनेके लिए अत्यंत उत्सुक हो रहे हैं।

९६—श्री छोटन साव, 'केशकर'-ग्राम भोभी, पो० दामोदरपुर, मण्डल पाटलीपुत्र, पटना ।

—आजका समय हिन्दुओंके लिए दुर्दिनोंका है। आज नयी रोशनी और फैशनके लोग तथा थोड़ी-सी अंग्रेजी पढ़े-लिखे नवयुवक हमारे विशाल भारतीय धर्मको तीन कौड़ीका समझते हैं। आज जिस गतिसे आर्य-धर्म, आर्य रहन-सहन तथा हमारी गौरव-गरिमा नष्ट होने जा रही है, उसे देख मन दुखी हो जाता है। ऐसे समयमें आपकी इस धार्मिक पुस्तकके प्रचारसे कौन ऐसा अभागा होगा, जो आपकी सराहना न करेगा ? आप धन्य हैं। भगवान आपकी मनोकामनाएँ पूरी करें।

९७—श्री चण्डेश्वर प्रसाद, ग्राम कोशनारा, पो० बेन, पटना ।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक समाजमें सुधारकी लहर-प्रभावित कर रही है। समाज-सेवा ही इस पुस्तकका प्रधान लक्ष्य है। आजके गृहस्थ अपने कर्त्तव्यको भूलकर सर्वनाश की ओर अग्रसर हैं। ऐसी स्थितिमें आपकी पुस्तक अद्भुत कार्य कर रही है।

९८—श्रीमती उर्मिला देवी, ग्राम पंचायत, घोसी हिल्सा, पटना

"आपको यह लिखते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है कि आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक हम ग्रामीण नारियोंकी सभ्यताकी ज्योत्सना है।"

९९—पण्डित चन्द्रमौलि शास्त्री, पुस्तककाध्यक्ष, ग्राम नेरुत, पो० ओन्दा, पटना ।

"गृहस्थ-धर्म' पठनीय ही नहीं, किन्तु प्रत्येक घरमें नित्य पाठ करने योग्य है।"

१००—श्री कामेश्वर प्रसाद सिंह, ग्राम जोवन चक, पो० मोहिउद्दीनपुर, (पटना)

'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकके द्वारा आप संसारकी जो सेवा कर रहे हैं, इस पुण्य कार्य में आपकी मनोकामना... मेरी यही भगवानसे वंदना है। भगवान करें, संसार भरमें आपका यश फैले।

१०१—श्री रामदास महतो,ग्राम सैदनपुर, पो० हिलसा, (पटना)।

—'गृहस्थ-धर्म' को देखते ही मेरा मन पुष्पकी तरह खिल उठा और मेरा अंतःकरण बार-बार इसके रचयिता और प्रकाशकको धन्यवाद देने लगा, जिन्होंने इस पवित्र पुस्तकको छापकर देशके नागरिकोंको धर्म-रूपी-नेत्र दिये हैं।

१०२—श्री देवदीप सिंह, ग्राम तुरकौल, पो० सरसा, गया।

—आपकी इस अनुपम कृतिके लिए सारा भारतवर्ष आपका ऋणी रहेगा। जबतक आपका 'गृहस्थ-धर्म' रूपी अमूल्य रत्न विद्यमान रहेगा, तबतक आपकी यश-पताका फहराती रहेगी।

१०३—श्री शुकदेव ठाकुर जगदीश, मु० करसोप (बगीचा जवाहर नगर) पो० शम्भूगंज, जिला भागलपुर।

मदीयाभिरुचिरियम्।

हे! भक्त-वत्सल धार्मिक विद्वान गुणशाली सुनें।
दान देकर विश्वको निज पुण्यका भागी बनें।
कीर्ति होगी लोक में गृहस्थ पुस्तक दान से।
उपकार होगा आज मम तव धर्म-ग्रंथ प्रदान से।
प्रार्थना मैं इसलिए करता सुनें हे मान्यवर!
मूल्य-बिन मैं एक पुस्तक याचता हूँ मित्रवर!
मुझ दीन का कल्याण होगा "गृहस्थ-धर्म" प्रदान से।
खोंचकर उसमें विषय हैं मैं पढ़ूंगा ध्यान से।

१०४—श्री रामयुग शर्मा, व्यवस्थापक, हिन्दी नाट्य परिषद बेला, पो० धराउत (गया)।

—भारत धर्म-प्रवर्तकोंसे कभी खाली न रहा है, और न रहेगा। धर्मके चलते कुर्बान होने वाले पुरुषोंको भारत हमेशा उत्पन्न करता ही रहता है। कहना न होगा, कि सेठ मनसुखरायजी मोरका नाम भी इस धर्मान्धकार युगमें अग्रगण्य होगा।

१०५—रामानुजाचार्य, वृन्दावन।

—आपकी भेजी हुई २० पुस्तकें प्राप्त हुईं। इन पुस्तकोंसे विशेष नहीं तो, २० गृहस्थोंका सुधार तो होगा ही। अपने सद्‌विचारोंसे हजारों स्त्री-पुरुषोंके जीवन-सुधारके लिए जो संग्रह किया है, वह बहुत ही सराहनीय है। ...नका मंगल करें। आप जैसे धर्मवीर और कर्मवीरकी इस संसारको बहुत जरूरत है।

१०६—श्री राजनन्दन शर्मा, श्रोत्रिय 'भ्रमर' 'श्री सत्यनारायण मन्दिर' पो० झुमरी तिलैया, हजारीबाग।

"धर्मावतार ! मैं आपकी अति पुनीत एवं विस्तृत कीर्तिको श्रवण कर अत्यन्त हर्षित हुआ। मैं आप जैसे कुल-ज्योति, पुत्र-रत्नको उत्पन्न करने वाले आपके माता-पिताको अनेकों धन्यवाद देता हूँ। आप जैसे धर्मावलम्बी पुरुषोंसे ही पृथ्वी टिकी हुई है।"

१०७—श्री मंत्री, श्री हरिनन्दन पुस्तकालय, ग्राम सरगांव पो० दरुआरा, जिला पटना।

—आप देशके महान भक्त और शुभचिन्तक हैं। इसका सबसे बड़ा प्रमाण 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक है, जिसे आप मुफ्त में वितरण कर रहे हैं। इस पुस्तकको पढ़कर लोग अपनेको बहुत कुछ सम्हाल रहे हैं।

१०८—पं० राजेश्वर द्विवेदी, ग्राम सिद्धरामपुर, पोस्ट करपी, जिला गया।

—यह पुस्तक गृहस्थोंके लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई है। पुस्तकमें बहुत ही सुन्दर ढंगसे धर्म तथा कर्मकी विवेचनाका दिग्दर्शन किया गया है।

१०९—श्री गौरीशंकर गिरि एम० ए०, ग्राम सादीपुर मठिया, पोस्ट कजगांव, जिला जौनपुर।

—मेरा अहोभाग्य है कि मुझे अपने एक मित्रके यहां आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म'को देखनेका सुअवसर प्राप्त हुआ। ऐसी उपयोगी पुस्तक मैंने कभी नहीं देखी थी। यह पुस्तक वास्तवमें हम भारतीयोंके विघटित-गार्हस्थ्य जीवनका पुनरुद्धार करनेमें सर्वथा योग्य है। भारतीय संस्कृतिकी रक्षा इससे बढ़कर और किसी पुस्तकके द्वारा हो ही नहीं सकती। इसमें वास्तवमें हिन्दू-जीवनका सत्य-चित्र रखा गया है।

११०—श्री रामबाबू यादव, विष्णुपुर पो० हिलसा (पटना)।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक रामायण, महाभारत आदि धर्म-ग्रन्थोंकी ही तरह है।

१११—श्री इन्द्र देवनारायण 'इन्द्र' पो० बुनियादीगंज (मानपुर अड्डाके पास) जिला गया।

—सचमुच, यह अपने ढंगकी अनोखी पुस्तक है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि जनताके गार्हस्थ-स्तरको ऊंचा उठानेमें यह बड़ी सहायक होगी। जिस विशुद्ध एवं पवित्र भावनासे इसका प्रचार किया जा रहा है, उसका मैं हृदयसे स्वागत करता हूँ।

११२—श्री आदित्य सिंह, ग्राम घनश्याम बिगहा, मलाठी (गया)।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तिकाकी ख्याति और यश देशके कोने-कोनेमें फैल रहा है। आपने इस पु[illegible] गृहस्थोंको अपने कर्त्तव्य-पथ पर अधिकाधिक रूपमें अग्रसर होनेके लिए प्रोत्साहित किया है।

११३—श्री हरेन्द्रकुमार, ग्राम यशवंत बिगहा, पो० चण्डी, जिला पटना ।

—हम गृहस्थ अज्ञानताके कारण अपने कर्त्तव्यको भूल-सा गये हैं । विद्वानोंकी दृष्टि इस ओर न होनेके कारण, हम हतोत्साह हो रहे हैं, लेकिन 'गृहस्थ-धर्म' से यह कमी दूर होगी ।

११४—श्री शिवपूजन राम, ग्राम चाढ़, पो० टहेटा, जिला गया ।

—इस पुस्तकको लिखकर आपने जन-समुदायकी जो सेवा की है, उसका वर्णन कहांतक किया जा सकता है। यह पुस्तक गृहस्थोंके लिए एक आदर्श पुस्तक है ।

११५—श्री रामशरण प्रसाद, ग्राम करियामा, पो० भतहर, (पटना) ।

—आपकी पुस्तक जब गृहस्थ-समाजमें प्रवेश करती है, तो मानो धर्मका फैलाव होने लगता है । इस पुस्तककी व्यापकता घर-घरमें गूंज रही है । सोये हुए समाजमें इससे नव-चेतना और प्रकाश पहुंचता है ।

११६—श्री रामलखन मिश्र, पतूत, पो० विक्रम (पटना) ।

—बड़े हर्षकी बात है कि आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' ने पाठकोंके बीच बड़ी ख्याति प्राप्त कर ली है । इसमें धर्मके अनेक गूढ़से गूढ़तम् रहस्योंकी पुट है । आपने इस पुस्तकमें, प्राचीनसे लेकर अर्वाचीन तक धर्मकी जितनी विशद चर्चा की है ।

११७—श्री उमानाथ पाण्डे, साहित्य-शास्त्री, मु० वरुना, पो० अकोढ़ीगोला, (आरा) ।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको पढ़कर मेरे हृदयमें आपके प्रति असीम श्रद्धा उत्पन्न हो गयी है । आप जैसे धर्मावलम्बी पुरुष बहुत कम देखनेको मिलते हैं ।

११८—श्री हरिप्रसाद राठौर, मु० हालाहुली पो० झाराडीह, जिला रायगढ़ ।

—इस पुस्तकके कारण आपका नाम भारतमें ही क्या सारी दुनियामें अमर रहेगा । आपका यह धर्मकार्य अनुपम है ।

११९—श्री चिरञ्जीवी पाठक, ग्राम झरता, पो० चण्डी, (पटना) ।

—आपकी देश-सेवा सराहनीय है । 'गृहस्थ-धर्म' का वितरण कर आपने देशका बहुत बड़ा उपकार किया है ।

१२०—श्री दामोदर भारती, विद्या-मन्दिर भतहर पो०

—'गृहस्थ-धर्म'का अत्यधिक प्रचार हुआ है । इस पुस्तकके अध्ययनसे बुद्‌यात्मक शक्तिका सुधार, तर्क शक्तिका उभार और भावना शक्तिकी वृद्धि समुचित रूपसे होती है ।

१२१—श्री चन्द्रभान सिंह गौतम, शिक्षक, मिडिल स्कूल कोड़ातराई, पो० पुसौर, रायगढ़ ।

[illegible] ने आपकी पुस्तकसे विशेष रूपसे प्रभावित हुआ हूँ । आजकलके नवयुवकोंको, जो पाश्चात्य वातावरणमें बहे जा [illegible] धर्मात्मा व्यक्तियोंके संरक्षणकी आवश्यकता है ।

सम्मतियाँ और उद्गार !

१२२—श्री बृजनन्दन सिंह, ग्राम देवरा पो० मोहनगंज, जिला गया।

—यह किताब आधुनिक संसारके लिए बहुत ही उपयोगी है। इसमें सद्गुणोंका समावेश है, जिनके अध्ययनसे मनुष्य ऊंचा उठ सकता है।

१२३—श्री बेचेलाल मिश्र, कम्पाउण्डर कोहोना, पो० करताल, सीतापुर।

—'गृहस्थ-धर्म' सनातनधर्मकी अद्वितीय पुस्तक है।

१२४—पं० त्रिलोकचन्द्र मिश्र, प्रधानाध्यापक राजस्थान विद्याभवन, दरभंगा।

—आपका यह अथक प्रयास बड़ा ही सराहनीय है। धन और परिश्रमका सदुपयोग इसीको कहते हैं। प्राणी-मात्र इस पुस्तकका अध्ययन कर लाभ उठावे, यही मेरी प्रार्थना है।

१२५—पण्डित रामेश्वर प्रसाद द्विवेदी, ग्राम कच्ची, जिला रायपुर, (अकलतारा)।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक देखकर महान आनन्द हुआ। धन्य हैं आप, जो ऐसी बहुमूल्य पुस्तकको बिना मूल्य वितरित कर रहे हैं।

१२६—श्री बसंतलाल, ग्राम चौखण्डी, पो० बिहारशरीफ।

—अत्यन्त हर्षकी बात है कि आप हिन्दू-धर्मके उखड़े हुए स्तम्भको पुनः दृढ़ करनेके लिए अग्रसर हुए हैं। सचमुच आप 'गृहस्थ-धर्म' के जीवनदाता हैं। हजारों, लाखों रुपये व्ययकर आप धर्मसे अनभिज्ञ लोगोंके बीच 'गृहस्थ-धर्म' का वितरण कर रहे हैं, यह आपकी कितनी महानता है !

१२७—श्री शिवजनम सिंह, ग्राम सजूंराही, पो० रामविलासनगर (गया)।

—आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' सबके लिए बड़ी लाभदायक है। जनतामें इस किताबको वितरित कर आपने बड़ा नाम कमाया है। आप बड़े दयालु और लोक-हितैषी हैं।

१२८—श्रीराम दर्शनाचारी, ग्राम पं० मन्त्री राजपुर, पो० बिहटा, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' में आपने जिन विचारोंको भरा है, उनसे आम जनता लाभ उठा रही है। इस पुस्तकको प्रकाशित कर आपने वास्तवमें अपना मानव-जीवन सफल बनाया है।

१२९—श्री रामलखन चौबे, ग्राम बनवारीपुर, पो० बिहटा, ई० आई० आर०।

—आपकी पुस्तकको देखकर हृदय पुलकित हो उठा। मेरे ग्रामके सब लोग इस पुस्तकके प्रति बहुत ही आकर्षित हैं। इसमें उत्तम से उत्तम विषयोंका समावेश है।

१३०—श्री लल्लनलाल, सहायक अध्यापक, हायर सेकण्डरी स्कूल, मुगलसराय।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकके अवलोकनका सुअवसर प्राप्त हुआ। इसकी अमूल्य शिक्षाएँ एवं उद्देश्यको गद्गद हो गया। वेदों और शास्त्रोंकी बहुमुल्य शिक्षाओंका सार इस पुस्तकमें दिया गया है।

१३१—श्री गया प्रसाद सिंह, ग्राम नथूपुर, पो० फतुहाँ, (पटना)।

—आपके द्वारा वितरित 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकका लोगोंमें बहुत जोरोंसे प्रचार हुआ है और यह प्रचार दिनोदिन प्रगति पर है। इस पुस्तकका प्रभाव जनताके मध्य काफी अधिक हुआ है। इस अमूल्य रत्नसे लोग लाभ उठा रहे हैं।

१३२—श्री बहोरनलाल भैयाराम, देवांगन पो० चांपा, जिला बिलासपुर।

—जिन लोगोंने इस पुस्तकको पढ़ा है, उनका कहना है कि इसमें लिखी बातोंको यदि मनुष्य अपने आचरणमें लाये, तो उसका मनुष्य-जीवन सफल हो सकता है।

१३३—श्री कृष्णदत्त सिंह, ग्राम, पो० सपोस, जिला बिलासपुर।

—आपको लाखों धन्यवाद है, जो ऐसी अमूल्य पुस्तकको आप मुफ्तमें बांट रहे हैं।

१३४—श्री जगदेव पासवान, गवर्नमेंट वेसिक ट्रेनिंग स्कूल, पो० महेन्द्रू, पटना।

—आपके द्वारा भेंट की गयी पुस्तकको पढ़कर अपार हर्ष हुआ। आपने देशको उन्नतिशील बनाने तथा देश-वासियोंको एक नयी रोशनी देकर उन्हें कर्त्तव्य-परायण बननेके लिए जो परिश्रम किया है, उसके लिए आप धन्यवादके पात्र हैं।

१३५—श्री रामकृपाल सिंह, पो० वीर, जिला पटना।

—आपके द्वारा प्रचारित विख्यात पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म" को प्रत्येक मनुष्यको पढ़ना चाहिये। इस पुस्तकको पढ़कर मनुष्य अपनी बुराइयोंको दूर कर राष्ट्रका उत्थान कर सकता है। गृहस्थ-आश्रमके मनुष्योंके लिए तो यह परमोपयोगी है। सभी व्यक्ति इस पुस्तककी मुक्त-कंठसे प्रशंसा कर रहे हैं।

१३६—श्री रामप्रकाश सिंह, शंकरवार टोला, मुकामा, जिला पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' का अध्ययन करनेसे मालूम हुआ कि यह बहुत उपयोगी पुस्तक है। कई साथियोंने भी इस पुस्तक को पढ़ा। उनकी राय है कि पुस्तकमें उल्लेखित उपदेश जीवनके हर पहलूमें उतारने योग्य हैं।

१३७—श्री अम्बिका प्रसाद, जगमालगढ़, बैकुंठपुर, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको बिना मूल्य जनतामें पहुंचानेका उद्देश्य बहुत पवित्र है। आपकी इस अपूर्व धार्मिक प्रवृत्ति, परोपकारी भावना, सात्विक बुद्धि और लगनकी जितनी भी सराहना की जाय, वह समुद्रकी एक बूंदके समान [illegible] आपके इस अविरल उत्साह और लगनसे आर्य-ऋषियोंकी यह पवित्र भूमि एकबार पुनः अपने इस गौरवको प्राप्त [illegible] आपके [illegible]रका नेतृत्व करनेमें समर्थ होगी। इस शुभ कार्यके लिए जगदाधार जगन्नियन्ता परमात्मासे प्रार्थना [illegible] धर्मात्मा [illegible] आपको दीर्घायु और अमर करे, जिससे भारतके साथ विश्वका कल्याण भी हो सके।

१३८—श्री सूर्य बहादुर, पो० बांकीपुर, पटना।

—लोगोंका कहना है कि आपके द्वारा प्रकाशित और प्रचारित पुस्तकके द्वारा मनुष्य सचमुच अपने कर्त्तव्य पर आ सकता है। दुर्लभ मानव-जीवनको पाकर मनुष्य लोभ, स्वार्थ आदिके वशीभूत होकर अपना कर्त्तव्य भूल जाता है तथा अनेक प्रकारकी यातनाओंसे प्रपीड़ित होता रहता है। आपकी इस पुस्तककी चर्चा कोने-कोनेमें फैल रही हैं। इसका समुचित अध्ययन करनेसे मनुष्य आवागमनके मार्गसे मुक्त हो सकता है। आपका यह कार्य बहुत उपयोगी सिद्ध होता है। ईश्वर आपको दीर्घायु करें। आप किसी महात्मा, सन्त, साधुसे कम काम नहीं किये हैं और कर रहे हैं। कृपया 'गृहस्थ-धर्म' की एक प्रति भेजनेकी उदारता करें।

१३९—श्रीमती दानमती देवी, ग्राम उसास, गया।

—नवीन युगमें धर्मका पतन बहुत जोरोंसे हो रहा है। डूबते हुए धर्मकी नैयाकी पताका आप ही जैसे महानुभाव खे सकते हैं और धर्मको डूबनेसे बचा सकते हैं। लोगोंका कहना है कि आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को उच्च शिखर पर चढ़नेका श्रेय प्राप्त हो रहा है। आपकी सच्ची धार्मिक लगन देखकर हम आपकी दीर्घायुकी ईश्वरसे प्रार्थना करती हैं। इस पुस्तक द्वारा आपकी कीर्ति फैले, यही मैं कामना करती हूँ।

१४०—श्री जवाहर सिंह, घर सिकरिया, पो० लई, पटना।

—इस पुस्तकको पढ़ना अपने जीवनको सफल बनाना है।

१४१—श्री रामचन्द्र प्रसाद, पोस्ट पोखसरूपुर, पटना।

—आधुनिक युगमें आपकी लिखी हुई 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक समुद्रमें डूबते हुए गृहस्थोंको 'गृहस्थ-धर्म' की शिक्षा देकर पुनः जीवन प्रदान कर रही है। मैं ईश्वरसे बार-बार प्रार्थना करते हुए कहता हूँ कि भगवान इस कार्यमें आपको संलग्न रक्खें और आपके द्वारा अन्धकूपमें पड़े हुए गृहस्थोंको 'गृहस्थ-धर्म' मार्तण्ड बनकर प्रकाश डालें।

१४२—पण्डित त्रिवेणी दत्त, मोकाम घेंजन, पोस्ट पाई बिघा, जिला गया।

—आपका 'गृहस्थ-धर्म' नामक धर्म-ग्रन्थ निज अलौकिक आलोकसे हम प्राणियोंमें सतत सद्भावनाकी वृद्धिकर रहा है। अतः उसकी उपादेयतासे मुग्ध हो हम गृहस्थोंका कर्त्तव्य स्मारक, उस 'गृहस्थ-धर्म' धर्मकी एक ग्रन्थ सभी गृहस्थ अपने पास रखनेको प्रबल अभिलाषा रखते हैं। आपकी उदारता, सरलता, एवं सद्बुद्धिकी भूरि-भूरि प्रशंसाके साथ आपके अभ्युदयकी वृद्धिके लिए ईश्वरसे सर्वदा प्रार्थी रहूँगा।

१४३—श्री प्रह्लाद दास शर्मा पालीवाल, मो० पो० सेमलिया (वाया रतलाम)।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकका मैंने अध्ययन किया। यथार्थतः इस समय ऐसी ही धर्म पुस्तकोंकी आवश्यकता है। घोर कलिकालमें विरले ही सज्जनधर्मार्थ सद्मार्गमें द्रव्यका उपयोग करते हैं। इसलिए परमेश्वरसे विनय है कि ऐ[illegible] पुरुषोंको सद्बुद्धि धर्म कार्य पर देकर मनुष्योंके उपकार करावें।

१४४—श्री रघुवीर पाण्डेय, राजगीर, बिहार।

—आपके द्वारा 'गृहस्थ-धर्म' हम गृहस्थोंको अत्यन्त मंगल देनेवाला है। आप सदासे ही गिरे हुए गृहस्थोंको सदुपदेश देकर गृहस्थ-धर्म की रक्षा करनेमें समर्थ बने रहे।

१४५—श्री रामप्रसाद पाण्डेय सदस्य, थाना कांग्रेस कमेटी, पो० मो० बगौदर, जिला हजारीबाग।

—मेरी इच्छा है कि मैं भी 'गृहस्थ-धर्म' का अध्ययन करूं। आपकी पुस्तकको मैंने देखा। बड़ी कृपा है कि आपकी सेवासे इतनी सुन्दर श्रुति लिपीकी लेखनी पुस्तक प्रशंसासे की गई है। इस पुस्तकसे हम गृहस्थोंका सुधार हो सकता है। भगवान आपकी लेखनीको आगे और तरक्की करें। यही मेरी अभिलाषा है।

१४६—श्री महेश प्रसाद, मो० डीह मझौली, पो० खुशरूपुर, जिला पटना (बिहार)।

—आपका 'गृहस्थ-धर्म' अत्यन्त ही सुन्दर ढंगका छपा है। इस पुस्तककी आधुनिक युगमें गृहस्थोंके उत्थानके लिए अत्यन्त ही आवश्यकता है। जिधर देखता हूँ उधर ही इसकी भरमार है। मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि वे आपको इस कार्यमें सर्वदा प्रोत्साहित करते रहें।

१४७—श्री केदारनाथ पाठक, मु० कामताप्रसादकी ठाकुरबाड़ी, मैदाटोली, पटना सीटी।

—आपके "गृहस्थ-धर्म" को पढ़ा। वास्तवमें, गृहस्थोंके लिए आपकी लिखी हुई यह किताब उपयोगी है। ईश्वर आपके द्वारा मानवताका कल्याण करें।

१४८—श्री रामप्रसाद द्विवेदी, परिबिघा, गया।

—आपका परम पवित्र 'गृहस्थ-धर्म' नामका धर्म-ग्रन्थ निज अलौकिक आलोकसे हमारी अन्तरात्माको सतत सद्भावना प्रदान कर रहा है।

१४९—श्री लक्ष्मी पाठक मो० डिसियां, पो० जगदीशपुर, शाहाबाद।

—आपके 'गृहस्थ-धर्म' को हमने अध्ययन किया। यह पुस्तक नवीन और आधुनिक ढंगका छपा हुआ है, इसके अध्ययनसे समस्त मानवताका परम कल्याण हो सकता है। यथार्थतः गृहस्थोंके लिए तो यह एक अमूल्य चीज है। अतः परमात्मा आपकी सद्भावना बनाये रहे, जिससे समस्त विश्वका कल्याण होता रहे।

१५०—श्री विष्णुशरण अग्रवाल, मो० रामनगर, जिला नैनीताल।

—वास्तवमें आपका संकलित पुस्तक सद्भावना, आचार, लौकिकता एवं गृहस्थोंको जीवन दान देनेवाला अमूल्य चीज है। परमात्मा आपके उपदेशके लक्ष्य सदा पूर्ण करते रहें।

१५१—श्री अनिरुद्ध शर्मा शास्त्री गौड़, मो० राजिम, रायपुर, मध्यप्रान्त।

—मैंने आपका ग्रन्थ पढ़ा। यह ग्रन्थ संसारमें ज्ञान धारा बहानेवाला अद्वितीय ग्रन्थ है। अतः कोटिशः धन्यवाद है।

१५२—श्री हृदय नारायण, पटना।

—आपका 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक गृहस्थोंको अपने धर्म पर चलनेका सुन्दर पाठ पढ़ानेवाला अमूल्य धर्म-ग्रन्थ है।

१५३—मास्टर बद्रीलाल विशारद, बड़वाह, मध्यप्रान्त।

—आपका 'गृहस्थ-धर्म' गृहस्थोंको अनवरत अपने धर्मपर चलनेकी शिक्षा प्रदान कर रहा है।

१५४—रामचन्द्र पहलवान, मो० प्रशस्तडीह, पो० तारक, जिला भागलपुर।

—मैंने आपकी किताब देखी। यह ग्रंथ गृहस्थोंको ज्ञान-जीवन देनेवाला है। और मैंने सुना है कि आप निःशुल्क गृहस्थोंको प्रदान करते हैं। भगवान आपके विश्वासको अटल रक्खें।

१५५—नन्हकूराम प्रजापति रामशरण प्रसाद, मो० मानपुर, कुम्हारटोली, पो० बुनियादगञ्ज, जिला गया (विहार)।

—आपका गृहस्थ-धर्म, पुस्तक वास्तवमें गृहस्थोंका पथ-प्रदर्शक है। आपने यह सेवा कर गृहस्थोंकी भावना बदल दी। भगवान आपके पथ-प्रदर्शक बनें।

१५६—कविराज गोविन्द तिवारी, मो० गौरा, पो० बटसार, जिला भागलपुर।

—मैं गृहस्थ-धर्म किताब पढ़कर बहुत खुश हूँ। भगवान इस काममें आपको सहायता प्रदान करें।

१५७—रामभवन पाण्डेय प्रेसिडेण्ट, ग्राम पंचायत, मो० मोरियावा, पो० दतियाना, जिला पटना।

—मुझे आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक बहुत ही अच्छी लगी। वास्तवमें आपने गरीब गृहस्थोंकी भलाईके लिए इस ग्रंथ का संग्रह किया है। इससे गृहस्थोंको पूर्ण सहयोग प्राप्त होता जा रहा है।

१५८—अर्जुनप्रसाद सिंह, मो० मुस्तफापुर, पो० नालन्दा, जिला पटना।

—मैंने आपकी किताबका अध्ययन किया। यह ग्रंथ भूरि २ प्रशंसनीय है। पतित गृहस्थोंको जागृत [illegible] सूर्यके समान है।

१५९—कन्हैयालालजी समाधानी, नई हवेली, नाथद्वारा (राजस्थान)

—आपकी पुस्तक पढ़कर हमें बहुत आनन्द प्राप्त हुआ, और इस उद्विग्न मनको पूर्ण शान्ति प्राप्त हुई। मेरी समझसे गृहस्थ जीवनकी राह इसी किताबसे प्राप्त हो सकती है। मुझे तो इस किताबके पढ़नेसे जीवन-मार्ग शीघ्र बदल गया और ये भी निश्चय किया कि मेरा जीवन इसी किताबके सहारे सफलीभूत हो जायगा। साथ ही आपकी उदारताके लिए ईश्वरसे अनेक प्रार्थना है। भगवान आपके पथमें पंथप्रदर्शी बने।

१६०—नवलकिशोर प्रसाद, पटना (बिहार)।

—आप कितने महान और धन्य हैं, आपके द्वारा प्रस्तुत 'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तक विश्वमें सूर्य्यके समान प्रकाशमान हो रही है। इस पुस्तकके प्रकाशसे आपकी लोकप्रियता दिन २ कमलकी तरह विकसित हो रही है। आपके इस अमूल्य दानसे विश्वका महान हित होगा। निःसन्देह आपके द्वारा अधम गृहस्थका शीघ्र ही उत्थान होगा। भगवान इस परोप-कारतामें आपको पूर्ण सहयोग दें।

१६१—भुवनेश्वर शर्मा, मो० पो० टिकारी, जिला गया।

—भारतीय अतीतोज्वलका पुनरस्मरणीय यह ग्रंथ छपवाकर आपने मानव जातिका परमकल्याण किया। परमात्मा आपके भविष्यको दिनानुदिन इस कार्य्यमें सहयोग देवे।

१६२—सिद्धेश्वरनाथ मिश्र द्वारा, पंडित सूर्यशेखर मिश्र, पुलिस लाइनके सामने, आगरा (यू० पी०)।

—आपके द्वारा प्रचारित 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक जीवनको सार्थक बनानेके लिये अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हो रही है। इस परमपावन ग्रंथका नित्य पाठ कर मैं अपने जीवनको सार्थक बनाना चाहता हूँ।

१६३—श्री रामप्रसाद, पटना।

'गृहस्थ-धर्म' को छापकर देशकी भलाई करनेका आपने एक बड़ा शुभ कार्य किया है। इस पुस्तक पर हम सबको गौरव है।

१६४—श्री रामदास शर्मा डाक्टर, पो० काजी सराय।

'गृहस्थ-धर्म' से जन-साधारणकी बुद्धि विकसित होती है। इससे धार्मिक तथा सामाजिक सभी प्रकारकी शिक्षा

१६५—श्री शिवनारायण सिंह, सबुरचक, पटना।

—आपने 'गृहस्थ-धर्म' नामक जो अच्छी किताब तैयार की है, उसमें तरह २ की नयी बातें दी गयी हैं। विशेषकर किसानों और विद्यार्थियोंके लिए यह बहुत उपयोगी है।

१६६—पंडित रामसकल उपाध्याय, पो० सहीसोपुर, जिला पटना।

—वर्तमान समयमें इस देशमें 'गृहस्थ-धर्म' नामक बहुमूल्य धार्मिक ग्रंथको मुफ्तमें वितरित कर आप जो महान कार्य कर रहे हैं, उसकी जितनी भी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। इस महान कार्यके लिए आपको हार्दिक धन्यवाद।

१६७—श्री धीरज राय शर्मा, मारवाड़ी विद्यालय, पटना सिटी, पटना।

—आपके द्वारा जो 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक वितरित हो रही है, उससे जनताको असीम लाभ हो रहा है, तथा आपका यश दिनदूना, रात चौगुना बढ़ रहा है। मैं भी चाहता हूँ कि आपके यशको ग्रामोंमें फैलाऊँ, अतएव यथाशीघ्र 'गृहस्थ-धर्म' भेजनेकी कृपा करें।

१६८—श्री गिरजानन्दन शर्मा, पो० शकुराबाद, गया।

—आपके द्वारा जो 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई है, वह बहुत ही लाभप्रद पुस्तक है। उससे बहुत मनुष्य लाभ उठा रहे हैं। गृहस्थोंके लिए यह महान रत्न आपने दान दिया है।

१६९—आशुतोष तिवारी, मन्त्री-गीतामानस-प्रचार परिषद्, मुगलसराय।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' मुगलसरायके अन्धकूपमें पड़े गृहस्थोंको, दीप बनकर उन्हें प्रकाश दे रहा है एवं इस पुस्तकसे उपरोक्त परिषदके सदस्यगण भी अत्यन्त प्रभावित हो रहे हैं।

१७०—प्रभुजी खूबलाल शर्मा, मो० नौगछिया, पो० नौगछिया, जिला भागलपुर।

—आपकी कम्पनीसे प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' को मैंने पढ़ा, गृहस्थोंके लिए अत्यन्त उपकारी है। इस पुस्तकको बिना मूल्य प्रकाशित कर आप देशके मानव समाजमें बड़े प्रख्यात हुए।

१७१—रामलषण पासवान, मो० खलशा, पो० विन्द, जिला पटना।

—आपके द्वारा जो 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक प्रकाशित हुई है, उससे संसार रूपी समुद्रमें डूबनेवाले अनेक नर-नारियों [illegible] नौका का सहारा हो रहा है। निःसन्देह आप एक आदर्श गृहस्थ हैं, जिससे गृहस्थोंको अपने धर्म पर चलने [illegible] दिखा रहे हैं।

१७२—सावित्री देवी, मो० खरथुआ, पो० पोवारी, जिला पटना।

—मैं प्रतिज्ञा करती हूँ कि "गृहस्थ-धर्म" के बनाये मार्ग और धर्म पर चलूंगी।

१७३—परमानन्द सिन्हा, प्रधान मन्त्री, जनता हितैषी पुस्तकालय, गोसांइ मठ, मो० वाली, पो० बेजछी, जिला पटना।

—हमारे पाठकोंने 'गृहस्थ-धर्म' को वेहद पसन्द किया है, उन लोगोंका कहना है कि आज तक इस ढंगकी किताब छपी ही नहीं, जिस दिनसे यह पुस्तक पुस्तकालयमें आयी है—एक दिन भी आलमारीमें नहीं रही, सदा ही पुस्तकके लिए मांग पर मांग मौजूद है।

१७४—अर्जुनप्रसाद शर्मा, यशवन्त एची स्कूल, खिजर सराय, गया।

—आपके द्वारा संग्रहित यह किताब बहुत अच्छी है। हम लोगोंको पुनर्जीवन प्रदान कर रही है।

१७५—अवध नारायण शर्मा, सेकेण्ड इयर एस. सी. ई. इब-बैंक वार्ड होस्टल महेन्द्रू, पटना।

"गृहस्थ-धर्म" का नाम देखकर हम विद्यार्थियोंको कुछ आश्चर्यसा प्रतीत हुआ कि कूड़ेके ढेरमें यह सुवर्ण कैसा! क्योंकि बहुत-सी निम्नकोटिकी पुस्तकें जो बाजारमें दिखलाई पड़ती है, जिनके नाम मात्रसे हम विद्यार्थियोंको घृणा हो जाती है, उस तरहकी यह पुस्तक नहीं है, पर यह है तामसी विचारोंसे सुदूर और सात्विक विचारोंसे परिपूर्ण।

मोरजीने समाजके प्रति पूर्ण सामाजिकता दिखलायी है, अतः उनके परिश्रमके आगे मैं नतमस्तक हूँ। अंतमें मैं मोरजीके प्रति सद्भावना प्रगट किये बिना नहीं रह सकता, जबकि वे मानव संसारके आंखोंको खोलनेमें अकथ परिश्रम कर रहे हैं।

१७६—श्यामसुन्दर साह, मो० चम्पापुर, पो० बख्तियारपुर, पटना।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' इस युगमें प्रभावशाली है।

१७७—मनोहरराम, मो० सिमरी, पो० सांई, पटना।

"गृहस्थ-धर्म" से गृहस्थोंको उच्चतम ज्ञान प्राप्त हो सकता है और यह किताब सुन्दर ढंगसे छपा है।

[१७]८—रामविलास सहाय मोख्तार, इमलीचट्टी, मुजफ्फरपुर।

[आप]के द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' से हिन्दू-धर्म तथा गृहस्थ-धर्म का उत्थान होता है।

१७९—वंशी साहु, मो० दारूखरिका, पो० दारू, हजारीबाग।

"गृहस्थ-धर्म" ज्ञानका बड़ा भंडार आधुनिक युगमें है।

१८०—चम्पालाल, जुहारचन्द उपाध्याय, मो० पो० रानापुर, जिला मेघनगर।

—आपके द्वारा 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक जो छपी है, वह गृहस्थोंके लिये अत्यन्त उपयोगी है। इसके द्वारा अनभिज्ञ पुजारियोंको पूजा-पाठमें भी सहायता प्राप्त हो रही है। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि इसके जरिये अपनेको धर्म मार्ग पर लानेकी चेष्टा करूँगा। आपने इस पुस्तकको प्रकाशित कर विश्वके महान कार्यमें भाग लिया है। अन्तमें आपको धन्यवाद है।

१८१—जगदीश नारायण पाण्डेय, कमरगली, पटना सीटी।

—इस कलिकालमें आपका कार्य केवल सराहनीय, प्रशंसनीय ही नहीं बल्कि आपकी अमर कहानी है।

१८२—रामशिरोमणि पाण्डेय, मो० सामनगर, नार्थ जूट मिल्स, पो० भद्रेश्वर, जिला हुगली।

—इस युगमें आपके द्वारा धर्म संग्रह प्रचारार्थ 'गृहस्थ-धर्म' अति आदरणीय है। इससे महान उपकार होता है। भगवान आपको सामर्थ्य दें कि आपके द्वारा मानवताका कल्याण होता रहे।

१८३—जगरनाथ प्रसाद सिंह, मो० धिमाये, पो० कोरारी, बख्तियारपुर।

—आपके द्वारा 'गृहस्थ-धर्म' प्रकाशित होकर विश्वको अपने पथ पर चलनेका उपदेश-ज्ञान देनेमें सामर्थशाली हो रहा है।

१८४—देहातोंमें चर्चाका विषय !

श्री सिद्धेश्वर प्रसाद सिंह, ग्राम मदनपुर, पो० एकरंगसराय, जिला पटना :—

"हमारे देहातोंमें आपकी पुस्तक—"गृहस्थ-धर्म" काफी अधिक चर्चाका विषय बन चुकी है। लोग इसे काफी दिलचस्पीसे पढ़ते हैं। और, इसे पढ़कर शिक्षा ग्रहण करते हैं। पुस्तकमें दी गयीं स्तुतियां तथा भजन और उपदेश किसानोंके लिए तथा सभी शिक्षित-अशिक्षित लोगोंके लिए काफी हितकर हैं। आपके इस लोकोपकारी कार्यके लिए हम आपको क्या धन्यवाद दें। इसके लिए भगवान ही आपको धन्यवाद दे सकते हैं। यह उन्हींके सामर्थ्यकी बात है। धर्मका पुनरुत्थान करना कोई साधारण कार्य नहीं है। हिन्दू धर्मको प्रगतिकी ओर ले जानेवाले आप महापुरुष हैं। इस सत्कार्यमें भगवान आपको दीर्घायु बनायें।"

१८५—अनुपम ग्रंथकी अनुपम शिक्षाएं !

श्री जुदागी पासवान, ग्राम नदपुरा, पो० हजरत साईं :—

इस अनुपम ग्रंथ ('गृहस्थ-धर्म') की अनुपम शिक्षाएँ हृदयमें एक नयी रोशनी जगाती हैं। दूसरेका होनेके कारण मेरे हृदयकी प्यास नहीं बुझ सकी है। 'गृहस्थ-धर्म' के लिए आत्मामें अशांति मची हुई है।

१८६—सत्यं एवं अत्यंत रुचिकर !

श्री धनपति महतो [मास्टर], एल० पी० स्कूल, हजारीबाग :—

"यह पुस्तक समाज सुधारक, सत्यं एवं अत्यंत रुचिकर है। इसे प्राप्त कर इसका समुचित अध्ययन करनेके लिये आंखें तरस रही हैं।'

१८७—संयम और ब्रह्मचर्यकी कुञ्जी !

श्री रामप्रताप, मखलौट गंज, टिकारी रोड, गया की सम्मति :—

'गृहस्थ-धर्म' को पढ़नेसे मनुष्य ब्रह्मचर्यपूर्ण जीवन बीता सकता है, संयमपूर्वक रह सकता है और गृहस्थाश्रममें रहते हुए अपने जीवनको सुखमय बना सकता हैं। इस अमूल्य ग्रंथसे मानव मात्र सभ्य बन सकता है। ऐसे अनुपम ग्रंथके निर्माण और प्रचारके लिए आपको अनेक धन्यवाद !'

१८८—पथ-प्रदर्शक ग्रंथ !

श्री नन्दलालजी मिश्र, "प्रेम-संदेश" कार्यालय, प्रेम-धाम, वृन्दावन, मथुरा (यू० पी०) से लिखते हैं :—

"लोक-कल्याणके निमित्त संग्रहित और प्रकाशित धर्म-ग्रंथ—'गृहस्थ-धर्म' को आद्योपांत पढ़ने पर हृदय गद्गद हो गया। वास्तवमें, आप जैसे महान लोक-सेवी महापुरुषके अकथ प्रयत्नोंके फलस्वरूप ही ऐसा सुन्दर ग्रंथ प्रकाशित हो सका है। आज निस्संदेह, दरिद्र तथा अशिक्षित भारतके लिए ऐसे पथ-प्रदर्शक ग्रंथकी ही आवश्यकता है। आपके इस परिश्रम तथा लोक-कल्याणके लिए हम आपको हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

मैं "प्रेम-संदेश" नामक एक मासिक पत्रका सम्पादन करता हूँ। मेरी हार्दिक इच्छा है कि गृहस्थोपयोगी ऐसी वस्तुएँ समय समय पर आपकी इस पुस्तकसे उद्धृत कर इस मासिक-पत्रमें दिया करूँ, आशा है कि इसमें आपको कोई आपत्ति नहीं होगी। जैसा उचित समझें उत्तर देनेकी अवश्य कृपा करें।

१८९—नन्दकिशोर मिश्र, कस्तूरीमल संस्कृत पाठशाला, मीरघाट, काशी।

आपने समाजके कल्याणके लिए तथा हिंदू समाज को जागृत करनेके लिए जो 'गृहस्थ-धर्म' रचा है, वह अत्यन्त ... है। यह पुरुषोंके अलावा नारी समाज और पशुओं के हित के लिए भी बड़ा उपयोगी है।

प्र... गत्र १९८— औ... सके द्वा...

१६०—स्त्रियोंको जरूर पढ़नी चाहिये।

श्री धनेश्वर साहू, नदिया हाई स्कूल लोहरडागासे लिखते हैं :—

"आप अंध-कूपमें पड़े हुए मानवोंमें "गृहस्थ-धर्म" का प्रचार कर उन्हें असली रूपमें लानेका प्रयत्न कर रहे हैं। "गृहस्थ-धर्म" को देखकर मुझे अत्यंत हर्ष हुआ कि अब भी हमारे भारतवर्षमें ऐसे सज्जन हैं, जिनपर धर्मकी गहरी छाप है और अपने धनको व्यय कर मानवोंको ऊँचा उठाते हैं……।"

"इस पुस्तकका अध्ययन कर मैं इस नतीजेपर पहुंचा हूँ कि स्त्रियोंको यह पुस्तक जरूर पढ़ना चाहिये। यह पुस्तक देश तथा समाजको उचित राह पर ला सकती है।"

१६१—लोगोंका असीम उपकार हो रहा है।

श्री लक्ष्मीदत्त मगहरिया, वकील, सारंगढ़, जिला रायगढ़ से लिखते हैं :—

—"गृहस्थ-धर्म" को देखकर अति आनन्दित हुआ। आप इस पुस्तक को विना मूल्य वितरण कर असीम पुण्य संचय कर रहे हैं। आपके इस सत्-प्रयत्नसे लोगोंका असीम उपकार हो रहा है। आशा है, आप इसी तरह जनता-जनार्दनकी सेवामें लगे रहकर इस पुण्य भूमिमें रामराज्य स्थापन करनेमें योगदान देते रहेंगे। आजकल इस तरहके ग्रंथोंकी बड़ी जरूरत है। मैं चाहता हूँ कि आपके इस ग्रंथका ज्यादासे ज्यादा प्रचार हो। क्या मैं आशा करूँ कि आप कुछ प्रतियां मेरे पतेसे भेजकर मुझे तथा यहांकी जनताको अनुग्रहीत करेंगे। मैं इस तरफ ग्रंथका प्रचार करना चाहता हूँ।

१६२—श्री ईश्वर सिंह, ग्राम हरार, पो० पखनपुर, गया।

"गृहस्थ-धर्म" को देखकर दिल प्रफुल्लित हुआ। मैंने इसमें उल्लिखित अनेक गुणोंको ग्रहण किया। मेरे साथी भी इस पुस्तकसे अत्यधिक प्रभावित हुए हैं और इसके द्वारा बताये गये मार्ग और उपदेशों पर चल रहे हैं। इसमें हमारे लिये बहुमूल्य शिक्षायें भरी हुई हैं।

१६३—श्री जगन्नाथ पांडेय, स्काऊट मास्टर, जनता उच्चांगल विद्यालय, रानीगंज, गया।

"आपके द्वारा वितरित "गृहस्थ-धर्म" अत्यंत उपयोगी पुस्तक है। कृपा कर हमारे स्काऊट-दलके सदस्योंके अध्ययनार्थ इसकी १०० प्रतियां भेज दें, क्योंकि स्काऊटोंके लिये यह बहुत उपयोगी होगी। उनके सच्चरित्रका निर्माण होगा।

✤ ✤

१६४—श्री इंदु यादव, मंत्री थाना कांग्रेस कमेटी बोध गया, (बिहार)।

"आपके द्वारा प्रकाशित "गृहस्थ-धर्म" गृहस्थाश्रमको उच्च स्तरपर ले जानेका एकमात्र साधन है।"

✤ ✤

१६५—श्री गिरधारी प्रसाद, जीवन-ज्योति पुस्तकालय, ग्राम काजीचक, सरमेरा (पटना)।

—गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकसे ग्रामीण जनता अत्यधिक लाभ उठा रही है। वास्तवमें यह पुस्तक नहीं, अपितु उपदेशोंका भंडार है। पुस्तकालयके सदस्योंने इस पुस्तकसे प्रभावित होकर लाभ उठाया है।

१९६—श्री देवानन्द प्रसाद, थियोसोफिकल हरिजन इंडस्ट्रियल स्कूल, पो० महेन्द्रू, पटना से लिखते हैं :—

"हमारे स्वतन्त्र देशको उन्नतिके शिखर पर चढ़ानेके उद्देश्यसे ही आपने गृहस्थ-धर्म" नामक ग्रंथको मुफ्त दान देनेकी अपार कृपा की है। इस ग्रंथ द्वारा मैं भी अपने जीवनको सफल बनाऊँगा।"

१९७—श्री कैलाश सिंह, गांधी-प्रवेशिका विद्यालय, कृष्णाश्रम सिकरिया, पो० नंदोल, जिला गया से लिखते हैं :—

"गृहस्थ-धर्म" में ऐसे विषयोंका समावेश है, जिन्हें पढ़कर चित्त आनन्दित हो जाता है। जो भी व्यक्ति इस पुस्तक को पढ़ता है, आपके गुण गाने लगता है।"

१९८—लोकनाथ पाण्डेय, ग्राम पत्रच, पो० पोखरमा (मुंगेर)

—'गृहस्थ-धर्म' संसारकी सर्वोत्कृष्ट पुस्तकोंमें है, जो सर्वसाधारण जन-समुदायके लिए अति हितकारक तथा उन्नति पथ-प्रदर्शक है।

१९९—आकांक्षाओंका साकार रूप।

श्रीमती एस० कुमारी यादव, राजवाड़ा, गया से लिखती हैं :—

—आपका यह कदम भारत जैसे देशके लिए नयी चीज है। आपके इस कार्यसे समाजको जो लाभ पहुँचा है, वह अवर्णनीय है।

सनातन धर्मके प्रति अगाध श्रद्धा तथा सनातन पथ-भ्रष्ठको पथ-प्रदर्शन करनेकी प्रबल भावनाका ही यह प्रतिरूप तथा द्योतक है। आपका यह काम प्रशंसनीय है।

आपकी आकांक्षाओंका साकार रूप ही 'गृहस्थ-धर्म' है तथा नव-चेतना के लिए जन-साधारणके बीच वितरित किया जा रहा है। इस कार्यसे सनातन धर्मको पूर्व पदप्राप्तिमें बहुत मदद मिलेगी। इस प्रकार अगर कुछ और इंतजाम हो जाये, तो इस धर्मकी उन्नतिमें कोई संदेह नहीं रह जायगा। ईश्वर आपको अपनी आकांक्षाओंकी पूर्तिमें समर्थ बनावे।

२००—मनपर जादू का-सा असर ।

श्री. रामचन्द्र प्रसाद, गुदड़ी मार्केटके पास, पो० लोहरडागा, रांची से लिखते हैं ।

—आपने वास्तवमें मानव-जातिके कल्याणके लिए एक अनमोल चीज जनताके सामने रखी है और वह अनमोल वस्तु है—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक **सचमुच इस पुस्तकमें जादू है जादू !** प्रथम दर्शनमें ही इस पुस्तकने मेरा मन हर लिया और अध्ययन करनेके बाद तो हृदयमें जो उथल-पुथल मच गयी, वह वर्णनके बाहरकी चीज़ है । हृदयमें उथल-पुथल तो मची, लेकिन साथ ही एक अद्भुत आनन्द और सुखका भी अनुभव हुआ ।

२०१—प्राचीन संस्कृतिकी रक्षा ।

श्री जगदीश प्रसाद, मुकाम इसलामपुर, पो० आटासराय, जिला पटनाकी सम्मति :—

आपकी भेजी हुई पुस्तक—'गृहस्थ-धर्म' बहुत ही उत्तम पुस्तक है । इससे संसारके समस्त मानव लाभ उठाकर अपने जीवनको उन्नत बना सकते हैं । भारत-वासी इस पुस्तकसे अपनी प्राचीन संस्कृतिकी रक्षा अच्छी तरह कर सकते हैं ।

'गृहस्थ-धर्म' की जितनी प्रशंसा की जाय, वह बहुत थोड़ी होगी । मैं तो यही कहूँगा कि भारतवर्षके नागरिकों पर उस परमपिता जगदीश्वरकी असीम अनुकम्पा है जो आपके द्वारा ऐसी अनोखी पुस्तक का संग्रहकरा कर लोगोंके लाभके लिए भेंट कराया ।

२०२—जनता पर पुस्तक का प्रभाव।

श्री मुनेश्वर मिस्त्री, गौरी बिगहा, जिला गया, अपने पत्रके अन्तर्गत लिखते हैं :—

"......आपकी 'गृहस्थ-धर्म' दिन प्रतिदिन अपना प्रभाव जनता पर डालती जा रही है। वास्तमें, इस पुस्तकके द्वारा मानव-जीवनका बहुत कुछ कल्याण होनेकी सम्भावना है। आपने इस पुस्तकका प्रचार कर सचमुच ही निरीह जनताका बड़ा उपकार किया है। इसके लिए जनता आजीवन आपकी आभारी रहेगी। इस उपकारके हेतु जनताकी ओरसे कोटिशः धन्यवादके अतिरिक्त आपको और प्राप्त ही क्या हो सकता है ?"

२०३—आनन्दका विषय।

श्री कामता प्रसाद सिंह, ग्राम मेमार, पो० बड़रा, जिला पटना :

—बड़े ही आनन्दका विषय है कि 'गृहस्थ-धर्म' ऐसी पुस्तक निकल गयी है, जिसे पढ़कर हम गृहस्थ अपने जीवनको सुखी बना सकें। मेरा विश्वास है कि आपकी गृहस्थोपयोगी पुस्तकसे गृहस्थ-समाजको सदैव लाभ पहुँचता रहेगा।

२०३—ग्रामवासियोंको लाभ।

श्री वासुदेव प्रसाद, शुकदेव विद्यालय, पो० एकरंग सराय, जिला पटनाः—

—आज भारत स्वतन्त्र अवश्य है। लेकिन उसके करोड़ों ग्रामवासियोंकी दशा पूर्ववत् ही सोचनीय है। इसका कारण यह है कि ये ग्रामवासी स्वावलम्बी नहीं हैं। 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक इस कमीकी पूर्ति में सर्वोपयोगी सिद्ध हुई है। सभी ग्रामवासी इसे अपना कर अप[illegible] स्वावलम्बी बनानेका प्रयत्न कर रहे हैं।

२०४—सुसंस्कृत बनानेमें सहायक ।

श्री जयराम सिंह, बेला, पो० मलाठी, जिला गयाः—

—आपका 'गृहस्थ-धर्म' हम भारत-वासियोंको सभ्य और सुसंस्कृत बनानेके लिए प्रथम सोपान है । जब-जब भारतमें धर्मकी कमी होती है, तब हमारी भारत माता एक न एक धर्माचारी सुपुत्र पैदा कर ही देती है । आप भी उन्हीं सुपुत्रों में से एक हैं ।

आपके द्वारा संग्रहित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' सूर्यकी प्रचण्ड किरणोंके समान समस्त भारतवासियोंको प्रकाश दे रहा है ।

मेरे मनमें इस बातकी तीव्र उत्कंठा है कि ऐसे त्यागी पुरुषकी दी हुई भिक्षाको सभी व्यक्तियोंमें वितरित किया जाय । हम सब ग्रामवासी अन्त-करणसे श्रीमान् की दीर्घायुकी कामना करते हुए परमपिता परमात्मासे प्रार्थना करते हैं ।

२०५—एक बड़ी कमीकी पूर्ति ।

सुगलू उराँव, ग्राम रामपुर, पो० लोहरडागा, जिला राँची ।

—'गृहस्थ-धर्म' कृषकोंके लिए अत्यन्त ही शिक्षाप्रद है । इस पुस्तकके द्वारा अपने परिवारकी उन्नति करनेमें मुझे बड़ी सहायता मिल रही है । आपके कारण मैं अपनेको धन्य समझने लगा हूँ । दुनियामें न जाने कितने ही महापुरुष और बड़े-बड़े कवि हो गये हैं लेकिन किसीने भी यह नहीं बताया कि गृहस्थाश्रममें रहकर किसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये । देहातकी लाइब्रेरियोंमें अबतक इस प्रकारकी एक भी पुस्तक नहीं थी । आपने एक बड़ी कमी की पूर्ति की है, इसमें कोई संदेह नहीं ।

२०६—श्री जगन्नाथ पाण्डेय, स्काउट मास्टर, रानीगञ्ज, गया ।

—"गृहस्थ-धर्म" पुस्तक नवयुवकोंके लिए उपयोगी है। मेरे स्काउटोंने इससे पूर्ण लाभ प्राप्त किया है। इस महान कार्य्यके लिए धन्यवाद है।

२०७—श्री लाल सिता साहु, पुरानी गोदाम, गया ।

—गृहस्थ-धर्म पुस्तक हम गृहस्थ परिवारोंके लिए लाभदायक है।

२०८—श्री ताराचन्द सोनार, मो० पो० जखे, विलासगञ्ज ।

"गृहस्थ-धर्म" हम गृहस्थोंको पढ़ना जरूरी है। इससे हमारी उन्नतिमें सहायता मिलती है।

२०९—श्री बालेश्वर प्रसाद राय, नेलहा टेकारी रोड, गया ।

मुझे यह पढ़कर काफी प्रसन्नता हुई कि आप 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको प्रकाशित कर गृहस्थोंको अपने धर्मकी यादगारी दिला रहे हैं। इस पुस्तकको पढ़कर कोई भी व्यक्ति सचमुचमें पद-गृहस्थ बन जायगा।

२१०—श्री मनोहर लाल गुप्त, मोत पो० चापा, बिलासपुर ।

—आपके द्वारा प्रकाशित "गृहस्थ-धर्म" नामक ग्रंथको पढ़नेसे पता चला कि आपने समस्त विश्वके गृहस्थ ही नहीं बल्कि मानव समाजके कल्यानार्थ उक्त पुस्तकका प्रचार किया है। उक्त पुस्तक द्वारा अगर कोई भी मनुष्य चाहे तो अपने जीवनको भलीभाँति सुधार सकता है, यथार्थतः आजकल इस नव-युगमें ऐसी ही चीजकी खोज है। किन्तु आपने शास्त्रोंका मथन कर उसे मखनकी तरह कोमल सरल हिन्दी भाषामें जनताके आगे रखा है। इस महान कार्यके द्वारा आपका यश समस्त विश्वमें दिन प्रति दिन सूर्य्यकी तरह प्रकाशमान हो रहा है। अतः जनता आपका ऋणी है।

२११—श्री रामसिंह, मैंजरा, मघार, पटना ।

—आपके द्वारा प्रकाशित "गृहस्थ-धर्म" पुस्तक असार संसारमें डूबते हुए गृहस्थोंको नौका बनकर पार कर रही है। आपने जो अमूल्य परिश्रमके साथ, धन व्यय कर जनता की भलाईमें हाथ बटाया है इससे आप कर्णधार रूप हैं। आशा करते हैं कि सभी [illegible] इस ग्रंथको अपनाकर लाभ उठायेंगे।

२१२—डा० रामस्वरूप गुप्त, कास-गञ्ज, इटावा, उत्तर प्रदेश।

"गृहस्थ-धर्म" जैसी अमूल्य पुस्तकके संग्रह, प्रकाशन तथा लोक सेवार्थ विना मूल्य वितरणके लिए कोटिशः साधुवाद !

मेरी पुत्रियोंने इससे असीम लाभ उठाया है। शैलकुमारी तथा कुशुमकुमारी दोनों बहिनोंने इसका अधिकांश भाग कंठस्त कर लिया है।

हमारे बच्चोंमें धर्म भावना उदय हो और उसका घर-घरमें प्रचलन हो, इस बातकी आज कितनी आवश्यकता है, इस अभावको हमारे हिन्दू राष्ट्रके लिए यह अमृत तुल्य उपहार कितने अंशमें पूर्ति करेगा, इसको तो राष्ट्रकी भावी सन्तान ही कहेंगे। इस समय तो हम सभी इस घरके आवालवृद्ध आपके उपकारके ऋणी हैं, और चाहते हैं कि परमात्माकी असीम अनुकम्पासे इस क्षेत्रमें आपको सफलता मिले।

२१३—श्री धनेश्वर प्रसाद सिंह, करेम सराय, धौसी, गया।

—"गृहस्थ-धर्म" पुस्तक मानव जीवनकी भलाईके लिए, विकसित प्रथम पुष्प है। उक्त पुस्तकमें महर्षि, मुनियोंने हमारे धर्मके सिद्धान्तोंका निचोड़ रखा है, उसे संग्रहित कर आपने सराहनीय कार्य किया है।

२१४—श्री चमाथला मण्डल, पो० मो० एकचारी, भागलपुर।

—गुरुमण्डल प्रकाशनका "गृहस्थ-धर्म" जनताके लिये मानवीय गुणोंकी शिक्षाओंका भण्डार है।

२१५—श्री शिवकुमार पाण्डेय, डुमरा, होसपुरा, गया।

—वास्तवमें इस प्रकारकी पुस्तकका प्रचार होना नितान्त आवश्यक है। इससे जनता पूर्ण शिक्षा प्राप्त करेगी।

२१६—श्री दीपनारायण सिंह, बेलाव, समशेरनगर, गया।

—"गृहस्थ-धर्म" की भाषा सरल हिन्दी है। इसके पढ़नेसे मालूम होता है, कि आपने गम्भीरताके साथ धर्मका प्रचार किया है।

२१७—श्री देवेन्द्र प्रसाद, थियोसोफिकल हरिजन, इण्डस्ट्रियल स्कूल, पटना।

—"गृहस्थ-धर्म" पुस्तक हमारे स्वतन्त्र देशको प्राचीन सभ्यता सिखाकर उन्नति पथपर ले जा रही है। इसके द्वारा प्रत्येक मानव अपने जीवनको सुधार सकता है।

२१८—श्री रामप्रसाद, कमल बिगहा, हरनौत, पटना।

—"गृहस्थ-धर्म" पुस्तकको पढ़कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ, वर्तमान युगमें ऐसी चीजोंकी आवश्यकता है। आपने इस पुस्तक द्वारा लोगोंके चिरकालके अन्धकारको दूरकर हिन्दू धर्मकी रक्षा की है। इसकी प्रशंसा करना सूर्य्यको दीपक दिखाना है।

२१९—श्री विश्वनाथ त्रिपाठी, जेनरल औकारगली, पो० बोकारो, जिला हजारीबाग।

—मैंने आपके 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़ा और इससे बड़ा प्रभावित हुआ। मैंने प्रतिज्ञा की है कि आमरण इस पुस्तकमें बताये हुए मार्गपर चलूंगा।

२२०—श्री मुरलीधर शर्म्मा, बेन।

—आपने इस पुस्तकको छापकर भारतके गृहस्थोंकी धार्मिक प्रवृत्ति बृद्धिगत की है।

२२१—श्री कन्हाईराम, बिहारशरीफ, पटना।

—आपने 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक रचकर गृहस्थोंकी बड़ी भलाई की है। आपका प्रयत्न सराहनीय है।

२२२—श्री उपेन्द्रनाथ राय, मो० मौव, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' में गृहस्थोंके लिए कर्म, धर्मकी शिक्षा है। अतः गृहस्थोंकी ओरसे आपको शहस्त्रों धन्यवा[illegible]

२२३—श्री रामेश्वर महतो, पोस्ट, मोकाम रहुआ, पटना।

—"गृहस्थ-धर्म" को पढ़कर मेरा दिल आनन्द सागरमें तैरने लगा। उक्त पुस्तक हर गृहस्थके लिए [illegible]

२२४—श्री सुमेशचन्द्र सिंह, ताड़र, भागलपुर।

—आपका 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक बड़ा ही सुन्दर तथा रोचक है। इससे हर मानवको शिक्षा प्राप्त हो सकती है।

२२५—श्री शिवालय सिंह, मो० पठपर, गंगापुर, पोस्ट दलासगंज, गया।

—बहुत हर्षकी बात है कि आपने गृहस्थोंको 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक द्वारा उपदेश रूपी अमृत पान कराया है। इस उपदेशके द्वारा, गृहस्थोंका आत्म-विकास होता है।

२२६—श्री जमुना प्रसाद सिंह, नन्दलालाबाद पुनपुन, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' सबको पढ़ना जरूरी है। उक्त पुस्तकसे सभी मानव उन्नत जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

२२७—श्री दिनदयालु सिंह, टेहरी, जयपुर गया।

—'गृहस्थ-धर्म' से सभी तरहका ज्ञान प्राप्त होता है। यह बहुत हितकर है।

२२८—श्री लक्ष्मीनारायण सुखपुजनराम, विहटा, पटना।

—आपका जीवन उपकारमय है। आपने 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक बनाकर मनुष्य मात्रकी भलाई की है। ईश्वरकी भारतवर्ष पर निश्चय ही कृपा है, जिससे आपके समान श्रेष्ठ मनुष्य इस पवित्र भूमिपर जन्म लेते हैं!

२२९—असीम आनन्द।

—गृहस्थ-धर्म को पढ़कर इतनी प्रसन्नता हुई कि मैं मानो आनन्दके सागरमें गोते लगाने लगा। मेरे अन्तःकरण में सहसा यह ध्वनि प्रतिध्वनित हो रही है, कि आपके सदृश्य आदर्श पुरुष इस देशमें जन्म लेते रहें, जिससे हमारे इस देशका उत्थान हो सके।

—श्री आनन्द प्रसाद, मोसिनपुर, फतुहा, पटना।

२३०—सराहनीय कार्य।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक प्रकाशित कर आपने वास्तवमें हम गृहस्थोंकी वर्तमान समस्याका हल करनेमें योगदान दिया है। वर्तमान समयमें हमें ऐसी ही पुस्तकोंकी आवश्यकता है। आपने मानवोंके हितके लिए जो प्रयास किया है, वह अत्यन्त सराहनीय है। गृहस्थ आपकी इस पुस्तकको पढ़कर अपरिमित लाभ उठा रहे हैं, मेरा विश्वास है कि इस पुस्तकके माध्यमसे हमारा गार्हस्थ-जीवन सुखी बन सकेगा। आशा है, आप इस लोकोपयोगी कार्यमें सदैव तल्लीन रहेंगे।

—श्री हरिहर प्रसाद, भोभी, दामोदरपुर, पटना।

२३१—समाजकी भलाई।

—मैं इस पुस्तकसे अत्यन्त प्रभावित हुआ हूँ। पुस्तकके सदुपदेशोंसे समाजकी निश्चित रूपसे भलाई होगी।

—कुँवरसिंह, पो० मऊ, गया।

२३२—पुस्तकके गुणोंसे मुग्ध ।

—गृहस्थ-धर्म का अध्ययन किया । इसके गुणोंने मुझे अत्यन्त मुग्ध कर दिया । मैं निःसंकोच कह सकता हूँ कि आपका यह ग्रंथ हिन्दुओंके धर्म-ग्रंथोंमें अग्रगण्य स्थान पा सकता है । इससे जनताकी अवश्य ही भलाई होगी । इस कार्यके लिए भगवान आपको सदैव सुखी रखें, जिससे आपके द्वारा विश्व-कल्याण होता रहे ।

—यमुना सिंह, ग्राम जैतिया, पो० चेरकी, गया ।

२३३—विश्वके लिए कल्प-वृक्ष ।

—पुस्तकका अध्ययन करनेपर मैं इस नतीजेपर पहुंचा हूँ कि यह 'गृहस्थ-धर्म' सारे संसारके लिए कल्प-वृक्ष है ।

—रामदयाल राय, ओईयारा, वीर, पटना ।

२३४—समाजका सुधार ।

—मेरा विश्वास है कि 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको पढ़कर मानव-समाज सुधर सकता है ।

—महादेव भक्त, सतपुरा, मुजफ्फरपुर ।

२३५—उन्नति-पथ-प्रदर्शक ।

—ग्रामीण जनता 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर उन्नतिके पथपर अग्रसर हो रही है । यह अनुपम ग्रंथ प्रत्येक गृहस्थ को सदैव अपने पास रखना चाहिये ।

—जनार्दन पाण्डे, वरनी, मसौढ़ी ।

२३६—गृहस्थोंको नव-जीवन प्राप्त ।

—'गृहस्थ-धर्म' हम गृहस्थोंको नवीन जीवन प्रदान कर रही है । इस पुस्तकको पढ़कर धर्म-विहीन मानव धर्माचारी बन रहे हैं । इस पुण्य कार्यके लिए ग्रामीण जनता आपको मुक्तकंठसे धन्यवाद दे रही है ।

—कृष्णानन्द शास्त्री, ग्राम वहबीघा, पो० वोन्दा, पटना ।

२३७—संसारके मनुष्योंका कल्याण ।

—मैं कह सकता हूँ कि इस पुस्तकके अध्ययनसे और इसके सदुपदेशोंको अपने जीवनमें उतारनेसे सारे संसारके मनुष्योंका कल्याण हो सकता है । इस ग्रंथके प्रचारसे आपकी ख्याति भी बढ़ती जायगी ।

—श्यामसुन्दर द्विवेदी, रानीपुर, बेगमपुर, पटना ।

२३८—जनतामें हलचल ।

—'गृहस्थ-धर्म' ने हमारे इलाकेकी जनतामें हलचल पैदा कर दी है । हिन्दू समाजके लिए तो यह ग्रंथ [illegible] आवश्यक है ।

—प्रयाग महतो, गांगीपुर, राजगीर, पटना ।

२३९—धर्मकी रक्षा ।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकसे धर्मकी रक्षा होती है। ऐसे ग्रंथसे आपने मानवोंका कल्याण किया है। गृहस्थ चाहें, तो इसे पढ़कर अपने आपको बहुत कुछ सुधार सकते हैं।

—रामवृक्ष प्रसाद, धोबिया कालापुर, सहीसोपुर, पटना ।

२४०—गृहस्थ-जीवनकी जानकारी ।

—'गृहस्थ-धर्म' से मानवोंका उत्थान होता है। पुस्तक रमणीक एवं स्वनाम-धन्य है। इस ग्रंथसे गृहस्थ-जीवनकी पूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। इसे अपनाकर प्रत्येक गृहस्थको सद्‌गुणी बनना चाहिये।

—गौरीप्रसाद राय, जानीडीह, घोघा, भागलपुर ।

२४१—ऐसी पुस्तक नहीं छपी थी ।

—आजतक ऐसी सुन्दर पुस्तक नहीं छपी थी। आज जब कि धर्मका सभी ओरसे पतन हो रहा है, ऐसे समयमें प्रचुर धन व्यय कर अथक परिश्रमके साथ ऐसी पुस्तक प्रकाशित कर गृहस्थोंको आपने सन्मार्ग पर चलनेकी प्रेरणा दी है। आशा है, भविष्यमें भी आप इसी तरह जनताकी सेवामें लगे रहेंगे।

—बालेश्वर शर्मा, परडौल, गया ।

२४२—उदारताका परिचय ।

—ऐसी बेजोड़ पुस्तक प्रकाशित कर आपने अपनी उदारताका परिचय दिया है। इस पुस्तकसे निश्चय ही मानव जाति और पशुओंका भी कल्याण होगा।

—सुखदेव सिंह, बेलागंज, गया ।

२४३—देशकी महान सेवा ।

—'गृहस्थ-धर्म" द्वारा आपने गृहस्थोंको अपने धर्म और कर्त्तव्य-पथ पर आरूढ़ होनेकी शिक्षा दी है। इस कार्यसे सचमुच देशकी महान सेवा हुई है। इस पुस्तकसे प्रत्येक मानवको अपने धर्म पर चलनेमें सहायता मिल सकती है।

—रामप्रवेश शर्मा, रसतपुर, विन्द, गया ।

२४४—नये जीवनका संचार ।

—इस पुस्तकसे गृहस्थ धर्मावलम्बी बन रहे हैं। आपका यह दान अमृत-तुल्य है, जिससे गृहस्थोंमें नये जीवनका [संचार हो] रहा है।

—कुन्दनलाल श्रीवास्तव, इमली महादेव, मिर्जापुर ।

२४५—देशके कोने-कोने में ।

—आपकी बहुमूल्य किताब 'गृहस्थ-धर्म देशके कोने-कोने में विख्यात हो रही है । पुस्तकके गुणोंसे प्रभावित होकर गृहस्थोंका जीवन पुनः जागृत हो रहा है ।

—रामस्नेही प्रसाद, हिलसा, पटना ।

२४६—गृहस्थोंकी आत्मा ।

—इस पुस्तकका प्रत्येक विषय अध्ययन करने योग्य है । पुस्तककी अधिक क्या प्रशंसा की जाय, इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि वास्तवमें यह पुस्तक गृहस्थोंकी आत्मा है । इसे प्रत्येक कुशल गृहस्थको अवश्य पढ़ना चाहिये और नित्य इसके एक-एक नियम पर चलकर अपने जीवनको सफल बनाना चाहिये । इस पुस्तक द्वारा आपने गृहस्थोंमें प्राणों का संचार किया है ।

—मन्त्री, सुभाष पुस्तकालय, हिलसा, पटना ।

२४७—नवीन पुस्तक ।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक सर्वत्र ख्याति पा रही है । आज तक इस तरहकी पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई थी । इस पुस्तकको छापकर आपने मानवोंको नव-जीवन प्रदान किया है । परमात्मा आपको दीर्घायु रखें ।

—रामदेव सिंह यादव, हलधरपुर, आटासराय, पटना ।

२४८—ग्रामवासियोंका लाभ ।

—आपकी किताब 'गृहस्थ-धर्म' से ग्रामवासियोंका असीम लाभ हो रहा है ।

—गुरुप्रसाद सिंह, ग्राम भोजफरा, पटना ।

२४९—सर्वत्र चमत्कार दिखला रही है ।

—'गृहस्थ-धर्म' सर्वत्र ही अपना अद्भुत चमत्कार दिखला रही है । यदि वास्तवमें जनता इसके सदुपदेशोंके अनुसार चले तो देशका बहुत बड़ा उपकार हो सकता है ।

—ललिताप्रसाद सिंह, पो० आटासराय, पटना ।

२५०—अतुलनीय ।

—यह एक अतुलनीय ग्रंथ है । नाम और गुण दोनोंमें ही यह अद्भुत है ।

—रामचरित्र शर्मा, सकरिया, चण्डी, पटना ।

२५१—अति हितकर ।

—गृहस्थ-संसारके लिए आपने जो 'गृहस्थ-धर्म' किताब छापी है, वह अति हितकर तथा उन्नति पथ-प्रद[illegible]

—जगेश्वर सिंह, ग्राम मानो, लखीसराय, मुंगेर ।

२५२—एक बड़ी कमीकी पूर्ति ।

--यह पुस्तक गृहस्थोंके लिए बड़ी लाभदायक है। आजतक गृहस्थोंके लिए इस तरहकी किताब नहीं छपी थी। इस समय देशवासियोंको दरअसल ऐसी ही किताबोंकी जरूरत है। आपने 'गृहस्थ-धर्म'को प्रकाशित कर एक बड़ी कमीकी पूर्ति की है। आपका कार्य महान है।

--कपिलदेव सिंह, मुरगांव, पटना।

२५३—जनताका ध्यान आकर्षित।

--यह कहा जा सकता है कि 'गृहस्थ-धर्म' से संसारकी महान क्षति-पूर्ति हो रही है। इस पुस्तक द्वारा जनताका ध्यान आपने अपनी ओर आकर्षित कर लिया है।

--रामरत्न ठाकुर, कोना, जोखिम, गया।

२५४—सबके लिए कल्याणकारी।

--इस पुस्तकको पढ़कर मुझे बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। यह मानव-मात्रके लिए कल्याणकारी है। प्रत्येक साक्षर व्यक्ति इससे शिक्षा ग्रहण कर सकता है। परमात्मा आपके परिश्रमको सफल बनावें।

--राधेश्याम शर्मा, जहानाबाद, गया।

२५५—अनुपम शिक्षा।

--'गृहस्थ-धर्म' देशके सभी सम्प्रदायके गृहस्थोंके लिए अति उपयोगी साबित हुआ है। इससे अनुपम शिक्षाएं मिलती हैं।

--ईश्वर प्रसाद, मई, हिलसा, पटना।

२५६—बार-बार पढ़नेकी इच्छा।

—यह पुस्तक देशकी उन्नतिमें निश्चय ही बड़ी सहायक सिद्ध हो रही है। इसे बार-बार पढ़नेकी इच्छा होती है।

--शिवनन्दन दत्त, रेल्हा, पटना।

२५७—शिक्षाप्रद।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक मानवोंके लिए उपयोगी सिद्ध हुई। इससे मानव समुदाय शिक्षा [illegible] रहा है।

—भारत प्रसाद, मोकाम-पोस्ट नरियारा, बिलासपुर।

२५८—मानवताका विकास ।

—"गृहस्थ-धर्म" पुस्तक एक मित्रके पास देखी । वह गृहस्थोंके लिए उपयोगी है । प्रत्येक घरमें ऐसी पुस्तकें रहनी चाहिए । इसके अध्ययनसे मानवताको विकास मिलता है । आप अपना विशाल हृदय रखते हुए भविष्यमें देश-सेवा में लगे रहेंगे ।

—जयदेव प्रसाद अग्रवाल, डाल्टेनगंज, पलामू ।

२५९—हिन्दुत्वकी रक्षा ।

—आपके द्वारा प्रकाशित "गृहस्थ-धर्म" पुस्तक हिन्दू समाजको गौर्वान्वित बनाकर हिन्दुत्वकी रक्षा कर रही है ।

—अविनाश सिंह, इस्लामपुर, गया ।

२६०—धर्मका परिचय ।

—आपकी "गृहस्थ-धर्म" पुस्तकको अध्ययन किया । यह पुस्तक अत्यन्त सुन्दर है । आज तक इस रूपकी पुस्तक नहीं प्रकाशित हुई थी । किन्तु देशकी आधुनिक दशाको देखकर आपने उसे उच्चस्तर पर ले जानेका उपाय सोचा तथा अपनी तीक्ष्ण बुद्धि द्वारा ऐसी किताबें रचीं, जिससे समस्त मानव अपने धर्मसे परिचित होने लगे हैं ।

—मन्त्री श्री रामपुस्तकालय, भतहर, पटना ।

२६१—मानव-जातिका कल्याण ।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक मानव-जातिका कल्याण करती हुई हिन्दुत्वकी रक्षा कर रही है । आपकी भेंट दुनियाको विकसित अवश्य करेगी ।

—मदन पाल सिंह, रांतू, रांची ।

२६२—गृहस्थ प्रकाश पा रहे हैं ।

—आपके द्वारा प्रकाशित "गृहस्थ-धर्म" पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है । इससे गृहस्थ प्रकाश पा रहे हैं ।

—शंम्भूशरण मिश्र, शाहगञ्ज, मऊ, गया ।

२६३—कोटिशः धन्यवाद !

—आपने गृहस्थोंको सदुपदेश प्राप्त करनेके लिये जो सुन्दर "गृहस्थ-धर्म" पुस्तक प्रकाशित किया है, उसके लिये कोटिशः धन्यवाद !

—नरेश प्रसाद, बबैली, गया ।

२६४—विश्वका गौरव !

—आपके द्वारा प्रकाशित "गृहस्थ-धर्म" पुस्तक आज विश्वको गौरवान्वित बना रही है। आजतक उपकारार्थ— किसीने भी इस तरहका ग्रन्थ नहीं लिखा था। आपने इस कार्यको पूर्त्ति कर भारतीय जनताको धर्म-शिक्षा दी, अतः कोटि धन्यवाद है।

—ब्रह्मदेव सिंह, परैया, गया।

२६५—लाभदायक पुस्तक।

—मैंने आपकी लिखी हुई "गृहस्थ-धर्म" पुस्तकको पढ़ा। यह पुस्तक गृहस्थोंके लिये लाभदायक है। इससे प्रत्येक गृहस्थको शिक्षा प्राप्त करना चाहिये। आपको परमात्मा शक्ति देवें, जिससे इसी तरहके मार्गों के आप अन्वेषण करते रहें।

—गया प्रसाद, गया।

२६६—चारों ओर गूंज रही है !

—आपकी पुस्तिका चारों दिशाओंमें गूंज रही है।

—अयोध्या दास, जनकपुर।

२६७—यथा नाम तथा गुणा !

—आपके द्वारा प्रकाशित "गृहस्थ-धर्म" पुस्तकको मैंने अध्ययन किया। अध्ययन करनेसे विदित हुआ, इस पुस्तकसे विश्वके मानव मात्रकी भलाई हो सकती है। आपने जो उक्त पुस्तकका नाम रक्खा है, वास्तवमें उसके गुण भी वैसे ही है। परमात्मा आपको शक्ति प्रदान करें, जिसमें आपके द्वारा जनताको धर्मोपदेश मिलता रहे।

—पं० हुमन्त प्रसाद शर्म्मा, अँवरईकला, विलासपुर।

२६८—पुस्तकसे लाभ !

…आपके द्वारा प्रकाशित "गृहस्थ-धर्म" पुस्तकको पढ़ा। यह जनताके लिये लाभप्रद है। मैं भी इससे लाभ उठाऊंगा।

—शिववचन प्रसाद, मुर्गांव, पटना।

२६९—बड़ी ही उत्तम।

…आपने जो पुस्तक लिखी है, वह बड़ी ही उत्तम है। आपने पुस्तकके रूपमें अमूल्य दान दिया है। आपकी —आप फल हो।

औ रहा है।

—साधूराम तिवारी, वोदरी, विलासपुर।

२७०—श्री आनन्द राम, मशौटी, गया।

—यह पुस्तक अत्यन्त सुन्दर है। जो व्यक्ति इस पुस्तकको पढ़ेगा और इसके मतानुसार चलेगा वह अवश्य ही स्वर्गका भागी बनेगा। इस पुस्तकमें अनेक अच्छे-अच्छे नियम हैं। इसके अतिरिक्त भजन और श्लोकोंने इसमें चार-चांद लगा दिये हैं।

२७१—श्री प्रकाश नारायण, मादाचक, पटना।

—आपके द्वारा प्रकाशित, 'गृहस्थ-धर्म' का अध्ययन करनेसे पता चला कि गृहस्थोंकी भलाईके लिए आपने सुन्दर ग्रंथ प्रकाशित किया है। इस निस्वार्थ सेवाके द्वारा प्रत्येक गृहस्थ सुयोग्य बन सकता है। कृपया देशके लिए ऐसी चीजोंकी खोज अवश्य करते रहें।

२७२—श्री रामदेव प्रसाद सिंह, नूरसराय, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तककी ख्याति दिनोदिन साहित्य-संसारमें बढ़ती ही जा रही है।

२७३—श्री राधेश्याम सिंह, पोखराम, मुंगेर।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' हर मानवके लिए हितकर है। यह प्रत्येक मनुष्यका पथ-प्रदर्शक है।

२७४—श्री रामप्रवेश शर्मा, गोरखरी, पटना।

—अत्यन्त हर्षकी बात है कि आपने जनताकी रक्षाके लिए यह धर्म-ग्रंथ लिखा है। आज पतनके समयमें इन्हीं चीजोंकी खोज थी। भगवानकी असीम कृपासेकी आपने इस क्षतिकी पूर्ति की है। 'गृहस्थ-धर्म' प्रकाशित होते ही उसकी खुशबू विश्वमें फैल गयी, और मानव-रूपी भ्रमर इसका रसास्वाद प्राप्त करनेमें समर्थ होते गये।

२७५—श्री ठाकुरप्रसाद भगत, एकचारी, भागलपुर।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तिका मानव धर्मको सुरक्षित रख रही है। आज ऐसी ही पुस्तकोंकी आवश्यकता है। आपका उज्वल यश भविष्यमें और भी प्रकाशमान होगा। मैं चाहता हूँ कि विश्वमें इस पुस्तकका बोलबाला हो। इस अमूल्य भेंट पर परमात्मा आपको चिरंजीवि बनायें।

२७६—श्री भरतलाल हेडमास्टर, बांसबिनौरी, रायपुर सिटी।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकका अवलोकन किया। आपकी यह पुस्तक सनातन धर्मावलम्बियोंके लिए अत्यन्त लाभप्रद है। आपका यह धर्म-प्रचारका महान कार्य सराहनीय है। मेरी प्रबल उत्कंठा है कि इस पुस्तकका अध्ययन कर लोगोंका ध्यान सनातनधर्मकी ओर आकर्षित करूँ।

२७७—श्री रामऔतार ठाकुर, सैदाबाद, गया।

—आपके यहाँसे 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक निकलती है। यह हिन्दू समाजके लिए अत्यन्त लाभप्रद है। हमें [illegible] है कि इस ग्रंथके द्वारा हिन्दू-धर्म उज्वल होकर रहेगा।

७

२७८—श्री जैकृष्ण प्रसाद, सार्वजनिक हिन्दू आर्य विद्यालय, बुनियादगंज, गया।

—आपके द्वारा प्रकाशित "गृहस्थ-धर्म" पुस्तक सुन्दर तथा मन-मोहक है। इसके सुन्दर लेख विश्वको धार्मिक-पाठ पढ़ा रहे हैं।

२७९—श्री रामचन्द्र तिवारी, कानपुर।

—आपके यहांसे जो "गृहस्थ-धर्म" पुस्तक निकली है, वह बड़ी ही सुन्दर, गृहस्थोपयोगी एवं कल्याणकारी है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि मैं भी इस पुस्तकके द्वारा अपने परिवारकी उन्नति करूं।

२८०—श्री देवचरण प्रसाद, सदीसोपुर, पटना।

—आपके द्वारा प्रकाशित "गृहस्थ-धर्म" हिन्दुत्त्वकी रक्षा करनेवाला महान ग्रन्थ है। गृहस्थाश्रमके लिए इस पुस्तकके सिवा और कोई पुस्तक उपयोगी है ही नहीं। इस पुस्तकको प्रत्येक आदमी समझ सकता है और इसमें बताये गये सरल तरीकों पर चल सकता है। आपने यह कार्य कर हिन्दू समाजकी महान सेवा की है।

२८१—श्री भगवान प्रसाद पाठक, काटनी, बिलासपुर।

—मैंने आपकी लिखी हुई "गृहस्थ-धर्म" पुस्तकको पढ़ा। यह गृहस्थोंके लिए बहुत ही शिक्षा-प्रद है।

२८२—श्री सरयू दत्त मिश्र, विथुन गढ़, हजारीबाग।

—आपकी "गृहस्थ-धर्म" पुस्तक सचमुच प्रशंसनीय है। आपने देशकी भलाईके लिए बहुत बड़ा काम किया है। परमात्मा आपको दीर्घायु रक्खें।

२८३—श्री सीताराम साहू, जानीडीह-घोघा, भागलपुर।

—"गृहस्थ-धर्म" पुस्तक निकाल कर आपने जनताकी बड़ी सेवा की है। आपके इस उपकारसे गृहस्थोंका भविष्य उज्ज्वल हो रहा है। यह पुस्तक गृहस्थोंको नव-जीवन प्रदान कर रही है।

२८४—श्री जीवनन्दन पाण्डेय, अमीन सर्वे औफिस डुमरांव, शाहाबाद।

—हमारे हिन्दू समाजको तरक्कीके मार्ग पर ले जानेवाला यह अद्वितीय ग्रंथ है। इससे समाज तथा राष्ट्र दोनोंका नैतिक स्तर ऊंचा उठनेमें मदद मिलती है।

२८५—श्री दीनबन्धु सिंह, वाजितपुर, टेकारी, गया।

—आपने "गृहस्थ-धर्म" पुस्तक छापकर जनताको धर्मकी शिक्षा दी है।

२८६—श्री हृदयलाल पटेल, बनहर-रायगढ़, बिलासपुर।

—आपने जो 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक प्रकाशित की है, वह असभ्य नागरिकोंको सभ्य बनानेमें बड़ी सहायक हो

२८७—श्री जहरूराम, जतरी-पुसौर, रायगढ़ ।

—"गृहस्थ-धर्म" पुस्तक गृहस्थोंके लिए लाभदायक है । इससे उज्ज्वल जीवन प्राप्त हो सकता है ।

२८८—श्री विरेन्द्र प्रसाद सिंह, पौआवा-हांसडीह, पटना ।

—आपने 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकका प्रचार किया है । यह गृहस्थोंके लिए लाभदायक है और साथ ही बच्चोंके लिए भी शिक्षा-प्रद है ।

२८९—श्री दशरथलाल मिश्र, सोनसरी, नरियारा, बिलासपुर ।

—वर्तमान समयमें जबकि धर्म लुप्त हो रहा है, 'गृहस्थ-धर्म' जैसी पुस्तकोंकी परम आवश्यकता है ।

२९०—श्री जगदीश प्रसाद, केवई-शाहजहांपुर, पटना ।

—आपकी "गृहस्थ-धर्म" पुस्तकको देखा । हृदय आनन्द-समुद्रमें डूबने लगा । आजतक इस ढंगकी पुस्तक नहीं छपा था और आज इन्हीं चिजोंकी आवश्यकता भी है । परमात्मा आपको दीर्घायु बनावें ।

२९१—श्री श्याम विहारी प्रसाद सिंह, सिदौरा-राजगीर, पटना ।

—आपने जो "गृहस्थ-धर्म" पुस्तक प्रकाशित की है, उससे मानव मात्रका कल्याण हो रहा है । वह पुस्तक बहुत ही अच्छी है । मैं भी उक्त पुस्तकसे अपना जीवन-सुधार करनेकी चेष्टा करूंगा ।

२९२—श्री कृष्णदेव सहाय, रामडीह-परैया, गया ।

—आपके द्वारा प्रकाशित "गृहस्थ-धर्म" पुस्तक पढ़नेसे निज-धर्म च्युत गृहस्थको सुन्दर उपदेश प्राप्त होता है । इस पुस्तक द्वारा कितने ही युवक उन्नति-पथके अनुयायी बन रहे हैं । मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि इस पुस्तकके उपदेशोंको ग्रहण कर आपकी मर्यादाको चिरस्मरणीय रक्खूंगा ।

२९३—श्री चन्द्रिका पाण्डेय, खलारी, पलामू ।

—मैंने आपके द्वारा प्रकाशित "गृहस्थ-धर्म" पुस्तक पढ़ी । बड़ी ही अनोखी मालूम पड़ी । आज तक जनताके लिए इस ढंगकी पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई थी । यह जनताकी भलाईके लिए बड़ी ही अनुपम पुस्तक सिद्ध हुई है । परमात्मा आपको दीर्घायु रक्खें ।

२९४—पण्डित हितनारायण द्विवेदी, प्र० अ० प० सोलहाग-मखदमपुर, गया ।

—मैंने आपके द्वारा संग्रहित "गृहस्थ-धर्म" पुस्तकको पढ़ा । यह पुस्तक मानव उपकारी है । इस[illegible] जितनी भी की जाय, थोड़ी होगी ।

सम्मतियाँ और उद्‌गार !

२९५—श्री सुखीराम पाठक, मोकाम-पोस्ट, विरकोना, जिला बिलासपुर ।

—"गृहस्थ-धर्म" नामक पुस्तक बिना मूल्य वितरण कर आप अक्षय पुण्य लाभ कर रहे हैं । मैं तो आपके इस कार्यसे अत्यधिक प्रभावित हुआ हूँ ।

२९६—श्री शिवकुमार सिंह, राजरंका, पलामू ।

—आपके द्वारा प्रकाशित "गृहस्थ-धर्म" पुस्तक मुझे किसी धर्म परायण महापुरुषके यहां पढ़नेको मिली ! थोड़ा ही अध्ययनके बाद चित्त गद्‌गद् हो उठा । सहस्त्र धन्यवाद है कि आपने इस घोर कलिकालमें हमारी माता-बहनोंको गृहलक्ष्मी बननेकी शिक्षा दी है तथा अधोगति प्राप्त गृहस्थोंको धर्म-मार्ग पर चलनेका उपदेश दिया है । आपके उपदेश द्वारा बहुत तो सुधर गये और बचे हुए अवश्य ही सुधर जायेंगे । हमें विश्वास है कि पुस्तकके उपदेशोंका प्रभाव सभी पर पड़ेगा ।

२९७—श्री दीनबन्धु महतो, मा० लो० प्रा० स्कूल, पलामू ।

—मैंने आपके द्वारा प्रकाशित "गृहस्थ-धर्म" पुस्तकको देखा । सचमुच यह ग्रन्थ प्रशंशनीय है । इसके द्वारा राष्ट्रके समस्त मानवोंका उत्थान अवश्यम्भावी है । अतः प्रत्येक मनुष्यको इसका अध्ययन आवश्यक है । गृहस्थ-जीवनका मार्ग उक्त पुस्तकमें सुचारू रूपसे दिया गया है । अतः आपकी प्रशंसा मुक्त स्वरसे विश्वमें गायी जाती है ।

२९८—श्री सरयू यादव, औरियाचक-डबूर, गया ।

—आपकी "गृहस्थ-धर्म" पुस्तक वास्तवमें गृहस्थोंको लाभदायक है । इस किताबको पढ़कर कितने ही गृहस्थ अच्छे काम करने लग गये हैं । आपको धन्यवाद है ।

२९९—श्री कैलास प्रसाद पोस्टमैन, पेशौर, पटना ।

—आपके द्वारा प्रकाशित "गृहस्थ-धर्म" पुस्तक वास्तवमें उपयोगी है । इस किताबको देखकर मैं बड़ा प्रभावित हुआ । आजकल इन्हीं चीजोंकी खोज दुनियाको है । आपने इस कार्यसे देशकी रक्षा की है । आपको धन्यवाद है ।

३००—श्री दयानन्द श्रीवास्तव, हजारीबाग ।

—"गृहस्थ-धर्म" पुस्तकका अध्ययन किया । इसके ओजपूर्ण लेखोंने मुझे मन्त्र-मुग्ध कर दिया ।

३०१—मन्त्री राष्ट्रीय हिन्दी पुस्तकालय-बड़हरी, राजगृह ।

—आपके द्वारा प्रकाशित "गृहस्थ-धर्म" पुस्तककी ख्याति दिन-प्रति-दिन चन्द्रमाके समान बढ़ती ही जा रही है । ... तेशील और उन्नत बनानेके लिए इस प्रकारकी पुस्तक परमावश्यक है ।

३०२—श्री गंगाधर शास्त्री, जहानाबाद, गया।

—आपकी "गृहस्थ-धर्म" पुस्तक देखकर मुझे प्रसन्नता हुई। आप ऐसे धर्मानुरागी पुरुषों द्वारा इस तरहकी पुस्तक निकालना जन-कल्याणके लिए अति उत्तम है।

३०३—श्री जगुमहतो, मदनपुर, एकंगरसराय, पटना।

—आपके द्वारा संग्रहित 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको देखा। पढ़नेसे मालूम हुआ कि यह गृहस्थोंके लिए विशेष उपयोगी है। मुझे तो विदित होता है कि आपने अपनी बुद्धिके द्वारा ग्रंथोंका मथन कर उसका सारभाग निकाल गृहस्थोंके आगे रखा है। आप कितने धन्य हैं, जो इतना बड़ा कार्य कर देशके गृहस्थोंको धर्म-मार्ग की ओर प्रवृत्ति कर रहे हैं!

३०४—श्री शिवबालक प्रसाद, फ्रुट गार्डन सुपरवायजर, गवर्नमेंट हाउस, पटना।

—मैंने एक व्यक्तिके पास अचानक 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको देखा। मुझे इसमें बहुत दिलचस्पी मालूम हुई। हम गृहस्थोंको ऐसी पुस्तकका मनन करना चाहिये, और उसपर आचरण रखकर अपने परिवारको उन्नत तथा शांति बनाये रखनेकी कोशिश करनी चाहिये। आपको धन्यवाद है, जो ऐसी किताब निकालकर विश्वकी सेवा कर रहे हैं।

३०५—श्री शुकदेव प्रसाद, कुकरिया, दामोदरपुर।

—हमने आपकी लिखी हुई 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको पढ़ा। उसमें गृहस्थ-जीवन कैसे बिताना चाहिए, गृहस्थाश्रम का क्या लक्ष्य है, इसपर सुन्दर विचार प्रगट किया गया है। आप धन्य हैं, जो गृहस्थोंको आदर्श बनानेकी चेष्टामें सदैव लगे रहते हैं। मुझे तो आपके इस महान कार्यको देखकर गीताका उपदेश याद आता है जो भगवान श्रीकृष्णचन्द्रके मुखार-विंदुसे आविर्भाव हुआः—यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत ॥ अभ्युत्थान धर्मस्य, तदा त्मांन सृजा मृयम् ॥ ऐसा जान पड़ता है कि आपने मनुष्यरूप धारण कर गृहस्थ-धर्मका उपदेश करनेके लिए अवतार धारण किया है।

३०६—श्री दामोदर सिंह, मा० वि० मानो, लक्खीसराय, मुंगेर।

—आपके यहांसे जो 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक प्रकाशित होती है, वह अनुपम है। इसके द्वारा मानव मात्रका कल्याण हो रहा है। आपने यह महान कार्य कर सच्ची देश-सेवा की है। इस कार्यसे मानवोंका शीघ्र उत्थान सम्भव है।

३०७—श्री दिनेश प्रसाद सिंह, बटासार, तेलपा, गया।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' की प्रशंसा चारों दिशाओंमें गूंज रही है। यह पुस्तक गृहस्थोंके लि[illegible] अत्यधिक लाभप्रद है। अनेक गृहस्थ इसके द्वारा लाभ-उठा रहे हैं। आपको अनेक धन्यवाद है जो इस भयङ्कर [illegible] के गालसे छुड़ानेके लिए अपने तन-मन एवं धनसे सहायता कर जन-कल्याणके लिए धर्मकी गाथायें लिखकर ज[illegible] कर रहे हैं।

३०८—श्री केशव प्रसाद, रँगनियांबाग, सदीसोपुर पटना।

—आपने जो पुस्तक लिखी है, वह समाज-सुधारके लिए अमूल्य रत्न है। प्रायः सभीका कहना है कि 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हुई है। ऐसी किताबें गृहस्थोंको अवश्य पढ़नी चाहिए।

३०९—श्री यमुना प्रसाद, काला भगवानपुर-सदीसोपुर, पटना।

—मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक पढ़कर इसके बताये हुए मार्गसे चलकर अपना जीवन बिताऊंगा। अतः हार्दिक इच्छा है कि इस किताबका अध्ययन करूं।

३१०—श्री व्रजेन्द्र प्रसाद सिंहा, भगवानपुर, पोस्ट बेत, पटना।

—मैंने आपके द्वारा प्रकाशित एवं देश रक्षार्थ विना मूल्य वितरित 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको पढ़ा। यह पुस्तक पूर्णतया मनुष्य जीवनकी अपनी शक्ति है। इस पुस्तकके नाम और गुण दोनों ही शिक्षा-प्रद हैं।

३११—श्री सरकार शरण, अनीसाबाद, पटना।

—आपने जो 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक लिखी है, वह मानव समाजके लिए बहुत हितकर सिद्ध होती है। आप जैसे महानुभावोंसे हम ऐसी ही आशा रखते हैं। मैंने अपने मित्रसे मांगकर उस किताबको पढ़ा। हमें बहुत अच्छी लगी। उसकी जितनी भी तारीफ हो, बहुत ही थोड़ी होगी। उसकी प्रशंसा करना सूर्य्यको दीपक दिखाना है।

३१२—श्री रामेश्वर प्रसाद, पटना।

—आपके द्वारा प्रकाशित "गृहस्थ-धर्म" अत्यन्त शिक्षा-प्रद हैं। इसमें विभिन्न विषयों पर सुन्दर विचार प्रकठ किये गये हैं, जिसे पढ़कर आजकलके पथ-भ्रष्ट मानव अपनेको नव-जीवन देने लगे हैं। मुझे भी हार्दिक इच्छा है कि इसी पुस्तकसे जीवन बिताऊं। मैं भगवानसे प्रार्थना करता हूँ कि आपको पूर्ण शक्तिशाली बनावें, जिससे आप सदैव देश-सेवा को अपनाकर मानव-जातिका कल्याण करते रहें।

३१३—श्री जितेशचन्द्र गुप्त, कदम कुंआ, पटना।

—आपके द्वारा लिखित "गृहस्थ-धर्म" पुस्तकके द्वारा हिन्दू समाजका बड़ा ही उपकार हो रहा है।

३१४—श्री कन्हैलाल, ब्राह्मण महासभा, मो० गुड़ी, पो० नरगौड़ा, जिला बिलासपुर।

—आज आपके धर्म-कार्यसे भारत देश पुनः पल्लवित होता जा रहा है। गृहस्थ मुक्त स्वरसे इस पुस्तकको —आप- [illegible]कर यही कहते हैं कि आज भी भारतमें एक ऐसा कर्मवीर एवं धर्मनिष्ठ पुत्र है, जो विश्वको कर्तव्यच्युत पथसे रहा है। [illegible]। आपके इस पुस्तकको देखकर मैं आनन्द-मग्न हो उठा। यथार्थ ही यह पुस्तक आजकलके युगमें अपमानित औ[illegible] रक्षाके लिए—ज्ञान रूपसे मानव जातिके सामने प्रगट हुआ है। इसके बारेमें विशेष कहना सूर्य और दीपक [illegible]गा।

३१५—श्री भूदेव प्रसाद मण्डल, डोभी-ताड़र, भागलपुर ।

—मैंने आपके द्वारा संग्रहित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को देखा । यह पुस्तक पूर्ण शिक्षा-प्रद है ।

३१६—श्री द्वारिकालाल सिरनावाँ, हरनोच, पटना ।

—"गृहस्थ-धर्म" से गृहस्थोंको ही नहीं, बल्कि और जनोंको भी अध्ययनसे प्रथम आनन्द पश्चात् उसके मार्गसे चलनेपर सुन्दर जीवन दान मिलता है । इसके अध्ययनसे हम अपना ही नहीं, बल्कि अपने परिवारोंका जीवन भी सुधार सकते हैं ।

३१७—श्री रामकृष्ण तिवारी, मोकाम सामस, पोस्ट वरविघा, जिला मुंगेर ।

—आपने देश सेवाके लिये असार-संसारमें तथा इस दुष्कालमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्षोंके मूल विद्या दान देनेका परिश्रम किया है । ऐसा शायद ही किसी व्यक्तिसे हो सकता है । आपके लोकप्रिय "गृहस्थ-धर्म" के द्वारा अनेक मानव उपकार पा रहे हैं ।

३१८—श्री शौहराय चौधरी, पोस्ट रूपरुपुर, पोस्ट बुनियादगञ्ज, जिला गया ।

—आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक आजकल भारतके कोने-कोनेमें अमूल्य जीवन गृहस्थोंको प्रदान कर रही है । इसे पढ़नेसे अन्धकारमें पड़े हुए मानवको ज्ञानदीप द्वारा उनके हृदयको प्रकाश पहुँचता है ।

३१९---श्री नागेश्वर प्रसाद सिंह, मोकाम वीरपुर चौगाँवा, पोस्ट नौवतपुर, जिला पटना ।

—"गृहस्थ-धर्म" को पढ़ा । निश्चय ही यह मनुष्योंके लिये अत्यन्त उपयोगी है । इस पुस्तकको पढ़नेसे संसार क्या है, इसका ज्ञान प्राप्त हो जाता है ।

३२०---श्री बालेश्वर प्रसाद यादव, मोकाम मशदाहा, पोस्ट धनौरा, जिला भागलपुर ।

—आपने सनातन-धर्मके प्रचारके लिये जो "गृहस्थ-धर्म" लिखा और बिना मूल्य वितरण किया है, उससे देशका बड़ा ही उपकार हो रहा है । आपकी ख्याति दिग्दिगान्तर प्रशस्त हो जानेपर हमें आशा है कि मानवता उच्च स्थानपर पहुँच जायगी । ईश्वर इस सत्पथमें आपको बढ़नेका सामर्थ्य दें ।

३२१---श्री जितेन्द्र नाथ, मोकाम पोस्ट ताड़र, भागलपुर ।

—हमें आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तकको देखकर पूर्ण प्रसन्नता हुई। मैंने अपने मित्रोंसे इसकी बड़ी प्रशं[illegible] मुझे पुस्तक देखनेपर पता चला कि यह ग्रन्थ वास्तवमें मानव-कल्याणकारी है ।

३२२—श्री गौतम, ग्राम पंचायत कार्यालय, पथरौरा राजगीर, पटना, बिहार।

—आपके द्वारा प्रकाशित "गृहस्थ-धर्म" संसारको महान आनन्द प्राप्त करा रही है। आप धन्य हैं, जो धर्म-शास्त्रोंका मथन कर उसका सार भाग विश्वके सामने रखकर जन-समूहको धर्म-मार्ग दिखला रहे हैं।

३२३—श्री सिद्धेश्वर पाण्डे, मो० राजड़ पो० खनवां, गया।

"गृहस्थ-धर्म" जन-समूहके लिये भाग्य-विधाता हो रहा है। आप धन्य हैं, जो देशके लिये इतना सुन्दर उपाय सोचकर देशवासियोंको डूबनेसे बचानेमें सफलीभूत हुए। मैंने आपकी इस पुस्तकको पढ़ा और जनसमूहके बीच सुनाया। सभीने मुक्त-कण्ठसे आपको धन्यवाद दिया।

३२४—श्री पारसनाथ सिंह, ओलीपुर।

—हमें यह सुनकर परम हर्ष हुआ है, कि आप धर्म प्रचारार्थ एवं व्यभिचारका अन्त करनेके ध्येयसे निःशुल्क "गृहस्थ-धर्म" का वितरण करते हैं। जिस पुस्तकको अमीर, गरीब सभी पढ़ सकें, और संसारके मानव अधर्मके मार्गसे हटकर धर्मके रास्ते पर चले आवें, तथा नास्तिक लोग भी अपनी नास्तिकता पर पश्चाताप करेंगे और ईश्वरोपासनामें तन-मनसे लीन हो जायेंगे। हमने भी इस पुस्तक का अध्ययन किया, और प्रतिज्ञा कर अपना जीवन सुधार लिया। मैं हार्दिक अनुमति देता हुआ परमात्मासे करबद्ध प्रार्थना करता हूँ कि आपको इस महान कार्यके बदले दीर्घायु बनावें, ताकि आपके द्वारा विश्वके मानवका कल्याण होता रहे।

३२५—मंत्री सोसलिष्ट पार्टी, फतुहा, पो० फतुहा, जिला पटना।

—यह बहुत हर्षकी बात है कि आपने अपने देशके सांस्कृतिके फैलानेके लिए "गृहस्थ-धर्म" नामक पुस्तक भेंट की, आपको धन्यवाद है। मैं भगवानसे प्रार्थना करता हूँ आपको इस कार्यमें सफल बनावें। हमें आपकी महान उदारता और लोकप्रियतासे पूर्ण प्रसन्नता है।

३२६—श्री वासुदेव सिंह, सहायक शिक्षक लो० मि० स्कूल, मो० तारगीर, पो० वंश-गोपाल, जिला गया।

—आपके द्वारा प्रकाशित "गृहस्थ-धर्म" अनायास हमें पढ़नेको मिली। हमने गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया। निःसन्देह यह पुस्तक उच्चतम है। विशेपकर गृहस्थों तथा वैदिक धर्मावलम्बियोंके लिए अत्यन्त उपयोगी है। उसमें धर्मके एक-एक पहलू पर विचार किया गया है। साथ ही गृहस्थोंको उपदेश देकर उनको सन्मार्ग पर लानेका विचार किया —आजै। मुझे विश्वास है कि गृहस्थ-समाज इसे अवश्य अपनानेकी चेष्टा करेंगे, और विशेप टिप्पणियाँ तथा मुख्य चीजों यही कहते है कर उसे काममें लावेंगे। मेरी हार्दिक इच्छा है कि इस पुस्तकके द्वारा स्कूलोंमें पढ़नेवाले ग्रामीण बच्चोंको अ.। आपके इसँगा, और जहांतक हो सके, आपके परिश्रमको सफल बनाऊँगा।

रक्षाके लिए-

गा।

३२७—श्री शिवशंकरलाल शराफ, मो० पोस्ट, वलौदा, जिला बिलासपुर।

—मैं आपके यहांका "गृहस्थ-धर्म" पुस्तक पढ़कर बहुत आनन्दित हुआ, और वह पुस्तक सदैव पढ़ने तथा हिन्दू समाजके पढ़ाने लायक है।

३२८—श्री बनारसी प्रसाद, तुलसीपुर, पो० सनोखर बाजार, जिला भागलपुर।

—आपने गृहस्थोंकी बड़ी भलाई की। यह पुस्तक गृहस्थोंके लिये सदुपयोगी है। आशा है कि आप इसी प्रकार जनताकी भलाईमें समर्थ रहेंगे।

३२९—श्री मदनलाल, मो० मोदीकटरा, पटना सिटी।

—आपके द्वारा प्रकाशित "गृहस्थ-धर्म" गृहस्थ जीवनके लिए अत्यन्त सदुपयोगी है। मैंने आपके संग्रहित पुस्तक की जोरदार प्रशंसा सुनी, और आँखोंसे देखनेके बाद पता भी चला कि वास्तवमें प्रशंसनीय है। आपने अपने स्वतन्त्र देशमें गृहस्थ भाइयोंकी रक्षाके लिए एक महान वृक्ष रोपा है। इसकी छत्र-छायासे कितना आनन्द होता है, यह अकथनीय है। भगवान इसमें आपको सफल बननेका सामर्थ दें।

३३०—श्री रामदास सिंह, रतनपुर, पो० एकाचारी, जिला भागलपुर।

—आपके द्वारा "गृहस्थ-धर्म" नामक पुस्तक प्रकाशित होकर सनातन और वैदिक दोनों धर्मोंको सुशोभित कर रही है। यह गृहस्थोंके लिये अत्यन्त उपकारी है, इस पुस्तकके द्वारा लाखों भाई अपने धर्मको पहचान गये हैं, कितने तो उसे जीवनके लक्ष्य विषयोंको देखकर मुग्ध-से रहते हैं। आजतक ऐसी पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई थी।

३३१—श्री बलदेव पाण्डे कर्मकाण्डी, मोकाम-पोस्ट दीपनगर, पटना।

—आपके द्वारा परिशिष्ट प्रकरणके साथ छपा हुआ "गृहस्थ-धर्म" अत्यन्त मधुरतासे भरा हुआ है। यह अपने गुणोंके कारण विश्वके कोने-कोने में शोभायमान हो रहा है। इस पुस्तकके द्वारा आजकल हिन्दू सांस्कृतिकी रक्षा हो रही है। वास्तवमें इस हिन्दू धर्मका महान ग्रन्थ संग्रह कर हिन्दुत्त्वकी रक्षा की। हम इसके लिए परमपिता परमेश्वरसे बार-बार प्रार्थना कर आपको दीर्घायु एवं यशस्वी होनेकी प्रार्थना करते हैं।

३३२—श्री राधाप्रसाद सिंह, ग्राम रूञ्जी, पोस्ट मगैया, जिला शाहाबाद।

—मैंने आपकी संग्रहित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म'का अवलोकन किया। वर्तमान समयके लिए प्रत्येक आर्यको यह पुस्तक अपने पास रखना जरूरी है। अतः आप बार-बार इस पुस्तकको प्रकाश कर जनताकी सेवा करें।

३३३—श्री भगवती चरण यादव, मोकाम-पोस्ट चन्द्रपुर, जिला भागलपुर।

—मैंने आपके यहांसे निकलने वाली "गृहस्थ-धर्म" को पढ़ा, पढ़कर मुझे बड़ी शिक्षा मिली। आ[illegible] लिए यह अमूल्य ग्रन्थ है। इससे मानव समाजकी पूर्ण भलाई हो रही है। भगवान आपको इस शुभ[illegible]

३३४—श्री परमानन्द प्रसाद राय, मोकाम सुढ़ेरी, पोस्ट बुनियादगंज, जिला गया।

—आपके द्वारा प्रकाशित "गृहस्थ-धर्म" विदित होता है कि पतित गृहस्थको गड्ढे से निकालकर उच्च स्तर पर ले जानेका एक मात्र साधन है।

३३५—श्री गोस्वामी-रामचन्द्र अरण्य, मोकाम-पोस्ट आंती, जिला गया।

—मैं आपको धन्यवाद देता हुआ ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि आप सदैव सनातन धर्मको जीवित रक्खें, जिससे इस असार संसारके मानव सदैव धर्म परायण रहें। आपने अमूल्य परिश्रमके साथ यह जो मानव उपकारी "गृहस्थ-धर्म" प्रकाश किया है, इसके लिए परमात्मा आपको दीर्घायु रक्खें।

३३६—श्री कृष्णावतार प्रसाद, मोकाम बहोर विघा, पोस्ट बुनियादगंज, जिला गया।

—आपके द्वारा प्रकाशित "गृहस्थ-धर्म" पुस्तक गृहस्थोंके जीवन क्षेत्रको सफल बनानेका एकमात्र साधन है।

३३७—श्री तुलसी शर्मा, पोस्ट-मोकाम बुनियादगंज।

—आपका संग्रह किया हुआ, "गृहस्थ-धर्म" आजकलके युगमें गड्ढे में गिरे हुए गृहस्थोंको उठाकर फिरसे अपने धर्म पर चलनेकी शिक्षा दे रही है।

३३८—श्री रामेश्वर पण्डित, धोबिया काशीपुर, पोस्ट सदिसोपुर, जिला पटना।

—मैं कुशलताके साथ गृहस्थाश्रममें रहनेवाला एक गृहस्थ हूँ। लेकिन किसी भी धर्मको माननेवाला कोई भी व्यक्ति जबतक अपने धर्मका जानकार नहीं हो जाय तबतक वह उस धर्मको अपनानेकी इच्छा रखते हुए भी नहीं अपना सकता है।

आपकी "गृहस्थ-धर्म" पुस्तक यथार्थतः अपने गुणोंके कारण इस नामसे प्रसिद्ध है। इसकी लोकप्रियता दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जाती है। हर एक गृहस्थ उक्त पुस्तकको अपना जीवन सम झने लगे हैं और मेरी समझसे भी ठीक ही है। मेरी समझ तो यह है कि आज अगर 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक आपके द्वारा नहीं प्रकाश होता तो हिन्दू धर्मको कहीं भी स्थान नहीं प्राप्त हो सकता था। आपने इस कार्यको सिद्ध किया, इससे परमात्मा आपके मनोभावको पवित्र करे। इस कार्यके बदले आजीवन हिन्दू समाज आपका ऋणी रहेगा।

३३९—श्री सीताराम महतो, मो० दामातपुर, पो० मसौढ़ी, पटना।

—आपने जो गृहस्थ-धर्म, पुस्तक प्रकाश किया है, इससे हम गृहस्थोंको पुनर्जीवन प्रदान किया। आपने इसका ...र्म रखा, ठीक ही गृहस्थोंको अपने रास्ता पर लानेका यह अमूल्य ग्रंथ है। हम आशा करते हैं कि परमात्मा ...के गृहस्थ भी अपने रास्तेको इस पुस्तकके सहारे सम्हालनेका प्रयत्न करेंगे।

३४०—श्री हरि प्रसाद, मोकाम मङ्गला गौरी, पोस्ट धन्दचौरा, गया।

—आपके द्वारा प्रकाशित "गृहस्थ-धर्म" जनताकी सेवामें लगकर विश्वकी भलाई कर रही है। आप धन्य हैं, जो आजके युगमें, जबकि धर्मका पतन हो रहा था, ऐसी दशामें धर्म रक्षाके लिए अमूल्य परिश्रम लगाकर पुस्तक प्रकाश किया। इस पुस्तकसे मानवका कल्याण हो रहा है। आशा करता हूँ कि परमात्माकी कृपासे आपकी पवित्र भावना दिन-प्रति-दिन चन्द्रमाके समान प्रकाशमान होती रहे और आपके द्वारा मानव समाजका कल्याण होवे।

३४१—श्री राधेश्याम, मो० ताड़र, भागलपुर।

—आपके द्वारा प्रकाशित "गृहस्थ-धर्म" आजकल संसारके डूबते हुए धर्मकी रक्षा करनेके लिए तरणी बनकर आयी है। आपने इस ग्रंथको प्रकाश कर गृहस्थोंको ज्ञान-चक्षु प्रदान किया है। संसारके गृहस्थ-जन पढ़ेंगे और गार्हस्थ क्या है, इसका परिचय प्राप्त करेंगे। परमात्मा आपके परिश्रमको पल्लवित करें, ताकि आपके द्वारा मानवताकी पूर्ण रक्षा होती रहे।

आपने ज्ञानकी सरिता बहा दी है। 'गृहस्थ-धर्म' रूपी सरितामें स्नान करनेवाले सभी पवित्र हो जायेंगे।

आपको अनेक धन्यवाद है, जो इस कलिकालमें भी ऐसा सुन्दर रत्न प्रदान किया।

३४२—श्री कामता प्रसाद मिश्र, मो० पो० लखीमपुर, खीरी।

—मुझे आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म'के अवलोकनका सौभाग्य प्राप्त हुआ। वास्तवमें आपकी यह पुस्तक देशका सुधार करेगी। यह पुस्तक वैदिक और सनातन दोनों धर्मोंको वैज्ञानिक दृष्टि पर ले जाती है। संसारके रत्नोंमें यह एक है। आपकी भेंट अमूल्य है। परमात्मा की कृपासे आपका सहयोग अगर होता रहे, तो निश्चय ही देशके मानव बदल जायेंगे। उनकी भावना पवित्र हो जायगी। परमात्मा आपको सफलता देते रहें।

३४३—श्री शारदानन्दन सिंह, दुभारा, हजरतसाई, पटना।

—इस समय भारतकी जनता सनातन-धर्मको भूल गयी है। प्राचीन समयमें हमारा देश धर्मपर था, इसी कारण यह सभी देशोंका शिर मौर था। किन्तु आज इसका पतन हो रहा है। इसका मुख्य कारण है कि यहांकी [illegible] अपने धर्मको भूल गयी है। किसीके पास इतना साधन नहीं है। इस परिस्थितिको देखकर आप जैसे धर्म[illegible] मानवताके लिए एवं धर्म-रक्षाके लिए तत्पर हुए, और पुस्तकके रूपमें रखकर मानवको उन्नत बनानेकी चे[illegible] आपके कर्त्तव्यके फलस्वरूप विश्व महान उंन्नति कर सकते हैं।

३४४—श्री कामता प्रसाद सिंह, कोइरी बिघा, पो० तेचार, जिला गया।

—आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक पढ़ी। बड़ी दिलचस्प मालूम हुई। सचमुच आज तक ऐसी पुस्तक एक भी नहीं छपी थी। इस पुस्तकसे नवीन ज्योति मिलती है।

३४५—श्री माहेश्वर प्रसाद झा, ओलापुर, पीरपैंती, भागलपुर।

—आपकी पुस्तक जन-कल्याणका एक मार्ग और साधन है।

३४६—श्रीमती राधाकुमारी, जानबाजार, धर्मतल्ला, कलकत्ता।

—मैं एक गृहस्थ कन्या हूं। मैंने आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको पढ़ा। बहुत सुन्दर है। मैंने प्रतिज्ञा की है कि इसी पुस्तकके सहारे अपनी जिन्दगी बिताऊंगी।

३४७—श्री रामानन्द सिंह, पटना।

—आपकी लिखी हुई "गृहस्थ-धर्म" पुस्तक प्रत्येक मनुष्यको पढ़ना चाहिए। यह पुस्तक गृहस्थोंके लिए अत्यन्त उपयोगी है। इस पुस्तकके द्वारा मानव समाजका पुनरुत्थान हो सकता है।

३४८—श्री हरि प्रसाद तांती, शारदा कालेज, कोलगंज, भागलपुर।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' अत्यन्त सुन्दर है। यह पुस्तक हिन्दुओंके लिए धर्म-ग्रन्थके रूप हो रहा है। आजतक हिन्दू समाजमें ऐसी धर्म सम्बन्धी किताबें नहीं छपी थीं। इस पुस्तकके द्वारा प्रत्येक हिन्दू का उपकार हो सकता है।

३४९—श्री चन्द्रशेखर शर्म्मा, शेखपुरा, पोस्ट चैंसी, जिला पटना।

—आपके द्वारा संग्रहित "गृहस्थ-धर्म" पुस्तक पढ़कर बहुत प्रसन्नता हुई। यह पुस्तक गृहस्थोंके लिए बहुत लाभ-दायक है। इस पुस्तकसे प्रत्येक व्यक्तिको शिक्षा प्राप्त हो सकती है। इस महान कार्यके बदले आपको धन्यवाद है।

३५०—श्री रामदेव प्रसाद, जनकपुर, पोस्ट खलिलाबाग, पटना।

—आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक "गृहस्थ-धर्म" लोकोपकारक एवं शिक्षा-पूर्ण है। अध्ययनसे प्रायः सभी गृहस्थोंकी भावनायें पवित्र हो सकती हैं। इस पुस्तकका इतना ...र हो रहा है, जिससे विदित होता है कि सभी गृहस्थोंने इसे अत्यधिक पसन्द ...गा। पुस्तकसे देशकी महान सेवा होती है। आप धन्य हैं।

सम्मतियाँ और उद्गार !

३५१—श्री नन्दकुमार पाण्डे, मोकाम डोमार, पोस्ट सलिमपुर, पटना।

—आपके द्वारा प्रकाशित "गृहस्थ-धर्म" अत्यन्त सुन्दर एवं मनोहर है। इस पुस्तकके अध्ययनसे मानवता क्या है, मानवताका मार्ग क्या है आदि बातोंका पूरा-पूरा ज्ञान प्राप्त होता है। वीरभोग्या वसुन्धराने आप जैसे महापुरुषोंका प्रादुर्भाव किया और आपके द्वारा धर्मकी रक्षा करायी। आशा है, आप इस कार्यमें सदैव लगकर तन, मन, धनसे जनताकी सेवा करते रहेंगे।

३५२—श्री अमरेश कुमार शर्म्मा, मुर्गीडीह, बांका, भागलपुर।

—आपकी अमूल्य पुस्तककी महिमा सुनकर हमें हार्दिक प्रसन्नता हुई। आप जैसे महान पुरुषोंकी कमीके कारण ही देश अन्धकारमय हो रहा है। हमें आशा है कि भविष्यमें भी इस कार्यके द्वारा जनताकी भलाई करते रहेंगे। इस कार्यके बदले हम ग्रामीण जीवन भर आपके ऋणी रहेंगे।

३५३—श्री रामाशीष सिंह, अलावलपुर, पोस्ट नगर नौसा, जिला पटना।

—आपने "गृहस्थ-धर्म" पुस्तक प्रकाशित कर भारतके गृहस्थोंका महान उपकार किया है।

३५४—पण्डित टीकाराम शास्त्री नौगाईवाले, गोलबाजार, बिलासपुर।

—'गृहस्थ-धर्म' गृहस्थोंको अपने धर्मकी शिक्षा दे रही है।

३५५—श्री विश्वेश्वर दत्त मिश्र, मो० पो० गिरियेक, पटना।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको पढ़कर मन आनन्दित हो गया। आशा करते हैं कि आप महापुरुषोंके द्वारा सनातन धर्मकी रक्षा अवश्य होगी। ऐसी पुस्तकको प्रकाशितके लिये जनता आपकी आभारी है।

३५६—श्री शुकदेव शर्म्मा, मो० पो० नालन्दा, जिला पटना।

—यह अत्यन्त हर्षकी बात है कि आप धर्म प्रचारके लिये 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक यत्र-तत्र वितरण करते हैं। इस दानके बदले भारतवर्षमें आपका सुयश फैल रहा है। विश्वास है कि आप सदैव इस कार्यमें लगकर जनताकी सेवा करते रहेंगे।

३५७—श्री हीरालाल सिंह, मो० पुरहारा, पो० हसपुरा, जिला गया।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर मेरा हृदय आनन्दमें मग्न हो गया। आपने अपरिमित धन व्यय कर धर्मकी र[illegible] की। इस पुस्तकसे पथ-भ्रष्ट आदमी अपना जीवन सुधार कर सद्मार्गका अनुसरण कर रहे हैं। भगवान इस [illegible] बदले आपको पूर्ण सामर्थ्य देवें, जिससे संसारकी भलाई होती रहे।

३५८—श्री विश्वनाथ शर्म्मा, मो० गोपालपुर,
पो० रामबक्स जैंतीपुर, जिला पटना।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' अत्यन्त उपकारी है। इससे जनताकी महान सेवा होगी।

३५९—श्री मन्त्री नवयुवक पुस्तकालय, किसनपुर, मो० पो० बेलाव, जिला मुंगेर।

—आपने जनताके हितार्थ 'गृहस्थ-धर्म' नामकी जो किताब प्रकाशित की है, वह बड़ी ही अनोखी है। इससे घरवर्ती जनताकी बड़ी ही भलाई हो रही है।

३६०—पं० दर्शनप्रसाद शर्म्मा, ग्राम खाजे एतवार सराय,
पो० सोह, जिला भागलपुर।

—आपकी संग्रह की हुई पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' बहुत प्रसिद्धि पा रही है। इस पुस्तकके प्रचारसे समाजकी भलाई होनेमें कोई कठिनाई नहीं हो सकती। आपकी पुस्तकके प्रचारसे समाजकी भावनाएं बदल गयी हैं। इसका प्रचार होना बहुत ही अनिवार्य है।

३६१—श्री लालजीत प्रसाद, कमरुद्दीनगञ्ज, पो० बिहारशरीफ, पटना।

—आपकी किताब बहुत लाभदायक है। मैं चाहता हूँ कि इस पुस्तकके द्वारा लाभ उठाऊं। इस पुस्तकके नित्य अध्ययनसे मेरे अनेक मित्र अपने जीवनको सार्थक समझ रहे हैं।

३६२—श्री दल्लूराम बक्स, अमीनगञ्ज, जिला फैजाबाद।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक गृहस्थकी ही नहीं, बल्कि मानवताकी रक्षा कर रही है। यह पुष्प पुस्तक रूपमें अपनी सुगन्धसे मानव-रूपी भ्रमरको अपना रहा है। इससे विश्वकी भलाई हो सकती है।

३६३—श्री रामलखन राम, मो० खासपुर, पो० सदीसोपुर, पटना।

—मेरे विचारसे 'गृहस्थ-धर्म' एक अनोखी पुस्तक छपी है। आजतक ऐसी किताब नहीं छपी थी। परन्तु भगवानकी असीम कृपा जब इस पृथ्वीके मानवोंपर हुई, तो आप जैसे महापुरुषको जन्म दिया। आजके युगमें ऐसी पुस्तकोंका होना नितान्त आवश्यक है। आपने इस कार्यकी पूर्त्ति कर समाजको अधर्म मार्गसे हटा कर पवित्र और उन्नत जीवन व्यतीत करनेमें सहायता दी है। इस कार्यके बदले मानव-समाजके पास केवल उपकृत हृदय है।

३६४—श्री कपिलदेव नारायण, मुगांव, पटना।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक मानवोंका अत्यन्त कल्याण कर रही है।

३६५—श्री नगेन्द्रनाथ, एकङ्गरसराय, पटना।

—आप 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक विना मूल्य वितरण कर गरीब गृहस्थोंकी भलाई कर रहे हैं। सचमुच यह पुस्तक बहुत लाभदायक है। हमने भी इस पुस्तकके अध्ययनसे बहुत लाभ उठाया।

३६६—श्री रामेश्वर प्रसाद, हिलसा, पटना।

—आपका जन-परोपकारी 'गृहस्थ-धर्म' का जितना प्रचार हुआ है, उसमें लिखित अनुकरणीय बातोंका भी उतना ही प्रचार हुआ है।

३६७—श्री मेवालाल सिंह, मो० गौनवां, पो० सदीसोपुर, पटना।

—मैं एक गृहस्थ हूँ। आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' का नाम जबसे सुना है, मुझे पढ़नेकी हार्दिक अभिलाषा हुई है। आपने जो पुस्तक प्रकाश कर जन-समूहकी भलाईमें अपना धन व्यय किया है, उससे मानव-मात्रकी परम भलाई हो रही है। परमात्मा इस कार्यमें आपको तरक्की दें। मैं प्रतिज्ञा कर कहता हूँ कि इस पुस्तकमें बताये गये मार्गका अनुकरण कर अपने जीवनका सुधार करूंगा।

३६८—श्री बालेश्वरराम कोईरी, शोह बिगहा, गया।

—आपके द्वारा 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक प्रकाशित होकर पथ-भ्रष्ट गृहस्थोंके पथ-प्रदर्शकका काम कर रही है।

३६९—श्री बुधराम व्यास, मो० कमरीद, पो० कोसमंदा, बिलासपुर।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक दिन-पर-दिन लोकप्रिय हो रही है। गृहस्थोंको इसका अध्ययन करना अनिवार्य प्रतीत होता है।

३७०—श्री सत्यनारायण राम, मो० चरो, पो० नौबतपुर, जिला पटना।

—आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' अत्यन्त सुन्दर और लोकोपकारी है। इस पुस्तकके अध्ययनसे गृहस्थोंको पूर्ण लाभ हो सकता है। आजतक इस ढंगकी पुस्तक नहीं छपी थी। आपने उक्त कार्यको सुलभ बना कर जनताकी महान सेवा की। आपकी सेवाके फलस्वरूप सभी गृहस्थ अपने धर्मको पहचान कर उसके मुताबिक चलेंगे। आशा है कि आप इस कार्यमें सदैव लगे रहेंगे। परमात्मा आपकी सहायता करें।

३७१—श्री रामलखन राम, खासपुर, सदीसोपुर, पटना।

—आपके द्वारा प्रकाशित "गृहस्थ-धर्म" अत्यन्त उपकारी है। आजकल संसारके गृहस्थोंका पतन हो रहा था, किन्तु आपने इसे महान कर्तव्य परायणताके साथ सहयोग दिया कि जिसके फलस्वरूप गृहस्थोंको पुनः नव-जीवन प्राप्त हो रहा है। कितने ही गृहस्थ तो इसे पढ़नेके लिए अत्यन्त उतावले हो रहे हैं और कितने ही आनन्द समुद्रमें गोते [illegible] रहे हैं। मैं भविष्यमें भी आपसे यही आशा करता हूँ कि आप इस कार्यमें सदैव लगे रहेंगे।

३७२—श्री शिवनन्दन हरिजन, मो० पो० एकाचारी, भागलपुर।

—आपके द्वारा प्रकाशित "गृहस्थ-धर्म" मानवताका एक प्रधान अंग है। इस अमूल्य दानसे जनताकी बहुत भलाई हो रही है। परमात्मा आपकी मदद करें।

३७३—श्री देवकीनन्दन प्रसाद, सिग्रीयांवा, फतुहा, पटना।

—आपके द्वारा प्रकाशित "गृहस्थ-धर्म" पुस्तक तत्परताके साथ धर्म-मार्गको उज्वल बना रही है। ग्रामीण जनता इसकी ओर आकर्षित हो रही है। इस पुस्तकके लिए वह चकोरकी भांति दर्शनके लिए लालायित हो रही है। आशा है, आप इस कार्यको भविष्यमें भी करते रहेंगे।

३७४—श्री लक्ष्मीनारायण, मो० पो० बिहारशरीफ, पटना।

—आपका जीवन उपकारमय है। आपने "गृहस्थ-धर्म" पुस्तकके द्वारा मनुष्य मात्रकी भलाई की है। ईश्वरकी कृपा सदैव इस भारतवर्ष पर हो, जिससे भविष्यमें भी भारतमें ऐसे सपूत हों, जिनसे जन-कल्याण होता रहे। इस पृथ्वी पर अगर ऐसे सपूत जन्म लेते रहें, तो मानवकी उन्नतिं निकट भविष्यमें ही होगी। भगवान आपको पूर्ण सामर्थ्य दें, जिससे संसारकी भलाई होती रहे।

३७५—श्री रामसेवक सिंह, मो० पो० गुरारू, जिला गया।

—मैंने आपकी किताबको पढ़ा। यह पुस्तक साधन-मार्गकी प्रदर्शक है। इस पुस्तकके अध्ययनसे समस्त विश्वकी भलाई होनेमें देर नहीं लगेगी। इसने हमें भी पढ़ते-पढ़ते मन्त्र-मुग्ध बना दिया। आशा है, आप इस सेवा-कार्यको जारी रखेंगे।

३७६—श्री कृष्णराम, सुलतानपुर, पटना।

—आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक "गृहस्थ-धर्म" बहुत सुन्दर है। इसमें धर्म-सम्बन्धी बातों पर सुन्दर विचार किया गया है। प्रायः पढ़नेवाले सभी लोग इस पुस्तकको आशा भरी दृष्टिसे देखते हैं। भगवान इस शुभ कार्यमें आपकी प्रवृत्ति बढ़ावें।

३७७—श्री कुमारविजय रत्न सिंह, मीरगंज, वजीरगंज, गया।

—"गृहस्थ-धर्म" का अध्ययन किया। आपने मानव जीवनको सफल बनाने तथा आध्यात्मिकता और धार्मिकता के प्रचारार्थ प्रयत्न किया है।

३७८—श्री दशरथ साहू, नवडीहा, खिजरसराय, गया।

—आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक "गृहस्थ-धर्म" अत्यन्त उपयोगी है। हमारे प्रांतमें तो कोने-कोनेमें इसकी [illegible]सा-भरी गाथाएँ गायी जा रही हैं। आपने तन, मन, धन, लगाकर इस ग्रंथका प्रचार किया, इससे देशवासी अपने [illegible] अनुसरण करने लगे हैं।

३७९—श्री शिवनन्दन प्रसाद, मो० पो० सिलाव, पटना।

—"गृहस्थ-धर्म" पुस्तक प्रत्येक मनुष्यके लिए लाभकारी है। इसमें धार्मिक बातों पर विचार किया गया है। इस पुस्तकके पढ़नेवाले बहुत लाभ उठा रहे हैं।

३८०—श्री देवन सिंह, मो० प्रहलादचक, फतुहा, पटना।

--आपके द्वारा संग्रहित "गृहस्थ-धर्म" अत्यन्त लाभदायक है। आजतक कोई पुस्तक इस ढंगका नहीं प्रकाशित हुआ था। आपने इस कार्यसे जनताकी सेवा की है। जनता आपकी ऋणी है।

३८१—श्री रामअवतार शर्मा, मो० बड़वाडीह, पो० उमरिया, जिला गया।

—आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तकको हमने देखा। इस तरहकी किताबकी खोजमें जनता बहुत दिनोंसे थी। इस कार्यको पूरा कर आपने जनताकी बड़ी भलाई की है। इस पुस्तकके द्वारा प्रत्येक गृहस्थको लाभ हो सकता है, और लाभ हो रहा है।

३८२—श्री शिध्र मिश्रा, नवडीहा, खिजरसराय, गया।

—"गृहस्थ-धर्म" अत्यन्त उपयोगी है। इस ग्रंथको पढ़कर जनता अनुपम शिक्षा प्राप्त कर रही है। हम भी प्रतिज्ञा करते हैं कि इस ग्रंथके बताये हुए मार्ग पर चलकर अपने जीवनका सुधार करेंगे।

३८३—श्री रामकेश्वर प्रसाद, हनुमान पुस्तकालय, कोरारी, पटना।

--आपकी "गृहस्थ-धर्म" पुस्तक विश्वको अलौकिक आनन्द दे रही है।

३८४—श्री बालेश्वर सिंह, नगर नौसा, पटना।

--आपके द्वारा प्रकाशित "गृहस्थ-धर्म" पुस्तक अत्यन्त मनोहर एवं ज्ञानपूर्ण है। इस पुस्तकके द्वारा गृहस्थ-जीवन उन्नतिशील हो सकता है। आजकल ऐसी ही किताबकी जरूरत है।

३८५—श्री राजेन्द्र प्रसाद, नगर नौसा, पटना।

--बड़ी ही हर्षकी बात है कि आज जब मानवताका पतन हो रहा है, आप ऐसे सुन्दर ग्रंथके द्वारा गृहस्थोंको शिक्षा देकर उनके सुधारके लिए दिन रात प्रयत्न कर रहे हैं। आपके इस कार्यसे निश्चय ही यह देश गौरवान्वित हो सकता है।

३८६—श्री सुरेन्द्र प्रसाद सिंह, ट्रेनिंग कौलेज, पटना।

--बहुतसे विद्वान और भद्र पुरुषोंके मुँहसे आपके द्वारा प्रचारित "गृहस्थ-धर्म" की ख्याति सुन चुका हूँ। साथ ही इसे अवलोकनका सुयोग भी मिला है। पुस्तक देखनेसे ही मालूम पड़ता है कि आपने धर्मको "सत्यम्-शिवं सुन्द[illegible] में परिणत करनेकी चेष्टा की है। आपने इस पुस्तकके द्वारा धर्मकी जो रक्षा की है, वह एक बहुत बड़ा उपकार [illegible] लिए मेरी ओर से सहस्त्रों धन्यवाद है।

३८७—श्री नारायण महतो, करायपर सराय, पटना।

—आपके द्वारा प्रचारित "गृहस्थ-धर्म" पुस्तकसे बहुतेरे लोग लाभ उठा रहे हैं। मेरे भी हार्दिक अभिलाषा है कि इस ग्रंथके द्वारा अपने जीवनको सुखमय बनाऊँ।

३८८—श्री राजेन्द्र प्रसाद सिंह, कैंदू बिघा, पो० कुर्था, गया।

—आपके द्वारा सुन्दर ढंगसे संग्रहित और प्रकाशित "गृहस्थ-धर्म" पुस्तक अत्यन्त लोकप्रिय हो रही है। यह बड़े ही हर्षकी बात है कि जब धर्म पतनका पतन हो रहा है, तब धर्मकी रक्षाके लिए आपने ऐसी पुस्तकका प्रचार किया है। मैं परम पिता, परमात्मासे प्रार्थना करता हूँ कि आप जैसे महापुरुषोंको सबल बनाकर धर्मकी रक्षा करावें।

३८९—श्री उपेन्द्रनाथ बाजपेयी, टिकारी, गया।

—आपके द्वारा प्रकाशित "गृहस्थ-धर्म" पुस्तकका अध्ययन किया। यह एक अनोखी चीज है। प्रत्येक मानो उक्त पुस्तकके द्वारा अपनेको सुधार सकता है, इसलिए हर एक व्यक्तिको इसकी एक प्रति अपने पास रखना चाहिए। इस महान कार्यके बदले परमात्मा आपको दीर्घायु बनावें, जिससे आप मानवको मानवताका परिचय देते रहें।

३९०—श्री जगत नारायण सिंह, बराह डिहरी, पटना।

—आपकी "गृहस्थ-धर्म" पुस्तकको पढ़कर मैं बहुत प्रभावित हुआ। आजकल ऐसी ही पुस्तकोंकी आवश्यकता है, जिससे नास्तिक दुनिया आस्तिक हो सके। मैं समझता हूँ कि एक दिन आपका सुयश विश्वमें गुंजायमान होकर ही रहेगा। इस महान कार्यके लिए आपको मेरी तरफसे हार्दिक धन्यवाद।

३९१—श्री कुलदीप नारायण, सरपा, हरिहरगञ्ज, गया।

—श्रीमान्‌को सूचित करते हुए बहुत हर्ष होता है कि "गृहस्थ-धर्म" मूर्तिमान होकर हिन्दू जातिका पथ-प्रदर्शन कर रहा है।

३९२—श्री अयोध्या प्रसाद, बिहारशरीफ, पटना।

—आपकी "गृहस्थ-धर्म" नामकी पुस्तक बड़ी ही अच्छी है। आधुनिक युगमें पथ-प्रदर्शनका काम करती है। अनेक सज्जनोंके मुँहसे उक्त पुस्तककी मैंने प्रशंसा सुनी थी, किन्तु देखने पर और भी प्रभावित हुआ। परमात्मा आपको दीर्घायु बनावें।

३९३—प्रधानाध्यापक, श्री कस्तूरीमल, संस्कृत पाठशाला, मीरघाट, काशी।

—आपने विश्व-कल्याणके लिए, हिन्दू समाजको जागृत करनेके लिए जो "गृहस्थ-धर्म" पुस्तक रचा है वह सा- [illegible] दुपयोगी है। इस किताबमें नारीको सम्मानपूर्ण स्थान दिया गया है और पशुपालन की भी उत्तम शिक्षा [illegible] रक्षा [illegible] अ [illegible] है औ [illegible] गा [illegible]

३९४—श्री जदुनन्दन सिंह, मो० वहेलिया, पो० टिकारी, गया।

—यह सुनकर बहुत हर्ष हुआ कि आपने 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक प्रकाशित कर अपनी विद्वता एवं उदारताका परिचय दिया। आपने जनताके सामने सरल ढंगसे इस पुस्तकको रखा है। इससे मानव समाजकी पूर्ण भलाई होती है। आपने वर्तमान स्थिति पर विचार कर जनताको अमूल्य दान दिया है। अतः इस महीन कार्यके बदले परमात्मा आपकी तरक्की करें।

३९५—श्री रामानुग्रह सिंह, अहीरी सराय, गया।

—आपने जो "गृहस्थ-धर्म" पुस्तक निकाली है वह पूर्ण शिक्षा-प्रद है। इससे मानवके हितोंके अलावा पशुओंकी रक्षा करनेकी भी प्रेरणा मिलती है।

३९६—श्री वालेश्वर प्रसाद, मसौढ़ी, गया।

—आपका "गृहस्थ-धर्म" अधर्मी मानवोंको पुनः निज धर्म पर ला रही है। इससे ग्रामीण जनताको जीवन-ज्योति मिली है।

३९७—श्री रामेश्वर प्रसाद, डोइया, इसरा, पटना।

—मैंने आपके "गृहस्थ-धर्म" को पढ़ा। यह पुस्तक गृहस्थोंके लिए बहुत लाभदायक है। इस पुस्तककी रचना कर आपने भारतको फिरसे उच्च आसन दिया। इसके लिए भारतकी जनता आपकी ऋणी रहेगी।

३९८—श्री रामयत्न सिंह, बेगमपुर, पटना।

—आपके द्वारा प्रकाशित "गृहस्थ-धर्म" पुस्तक देश-कल्याणके लिए एक सुवासित पुष्प है।

३९९—श्री सिद्धेश्वर प्रसाद, हिलसा, पटना।

—मुझे ज्ञात हुआ है कि आपने 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तककी रचना कर जन-कल्याण किया है। इस पुस्तकके द्वारा मानव-जातिकी धर्मोन्नति शीघ्र हो सकती है। आजके युगमें जब धर्मका पतन हो रहा है, ऐसी दशामें आपके इस कार्यके द्वारा विश्वका महान हित होगा।

४००—श्री कृष्णकुमार, चाईबासा।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' जनताका पूर्ण उपकार कर रही है। आजतक जन-कल्याणार्थ ऐसी किताब नहीं छपी थी। ऐसी दशामें इस महान कार्यके द्वारा आपने धर्मकी उन्नति की है।

४०१—श्री मदनमोहन शर्म्मा, धनबाद, गया।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' अत्यन्त उपकारी है। इस पुस्तकके द्वारा साधारण गृहस्थ जीवनको सफल बना सकता है। इस महान उदारताके बदले परमात्मा आपको दीर्घायु बनावें।

४ ७—श्री नार ाधेश्याम, बोद्धम बाजार, हजारीबाग।

—मैंने आपकी किताब पढ़ा। 'गृहस्थ-धर्म' से मानवोंका कल्याण हो रहा है। इस पुस्तकसे प्रेरणा प्राप्त कर मैं भी अपनी भूलोंका र रहा हूँ।

४०३—श्री श्यामसुन्दर, पो० मानो, लक्खीसराय, मुंगेर।

—अति हर्षकी बात है कि आपने अखिल विश्वके मानवोंके लिये यह 'गृहस्थ-धर्म' नामकी किताब प्रकाशित की है। यह पुस्तक धर्म-मार्ग-प्रवर्त्तक है।

४०४—श्री सूर्य्य बहादुर, बांकीपुर, पटना।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकसे मनुष्य-मात्रको अपने धर्मका पूरा-पूरा ज्ञान हो सकता है। इस पुस्तकके द्वारा मनुष्य मोक्षको प्राप्त हो सकता है। इस महान कार्यके कारण सभी जगह आपकी प्रशंसा हो रही है। वास्तवमें यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी मालूम पड़ती है।

४०५—श्री चक्रधर प्रसाद पाण्डेय, भेलू , बनारस।

—आपके द्वारा प्रकाशित "गृहस्थ-धर्म" पुस्तकको पढ़ी, आत्माको पूर्ण शान्ति मिली। आपने समुद्र-रूपी शास्त्रोंका मथन कर उससे अमृत निकाल कर जनताकी भेंट किया है।

४०६—श्री जवाहरलाल सिंह, कोरियांवा, हांसाडीह, पटना।

—आपने जिस 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तककी रचना की है, वह बहुत ही सुन्दर ढंगकी है। इसके द्वारा समस्त विश्वका कल्याण हो रहा है और मैं भी इसके द्वारा अपना जीवन सुधार लूंगा।

४०७—श्री रामेश्वर, मसौढ़ी, पटना।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक हम लोगोंके लिये अत्यन्त उपकारी है। इसकी विशेष बड़ाई करना सूर्यको दीपक दिखाना है।

४०८—श्री बड़ानन्द, गजेन्द्रविघा, पटना।

—बड़ी ही हर्षकी बात है कि आपने 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक प्रकाशित कर जनताकी महती सेवा की है। मैंने इसका अध्ययन किया। यह पुस्तक अत्यन्त उपकारी प्रतीत होती है।

४०९—श्री वल्लभ प्रसाद सिंह, बरबिघा, मुंगेर।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक अपने गुणोंके कारण सर्वत्र प्रशंसा हो रही है। उक्त पुस्तकके मार्गका अनुसरण कर प्रत्येक मनुष्य अपने अन्धकारमय जीवनको सुधार सकता है। यह वास्तवमें अन्धकार है औ जैसे प्रचण्ड मार्तण्ड है। आपका यह महान कार्य भूरि-भूरि प्रशंसनीय है।

४१०—श्री मूलकदेव शर्म्मा, मो० पो० हैलाचक, गया।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' बड़ा ही लाभदायक है। इसे बार-बार पढ़नेकी इच्छा होती है।

४११—श्री प्रेमविहारी सिंह, मसौढ़ी, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको पढ़ा। मुझे यह किताब बहुत ही अच्छी जँची। सभी लोग इसका गुण गान कर रहे हैं।

४१२—श्री चित्तन राय, नारायण प्रसाद केवट, ग्राम चन्दई, पो० मखदुमपुर, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' की ख्याति इस इलाकेमें दिन-प्रति-दिन बढ़ती जा रही है। सर्वत्र इसकी चर्चा है। यह पुस्तक विद्यार्थियोंके लिये तो अत्यन्त लाभदायक है। ऐसी बहुमूल्य पुस्तकके प्रकाशन और वितरणके लिये आपको अनेक धन्यवाद।

४१३—श्री शिवकुमार त्रिपाठी, मोहल्ला बरौनी, पो० सण्डीला, हरदोई, यू० पी०।

—सौभाग्यवश एक सत्संगके सुअवसर पर मुझे श्रीमान्‌के द्वारा संग्रहित 'गृहस्थ-धर्म' नामक अनुपम एवं अनुकरणीय सद्‌ग्रंथ देखनेका सुयोग प्राप्त हुआ। मानव कल्याणार्थ आपका यह ग्रन्थ सरल एवं मनन करने योग्य है।

४१४—श्री वैद्‌नाथ शर्मा, वलौदा, जिला विलासपुर।

—धर्म प्रचारार्थ वितरित 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक बड़े कामकी है, हमेशा पास रखने योग्य है। ऐसी अनुपम पुस्तक पुस्तकके संग्रह और वितरणके लिये आपको लाखों और करोड़ों धन्यवाद!

४१५—श्री बच्चू झा, शास्त्री, मुरारका संस्कृत कालेज, पटना, सिटी।

—आपने अनेक शास्त्रों और धर्म-ग्रन्थोंका मनन और अनुसंधान कर संसारके मानवोंके लिये पथ-प्रदर्शक ग्रंथ लिखा है।

४१६—श्री हरिशङ्कर भारती, ग्राम रुद, पो० कुड़, जिला राची।

—आपकी पुस्तकके सभी अंश रत्नका खजाना मालूम हुआ। इसमें धर्म-ग्रंथोंका निचोड़ है। इस पुस्तकके संग्रहमें आपने जो परिश्रम किया है, उससे हिन्दू समाजका पुनरुद्धार होनेमें बड़ी मदद मिलेगी, इसमें कोई सन्देह नहीं। 'गृहस्थ-धर्म' रामायणकी तरह ही हिन्दू घरोंमें सम्माननीय ख्याति प्राप्त करेगा।

४१७—श्री रामचन्द्र प्रसाद, नेताजी सुभाष हाई स्कूल, इसलामपुर, पो० अतासराय, पटना।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक बहुत ही अच्छी है। इस पुस्तकने देहातोंमें हलचल मचा दी है। अ[illegible] इस सुन्दर पुस्तकसे लाभ उठा रहे हैं।

४१८—श्री जग्गू साह, गोविन्द प्रसाद, बरविघा मुंगेर।

—'गृहस्थ-धर्म' जैसी दुर्लभ पुस्तककी मैं बहुत दिनोंसे खोज कर रहा था। आपकी इस उदारताने मेरी आशाको पूर्ण कर दिया। मैं इस पुस्तकका नित्य पाठ करता हूँ।

४१९—श्री अमृत मिश्री, मुहल्ला चण्डूखान, बरविघा, जिला मुंगेर।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर मैं स्वर्गलोकका आनन्द अनुभव कर रहा हूँ। आपकी यह पुस्तक दीनों और अनाथोंका सहारा है। यह पुस्तक निश्चय ही आध्यात्मिक जगतमें क्रान्ति लाकर ही रहेगी।—आज भारतवर्षका जो चारित्रिक पतन हुआ है, उसकी पूर्त्ति करनेमें इस पुस्तकसे निश्चय ही बड़ी सहायता मिलेगी।

मानवके कल्याणकी भावनाओंसे ओत-प्रोत होकर ही आपने ऐसी अनुपम पुस्तकका संग्रह किया है। इस पुण्य कार्यके लिये आपको कोटिशः धन्यवाद!

४२०—श्री इजहार, मुकाम, पोस्ट गिरिचक, जिला पटना।

—मैंने आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तकको पढ़ा। इस पुस्तकको पढ़कर मैं मुग्ध हो गया। इस पुस्तकके पढ़नेमें हृदयमें इस तरहका असर पड़ता है, जिस तरह कि अन्धकार-रूपी रात्रिमें चन्द्रमाका प्रकाश होता है।

मैं एक मुसलमान हूं। लेकिन इस पुस्तकसे मेरा बड़ा प्रेम हो गया है। मुझे हिन्दी लिपिसे भी बहुत प्रेम है। मैं अपनी कौममें इस पुस्तकका प्रचार करूंगा।

४२१—श्री परशुराम चौबे, मुकाम राजपुर, पो० रघुनाथपुर, जिला छपरा।

—आपका बनाया हुआ 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक मैंने पढ़ा। आनन्दकी सीमा न रही। आपने गागरमें सागर भर दिया है। हिन्दुओंके लिये तो यह ग्रंथ बड़ा ही लाभदायक है। आपने लोगोंका बड़ा उपकार किया है। तिसपर भी आप इतने बड़े ग्रंथको मुफ्तमें देते हैं।

४२२—श्री रामेश्वर महतो, मौजा कुतलूपुर, पो० खिजरसराय, जिला गया।

—आपने 'गृहस्थ-धर्म' नामक जिस ग्रंथका आविष्कार किया है, उससे जनताको अति लाभ पहुंच रहा है। इस ग्रंथने समाजमें उच्च स्थान प्राप्त कर लिया है।

४२३—श्रीमती मुन्नकादेवी, भारथी लेन, मुहल्ला दीघी, गया।

—अपनी एक सखीके पास मैंने आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक देखी। इसमें अनेक तरहके उपदेश भरे हुए हैं। ... मेरा मन मोह लिया है। मैं अभी इसे पूरी तरह नहीं पढ़ सकी हूँ। कृपा कर मेरे लिये इसकी एक प्रति ... रक्षा ... है औ... गा ... भागी बनें।

४२४—पं० अभय शङ्कर शर्म्मा, मीमांसा शास्त्री, मार्फत् मैनेजर बनारस काटन मिल, चौकाघाट, केण्ट, बनारस, यू० पी०।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई। इस पुस्तकमें धर्म-शास्त्र प्रतिपादित गार्हस्थ-जीवन व्यतीत करनेके लिये काफी सामग्री भरी हुई है। शास्त्रोंके गहन और गूढ़तम् विषयोंका बड़े ही सुन्दर और सरल ढङ्गसे इस पुस्तकमें समावेश किया गया है।

४२५—श्री देवनन्दन सिंह, माध्यमिक शिक्षालय बथानी, पो० अतरी, जिला गया।

—'गृहस्थ-धर्म' शिक्षकों तथा छात्रों दोनोंके लिये समान रूपसे उपयोगी है। हमारे शिक्षालयमें इस पुस्तकने यथेष्ट सम्मान प्राप्त किया है।

४२६—श्री रामचन्द्र महतो, रसूलपुर, पो० औंगारी, रसूलपुर, पटना।

—'गृहस्थ-धर्ममें जीवनोपयोगी सभी बातोंका समावेश है। पुस्तकको एक बार सरसरी दृष्टिसे देखने मात्रसे ही इसकी उपयोगिताका आभास मिल जाता है।

४२७—श्री गोविन्द प्रसाद सिंह, मुकाल मई, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' ने अपनी प्रखर कान्तिसे इस इलाकेमें तहलका मचा दिया है। यह पुस्तक मानव-मात्रके लिये अत्यन्त उपयोगी और कल्याणकारी है। ज्ञानके बिना मनुष्य वास्तवमें पशुके तुल्य है। अतएव गार्हस्थ-जीवन सम्बन्धी समुचित ज्ञान प्राप्त करनेके लिये इसे पढ़ना प्रत्येक मानवके लिये अत्यावश्यक है।

४२८—श्री वीरेन्द्र सिंह, ग्राम सरैला, पो० जटडुमरी, जिला पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' का अध्ययन कर हृदय आनन्द और उल्लाससे परिपूर्ण हो गया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह पुस्तक समाजके प्रांगणमें मानवोंको सुयोग्य गृहस्थ बनानेमें भारी सहायक सिद्ध होगी।

४२९—श्री साधूराम साव, सहायक-शिक्षक नरियारा, जांजगीर, जिला बिलासपुर।

—'गृहस्थ-धर्म' को देखनेका सुअवसर प्राप्त हुआ। यह पुस्तक अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा शिक्षापूर्ण है। इससे पाठकको नव-चेतना प्राप्त होती है। मानवोंको नव-जीवन देनेवाला यह एक महान धार्मिक ग्रन्थ है।

४३०—श्री वासुदेव पाण्डेय शास्त्री, बनवरिया, पो० सरांवां, जिला दुमका।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक हमारे समस्त धार्मिक-ग्रंथोंका निचोड़ है। यों तो मैंने अबतक अनेक उपयोगी ग्रंथ देखे हैं, किन्तु आपकी इस पुस्तकसे मैं बहुत ही प्रभावित हुआ हूँ। भगवान आपके परिश्रमको सफल बनावें।

४३१—श्री रामरिख जाजू, डाल्टनगञ्ज, जिला पलामू।

—'गृहस्थ-धर्म' की उपयोगिताको देखते हुए हृदयमें ऐसा भाव उत्पन्न होता है कि वर्तमान समय[illegible] गृहस्थ-घरमें इस पुस्तकका होना अत्यन्त आवश्यक है।

४३२—स्वामी गोविन्दाचार्य वैद्य, श्यामपुरा, पो० सीकर, जयपुर।

—महावीर पुस्तकालयमें "गृहस्थ-धर्म" नामक पुस्तकको देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। अवलोकनसे मालूम हुआ कि यह धर्म और चरित्र-निर्माण विषयक एक उत्तम पुस्तक है। मैं कह सकता हूँ कि यह पुस्तक भारतकी धर्म-च्युत जनताको धर्मारूढ़ करेगी। अतः हमें इसकी आवश्यकता है। इसका मूल्य क्या है? मूल्य मनीआर्डरसे पहले ही भेजें या वी० पी० आनेसे छुड़ा लेंगे। मुझे इस पुस्तककी अत्यन्त आवश्यकता है। अतएव आप शीघ्र उत्तर देनेकी कृपा करें।

४३३—श्री हवलदारी राम गुप्त, 'हलधर', हलधर प्रेस, डाल्टनगञ्ज, (बिहार)।

—आपके पवित्र प्रयास 'गृहस्थ-धर्म' को देखकर हृदय आनन्दसे नाच उठा। पुस्तककी उपादेयताको देखते हुए इसे हस्तगत करनेके लिए अपने लोभ को संवरण न कर सका। स्वयं अध्ययन करनेके साथ-साथ मैं इसके प्रचारकी भी यथेष्ट चेष्टा करूँगा।

४३४—श्री श्यामकिशोर सिंह, पो० गोरयाकोठी, सारन।

—कोई भी मनुष्य ऐसा न होगा, जो 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर इसकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा न करे। आप धनका ऐसा सदुपयोग कर संसारका कल्याण कर रहे हैं।

४३५—श्री रावेल एक्का, जी० ई० एल० मिशन कमपौण्ड, लोहरडागा, ज़िला रांची।

—आपको कोटि-कोटि धन्यवाद। आपने हम अन्धकारमें पड़े लोगोंको जागृत करनेके लिए बड़ी मेहनत तथा अपार धन खर्च कर 'गृहस्थ-धर्म' जैसी दुर्लभ पुस्तक अर्पित की है। इस पुस्तकके आधार पर हम अपनी जीवन-यात्राको आनन्दपूर्वक पार कर सकते हैं। परमात्मा आपके इस पुण्य-कार्यमें सहायक हों, हृदयसे सहसा यही उद्गार निकलते हैं।

४३६—श्री अड़कूलाल रतनचन्द जैन, रीसयापाली, जिला झाँसी (उत्तर प्रदेश)।

—बड़े ही आनन्दका विषय है कि आपने 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक जन-समुदायके हितार्थ वितरण की है। यह पुस्तक हिन्दू समाजके लिए ही नहीं, अपितु दूसरे समाजके लोगोंके लिए भी पूर्ण लाभदायक है। इस पुस्तकसे मनुष्य मात्र अपनी गिरी हालतको सुधार सकता है।

४३७—श्री झलकदेव शर्मा, हृदयचक, गया।

—आपकी धार्मिक पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर बड़ा ही आनन्द मिला। यह उन व्यक्तियोंके लिए, जो गृहस्थाश्रममें प्रवेश कर चुके हैं, बड़ी ही लाभदायक मालूम पड़ती है।

४३८—श्री धनुषधारी सिंह, भलूहार, पो० बाँकेबाजार, गया।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको पढ़कर मन-मयूर नाच उठा। धर्म-सेवामें आपकी यह लगन सर्वथा श्लाघ्य है। आपकी यह अनुपम पुस्तक प्राणोंके समान प्यारी है।

४३९—श्री राजेश्वरी प्रसाद, सहायक अध्यापक, गवसपुर, पो० परवलपुर, पटना।

—आपने 'गृहस्थ-धर्म' नामक जिस पुस्तकको प्रकाशित किया है, वह स्कूलके विद्यार्थियोंके लिए बहुत ही लाभदायक प्रतीत हुआ है।

४४०—श्री गुलाबचन्द माणिकचन्द, राठोर, झाबुआ।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर हृदय प्रफुल्लित हो उठा। गृहस्थाश्रमके लिए तो यह पुस्तक विशेष हितकर है। इस पुस्तक के आदर्शों पर चलकर मनुष्य अपने जीवनको सफल और सार्थक बना सकता है। इसके अध्ययनसे कोई भी व्यक्ति अपने गृहस्थाश्रमको सुखपूर्वक व्यतीत कर सकता है। इस पुस्तकको धर्मार्थ दान देकर आप प्राणीमात्रका कल्याण कर रहे हैं।

४४१—श्री मदनमोहन सिन्हा, पुलिस खजाञ्ची, बलिया।

—आपने बहुत उत्तम पुस्तक प्रकाशित की है। यह पुस्तक हमलोगोंके जीवनके हेतु बड़ी उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इस पुस्तकने मुझे अपनी ओर आकृष्ट कर लिया है। ऐसी उपयोगी पुस्तकके प्रकाशन और वितरणके लिए हम सदैव आपके आभारी रहेंगे।

४४२—श्रीमती पुनिया देवी, गर्ल पाठशाला, मैंजेरा, जिला पटना।

—श्रीमानूजी से मुझ गरीबिनकी सविनय निवेदन है कि मैं एक गरीब घरकी लड़की हूँ। मुझे मालूम हुआ है कि 'गृहस्थ-धर्म' नामक किताब वितरित हो रही है। हे दीनानाथ! अगर आप किताब न भेजेंगे, तो मुझे अति शोक होगा, क्योंकि मुझे इसे पढ़नेकी प्रबल इच्छा है। मैं इस समय प्रथमामें पढ़ रही हूँ। इस दयाके लिये मैं आपकी आजीवन सेविका बनी रहूँगी। किताब भेजनेवाले महोदयको अनेक धन्यवाद! प्रेमसे बोलिये, पुस्तक महोदयकी जय!!

४४३—श्री नन्दकिशोर मिश्र, नईकी, पो० रफीगञ्ज, गया।

—हमारे ग्राममें ब्राह्मण मित्र सम्मेलन होने जा रहा है, जिसमें प्रान्तके कोने-कोनेसे विद्वान लोग पधार रहे हैं। अतः मेरी प्रार्थना है कि आप जो 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक मानव-जातिको मार्ग दिखानेके लिये वितरण कर रहे हैं, उसकी कृपा कर १०० प्रतियां भेजनेका कष्ट करें। इसके लिये हम आपको जीवन भर धन्यवाद देंगे। मैं इस कारणसे इतनी प्रतियां मंगा रहा हूँ कि इन्हें विद्वानोंमें वितरित कर आपके गुणोंका वर्णन करूंगा और जिनको दूंगा उनका मैं आपके पास पूर्ण रूपसे परिचय दूंगा और उन लोगोंके हस्ताक्षर आपके पास भेज दूंगा। मेरे ऊपर विश्वास करके अवश्य पुस्तकें भेजें। ज्ञान देनेवाले भी पिताके तुल्य होते हैं। इतना ही से समझ कर मेरे पास अवश्य पुस्तकें भेज देंगे। मैं जीवन भर अपनेको आपका दास समझूंगा।

४४४—श्री कैलाशनाथ गुप्त, डंकनिगञ्ज, मिरजापुर।

—आपकी भेजी हुई पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' प्राप्त हुई। पुस्तक बड़ी सुन्दर और महत्वपूर्ण है। धन्

४४५—श्री मन्त्री, राजेन्द्र पुस्तकालय, नौगढ़, पटना।

—मैंने 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकका अवलोकन किया। मेरे पुस्तकालयके लिये यह परमोपयोगी सिद्ध होगी। अतः सादर प्रार्थना है कि अविलम्ब इस पुस्तककी पांच प्रतियां प्रचारार्थ प्रेषित कर देनेकी कृपा करेंगे। पुस्तकालय सदा आपका ऋणी रहेगा। हम गृहस्थोंके लिये यह परम लाभदायक है।

४४६—श्री नर्मदेप्रसाद सिंह, एम० ए०, ग्राम धरनई, पो० मखदुमपुर, गया।

—आपने आर्य ग्रंथोंके पवित्र आदर्शोंको निकाल कर एवं विद्वानों द्वारा संकलित कराकर 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकके रूपमें उपस्थित किया है, उसकी अत्यधिक प्रशंसा सुन कर मुझे भी उसके अध्ययन की इच्छा बलवती हो उठी है।

४४७—श्री तारणी प्रसाद चौधरी, हेड पंडित पो० एकचारी, जिला भागलपुर।

—'गृहस्थ-धर्म' अच्छी पुस्तक बनी है और बहुत उपयोगी है। इसमें सब चीजें दी गई हैं और उसे पढ़कर संसार बहुत उन्नति कर सकता है।

४४८—श्री रामदेवप्रसाद सिंह, नूरसराय, पटना।

—आधुनिक समयमें आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक अत्यन्त लाभदायक है। यह पुस्तक गृहस्थोंके लिये अत्यन्त लाभदायक है।

४४९—श्री बृजनन्दन प्रसाद, मो० बहादुरगञ्ज, कतरीसराय, गया।

—हमारे यहां आपके नामकी ध्वनि गूंज रही है। आपकी किताब 'गृहस्थ-धर्म' को पाना मेरे लिये बहुत ही सौभाग्यकी बात है। यह पुस्तक मेरे लिये बहुत ही हितकारक साबित हुई है।

४५०—श्री केजूलाल कश्यप, पु० शि० प्राथमिक-शिक्षा भवन, कसडोल, पो० आ० कसडोल, जिला रायपुर।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकका अवलोकन किया। आपकी यह पुस्तक सनातन धर्मावलम्बियोंके लिये अत्यन्त ही लाभप्रद है। धर्म प्रचारका यह महान कार्य बहुत सराहनीय है।

४५१—श्री साधूशरण सिंह, अध्यापक, ग्राम ताराडिगड़ा, पो० परवलपुर, जिला पटना।

—मेरा [illegible]ने आपके 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको देखा। पुस्तक मुझे बड़ी रोचक एवं शिक्षाप्रद मालूम हुई। है औ[illegible] भाग[illegible] सुच इससे फायदा उठा सकेंगे।

४५२—श्री द्वारिकाप्रसाद वैद्य, 'विशारद' ग्राम कान्धुपीपर, पो० हिलसा, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तककी ख्याति सुनकर मेरी इच्छा उसे एक बार अवलोकन करनेको हुई, क्योंकि हम गृहस्थों और छात्रोंके लिये यह ग्रंथ बहुत उपयोगी प्रतीत होती है। धार्मिक ग्रंथोंके गम्भीर अध्ययनके पश्चात ही इस अमूल्य पुस्तककी रचना की गयी है।

४५३—श्री कामताप्रसाद, प्रेमशङ्कर, ग्राम घोसिया, पोस्ट औराई, बनारस।

—'गृहस्थ-धर्म' की दो प्रतियां प्राप्त हुईं। कोटिशः धन्यवाद ! वस्तुतः गार्हस्थ्य-जीवनके लिये यह पुस्तक बहुत ही उपादेय है। यह पुस्तक लोगोंमें गार्हस्थ्य-जीवनके बारेमें अधिक ज्ञान वृद्धि करेगी, ऐसा मेरा विश्वास है। ऐसे योग्य, उपादेय प्रकाशनके लिये धन्यवाद !

४५४—श्री सुखदेव महतो, बेलागञ्ज, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकमें गृहस्थोको बहुत अच्छी तरहसे समझाया गया है। इससे मुझे भी पढ़नेकी अभिलाषा है।

४५५—श्री शिवधारी मिश्र, पटना।

—आपने 'गृहस्थ-धर्म'को सर्वोचम तथा उन्नतिके शिखरपर चढ़ानेके लिये जो 'गृहस्थ-धर्म' नामक किताब प्रकाशित किया है, उससे हिन्दू समाजको सत्पथपर चलनेकी शिक्षा मिलती है।

४५६—श्रीमती नगजई देवी, ग्राम छतिआना, पो० बेलागञ्ज, जिला गया।

—आप 'गृहस्थ-धर्म' नामक किताब से समाजको आगे बढ़ानेका प्रयत्न कर रहे हैं। यह बालिकाओंके लिये एक सुन्दर पुस्तक है।

४५७—श्री अवधविहारी पाण्डेय, ज्योतिषी, मु० सहिया,
पो० बिलथरा बाजार, जिला बलिया, यू० पी०।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक नूतन पुस्तक संप्रपण द्वारा तत्पठन समुत्सुका वयं श्रीमद्भि रनुग्राह्याः।

४५८—श्री परशुराम शर्म्मा, पाई बिगहा, गया।

—आपकी छपवाई हुई किताबको देखकर सनातन-धर्मियोंकी श्रद्धा होती है कि प्रत्येकके घरमें इस अमूल्य रत्नको एक प्रति रहना अत्यावश्यक है। आप ऐसे अमूल्य रत्नके प्रदान करनेवाले व्यक्तिको इतना धन्यवाद है कि मैं कह नहीं सकता।

४५९—श्री राजेन्द्रप्रसाद, स्थान—कांधुपीपर, पो० हिलसा, जिला पटना।

—मुझे आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको देख सकनेका अवसर प्राप्त हुआ। नजरोंमें समाजोपयोगी प्रतीत हुई। मेरी हार्दिक इच्छा उसे अवलोकन करनेकी हुई।

सम्मतियां और उद्गार !

४६०—श्री केदार सिंह, बेलागञ्ज, गया।

—आपके कार्यालयसे 'गृहस्थ-धर्म' नामका जो पुस्तक निःशुल्क निकला है, वह जन-साधारणके लिये अत्यन्त हितकर सिद्ध हुआ है। देहातोंमें तो खास कर बालक-बालिकाओंके लिये उच्च कोटिकी किताब है।

४६१—श्री अयोध्याप्रसाद पाठक, मु० भूरकूंडा, जिला हजारीबाग।

—'गृहस्थ-धर्म' से बहुसंख्यक पण्डित तथा छात्रगण सद्गुणों तथा सद्उपदेशोंसे लाभ उठा कर आपके हो रहे हैं।

४६२—श्री ललितकुमार प्रसाद, टाइपिस्ट, सेण्ट्रल सौंदा कोइलवरी, डा० पतरातु, जिला हजारीबाग।

—यह पुस्तक सचमुच मानव-समाजके लिये उपयोगी चीज है। इसकी एक प्रति मुझको हमेशा पासमें रखनेकी अभिलाषा है।

४६३—श्री उधरा उराव, बुनियादी शिक्षण केन्द्र, कुडू, पो० चिरी, जिला रांची।

—मैंने आपका संग्रह किया हुआ 'गृहस्थ-धर्म' नामक ग्रंथ पढ़ा। यह सचमुच गृहस्थोंके उपकारकी पुस्तक है। मैं इसके अध्ययनसे मुग्ध होकर आपसे प्रार्थना करता हूँ कि मेरे लिये 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तककी दो प्रति भेजनेकी कृपा करेंगे।

४६४—श्री बामेश्वर मिश्र 'कविराज', महेशपुर, दुमका।

'जाकर जिहिपर सत्य सनेहू—सो तेहि मिलै न कछु सन्देहू ॥' वाला यह पक्ष मेरे लिए तो अक्षरसः सत्य सिद्ध हुआ है। क्योंकि जब जो चाह उत्पन्न होती है, वह अवश्य पूरी होती है। इधर बहुत दिनोंसे हमारे मनमें चाह हो रही थी कि गृहस्थी सात्विकी जीवन बितानेके लिए कोई प्रामाणिक राह बतानेवाला ग्रंथ मिलता तो मैं उससे लाभ उठाता। पर आज 'मनसानाथ दीनबन्धु' ने आपके इस 'गृहस्थ-धर्म' ग्रंथके रूपमें अपने श्रेयकर प्रसादोंका फल दे ही दिया।

४६५—श्री रामनाथ महावीर प्रसाद शर्मा, मुकाम-पोस्ट, भटगांव जमींदारी सारंगढ़, जिला रायगढ़।

—एक मित्रसे आपको 'गृहस्थ-धर्म' का अवलोकन करनेका सौभाग्य मिला। सनातनधर्मको जागृत करनेकी …जनाको ईश्वर सफल करे। इस पुस्तकका पठन पाठन अधिक मात्रामें होते जा रहा है। जनता इसमें वर्णित …को अपनाती जा रही है।

४६६—डा० श्रीकृष्णचन्द्र विशारद एल० एम० एफ०, टेहटा, गया।

—आपने 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक निःशुल्क वितरण करनेका प्रबन्ध किया है। आपका यह कार्य निःसंदेह बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय है और है श्लाघनीय!

४६७—श्री रामेश्वर सिंह, भटगांव, रायगढ़।

'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकका अवलोकन करनेका सुअवसर मिला। आपका यह सत्कार्य सराहनीय है। यह सनातन धर्मावलम्बियोंके लिये अत्यन्त उपयोगी है। यह पुस्तक पठन-पाठनके लिये उत्तम है।

४६८—श्री रामेश्वर प्रसाद, बिहारशरीफ़।

—आपकी किताब समाजके लिये कितनी उपयोगी है, इसका अन्दाजा लगाना आसान नहीं है।

४६९—श्री शिवशंकर राम, गया।

'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक किसानोंके लिए बहुत ही उपयोगी पुस्तक है।

४७०—श्री रामस्वरूप यादव, गया।

—आपका रचा हुआ पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' छात्रोंके लिये अत्यन्त सुन्दर है और गृहस्थको पढ़ने लायक है और मैं भी एक गृहस्थका लड़का हूँ इसलिये इसे पढ़ना चाहता हूँ; जिससे कुछ ज्ञान प्राप्त हो।

४७१—श्री कैलाश प्रसाद हेडमास्टर, छोटी काको, लो० प्रा० स्कूल, पोस्ट, काको जिला, गया।

—मैंने 'गृहस्थ-धर्म' को देखा और बहुत ही आनन्दित हुआ। इस पुस्तकको पढ़ने तथा इसकी बातों पर अमल करनेसे बहुत लाभ होता है, यह जनसाधारणके लिये बहुत उपयोगी है। मैं एक स्कूलका शिक्षक हूँ और मेरा आकर्षण इसके प्रति अधिक है।

४७२—श्री वीरेन्द्रकुमार सिंह, हंसाडीह, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक बहुत ही उपयोगी है। यह गृहस्थोंके पढ़ने लायक तथा बालिकाके लिये उपयोगी है।

४७३—श्री कमलधारी मिस्त्री, हंसाडीह, जिला, पटना।

'गृहस्थ-धर्म' नाकक पुस्तक देश जनताके लिये अत्यधिक लाभदायक तथा रुचिकर है। उस पुस्तकका अध्ययन करनेके लिये मैं सर्वदा उत्सुक रहा करता हूँ।

४७४—श्री विसुन साव, ग्राम महावीर स्थान, (गौरक्षिणी), बुनियादगञ्ज, गया।

—आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म', भारतके कोने कोनेमें प्रचलित हो गयी है। इसे पढ़कर लोग अ[illegible] उठा रहे हैं।

४७५—भारत स्काउट्स एण्ड गाईड्स, जिला गया ।

—आपकी पुस्तक "गृहस्थ-धर्म" सचमुचमें बहुत सुन्दर पुस्तक है। अगर दाम भी रखा जाय तो भी न अखरेगी । हमलोग आपकी संस्थाके बारेमें भी जानना चाहते हैं ।

४७६—श्री मौजीलाल यादव, ग्राम सरदारबीघा, पोस्ट नूरसराय, (पटना) ।

—आप 'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तक जनताके कल्याणार्थ बिना मूल्य वितरण कर रहे हैं। इसमें धार्मिक तथा सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है : उसकी एक प्रति हर गृहस्थके घरपर रहना आवश्यक है। मैं अपने ग्राम के पंचायतका एक तुच्छ अधिकारी हूँ। बैठक प्रायः प्रति मास हुआ करती है, जिसमें जनताके कल्याणार्थ कुछ कहना पड़ता है। ऐसी परिस्थितिमें मैं समझता हूँ कि 'गृहस्थ-धर्म' अवश्य मेरी कुछ सहायता कर सकेगी ।

४७७—श्री बालगोविन्द प्रसाद, गम्भीरा, गया ।

—आपकी संग्रहित धार्मिक पुस्तकको देखकर और उसके कुछ छन्दों और श्लोकोंको मानस-पटल पर रखकर एक नवीन प्रेरणा और भावनाओंका ओत-प्रोत हुआ ।

४७८—श्री मुनेश्वर मिस्त्री, पो० सिलाव, जिला पटना ।

—आपने 'गृहस्थ धर्म' नामक जो पुस्तक प्रकाशित किया है, यह पुस्तक प्रत्येक मनुष्यके पढ़ने योग्य है। इसमें आपने तरह-तरहके गुणों एवं उपयोगी बातोंका संचय किया है। यह पुस्तक मनुष्यको आशातीत लाभ पहुँचा सकता है ।

४७९—श्री यशोदादेवी मौजा छतिआना, पत्रालय बेलागंज, जिला गया ।

—आपके कार्यालयसे 'गृहस्थ-धर्म' नामका किताब जो निःशुल्क निकला है, देहातोंमें इसकी बड़ी आवश्यकता है ।

४८०—श्री परिमाल सिंह, पोस्ट भटगांव सारंगढ़, रायपुर ।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक मित्रोंके द्वारा अवलोकन करनेका सुअवसर मिला। पढ़नेसे ज्ञात हुआ है कि पुस्तक वर्त्तमान समयानुसार अति उपयोगी है। सनातन धर्मावलम्बी हिन्दू भाइयोंको सन्मार्ग पर चलानेवाली यह आपकी पुस्तक हमेशा अनुकरणीय है। इसका हर एक विषय ग्रहण करने योग्य है ।

४८१—श्री गंगाप्रसाद बी० ए० खेमतबिगहा, हिलसा, पटना ।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर मैं फूला न समाया। मन मोरकी भाँति नाच उठा। आपने सचमुच ही में थोड़ेमें ही ... गूढ़ विषयोंका निचोड़ उठाकर अपनी पुस्तकमें रख दिया है। मुझे तो ऐसा ज्ञात हुआ मानो आपने गागरमें ... हो ।

४८२—श्रीमती विमलवासिनी देवी, मड़रालौज, नईगोदाम (गया)।

—मैंने सुना है कि आपने हिन्दू-धर्मके प्रचारार्थ अपना कदम आगे बढ़ाया है और आप इस पवित्र धर्मके उत्कर्ष की कामना भी करते हैं। धर्मके प्रचारार्थ ही आपने शायद 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक भी प्रचारित की है। इससे मुझे अत्यन्त खुशी प्राप्त हो रही है। मैं इस पुस्तकसे उपदेश प्राप्त कर रही हूँ।

४८३—पं० गिरधारीलाल, ग्राम पुरोहित, मु० सेमन, पो० रानाकोट, जिला गढ़वाल।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक अत्यन्त ही उपयोगी, तथा सनातन धर्मकी विशेष ही मान्य पाई गई है। आशा है कि आपकी इस उत्तम पुस्तकसे ग्रामकी साधारण जनता भी अपने उच्चतम सनातन धर्मका काफी लाभ उठा सकेगी।

४८४—श्री घनश्याम प्रसाद शर्मा, गांव नदेली, पो० कोसा, जिला विलासपुर।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तकके बारेमें मैंने अपने मित्रोंसे बहुत तारीफ सुनी थी। पहले तो मुझे विश्वास नहीं हुआ, परन्तु उसे प्रत्यक्ष देखने पर यह पुस्तक बहुत उपयोगी मालूम हुई। और सचमुचमें ही यह हर गृहस्थके घरमें रहना ही चाहिये। आपने ऐसी अमूल्य पुस्तककी कीमत कुछ नहीं रखा है। इसके लिये आपको हृदयसे धन्यवाद है।

४८५—श्री रामेश्वर सिंह, बरान्दी, गया।

—आपने जो 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक निकाली है, उसके द्वारा समाजकी बुराइयाँ निश्चय ही दूर हो जायेंगी।

४८६—श्री सिद्धेश्वर प्रसाद, नेताजी सुभाष हाई० इ० स्कूल, इस्लामपुर।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकसे मनुष्य मात्र उन्नतिशील बन सकता है। इस पुस्तकमें गृहस्थ-जीवन सम्बन्धी विषयों पर सुन्दर विचार प्रकट किया गया है। आप धन्य हैं जो देशको इस सुन्दर विचार पर लानेकी चेष्टा कर रहे हैं।

४८७—श्री मिथिलेश कुमार सिन्हा, स्टेशन रोड, आरा।

—हिन्दू जातिको जागृत रखनेके लिए आपने जो कष्ट उठाया है, उसके लिये आपको अनेक धन्यवाद है।

४८८—श्री वासुदेव त्रिवेदी, रायपुरिया, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक पढ़कर हमें बड़ा आनन्द मिला। उसमें आपने गृहस्थका जो कर्तव्य बतलाया है, वही वास्तव में मनुष्योंका कर्तव्य है। यह पुस्तक प्रत्येक मनुष्यके जीवनके लिये उपयोगी सिद्ध होगी। उसमें जो आपने गृहस्[illegible] लिये मार्ग बताया है, वह आपकी विलक्षण एवं प्रखर बुद्धिका परिचायक है। साथ ही भगवद् सम्बन्धी विष[illegible] आपने दर्शाया है।

४८९—श्री अयोध्याप्रसाद, देशौर, पटना।

—आपने जो 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक लिखी है, वह ज्ञानपूर्ण है। अस्तु, इसका अध्ययन करनेवाले अवश्य ही ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

४९०—श्री रामसखी देवी, वरनी मसौढ़ी, पटना।

—यह पुस्तक गृहस्थोपयोगी है। इसके द्वारा राष्ट्रकी उन्नति अवश्यम्भावी है। इस पुस्तकमें आपने अच्छे ढङ्गकी बातें लिखी हैं। यह पुस्तक विश्वकी तमाम पुस्तकोंमें बेजोड़ है।

४९१—श्री अनोखेलाल 'निराला',—ततरियाडीह, डोमचाटा, हजारीबाग।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक पूर्ण लाभप्रद है एवं जीवनको सुखमय बनानेवाला अमूल्य ग्रंथ है।

४९२—श्री रामलक्ष्मण प्रसाद सिंह, मसौढ़ी, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक अत्यन्त मनोहर एवं महत्वपूर्ण है। इस कार्यके बदले विश्वमें आपका गुणानुवाद हो रहा है। प्रत्येक गृहस्थको उसका अध्ययन करना चाहिये। इसके सुन्दर लेख गृहस्थोंको सन्मार्गपर चलनेकी शिक्षा दे रहे हैं। परमात्मासे नम्र प्रार्थना है कि आपको इस कार्यमें सफलता प्रदान करे।

४९३—श्री विन्देश्वर शर्म्मा, हसनपुरा, नौआवां, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक अध्ययन कर हजारों ग्रामीण अपनी जिन्दगी सुधार रहे हैं। यह पुस्तक बहुत ही लाभदायक है।

४९४—श्री अवधेशप्रसाद, उधायविघा, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक ज्ञान और धर्म दोनोंके लिये ही कोप-स्वरूप है। इस पुस्तकके द्वारा आजका सनातन-धर्म निश्चय ही उन्नत हो सकता है और विशेप इसके विपयमें कहना सूर्य्यको दीपक दिखाना है। आपने यह पुस्तक प्रकाशित कर सामयिक धर्म संकटको दूर किया। अस्तु, परमपिता परमात्मासे नम्र निवेदन है कि आपको दीर्घायु रखते हुए आपके द्वारा सनातनकी रक्षा करावें।

४९५—श्री नागेश्वर सिंह, धनकौल, मखदुमपुर, गया।

—आपने जो 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक निकाली है, उसकी ख्याति साहित्य-संसारमें दिन दूनी रात चौगुनी हो रही अनेक साहित्यिक विद्वानों द्वारा उसकी प्रशंसा को गाथायें समस्त विश्वमें गायी जा रही है। अस्तु, यह पुस्तक ...गी अवश्य ही हैं। अतः उक्त दानसे आपकी प्रशंसा करते हुए परमात्मासे प्रार्थना करता हूँ कि इस कार्यमें ...त दें।

अनु- ४८ है औ —'गृह- ...ह गृह। ...ग हो

४९६—श्री ब्रह्मदेव सिंह, गया ।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' पुस्ततककी ख्याति दिनों-दिन बढ़ रही है । यह पुस्तक गृहस्थोंके लिये अत्यन्त लाभदायक है ।

४९७—श्री सूर्य्यनारायण सिंह राय, भागलपुर ।

—मुझे अपार प्रसन्नता हुई कि आप 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकका प्रचार कर समाजकी सेवामें योग दे रहे हैं ।

४९८—श्री रामअनुग्रह प्रसाद सिंह, मखदुमपुर, गया ।

—'गृहस्थ-धर्म' में उच्च शिक्षाएं भरी हुई हैं । इस पुस्तकको पढ़नेसे मानव-जातिका कल्याण हो सकता है । आपने इस पुस्तकको छपा कर तथा जनताको निःशुल्क देकर अनुकरणीय कार्य किया है ।

४९९—श्री हजारी सिंह, ग्राम पचय, पो० पोखरामा, मुंगेर ।

—यह पुस्तक सभी व्यक्तियोंके लिये अति हितकर है । इससे ज्ञानकी वृद्धि होती है । इसके उपदेशोंको ग्रहण करनेसे जीवनको सफल और सार्थक बनाया जा सकता है ।

५००—श्री सदानन्द सिंहा, आशुतोष मुकर्जी रोड, कलकत्ता ।

—मैंने आपकी "गृहस्थ-धर्म" पुस्तक पढ़ी । यह मुझे बहुत पसन्द आई । मेरा ख्याल है कि, इस पुस्तककी एक प्रति प्रत्येक व्यक्तिको अपने पास रखना चाहिए ।

५०१—श्री सरयुग प्रसाद सिंह, नूरसराय, पटना ।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक गृहस्थोंको काफी लाभ पहुँचा रही है । आजतक ऐसी बहुत कम पुस्तकें निकली हैं, जो गृहस्थोंके जीवनको सफल बना सकें ।

५०२—श्री रामकृष्ण पण्डित, हरनौत, पटना ।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक वास्तवमें उपकारी है । यह पुस्तक गृहस्थोंको नया जीवन प्रदान करती है ।

५०३—श्री रामचरित्र सिंह, खैरालखना, पुनपुन, विहार ।

—आपकी संस्था द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' समस्त विश्वके मानवोंको अमूल्य शिक्षा दे रही है ।

५०४—श्री सुखूसाहू, हिलसा, पटना ।

—हमारे इलाकेके व्यक्तियोंने जिस प्रकार आपके 'गृहस्थ-धर्म' को अपनाया है, उसकी बड़ाई करनेमें [illegible] असमर्थ हूँ । इस पुस्तकके द्वारा हमारी भलाई हो सकती है । हम अपनी भूलोंको भलीभांति पहचान सक[illegible] इस महान कार्यके बदले, हम गृहस्थ आजीवन आपके ऋणी रहेंगे ।

५०५—श्री रामकुमार तिवारी, मिर्जापुर।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक माननीय एवं सुख-प्रेमकी कुञ्जी है।

५०६—श्री सूर्यदेव सिंह, गया।

—इस इलाकेमें आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' का काफी प्रचार हो रहा है। धर्मके भूखे गृहस्थोंको आपका यह उपहार ईश्वरीय देनके स्वरूप है।

५०७—श्री ब्रह्मदेव प्रसाद यादव, घोघा, भागलपुर।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक छपवाकर आप महान पुण्यके भागी बन रहे हैं। क्यों न आपके कल्याणकारी कार्यमें सफलता होगी? आपकी कीर्ति चारों दिशाओंमें फैल जायेगी।

५०८—श्री चन्द्रशेखर पाण्डेय, पो० वोन्दा, जिला पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकसे जनता पूरा लाभ उठा रही है। इस पुस्तकमें आपने गृहस्थाश्रमका जो वर्णन किया है, इससे प्रत्येक गृहस्थका जीवन सुधर सकता है।

५०९—श्री अयोध्या प्रसाद साहु, पन्नूचक, पो० घोघा, भागलपुर।

—मुझे आपकी प्रसारित 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक पढ़नेसे बड़ा ही आनन्द मिला। मेरा विश्वास है कि समाजके लिए यह पुस्तक बड़ी हितकर होगी। गरीब व्यक्ति इसको पढ़कर लाभ प्राप्त कर सकेंगे। आशा है, आप भविष्यमें भी इस पुस्तकके द्वारा जनताकी सेवा करते रहेंगे।

५१०—श्री रामकाशी प्रसाद, हैदरपुर, हिलसा, पटना।

—आपके द्वारा प्रकाशित "गृहस्थ-धर्म" पुस्तकको पढ़कर मैंने प्रतिज्ञा की है कि अपनी भूलोंका सुधार करूंगा। और दूसरोंको भी पुस्तकमें निर्देशित मार्ग पर चलाऊंगा।

५११—श्री आत्माराम शर्मा, डूंगरगढ़, बीकानेर।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक गृहस्थोंके लिये शिक्षा-प्रद है। इस पुस्तकके प्रचारसे विश्वके मानव, अपने नियमोंका पालन करेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं।

५१२—श्री सीता साव, पुरानी गोदाम, पटना।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक अत्यन्त ही सुन्दर और जनप्रिय है। आधुनिक ढङ्गकी ... के अन्धकारमें पड़े हुए ग्रामीण प्रकाश पा रहे हैं। इस पुस्तकसे लोगोंको लाभ एवं ज्ञान प्राप्त होता है।

...३—श्री सूर्यनारायण सिंह, नालन्दा, बिहार।

—... के द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' अबाल-वृद्ध सभीके लिये उपयोगी है। इस पुस्तकके प्रचारसे जनताकी ... हो।

५१४—श्री सन्तलाल टेलर मास्टर, बसवरिया, हुगली ।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृह-धर्म' को पढ़कर हृदय प्रफुल्लित हुआ । आजतक किसीने भी ऐसे सुन्दर और सरल ढंगका गृहस्थोपकारी ग्रन्थ छपा कर प्रचारित नहीं किया था । किन्तु आपने इस पुस्तकके द्वारा जनताके बन्धनोंको काट दिया । जनता इस महान उपकारके बदले आपकी ऋणी रहेगी । मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि उक्त पुस्तकके द्वारा अपने जीवनको उन्नत बनाऊंगा ।

५१५—श्री श्यामाप्रसाद सिंह, मो० पकरी, पो० अमीताग, जिला पटना ।

—सदियोंको गुलामीके कारण भारतवासी अपने धर्मको भूल गये थे । आपकी पुस्तकको पढ़कर, आशा है, वे अपने धर्मको पहचानने लगेंगे । इस पुस्तकमें धर्म क्या है, गृहस्थ-धर्म क्या है, इन बातोंपर सुन्दर और सरल ढङ्गसे आपने विचार प्रकट किये हैं ।

५१६—श्री जानकीलाल माहेश्वरी वकील, राजस्थान, मेवाड़ ।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' को देखनेसे पता चला कि यह ग्रन्थ गृहस्थोंके लिये अत्यन्त उपयोगी है । मैं आपकी सफलताकी कामना करता हूँ ।

५१७—श्री रामेश्वर सिंह, गोविन्दपुर, फतुहा, पटना ।

—इस पुस्तकमें बताये गये मार्गका अनुसरण करनेसे मानव-मात्रको भलाई हो सकती है । मैंने भी प्रतिज्ञा की है कि इस पुस्तकमें बताये गये मार्गसे चलकर अपने जीवनका सुधार करूंगा ।

५१८—श्री रविचन्द्र घोष, भुरिया, पो० सनोखर, भागलपुर ।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकसे किसानोंका बड़ा ही लाभ हो रहा है । किसानोंके लिये तो यह ग्रंथ बड़ा ही उपयुक्त है ।

५१९—श्री श्यामकिशोर सिंह, पटना ।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक पूर्ण लाभकारी है । यह सरल हिन्दी भाषामें है । इस पुस्तकके द्वारा मनुष्य मानवता को भली भांति पहचान सकता है ।

५२०—श्री अवधराम हरिजन, धर्मपुर, पायविघा, गया ।

—बड़े ही हर्षकी बात है कि आपने 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक संग्रहित कर समस्त विश्वके मानवोंको धर्मनिष्ठ बनाने की प्रेरणा दी है ।

५२१—श्री रामचन्द्र प्रसाद, मानपुर, कुम्हारटोली, गया ।

—आपने जो 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक प्रचारित किया है, यह गृहस्थाश्रमको उच्च स्तरपर ले ज[illegible] साधन है ।

५२२—श्री केदारनाथ पाण्डेय, मोकामा, जिला पटना ।

—आपको धन्यवाद देते हुए लिखते हैं कि, 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक प्रकाशित कर आपने समस्त विश्वके मानवोंकी भलाई की है ।

५२३—श्री शिवनन्दन प्रसाद, मो०-पो० सिलाव, पटना ।

—यह पुस्तक अत्यन्त ही लाभदायक है । इस पुस्तकके पढ़नेसे मनुष्य अपनी मनुष्यताको पहचान कर अपने कर्त्तव्य-पथ पर अग्रसर हो रहे हैं ।

५२४—श्री कुमार विजय सिंह, ग्राम वीरगंज, जिला गया ।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' की एक प्रति देखी । यह पुस्तक बड़ी ही सुन्दर तथा उपयोगी प्रतीत होती है । आपने मानव जीवनको सफल बनानेके लिये तथा मानवोंकी आध्यात्मिकता और धार्मिक उन्नति के लिये जो प्रयत्न किया है, वह भूरि-भूरि प्रशंसनीय है । इसके लिये जनता आपकी ऋणी रहेगी ।

आत्म-विकासके लिये आवश्यक

"इसमें वेद और शास्त्रोंके वाक्योंका उपयोगी संग्रह किया गया है। मानसिक शान्ति की प्राप्तिके लिये सतत् प्रयत्नशील धार्मिक विचारोंके हिन्दुओंके लाभार्थ इन श्लोकोंका हिन्दी भाषामें अर्थ दिया गया है। यह सभी व्यक्तियोंके लिये, चाहे वे किसी भी मत-मतान्तर, जाति, सम्प्रदाय और धर्मके अनुयायी हों, समान रूपसे पठनीय है। स्त्री-पुरुष तथा अबाल-वृद्ध सभीके हिये यह समान रूपसे उपयोगी है। इसमें पति का पत्नीके प्रति और पत्नीका पतिके प्रति कर्त्तव्य आदि बताया गया है। सत्य, ब्रह्मचर्य, नैतिक और शुद्ध आचरण, गुरुजनोंके प्रति कर्त्तव्य, पारस्परिक सद्भावना, आदर्श भोजन, जो हमारी शक्ति और विचारोंका स्रोत है—आदि विषयोंपर भी विशेष रूपसे प्रकाश डाला गया है। आत्म-विकासके लिये प्रत्येक व्यक्तिको इस पुस्तक की आवश्यकता है।"

—"सर्च-लाइट" (अंग्रेजी दैनिक), पटना।

उच्च कोटिका

श्री मनसुख रायजी मोरका "गृहस्थ-धर्म" एक उच्च कोटिका सांस्कृतिक ग्रन्थ है। इसकी पूर्ण सामग्री ज्ञान-वर्द्धक और उपादेय है। इस अनुपम ग्रन्थमें हमारे पूर्वजों, ऋषि-मुनियों और श्रुति-स्मृतिके उपदेश भरे पड़े हैं। इसमें वेदों और शास्त्रोंको बहुमूल्य शिक्षाओंका निचोड़ है। मानव-उत्थान, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्यको प्रतिष्ठा तथा प्राणी-मात्र को रक्षा इस ग्रन्थका उद्देश्य है।

इससे भारतीय जनताके गार्हस्थ-स्तरको ऊंचा उठनेमें निःसन्देह बड़ी सहायता मिलती है। इस ग्रन्थ द्वारा गृहस्थोंको अपने कर्त्तव्य पथपर अधिकाधिक रूपसे अग्रसर होनेके लिये प्रेरणा और प्रोत्साहन प्राप्त होता है। कहा जा सकता है कि गृहस्थोंके लिये यह एक आदर्श ग्रथ है। सोये हुए भारतीय समाजमें इससे नव-चेतना और प्रकाशको ज्योति पहुंचती है।

इसकी उपयोगिता, उपादेयता और व्यापकता से भारतका प्रत्येक घर गूंज उठेगा और धर्मका शङ्खनाद होने लगेगा, क्योंकि धर्मके गूढ़तम रहस्योंका इसमें अद्भुत पुट है। प्राचीनसे लेकर अर्वाचीन धर्म तककी इस ग्रंथमें विशद चर्चा और व्याख्या की गयी है।

'गृहस्थ-धर्म' के समुचित अध्ययनसे बुद्धि-रूपो शक्तिका उभार और भावना-शक्तिको यथोचित वृद्धि होती है। इसमें ऐसे सदोपदेशोंका समावेश है, जिनके अध्ययन और मननसे, जिन्हें अपने आचरणमें लानेसे मनुष्य अपनेको अनायास ही ऊंचा उठा सकता है और अपने मानव-जीवनको सफल बना सकता है। ग्रंथमें संग्रहित उपदेश दैनिक-जीवनके हर पहलूमें उतारने योग्य हैं।

दैनिक "विश्व-बन्धु"

सांस्कृतिक ग्रन्थ

"गृहस्थ-धर्म" को पढ़नेसे आत्म-शान्ति प्राप्त होती है, जिससे पारिवारिक और सामाजिक उन्नतिमें बड़ी सहायता मिलती है। इसमें किंचित भी सन्देह नहीं कि इस ग्रंथके प्रकाशनसे हिन्दीमें एक विशेष अभावकी पूर्त्ति हुई है। इस ग्रंथके द्वारा मनुष्य अपनी शारीरिक, मानसिक और नैतिक उन्नति कर सकता है। इसमें लिखे हुए नियमोंका ठीक-ठीक पालन किया जाय, तो मनुष्यका जीवन बहुत कुछ सुधर सकता है।

आजके युवकोंकी नश-नशमें जो बुराइयां घुस गयी हैं, इस अनुपम धार्मिक-ग्रंथके अध्ययनसे वे समूल नष्ट हो सकती हैं और हमारी युवक-पीढ़ी निश्चय ही चरित्र-वान बन सकती है। हमारे जो नवयुवक अपना ब्रह्मचर्य खो बैठे हैं, इस ग्रंथका अध्ययन कर उन्हें कुपन्थ पर चलनेकी हिम्मत ही न होगी।

हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि पाठक इस ग्रंथको कल्याण की भावनासे अध्ययन करें। दोष और छिद्र निकालनेका प्रयत्न करनेसे तो बड़े-बड़े ग्रन्थ भी अछूते न रहेंगे।

इस ग्रंथमें जिन-जिन स्थलोंमें यदि कुछ कतिपय अप्रिय शब्द आ गये हैं, तो ग्रन्थके संग्रह-कर्त्ताने निश्चय किया है कि उन्हें आगामी संस्करण में हटा दिया जायेगा और उनके स्थानपर अधिक प्रिय और मानव-कल्याणकारी शब्दोंका समावेश किया जायेगा।

कलकत्ता।

५२५—श्री रामसेवक सिंह, मो० पो० गुरारु, जिला गया।

—आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर मैं मंत्र-मुग्ध हो गया। इस पुस्तककी विशेष प्रशंसा करना सूर्यको दीपक दिखाना है। आशा है, भविष्यमें भी, आप इसी प्रकार जनताकी सेवा करते रहेंगे।

५२६—श्री शिवराज वर्म्मा, ग्राम पुस्तकालय, मौलवीगंज, गया।

—आपके द्वारा प्रदत्त 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक भूरि-भूरि प्रशंसनीय है। उक्त पुस्तकके द्वारा आपने जनताकी महान सेवा की है। आजतक किसीने भी ऐसा कार्य नहीं किया था। जनता अपने मार्गको भूलती जा रही थी। ऐसी दशामें इस पुस्तकके द्वारा आपने जनताको कर्त्तव्य-पथपर अग्रसर कराया।

५२७—श्री मारूका सिंह, राजगीर, पटना।

—आप एक 'गृहस्थ-धर्म' नामक किताब गृहस्थोंको मुफ्त भेजकर पुण्यके भागी बन रहे हैं। आप लोकोपकार कर रहे हैं। इस किताबको पढ़कर बहुतसे मनुष्य ज्ञानवान बने तथा बन रहे हैं।

५३२—श्री भगवानदीन स्वर्णकार, मुकाम नवादा, पो० कमलापुर, जिला सीतापुर।

—आपके द्वारा संग्रहित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को देखकर हृदयको अति प्रसन्नता प्राप्त हुई, और यह इच्छा हुई कि इसको ध्यानसे पढ़कर दूसरोंको भी सुनाऊं।

५३३—श्री गजेन्द्रनाथ सिंह, ग्राम बरूआरी, पो० केवासा बरूआरी, जिला दरभंगा।

—मैं आपकी इस उदारताको देखकर मुग्ध हूँ। आपकी इस 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकने मेरे हृदयपर अपना अधिकार जमा रखा है।

५३४—श्री प्रभुचन्द सिंह, मु० अलावलपुर, पो० नगरनोहसा, जिला पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक गृहस्थोंके लिये बहुत ही उपयोगी है तथा इस किताबको प्रत्येक घरमें रहना अति आवश्यक है।

५३५—श्री मन्त्री अयोध्याप्रसाद पुस्तकालय, ग्राम बरियारपुर, था० बाढ़।

—आपने जो 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक विश्वके कल्याणको देखते हुए निर्माण किया है, उसे पढ़कर मानव-समाज उन्नतिके शिखरपर जा सकता है।

५३६—श्री सत्यनारायण, भागलपुर।

—आप 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकका प्रचार कर गरीबों और अनाथोंका बहुत लाभ कर रहे हैं।

५३७—श्री गुरुप्रसाद टण्डन, काटन डिपार्टमेण्ट, मालवा मिल, इन्दौर।

—आपके द्वारा प्रकाशित और प्रसारित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। हर हिन्दू गृहस्थको इस पुस्तक द्वारा जो शास्त्रीय जानकारी प्राप्त होती है, वह प्रशंसनीय है।

५३८—पं० रामरत्न त्रिपाठी, परिआंवां, भार्थू, गया।

—आप जनताको गृहस्थ-धर्म से अवगत करानेके लिये 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकका प्रचार कर रहे हैं। वास्तवमें यह पुस्तक गृहस्थोंके लिये ही नहीं, बल्कि समाज तथा सभी संप्रदायोंके लिये हितकर है।

५३९—श्री लक्षू सिंह शिक्षक, लो० प्रा० स्कूल, पो० मौ, जिला गया।

—मैंने आपकी प्रचलित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' की बड़ी प्रशंसा सुनी है तथा आंखोंसे भी देखी है। सचमुचमें यह समयानुकूल आवश्यक उपयोगी पुस्तक है।

५४०—श्री महेन्द्र प्रसाद, मि० स्कूल, गुरारु मिल्स, पो० गुरारु, जिला गया।

—आपके पास जो 'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तक है, वह पाठकोंको सन्मार्गपर अग्रसर करनेके लिये आव[illegible] उसे देख मेरे हृदय-सागरमें बहुत बड़ा तूफान उठ पड़ा।

१२

५४१—श्री हरिवंश प्रसाद शर्म्मा, ग्राम उत्तमपुर खरधुआ, पो० पोआरी, ज़िला गया।

—यह पुस्तक हर गृहस्थ परिवारके लिये बहुत ही उपयोगी है। इस अनुपम सेवाके लिये आपको तथा आपके कार्यालयको कोटि-कोटि धन्यवाद है।

५४२—श्री गंगाप्रसाद, मंत्री, श्री गंगा पुस्तकालय, पो० दरुआरअ, जिला पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक बिना मूल्य वितरित कर आप समाजकी अत्यन्त भलाई कर रहे हैं। यह पुस्तकालय बड़ा आभारी होगा, यदि आप उक्त पुस्तककी एक प्रति इसे प्रदान करें।

५४३—श्री रामस्वरूप प्रसाद, हिलसा, पटना।

—अत्यन्त हर्षका विषय है कि आप 'गृहस्थ-धर्म' के द्वारा अपने देशको उन्नतिकी शिखरपर चढ़ाना चाहते हैं। इसके लिये आपको कोटिशः धन्यवाद है।

५४४—श्री बादलप्रसाद यादव, भागलपुर।

—आप भारतीय जनताके हितके लिये 'गृहस्थ-धर्म' नामक ग्रन्थ निःशुल्क वितरण कर रहे हैं। अहो भाग्य, हमारे देशवासियोंका होगा, जो आजसे पतित होकर अधर्मका मार्ग अनुसरण कर रहे हैं।

५४५—श्री मेवालाल रामशरण प्रसाद, ग्राम कौड़ी मेयार व्यामशालाके नज़दीक, पो० सोहसराय, जिला पटना।

—मुझे खेती करते-करते करीब १५ साल हो रहे हैं। परन्तु इस कृषिमें मुझे कुछ भी दिलचस्पी देखनेमें नहीं आयी। इसके सिवा इस धर्मके नियमको जाननेके लिये मैं बहुत दिनोंसे लालायित था। मैंने इसके विषयमें बड़े-बड़े महान पुरुष, योगी, संन्यासियोंसे कृषिके नियमोंको पूछा था, परन्तु किसीने भी सन्तोष-जनक उत्तर नहीं दिया। आप ऐसे सज्जन पुरुष इस धर्मके तत्वोंको बतानेमें समर्थ हुए हैं। आपने 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकमें इन नियमोंको दिया है।

५४६—श्री विद्यार्थी पुस्तकालय वृन्दावन, पोस्ट सरमेरा, पटना।

—बड़ा ही आनन्दका विषय है, आपने "गृहस्थ-धर्म" नामक पुस्तक जनतामें मुफ्त बाँटना शुरू किया है। ईश्वर करे आपकी यह साधना हमेशा इसी क्रमसे चलती रहे, जिससे स्वतन्त्र नागरिकोंकी उन्नतिका मार्ग बराबर उदय होता रहे।

मेरी तो प्रबल इच्छा है कि आपकी इस पुस्तकको अपने पुस्तकालयमें रख ग्रामीणोंको इसकी तरफ आकर्षित करें

५४७—श्रीमती प्रसन्नाकुमारी, मोकाम मिढ्ढ बलिया, पोस्ट नैनो, जिला छपरा।

-आपकी यह पुस्तक पुरुषोंके लिये ही नहीं, हम देवियोंके लिये भी बहुत उपयोगी और अमूल्य वस्तु है। हम उपदेशों पर चलना परमावश्यक है।

५४८—श्री बिक्रू यादव, पो० मनीआगाछी, दरभंगा।

—आपकी पुस्तक "गृहस्थ-धर्म" देखकर हमें अति आनन्द और हर्ष हुआ है। हम ऐसे गृहस्थ आदमियोंके लिये यह पुस्तक अतिशय उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इस पुस्तकका नामकरण भी बहुत सोच-समझ और सोनेके समान कसौटी पर कसकर रखा गया है। 'गृहस्थ-धर्म', वास्तवमें इस पुस्तकरूपी धर्म-शिक्षकके धर्म, ज्ञान, बुद्धि और जीवनके हर क्षेत्रको सफल बनानेके लिये समाजको बहुत बड़ा सहारा मिल गया है।

५४९—श्री चन्द्रेश्वर प्रसाद, हा० ई० स्कूल हुलासगञ्ज, पो० हुलासगञ्ज, गया।

—इधर कई महीनोंसे मुझे आपके द्वारा प्रचारित "गृहस्थ-धर्म" पुस्तक देखनेको मिल रहा है। यदाकदा किन्हीं सज्जनोंसे माँगकर कुछ पेज पढ़े भी हैं। यह पुस्तक बहुत ही ज्ञानपूर्ण एवं रोचक मालूम पड़ी। तमाम बातोंकी जानकारीके लिये यह पुस्तक अभीतक मेरी समझमें अद्वितीय है। हिन्दी-जगतमें ऐसी पुस्तकोंका सर्वथा अभाव है। इसलिए मैं भी चाहता हूँ कि इस पुस्तक की एक प्रति मुझे मिले।

५५०—पं० किशोरीलाल त्रिवेदी, 'साहित्यरत्न', नागरी निकेतन बड़वाह, (म० भा०)

—'नागरी-निकेतन' हिन्दीकी प्रचारक और समाजमें सुधारकी भावना क्रियात्मक रूपमें निर्माण करनेवाली संस्था है। बालक, युवक, प्रौढ़ तथा वृद्ध सभी इससे लाभान्वित हो रहे हैं। एतदर्थ हमारी उत्कट इच्छा हुई है कि आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक हमारी संस्थामें रहे। हम उसके द्वारा शिक्षण लाभ करेंगे।

५५१—श्री वरदान मिंज, ग्राम, रानीखटंगा, पो० इटकी, जिला राँची, बिहार।

—मुझे यह जानकर बहुत खुशी हुई कि आप अपने देशकी लौकिक तथा पारलौकिक भलाईके लिये 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको संग्रह कर तथा उसे अपने गरीब दुःखी देशवासियोंको बिना मूल्यके बाँट रहे हैं, ताकि वे उससे कुछ ज्ञान लाभ कर सकें।

५५२—श्री बजरंग प्रसाद सिंह, बन्धवा, पो० हथियारा, जिला, गया।

—मैंने आपके यहाँसे प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' को देखा। पुस्तकमें विविध विषयोंका संग्रह अत्यन्त उत्तम है। आज यह ग्रंथ आपकी यशपताका भारतवर्षके प्रत्येक गृहस्थको सदाचारमें प्रवृत्त होनेको अग्रसर कर रहा है।

५५३—पं० कन्हैयादत्त शास्त्री, बेगमपुर भितरी, ठाकुरवारी बेगमपुर, पटना।

—आपका यश बिहारके कोने-कोनेमें फैल रहा है। गृहस्थोंके लिए आपने "गृहस्थ-धर्म" नामक [illegible] निकाल रखा है, जिसमें गृहस्थोंका उत्थान और सुधार अवश्य हो सकता है।

५५४—श्री रामस्वरूपलाल, तृतीयाध्यापक, बो० लो० प्रा० पाठशाला, पोस्ट नावकोठी, जिला मुंगेर, (बिहार)।

—'गृहस्थ-धर्म' द्वारा आपके त्याग और तपस्याकी झलक इन दिनों हिन्दुस्तानमें फैल रही है। आप अपने त्याग और तपस्यासे गिरे हुए मानवको पतनके गड्ढेसे बाहर निकालनेके लिए जो प्रयास कर रहे हैं, उसके लिये आपको ईश्वर चिरकाल तक दीर्घायु रखें।

५५५—श्री श्याममूर्त्ति रावत, जबलपुर।

—आपने इस पुस्तकका निर्माण कर हमारे देशका ही नहीं, परन्तु सारे संसारका उपकार किया है। इस पुस्तक को पढ़नेसे सभी प्राणियोंका भला हो सकता है। पुस्तककी भाषा भी सरल है।

५५६—पं० रघुनाथ झा, मुहल्ला गायघाट, पो० गुलजारबाग, पटना।

—मुझे मालूम हुआ है कि आपने बहुत-सी धार्मिक किताबें धर्मार्थ बिना शुल्क लिये लोक-कल्याणके लिये लोगोंमें वितरित की हैं। लोगोंका कहना है कि आपकी सब किताबोंमें 'गृहस्थ-धर्म' ही सबसे ज्यादा उपयोगी है। इससे जनता लाभान्वित हुई है।

५५७—श्री ब्रजनन्दन सिंह, काजलचक, पो० वीर, जिला पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' से हिन्दू जाति तथा धर्मकी भलाई हो रही है और आशा है कि मानव-समाजपर इसका असर पड़े बिना नहीं रह सकता। आपने इस पुण्य-कार्यमें हाथ बंटाया है।

५५८—श्री हजारीप्रसाद, गया सेण्ट्रल जेल, गया।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकका यश सारे संसारमें जागृत है। यह पुस्तक जबतक इस संसारके अन्दर रहेगी, तबतक आपका नाम भी अमर रहेगा।

५५९—श्री शान्तिवरदान मिंज, गांव कोर्रा, जिला हजारीबाग।

—अति प्रसन्नताका विषय है कि आपने अपने छात्रों, माता-पिताओं तथा भाई-बहनोंके लाभार्थ 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक छापी है, यह पुस्तक हरेकको लाभप्रद एवं जीवन साथी सिद्ध हो रही है।

५६०—श्री अतुलचन्द्र मुखर्जी, मिडिल स्कूल कसमार, पो० कसमार, जिला हजारीबाग।

—आपका 'गृहस्थ-धर्म' ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है, इसकी उपयोगिताको सुदूर इलाकोंमें प्रचार करना चाहता हूँ। विद्यालयमें उप-प्रधानाध्यापक हूँ। मुझे हिन्दीसे प्रगाढ़ प्रेम है। मैं इस ग्रन्थकी सार्थकताको सहर्ष स्वीकार

सम्मतियाँ और उद्‌गार !

५६१—श्री युगल सिंह, मोकाम साहोपुर, पो० लारी, जिला गया।

—'गृहस्थ-धर्म' गृहस्थोंके लिये अत्यन्त लाभदायक पुस्तक है। जो गृहस्थ इस पुस्तकको पढ़कर इसीके अनुसार काम करेगा, वह दावेके साथ सद्‌गृहस्थ कहला सकता है।

५६२—श्री मोहर साइ, हेड मास्टर, बदी, नवपारा, पो० सरिया, जिला रायगढ़।

—'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तक बड़ी रोचक और हितोपदेशकारी है। मैं एक बार सम्पूर्ण पुस्तक प्रेमपूर्वक पढ़ना चाहता हूँ और मुझसे जैसे बने इस पुस्तकके गुणोंको प्रचार करना चाहता हूँ।

५६३—श्री तुलाराम एम० ई० स्कूल बिल्डिङ्ग, सब-पुलिस इंस्पेक्टर, हजारीबाग।

—आपकी भेजी हुई पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर मैं धन्य हुआ। मुझे उसे पढ़नेकी बड़ी लालसा है। यह पुस्तक प्राणी मात्रके लिये एक अच्छी पुस्तक है।

५६४—श्री लखनप्रसाद प्रधानाध्यापक, माध्यमिक-विद्यालय, योगीपुर, हिलसा, पटना।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको देख बड़ी प्रसन्नता हुई। भगवान आपके प्रयत्नको सफल करें।

५६५—श्री बद्रीप्रसाद, दलदलीचक, दाहा बिगहा, पटना।

—महानुभावः सविनयं निवेदयतेऽयम् विद्यार्थी, यत् पत्रे, उल्लेखिता पुस्तिका अवश्यं प्रेषितव्यम्। येन, अस्माकं मनोरथ सिद्धिर्भ वेत्। पुस्तिकायाः (इयम् संज्ञा) (गृहस्थ-धर्म) इति।

५६६—आदि जाति सेवा-मण्डल, पो० रीतू, जिला रांची।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' की प्रशंसा इधर बहुत हो रही है। मानव-समाजकी उन्नति, आचरण और धर्मोपदेशकी एक मात्र सर्वोत्तम पुस्तक है।

५६७—श्री महावीरप्रसाद, लुहारू, हिसार।

—आपकी इस 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकसे मुझे ज्ञान प्राप्त होता है और यह बहुत ही अच्छी मालूम होती है। इससे अच्छे-अच्छे उपदेश मिलते हैं और ऋतुकाल मुझे बहुत ही अच्छा लगता है।

५६८—श्री देवनन्दन प्रसाद सिंह, मु० पो० मुर्गांध, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकमें गृहस्थोंके बारेमें सुन्दर उपदेश दिये गये हैं। हमें भी इस पुस्तकको पढ़नेकी अति लालसा होती है।

५६९—श्री सुखदेव सिंह 'आजाद', मोर्चापर, बेगमपुर, पटना।

—मैंने आपके द्वारा संचित 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको देखा है। पुस्तक अति उत्तम है। [illegible] शिक्षित सभी वर्गोंके लिये यह लाभदायक प्रतीत होती है।

५७०—श्री शिवशङ्कर मिश्र, लखनऊ।

—'स्वदेश' नामक समाचार पत्रके 'नया साहित्य' स्तम्भके अन्तर्गत आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म'की समालोचना पढ़कर चित्तको अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

५७१—श्री रामकुमार उपाध्याय, 'साहित्याचार्य' मो० सिकरिया, पो० टिकारी, गया।

—कृपया 'गृहस्थ-धर्म' की एक प्रति शीघ्र भेजनेका कष्ट करेंगे। इसकी उपयोगिताने हमें इसकी उपलब्धिके लिये बाध्य कर दिया है। आशा करता हूं, आप पुस्तक भेज कर अपनी उदारताका परिचय देंगे।

५७२—श्री चन्द सिंह अध्यापक, लो० प्रा० स्कूल नारायणपुर, जिला पटना।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक देखी। पुस्तक देखकर मेरा मन विभोर हो गया। हम शिक्षकोंके लिए यह बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई है।

५७३—श्री बाबू छट्ठू यादव, मन्त्री थाना कांग्रेस कमिटी बोधगया, जिला गया।

—आपने "गृहस्थ-धर्म" नामक जो पुस्तक प्रकाशित की है, वह गार्हस्थाश्रमको उच्चास्तर पर ले जानेका एक मात्र साधन है।

५७४—व्यवस्थापक, श्री विद्यार्थी पुस्तकालय सीरोपट्टी, पो० इलमासनगर, दरभंगा।

—महामहिम जगन्नियन्ताकी प्रेरणासे आप 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक बिना मूल्य वितरण कर जनता और संस्थाओंसे सम्बद्ध लोगोंके उपकारार्थ सहर्ष अर्थ-व्यय कर रहे हैं। धन्यवाद। कृपया मेरी संस्थाके लिए भी एक प्रति भेजकर अनुगृहीत करेंगे।

५७५—श्री ताराचरण तिवारी, कोनी, (मोगलापुर), पो० करपी, जिला गया।

—सुननेमें आया है कि आपने जो 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक निकाली है, वह बड़ी ही सुन्दर, उपदेशक और शान्ति-दायिनी है। इससे मुझे भी उस पुस्तकको पढ़नेकी अति उत्कण्ठा है।

५७६—श्री भानुप्रतापलाल, गमहेरिया, सिंहभूम।

—मैंने आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको देखा और बहुत पसन्द किया। यथार्थमें यह पुस्तक मानव समाजके लिये उपयोगी है।

५७७—श्री जनक सिंह, मोकाम बिष्णुपुर, पोस्ट पैठाना, जिला पटना।

—श्रीजनक सिंह बिष्णुपुर पटनासे 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकके सम्बन्धमें अपना मत प्रकट करते हैं। आपकी उपर्युक्त [illegible]के सरसरी निगाहसे देखनेको मिली है, उससे यही ज्ञात होता है कि यह पुस्तक जीवनके लिये बहुत लाभकारी है औ[illegible] [illegible]स्तकके द्वारा हम अपने जीवनको यथोचित रूपमें कार्यान्वित कर सकते हैं तथा अपने जीवनके उचित-अनुचित [illegible]क समझ सकते हैं। एतदर्थ धन्यवाद!

५७८—श्री गणेश प्रसाद, पटना।

—आपने जो 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक देशहितके लिए वितरित की है, उसके लिए कोटिशः धन्यवाद। ईश्वर आपको दीर्घायु बनायें।

५७६—श्री कपिलदेव सिंह, महादेवपुर, पोस्ट परैया, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको आप गृहस्थोंके कल्याणार्थ दान दे रहे हैं, इसके लिये अनेक धन्यवाद। आप जैसे परमार्थी पुरुषको ईश्वर दीर्घायु बनाए रखे, जिससे देशका कल्याण हो।

५८०—श्री माधवराव गोपाल, पटवारी दिक्षण तहसील खरगोन, होलकर स्टेट, खरगोन।

—आपने "गृहस्थ-धर्म" नामकी किताब प्रकाशित की है। वह देखी। जगतके कल्याण हेतु यह उत्तम कार्य है। प्रत्येक व्यक्तिको 'गृहस्थ-धर्म' किताबकी आवश्यकता है।

५८१—श्री रामानन्दन सिंह, सा० मलठिआ, पो० विशुनपुर, जिला गया।

—आपने 'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तकका संग्रह किया है, जो हमलोगोंके लिये अत्यन्त लाभदायक है। इसलिये कृपा करके आप जल्दसे जल्द 'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तक वी० पी० द्वारा भेजनेकी कृपा करें, मैं अवश्य ही उस किताब को छुड़ा लूंगा।

५८२—श्री रामदेव पांडे सहायक पण्डित संस्कृत विद्यालय, पो० हिलसा, पटना।

—आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक "गृहस्थ-धर्म" कुछ दिनोंके लिए देखनेका अवसर प्राप्त हुआ। गृहस्थोंके लिए वास्तवमें यह पुस्तक बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है। अतः आपसे निवेदन है कि उक्त पुस्तककी एक प्रति मेरे लिए भी भेज देनेकी कृपा करें।

५८३—चिन्तामनी देवी उमेश्वर देवी, मो० उसार, पो० उसारदेओरा, गया।

—हम गृहस्थ घरकी स्त्रियोंके लिए 'गृहस्थ-धर्म' बहुत ही अच्छी पुस्तक है। हमने इसका अध्ययन कई एक बार अपनी सहेलियोंके यहाँ किया है। जैसा इसका गुण सुनते थे, उससे भी अच्छा निकला। मेरी उत्कण्ठा बढ़ी और इसे प्राप्त करनेकी लालसा दिलमें जागृत हुई।

५८४—मन्त्री, श्री महावीर पुस्तकालय, मु० पो० नूरसराय, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक वितरित कर आप समाजकी पर्याप्त भलाई कर रहे हैं। तदर्थ साधुवाद! कृ[illegible] होगी, यदि आप हमारे पुस्तकालयको भी कुछ प्रतियाँ भेज दें। यदि ऐसा चाहें, तो निकटस्थ चार-पाँच प्रसिद्ध [illegible] में वितरणार्थ और कुछ प्रतियाँ भेज दें।

५८५—श्री कारू साव, रामप्रताप, मखलौटगञ्ज, गया।

—आगे आपने मनुष्योंको सभ्य बनाने तथा किस प्रकार गृहस्थाश्रममें रहकर जीवन सुखमय तथा ब्रह्मचर्य, संयम के साथ जीवन व्यतीत करना चाहिये, इन उद्देश्योंको ध्यानमें रखकर मुफ्त प्रचार करनेके लिये जो पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' नामक छापी है उसके लिये अनेक धन्यवाद !

५८६—गौरीशङ्कर शरण सिंह, ग्राम, रजौली, जिला गया।

—सौभाग्यसे आपके द्वारा प्रकाशित एवं जनसाधारणमें वितरित सद्ग्रंथ 'गृहस्थ-धर्म' को देखनेका अवसर प्राप्त हुआ। आपकी इस सद्प्रवृत्ति और धर्म प्रचारकी उत्कण्ठाके हेतु जितनी भी सराहना की जावे, वह थोड़ी ही होगी।

५८७—श्री मारूका सिंह, राजगीर, पटना।

—आप एक 'गृहस्थ-धर्म' नामक किताव गृहस्थोंको मुफ्त भेजकर पुण्यके भागी बन रहे हैं। इस किताबको पढ़कर बहुतसे मनुष्य ज्ञानवान बने तथा बन रहे हैं।

५८८—श्री नवलकिशोर प्रसाद, मो० पो०, अशोकनगर, जिला पटना।

—आपने 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक निकालकर जो मानव-जीवनकी उत्तमता प्रदर्शित की है, उसके लिए हृदयसे आपको धन्यवाद है। यह पुस्तक अपने ढंगकी अकेली है, अगर 'गृहस्थ-धर्म' के पाठक इसके उद्देश्यों पर ध्यान देकर उन्हें अपने जीवनमें कार्यान्वित करें, तो अवश्य ही उनका जीवन उच्चस्तर पर पहुंच सकता है।

५८९—श्री करुणानिधी, पो० जैतिपुर, गया।

—हमारे यहां शास्त्रोंमें गृहस्थ-धर्म का बहुत बड़ा महत्त्व है। परन्तु, समाज वर्तमान समयमें अपनी कमजोरियों के कारण बहुत कमजोर होता जा रहा है।

मुझे 'गृहस्थ-धर्म' के अध्ययनसे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। आपका यह कार्य सामाजिक कमजोरियोंको दूरकर उसे प्रौढ़ बनानेके लिए बहुत ही सराहनीय है। आशा है, आपका यह ग्रंथ समाज-सुधारके लिए अत्यन्त उपयोगी होगा और जनता अपने वास्तविक लक्ष्यको समझकर जीवनका वास्तविक उपयोग कर सकेगी। हार्दिक बधाई !

५९०—श्री भुनेश्वर प्रसाद, गौढ़ापर पो० चगडी, जिला पटना।

—आपकी पुस्तक समाजके लिये बहुत ही उपयोगी है। आपकी इस पुस्तकसे समाजका अवश्य ही कल्याण होगा।

५९१—श्री चन्देश्वर प्रसाद, मो० डिश्राबा छोटी चिगटा, सराय परशुराय, पटना।

--मेरा ख्याल है कि आपकी इस पुस्तककी ख्याति देशके कोने-कोनेमें पहुंच चुकी होगी। मुझे तो आपकी पुस्तक [illegible] अपने-अपने प्रान्तमें दावानलकी तरह वेगसे बढ़ते देखकर बहुत हर्ष हो रहा है। सचमुच आपकी इस पुस्तकको [illegible] सरस[illegible]ने जीवनके लिये बहुत ही उपयोगी समझ रखा है। मुझे भी इसके ऊपर इतना विश्वास है कि दूसरे हाथों [illegible] पुस्तकके [illegible] इच्छा होती है कि सर्वदा इस पुस्तकको अपने हाथमें रख प्रसन्नचित्त बने रहें।

[illegible]क समझ

५६२—श्री रामनारायण सिंह, मोकाम डिघरी, पो० सराजागारा, जिला मुंगेर।

—आपकी यह पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' बहुत ही उत्तम है। मुझे तो सबसे बड़ी प्रसन्नता आपके वितरण कार्य पर है। मुझे विश्वास है कि आपके इस कार्यसे अनेकानेक मानवोंका कल्याण होगा। मैं भी अपने यहांके 'गृहस्थ-धर्म' से अनभिज्ञ किसानोंको इस पुस्तकसे परिचित कराऊँगा और उसमें व्यक्त किये हुए विधानोंको समझाऊंगा।

५६३—श्री यमुनाकान्त पाण्डेय 'शास्त्री' काजीमंडी, बनारस।

—आपने जो इस पुस्तकको विना मूल्य जनतातक पहुचानेकी व्यवस्था की है, उसे देखकर हृदय पुलकित हो उठता है। आपकी यह पुस्तक गृहस्थोंके लिए बड़े काम की है। जनताकी ओरसे हार्दिक धन्यवाद।

५६४—श्री सियाराम शरण शर्मा, बी० ए० आनर्स, मोकाम पोखवां, पोस्ट पंडौल, जिला गया।

—आपने गृहस्थोंके लिए जो 'गृहस्थ-धर्म' अर्पित किया है, उससे समाजको वास्तविक फायदा होगा। आपने इस पुस्तकको प्रकाशित कर जो कार्य किया है, उससे किसानोंको अवश्य ही अपना चरित्र उच्चतम बनानेमें सहायता मिलेगी।

५६५—श्री किशोर राउत, मोकाम रूसी, पो० विन्दालाल, जिला सारन (छपरा)।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकका प्रकाशन देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। आपके इस कार्यको देखकर यह आशा होती है कि आप जैसे दानी और दयालु पुरुष इस धरा पर बहुत अल्प हैं और जो हैं, वे भी इस कार्यसे बहुत कम हैं। आशा है, आपकी इस पुस्तकसे भारतकी जनता लाभ उठायेगी।

५६६—श्री जागेश्वरलाल, थाना-बिगहा, पोस्ट जैतीपुर कुरुवा, जिला गया।

—आपकी इस पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई। आपने गृहस्थ-धर्मके प्रचारमें जो कार्य प्रारम्भ किया है, उसके लिए मैं आपको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

५६७—श्री गंगाधर पाण्डेय, मोकाम सराई (सराय), पोस्ट सकलडीहा, जिला बनारस।

—आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को देखकर हृदय खिल उठता है। आपने इस पुस्तकके द्वारा सनातन धर्म या हिन्दू धर्मकी अपूर्व सेवा की है। हार्दिक धन्यवाद !

५६८—श्री देवनन्दन प्रसाद, मोकाम बदराबाद, पोस्ट एकंगसराय, जिला पटना।

—आपको यह पुस्तक अपना अपूर्व महत्त्व रखती है। इस पुस्तकको कई बार पढ़ जाने पर भी [illegible] ऊबता। धन्यवाद !

५९९—श्री त्रिलोकचन्द्र मिश्र, उ० प० लंकार, राजस्थान विद्याभवन, दरभंगा।

—आपकी इस पुस्तिकाकी प्रशंसामें जितना भी कहा जाय, बहुत थोड़ा है। आपकी इस पुस्तकसे आर्यावर्तके सभी धार्मिक भाई कम परिश्रमसे अधिक लाभ उठायेंगे।

६००—श्री वीरनारायण प्रसाद, मोकाम-पोस्ट हिलसा, जिला पटना।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तककी चर्चा सुनकर हृदय गद्‌गद हो उठा। यह पुस्तक भगवानके अत्यन्त निकट ले जानेका साधन है। आपने जिस निःस्वार्थतासे धर्म प्रचारका कार्य करना प्रारम्भ किया है, उसके लिए हृदयसे धन्यवाद है।

६०१—श्री जनमेजय मिश्र, प्रधान शिक्षक, बगाड़िही स्कूल।

—आपकी प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को देखकर बहुत आनन्दित हुआ। यह पुस्तक छात्रोंके लिए बहुत उपयोगी तथा अपने नित्यकर्मका सहारा है। आपके इस कार्यके लिए हार्दिक धन्यवाद!

६०२—श्री सुकदेव सिंह, खगौल, पटना।

—सेवामें नम्र निवेदन है कि मैं देहातका निवासी हूँ। मैं एक साधारण किसान हूँ। परन्तु मेरे जीवनका लक्ष्य ग्रामोत्थान एवं गृहस्थोंको अपनी सेवा ही प्रदान करना है। हमें यहाँ पता चला है कि आपके यहांसे 'गृहस्थ-धर्म' मुफ्त वितरण की जाती है। अतः आपसे मेरा अनुरोध है कि आप इसे भेजकर यशके भागी बनें।

६०३—श्री वासुदेव पाण्डेय, शास्त्री, मु० बनजरिया, पो० सरांवां, जिला दुमका।

—महानुभाव! आपने गृहस्थोंके सबसे बड़े अभावकी पूर्त्ति की। अबतक इस तरहका धर्मोपदेश परिपूर्ण, सरल हिन्दी तथा संस्कृतसे रचित कोई भी पुस्तक हमें देखनेको न मिली थी। यों तो बहुत उपयोगी पुस्तकें देखीं। अस्तु, परमब्रह्म सच्चिदानन्द घन परमेश्वर नटवर श्री कृष्णजीसे निवेदन है कि आपके ऊपर सहानुभूति प्रदान करते हुए, आपके उत्साहको सफल बनावें।

६०४—श्री राजदेव सिंह, गोपालपुर, पटना।

—मान्यवर! श्री मनसुख रायजी, आपकी स्वरचित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म'का नाम बहुत दिनोंसे सुन रहा था, किन्तु अभीतक उसके देखनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। हाल ही में एक साथीके सम्पर्कसे इस पुस्तकको देखा।

कुछ ही पन्नोंके पढ़नेसे इस पुस्तकके गम्भीर भावोंका उल्लेख मुझे मिलने लगा और मैं समझता हूं कि हमारी प्राचीन संस्कृति और सभ्यताका यह एक अचल स्तम्भ बन कर ही रहेगा। एक बार पढ़नेपर भी तबियत बार-बार इसे [illegible] सरस [illegible] होती है। अतः यह पत्र भेजकर मैं आशा करता हूं कि इस पुस्तककी एक प्रति आप मेरे पास भेज दीजिये। है [illegible] स्तकके [illegible] रतीय संस्कृति और सभ्यता तथा मानव-जीवनके आप पोषक ही सिद्ध हुए हैं। अतः धन्यवाद देनेका [illegible] क सम [illegible] को इस महान कार्यके लिये धन्यवाद देता हूं।

६०५—श्री गोस्वामी महेशगिरि तथा गो० रामबलीगिरि, मु० शर्मा, पो० सहथा, जिला मुजफ्फरपुर ।

—उस परमपिता परमात्माको हम कोट्यानुकोटि धन्यवाद देते हैं, जिन्होंने इस कराल कलिकालमें जनता जनार्दनके समक्ष धर्म-प्रचारके हेतु आपको सद्बुद्धि दी । धन्य हैं आपके माता-पिता तथा धन्य हैं आप, जो इस जमानेमें भी धर्म-प्रचारके हेतु अपने धनको अबाध रूपसे खर्च करते हैं । अस्तु ! आपके 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको देख कर हम बहुत हर्षित हैं ।

६०६—श्री गुप्तेश्वर दुबे, शिक्षक, ग्राम व डाकघर तरार, जिला गया ।

—श्रद्धेय ! मुझे 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक सिर्फ देखने भरको एक मित्रसे मिली । यह पुस्तक सचमुच समाजमें सुख एवं शान्ति तथा सुव्यवस्था लानेवाली है । अतः इसका प्रचार कल्याणप्रद और पुण्य कर्म है । कृपया आप गृहस्थ-धर्मकी कम-से-कम पांच प्रतियां मेरे तथा अन्य सज्जनोंके लिये अवश्य भेज दें । ऐसी पुस्तककी रचनाके लिये श्री सेठ मनसुख रायजी मोर अवश्य ही धन्यवादके पात्र हैं ।

६०७—श्री सच्चिदानन्द त्रिपाठी, शिक्षक, काको स्कूल, पो० काको, गया ।

महात्मन् ! वाताभ्र विभ्रमसिदं वसुधाधिपत्यम्, आपात सुरभा विषयोपभोगाः ।

प्राणास्तृणाग्र जल विन्दुं समानरानाम्, धर्मः सखा परमहो, परलोकयाने ॥

पुस्तकोंकी प्राप्तिके बाद अब धार्मिक-विवेचन-पत्रके आदान-प्रदानकी ही केवल जिज्ञासा है ।

आगत पुस्तकोंके वितरणकी व्यवस्था की जा रही है । अधिकारी व्यक्तियोंके लिये आपसे प्रदान स्वीकृति समयानुसार लेता रहूंगा ।

अवकाश मिलनेपर एतद्विषयक लेख लिख सेवामें अर्पित करूंगा ।

गो-दुग्ध विषयक अपने विचारोंका उल्लेख कर आपने कामी एवं स्वार्थी संसारके लिये युगान्तर उपस्थित कर दिया ।

परमात्मा चिरायु रखते हुए आपकी धर्म-प्रियता बनाये रखे, मेरी यही कामना है ।

६०८—श्रीमती पुनिया देवी, गर्ल पाठशाला, मैजेरा, जिला पटना ।

—श्रीमान् जी से मुझ गरीबिनकी सविनय निवेदन है कि मैं एक गरीब घरकी लड़की हूँ । मुझे मालूम हुआ है कि 'गृहस्थ-धर्म' नामक किताब वितरित हो रही है । हे दीनानाथ ! अगर आप किताब न भेजेंगे, तो मुझे [illegible] शोक होगा । क्योंकि मुझे इसे पढ़नेको प्रबल इच्छा है । मैं इस समय प्रथमामें पढ़ रही हूँ । इस-द[illegible] मैं आपकी आजीवन सेविका बनी रहूँगी । किताब भेजनेवाले महोदयको अनेक धन्यवाद ! प्रेमसे बो[illegible] महोदयकी जय !!

६०९—श्री विश्वनाथ रामगोपाल हेड मास्टर, ए० पी० स्कूल बुड़मू, जिला रांची।

—मैं आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक पढ़ कर बहुत प्रसन्न हूँ। मुझे इस किताबको पासमें रखनेकी हार्दिक इच्छा है, जिससे मैं हमेशा पढ़कर लाभ उठा सकूं। इसलिए आप-कृपा करके इसे भेजनेकी असीम कृपा करें।

६१०—श्री डी० पी० जोशी, मन्त्री परोपकारी संघ, देवप्रयाग, गढ़वाल।

—धर्मप्राण ! आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' एक सज्जनसे मिली। इस पुस्तकने हमारे इधर बहुत प्रभाव डाला, और हम इसका नित्य स्वाध्याय किया करते हैं। यदि ऐसा ही पुनीत आर्य साहित्य आजकल पाठशालाओं एवं विद्यालयों से पाठ्यक्रमके रूपमें निर्धारित किया जाय तो, जनताका बहुत कल्याण हो सकता है। आजकल धर्म-विरोधी, नास्तिकवादी भौतिक साहित्य ही पढ़ाया जाता है। सेठजी हमने यहां सन् ४६ से एक संस्था इसी आर्य साहित्यके प्रचार एवं इस उत्तरा खण्डके बालकोंको अपने साहित्यका ज्ञान करानेके हेतु 'परोपकारी संघ' की नींव डाली थी। इसका अपना एक पुस्तकालय एवं वाचनालय है। इसमें आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' की कुछ प्रतियां अवश्य रहनी चाहिए।

६११—श्री नन्दकिशोर मिश्र, नईकी, पो० रफीगञ्ज, गया।

—हमारे ग्राममें ब्राह्मण मित्र सम्मेलन होने जा रहा है, जिसमें प्रान्तके कोने-कोनेसे विद्वान लोग पधार रहे हैं। अतः मेरी प्रार्थना है कि आप जो 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक मानव जातिको मार्ग दिखानेके लिये वितरण कर रहे हैं, उसकी कृपाकर १०० प्रतियाँ भेजनेका कष्ट करें। इसके लिए हम आपको जीवन भर धन्यवाद देंगे। मैं इस कारणसे इतनी प्रतियाँ मँगा रहा हूँ कि इन्हें विद्वानोंमें वितरण कर आपके गुणोंका वर्णन करूँगा। और जिनको दूंगा उनका मैं आपके पास पूर्ण रूपसे परिचय दूंगा और उनलोगोंके हस्ताक्षर आपके पास भेज दूंगा। मेरे ऊपर विश्वास करके अवश्य पुस्तकें भेजें।

६१२—श्री मन्त्री, श्री राजेन्द्र पुस्तकालय, नौगढ़, पटना।

—मैंने 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकका अवलोकन किया। मेरे पुस्तकालयके लिए यह परमोपयोगी सिद्ध होगी। अतः सादर प्रार्थना है कि अविलम्ब इस पुस्तककी पाँच प्रतियाँ प्रचारार्थ प्रेषित कर देनेकी कृपा करेंगे। पुस्तकालय सदा आपका ऋणी रहेगा। हम गृहस्थोंके लिए यह परम लाभदायक है।

६१३—श्री विवेकानन्द सिंह, पो० अमलोरी, (सारन)।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको देखा। बड़ा ही सुन्दर है। अगर मनुष्य इसके बताये हुए नियमोंके मुताबिक चले तो सचमुच ही में मनुष्य हो जायेगा।

६१४—श्री विन्दासिंह, मो० पकड़ी, (चम्पारन)।

—मुझे 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक बहुत ही सुन्दर लगा। पढ़ते-पढ़ते आनन्द विभोर हो गया। ईश्वर आपको इस कार्य ...क समस...।

६१५—श्री रघुवीर प्रसाद सिंह, हजारीबाग।

—'गृहस्थ-धर्म' देखा। पुस्तक इतना सुन्दर है कि इसके बारेमें ज्यादा कहना अनुचित होगा।

६१६—श्री रामविलास सिंह, चौक, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' को एक मित्रके यहां देखा। पढ़कर मनमें आया कि इसको चुराकर लेता जाऊँ···कृपया मेरे लिए एक किताब जरूर भेज दें ताकि इससे फायदा उठा सकूं।

६१७—श्री रघुनाथ प्रसाद शर्मा, गया काटन मिल्स लि०, गया।

—आपका 'गृहस्थ-धर्म' देखा। पढ़कर मन बहुत ही आनन्दित हुआ। इस किताबकी ही इस दुनियामें जरूरत है। भगवान आपको और आयु दें।

६१८—श्री बलदेव सिंह, स्टेशन रोड, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' को एक मित्रके पास देखा। दुनियामें अभी इसी तरहकी किताबकी आवश्यकता है। कृपया मेरे लिए एक भेज दें ताकि अपनेको मैं सुधार सकूं।

६१९—श्री रमाशंकर मिश्र, पोस्ट लखीसराय, (विहार)।

—आपका भेजा हुआ 'गृहस्थ-धर्म' मिला। इसके लिए कोटिशः धन्यवाद !

६२०—श्री प्रभुनारायण सिंह, पोस्ट महराजगंज, सारन।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़ा। वास्तवमें इसी तरहकी पुस्तककी जरूरत है, जो दुनियाको अधर्म पर चलनेसे रोक कर धर्म पर चलावें।

६२१—श्री महावीर प्रसाद, पोस्ट अमलोटी, सारन।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको ख्याति दिनों-दिन बढ़ रही है। यह पुस्तक गृहस्थोंके लिए अत्यन्त लाभदायक है। गृहस्थोंके लिए इस तरहकी अभी तक कोई भी किताब नहीं निकली है, जैसा कि मेरा ख्याल है। भगवान आपको दिनों-दिन इस काममें तरक्की दें।

६२२—श्री भगवती सिंह, कदमकुआं, (पटना)।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक निकालकर आप पुण्यके भागी हो रहे हैं। सब लोगोंके मुख पर आजकल आपका नाम सुननेमें आता है। ईश्वर आपको दीर्घायु बनावे।

६२३—श्री रघुवरनारायण सिंह, पोस्ट कोडरमा (हजारीबाग)।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तको पढ़नेका मौका मिला। यह पुस्तक अत्यन्त ही सुन्दर है। इसके उपदेशोंको ग्र[illegible] जीवन सफल बनाया जा सकता है। पुस्तक भेजनेके लिए कोटिशः धन्यवाद !

६२४—श्री रामनिहोरा सिंह, खेतीत, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक जितना देखनेमें सुन्दर है उससे ज्यादा उपदेश दिये हुए उपदेश सुन्दर हैं। भगवान आपको पृथ्वी पर जन्म इसी लिये दिया कि धर्मका प्रचार हो। हम भगवानसे प्रार्थना करते हैं कि आपकी उम्र और बढ़ावें।

६२५—श्री विश्वनाथ सिंह, पो० वसंतपुर (सारन)।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तककी बड़ाई जितनी भी की जाय थोड़ी है। पुस्तक भेजनेके लिये धन्यवाद।

६२६—श्री विशेश्वर प्रसाद सिंह, अमनौर, (मुजफ्फरपुर)।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़ा। इसमें दिये गये उपदेशोंके अनुसार चलनेका भी निश्चय कर लिया है। आप यह पुस्तक मुफ्तमें वितरित कर रहे हैं इसके लिये कोटिशः धन्यवाद।

६२७—श्री शिवप्रसाद साव, महनार, (मुजफ्फरपुर)।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' ग्रंथको देखकर अति आनन्दित हुआ। इस किताबको आप बांटकर पुण्य के भागी बन रहे हैं।

६२८—श्री मंगलदयाल सिंह, चौक छपरा, सारन।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' किताबको देखा। जैसा नाम है वैसा गुण भी है।

६२९—श्री जङ्गबहादुर राउत, पो० अमरावती।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको ग्रंथ कहा जा सकता है। इसमें जो भी चीजे हैं वह अनमोल हैं। आप ईश्वरके अवतार हैं और क्या कहा जाय। इतनी बड़ी पुस्तक धर्मके नाम पर आप लोगोंमें मुफ्त वितरित करते हैं। ईश्वर आपको और आयु दें ताकि आपके द्वारा देशकी कुछ और भी भलाई हो।

६३०—श्री वजरङ्ग राय, स्टेशन रोड, पटना।

—आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। वास्तवमें यह किताब बहुत ही अनमोल है। इसको पढ़कर मनुष्य सुधर सकता है।

६३१—श्री संतोषी राय, मखदुमपुर, पटना।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़ा। 'गृहस्थ-धर्म' वास्तवमें गृहस्थ-धर्म है। इसको पढ़कर आदमी सचमुचमें गृहस्थ हो जायेगा। इस पुस्तकको भेजनेके लिए कोटिशः साधुवाद।

६३२—श्री रामनारायण भगत, कचौड़ी गली, बनारस।

—आपके द्वारा संग्रहित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को देखनेका सौभाग्य मिला। पुस्तकके भीतर जो भी चीजें दी अनमोल चीजें है। क्या एक मेरे लिए भेजनेका कष्ट करेंगे?

६३३—श्री सत्यनारायण महतो, (बिलासपुर)।

—आपका 'गृहस्थ-धर्म' प्राप्त हुआ। इतनी बड़ी किताबको आप मुफ्त वितरण कर रहे हैं। ईश्वर आपकी आयुको और भी बढ़ावे, यही मेरी ईश्वरसे प्रार्थना है।

६३४—श्री भंगीराम, हुलासगञ्ज, (गया)।

—आपके द्वारा भेजा हुआ 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक मिला। यह पुस्तक वास्तवमें बहुत उपकारी है। यह पुस्तक मानवोंको नया जीवन प्रदान करती है।

६३५—श्री गङ्गा भगत, दरभङ्गा।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकमें उच्च शिक्षाएं भरी हुई हैं। आपने इसे मुफ्त वितरण कर जो जनताकी भलाई करते है, उसके लिए धन्यवाद।

६३६—श्री दामोदर सिंह, चौरस्ता, दार्जिलिङ्ग।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' को देखनेका अवसर मिला। वास्तवमें यह पुस्तक अनमोल है। इसमें रत्न भरे पड़े हैं। इस पुस्तकको पढ़कर मनुष्य मोक्षपद पा सकता है।

६३७—श्री देवदत्त राय, मोकाम-पोस्ट देवरिया, गोरखपुर।

—आपके द्वारा भेजा हुआ किताब 'गृहस्थ-धर्म' मिला। इसको पढ़नेवाले हमारे घरके सभी ज्ञानी हो गये है। कृपया एक और भी भेजें ताकि हम अपना काम चला सकें।

६३८—श्री मोतीलाल साव, कमरहट्टी, (कलकत्ता)।

—अपने मित्रके पास आपका संग्रह किया हुआ ग्रंथ 'गृहस्थ-धर्म' देखा। पढ़नेसे तो छोड़नेका मन ही न होता था। ईश्वर आपको इस पुण्य कार्यमें और सफलता दें। कृपया एक मेरे लिये और भी कापी भेजें।

६३९—श्री रामऔतार सिंह, समस्तीपुर, (मुजफ्फरपुर)।

—आपके द्वारा संग्रहित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़ा। मालूम हुआ कि जो मनुष्य ऐसा किताब संग्रह कर सकता है, वह पुरुष ईश्वर है। क्या आप कभी बिहार-भूमिपर नहीं आयंगे ? ईश्वर आपको और आयु दें।

६४०—श्री बच्चा सिंह, लखीसराय, पो० लखीसराय।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक पढ़ी। पुस्तकमें जो आपने दिया है, वह वास्तवमें सब ग्रन्थोंका निचोड़ है। आप इसे मुफ्तमें क्यों वितरित करते हैं ?

६४१—श्री कन्हैयालाल साव, दाऊदनगर, जिला गया।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको देखा। पुस्तक बहुत ही सुन्दर है। इसकी जितनी भी प्रशंसा की जाय

६४२—श्री रतनमल सिंघानिया, मारवाड़ीपट्टी, छपरा, (सारन)

—मोरजी ! आपका भेजा हुआ पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' मिला। पढ़कर अति आनन्दित हुआ। अपने लड़केको इसमें से स्तोत्र याद करा रहे हैं।

६४३—श्री रंगबहादुर महतो, बदीपुर, (पटना)।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको देखा। वह भी देखा कुछ घण्टोंके लिये, परन्तु इतनी सुन्दर पुस्तक अभीतक हमने नहीं देखी थी। कृपया एक प्रति हमारे लिये भेजें। भगवान इस कार्यमें आपको सहायता दे ताकि आप जो चाहते हैं, वह मनोकामना पूरी हो।

६४४—श्री रामसहाय सिंह, मखदुमपुर, (पटना)।

—आपका लिखा हुआ 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक मिला। यह आपकी अनुपमदेन है। इसको पढ़कर मनुष्य चाहे तो वास्तवमें गृहस्थ बन जाय।

६४५—श्री नवलकिशोर सिंह, स्टेशन रोड, पटना।

आपकी संस्था द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' समस्त विश्वके मानवोंको अमूल्य शिक्षा प्रदान करती है।

६४६—श्री विनोदशंकर मिश्र, मदनपुर, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' का आप प्रचार बड़े जोरोंसे कर रहे हैं। प्रचार करना भी इस तरहके किताबके लिये जरूरी है। मनुष्य जो गिर गया है वह इसको पढ़कर उठ जा सकता है। इस किताबको भेजनेके लिये सौ सौ बार बधाई।

६४७—श्री मन्त्री, आदित्य पुस्तकालय, पो० बड़हरिया, (सारन)।

—सुना है कि एक ग्रंथ आप मुफ्तमें दे रहे हैं। वह ग्रंथ बहुत ही सुन्दर है। लोग ग्रंथकी बहुत प्रशंसा कर रहे हैं। कृपया एक मेरे पतेसे भेज देंगे। विश्वास है कि हमारे प्रस्तावको आप भुला नहीं देंगे।

६४८—श्री कर्मवीर पुस्तकालय, बेलघरिया।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक एक अनोखी चीज है। कृपाकर हमारे पुस्तकालयको प्रदान कर यशके भागी होवें। इस कार्यमें ईश्वर आपको सफलता प्रदान करें।

६४९—श्री राजालाल, शुचेन्द्र ज्योतिष कार्यालय, खतोली, मुजफ्फरनगर।

—धर्ममूर्त्ति सेठजी ! मैंने दिल्लीमें हरिहर बाबाके आश्रमपर 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकके दर्शन किये। मैं कथा और उपदेश द्वारा अपने गृहस्थीका निर्वाह करता हूँ। इस पुस्तकसे मुझे कथा और उपदेशमें बड़ी सहायता मिलेगी। आपने है [illegible] भनमोलजीवत् करनेके हेतु लाखों रुपये व्यय किये हैं। मुझे पुस्तकसे प्रेम है, और आपकी यादगारी और जल्दीसे [illegible] अभिलाषाने मुझे इस पत्रके साथ एक रुपया भेजनेके लिये मजबूर किया है, जिसके लिये क्षमा चाहता हूं।

६५०—श्री मोती सिंह, गायघाट (बनारस)।

—आपका भेजा हुआ ग्रन्थ 'गृहस्थ-धर्म' मिला। आपको कोटिशः धन्यवाद।

६५१—श्री रामलखन सिंह, अरई, गया।

—यह पुस्तक भारत क्या समस्त संसारके लिये अमृत तुल्य है। आपको इसके लिये हार्दिक शुभकामना।

६५२—श्री सखीचन्दराम, हरिराम, पो० मो० हिलसा, पटना।

—आपने यह पुस्तक छपवाकर समाजकी बड़ी सेवा की है। इसके लिये आपको हार्दिक धन्यवाद!

६५३—श्री सरयूप्रसाद, इङ्गलिश स्कूल इस्लामपुर, पटना।

—आपकी यह पुस्तक बहुत उत्तम है। सचमुच आपकी इस पुस्तकसे मानव-स्तर ऊंचा उठ सकता है।

६५४—श्री लक्ष्मीराम केशरी, इस्लामपुर पटना।

—यह पुस्तक समाज तथा परिवारको उन्नतिके शिखरपर पहुँचाने वाली है। आपने जिस साहसके साथ यह कार्य किया है, उसके लिये शुभ कामना भेज रहा हूं।

६५५—श्री राजकुमार सिंह, नवागढ़, बिलासपुर।

—आपकी इस पुस्तकमें मानव-कल्याणकी युक्तियाँ एकत्रित की गयी हैं। इन युक्तियोंको पढ़नेसे मनुष्य ज्ञानवान बन सकता है।

६५६—श्री बालेश्वर सिंह, गोपालपुर, गया।

—आपकी यह पुस्तक यथार्थमें लोकोपकारी, धर्म-प्रचार, विवादामकी अमूल्य वस्तु है।

६५७—श्री सरयूप्रसाद, खोदागञ्ज, पटना।

—आपकी यह पुस्तक गृहस्थोंकी आर्थिक तथा नैतिक सुधारमें बहुत सहायक हो सकती है।

६५८—हिन्दू सेवा समिति, डालमिया दादरी, (जींद स्टेट)।

—आपकी इस छोटी-सी पुस्तिकामें श्रुति, पुराण, उपनिषद आदिका सार देखनेको मिलता है। सचमुच आपका यह कार्य सराहनीय है।

६५९—श्री जागेश्वरप्रसाद तिवारी, भठली, बिलासपुर।

—आपकी यह पुस्तक गृहस्थ-जीवनकी कुञ्जी तथा सन्मार्ग पर लानेवाली वस्तु है। आपको इस सराहनीय कार्यके लिये हार्दिक मनोकामना।

६६०—श्री रामप्रसाद, आश्रम मानपुर, गया।

—आपकी इस पुस्तकको पढ़कर जनता कुमार्गसे सुमार्गपर आ सकती है। आपके इस कार्यके लि[illegible] बधाई!

६६१—श्रीमती शकुन्तला देवी मिश्र, औनहां, कानपुर।

—आपकी यह पुस्तक मनुष्य-मात्रके लिये उपयोगी है। जबसे इस पुस्तकका मैंने अध्ययन किया है, मेरी धारणा बिल्कुल बदल गयी है और हृदय यही चाहता है कि हिन्दू समाजकी सेवामें जी-जानसे लग जाऊं।

६६२—श्री आजाद मुंशीप्रसाद, नेर, गया।

—आपकी इस पुस्तिकाको पढ़कर मेरे मनमें दृढ़ विश्वास हो गया है कि राष्ट्रके कोने-कोनेमें परिश्रम कर इसका प्रचार करूं।

६६३—श्री रामचन्द्र पाठक, कपसीमा, पटना।

—आपकी यह पुस्तक धर्मोपयोगी और स्वयं सिद्ध है। इस बहुमूल्य कार्यके लिये आपको हृदयसे धन्यवाद है।

६६४—श्री बुझावन सिंह, धुसारी, गया।

—आपकी यह पुस्तक भारत क्या विश्वको प्रकाश प्रदान करनेवाली है। मेरा अनुरोध है कि मानव-मात्र इस पुस्तकसे लाभ उठायें।

६६५—श्री कृष्णचन्द्र प्रसाद, अकबरपुर, पटना।

—आपका यह ग्रंथ ज्ञानका समुद्र है। ज्ञानके पारखी इसमें गोता लगाकर अमूल्य रत्न निकाल सकते हैं।

६६६—श्री मुद्रिका शर्मा, करौता, गया।

—यह पुस्तक किसानोंको गृहस्थ-धर्म समझाने वाली है। सबसे पहले इसका पता नामकरणसे ही मालूम हो जाता है।

६६७—श्री गणेशदत्त मिश्र, ब्राह्मणीघाट, गया।

—मुझे तो ऐसा भास होता है कि इस पुस्तिकाको प्रकाशित करानेका संग्रहकर्त्ताको ईश्वरीय वरदान था। अगर ऐसा न होता, तो वर्तमान समयमें ऐसी पुस्तक कभी नहीं देखनेको प्राप्त होती।

६६८—श्री लालसचन्द शाहदेव, रातू, रांची।

—आपकी इस पुस्तकसे धर्मकी उन्नति अवश्यम्भावी है। प्रत्येक व्यक्तिको इस पुस्तकसे धर्म सम्बन्धी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

६६९—श्रीमती कौलेश्वरी देवी, मैजरा, पटना।

—आज जबकि अर्थका हाहाकार विश्वमें मचा हुआ है, उसको सुलझाना अतिआवश्यक है। मेरा तो दृढ़ विश्वास [illegible] धर्मके अर्थका सुलझाव असम्भव है। ऐसी स्थितिमें आपने 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकका प्रकाशन कर जो [illegible] इसके लिये आप धन्यवादके पात्र हैं।

६७०—श्री राजनाथ सिंह, हरिगंज, गया।

—मैंने अज्ञानतामें जोकार्य किया था, आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक पढ़कर सचेत हो उठा। आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं अपने जीवनको अतिशीघ्र उज्ज्वल करूँगा।

६७१—श्री भीमसेन साह, साकरा, सम्बलपुर।

—आपकी यह पुस्तक बड़ी रोचक और हितोपदेशकारी है। इसके गुणोंसे भिज्ञ पाठक हमेशा इसका सम्मान हृदय करते रहेंगे।

६७२—श्री रामनाथ ठाकुर, गर्री, हजारीबाग।

—आपकी यह पुस्तक प्रत्येक मनुष्यको सचरित्र और शिक्षित बनानेमें गुणकारी है। आपको इस पुस्तकके प्रकाशनके लिये हार्दिक धन्यवाद।

६७३—श्री हरिचरण साह, मंगलबाजार, हजारीबाग।

—मुझे तो 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको चर्चा सुनकर ऐसा मालूम हुआ, जैसे राणाप्रतापके समयका भाभासाह अब भी मौजूद हैं। आशा है आपका यह कार्य हमेशा प्रगतिशील रहेगा।

६७४—श्रीमती यशोदा देवी, नागपुर, पटना।

—आपकी यह पुस्तक समाजको टूटी हुई कड़ीको जोड़ने तथा उसे मजबूत बनानेका अनमोल साधन है। आशा है आपका यह क्रम हमेशा चलता रहेगा।

६७५—श्री बालमुकुन्द साह, शिशाभवन हटौद, रानपुर।

—यह ग्रंथ सनातन-धर्मावलम्बियोंके लिये अत्यन्त लाभप्रद है। इसके अध्ययनसे बुद्धि विकसित हो सकती है।

६७६—हितैषी पुस्तकालय, भण्डारी, पटना।

—खासकर गृहस्थोंके लिये आपका यह ग्रंथ मकानका चिराग है। मैं तो इसकी प्रशंसा लिखना 'सूर्यके सामने दीपक जलाना' समझता हूँ।

६७७—श्री मथुरा प्रसाद प्रजापति, कंचनपुर, पटना।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकसे मनुष्य अपनेको जीवन सुखमय तथा नींवको मजबूत बना सकता है। 'गृहस्थ-धर्म' के प्रकाशक तथा संग्रहकर्ताको मेरी शुभकामना है।

६७८—श्री गंगाप्रसाद सिंह, बेरियाघाट, मिर्जापुर।

—आपकी यह पुस्तक हिन्दुस्तानके हर एक हिन्दू घरमें रखने योग्य है। इससे मनुष्य धार्मिक औ[illegible] दोनों प्राप्त कर सकता है।

६७९—श्री जगदीशप्रसाद सिंह, चकरामपुर, गया।

—हमारे यहां 'गृहस्थ-धर्म' का शास्त्रोंमें बहुत बड़ा महत्व बतलाया गया है। मैं भी एक गृहस्थके नाते आपकी पुस्तिकाका प्रचारक बननेमें अपनेको धन्य-धन्य समझूंगा।

६८०—श्रीमती प्रेमकुमारी जायसवाल, नन्दीगोला, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक पढ़कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। सचमुच मुझे लेखिका बननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ होता, तो इस पुस्तकको ऐसी आलोचना करती, जिसे बुद्धिजीवी समाज दङ्ग रह जाता।

६८१—श्री द्वारिकाप्रसाद सिंह, 'धर्मरत्न' लावगिला, गया।

—आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' मानव-स्तरको ऊंचा उठा उसे पवित्र बनानेवाली है। मुझे विश्वास है कि आप अपनी साधना इसी रूपमें करते रहेंगे !

६८२—श्री हीरालाल, गुरारू, गया।

—वर्तमान समयमें गृहस्थ-धर्मका प्रचार बहुत आवश्यक था। आपने जो इस कार्यकी पूर्तिके लिये प्रयास किया है, उसके लिये आप धन्यवादके पात्र हैं।

६८३—श्री सिद्धेश्वरप्रसाद सिंह, हिलसा, पटना।

—'जन हिताय जन सुखाय' की भावना 'गृहस्थ-धर्म' के संग्रह-कर्त्ताके हृदयमें देखकर मन प्रफुल्लित हो उठता है। संग्रह-कर्त्ताको मेरी तरफसे स्नेह-शुभकामना है।

६८४—श्री सरयुग प्रसाद, ग्राम, विछवे, मुंगेर।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़नेके लिये हमारे दिलमें समुद्रकी-सी लहरें जोर मार रही हैं। उस किताबको पढ़कर मैं अपने दिलकी प्यास बुझाना चाहता हूँ। इसके पढ़नेसे कुछ ज्ञान भी बढ़ेगा।

६८५—श्री राघो महतो, पो० पावापुरी, पटना।

—आज आपकी यशकेतु भारतभूमि ही नहीं अपितु विश्वमें लहराना चाहती है। इसका मुख्य कारण आपकी धार्मिकता है। आप हमलोगोंको पथ-प्रदर्शन कार्यमें सतत प्रयत्नशील है। आप हमें मानवताकी ओर आकर्षित करना चाहते हैं। हमें कर्त्तव्यकी ओर प्रेषित करना चाहते हैं। 'गृहस्थ-धर्म' नामक एक पुस्तकमें आपने हमलोगोंके धर्म-कर्म पर प्रकाश डाली है। वह पुस्तक आप मानवको मानव बनानेके लिए बिना मूल्य वितरण करते हैं।

६८६—श्री पवनकुमार मण्डल, बरारी, भागलपुर।

—आप गृहस्थको सेवाके लिये 'गृहस्थ-धर्म' नामक ग्रंथ निःशुल्क वितरण कर रहे हैं। यथार्थमें आजके भारतीय [illegible]नभी प्राचीन परिपाटीको भूल कर पाश्चात्य ढङ्गमें बह गये हैं। आजके गृहस्थोंको बीती बात याद दिलाती है। [illegible]र कार्यको अपने ऊपर किया है।

६८७—श्री देवनन्दन प्रसाद, मरसूआ, पो० बेन, जिला पटना।

—आपकी धार्मिक पुस्तकसे भारतवर्षका बड़ा कल्याण हुआ है। आपका हमेशा विचार रहा है, देशमें शुद्ध सनातनधर्म एवं वैदिक धर्म प्रचार करना। यह हमारी पुण्यभूमि आर्य ऋषियोंकी है। और उसी अतीतकी ओर आपने देश-वासियोंका ध्यान आकृष्ट कराया है। आप नवयुवकोंमें जोश तथा उत्साह भर रहे हैं। दृढ़ विश्वास है कि इस तरहकी धार्मिक पुस्तकके द्वारा लुप्त गौरवको प्राप्तकर विश्वका धार्मिक क्षेत्रमें नेतृत्व कर सके और समग्र संसारमें रामराज्य स्थापित हो सके।

'गृहस्थ-धर्म' में बहुमूल्य चीजें लिखी हुई हैं। इस तरहकी पुस्तकके लिए मेरे ग्राम-निवासी बहुत लालायित हैं। यह ग्राम बहुत बड़ा है। यहां बहुत-सी पुस्तकोंको आवश्यकता है। मैं आशा करता हूँ कि आपकी यह पुस्तक इस ग्राम में एक ऋषीका काम करेगी। यहां एक पुस्तकालय और सेवादल, ये दो संस्था हैं। दोनों संस्थामें अलग-अलग पुस्तक की जरूरत है।

६८८—श्री विन्देश्वर ठाकुर, हुलासगञ्ज, गया।

—मैं आपकी प्रसारित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' के लिये हमेशा व्याकुल रहता हूँ। यह पुस्तक जनहितके लिये बहुत अच्छी है।

६८९—श्री रामलाल पाण्डेय, लोयाबाद ठाकुरबाड़ी, पो० बाँसजोड़ा, मानभूम।

—आपको हार्दिक धन्यवाद देते हुए अतीव हर्ष होता है। 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक वास्तवमें हिन्दू-धर्मकी अमूल्य निधि है। यदि हमारे देशके हिन्दू भाई इस पुस्तकको ठीकसे अध्ययन कर उसके सारतत्वको समझें तो मुझे आशा ही नहीं बल्कि पूर्ण विश्वास है कि आज हो हिन्दू समाजकी अवस्था जो कि गर्त्तमें गिरी जा रही है, उन्नतिके पथपर अग्रसर हो सकती है। मुझे इस पुस्तकको देखकर काफी प्रसन्नता हुई। मैं एक मन्दिरका पुजारी हूँ। अतः आपसे नम्र निवेदन है कि कृपया 'गृहस्थ-धर्म' की एक प्रति भेज देंगे।

६९०—श्री नारायण प्रसाद, ओकनावां, दीपनगर, पटना।

—हमारा भारतवर्ष बहुत समयके बाद आजाद हुआ है। यह देश किसानोंका देश है, परन्तु यहांके किसान बिल्कुल अन्धकारमें हैं। धर्मका तो कहीं निशान भी नहीं है।

परन्तु हर्षकी बात है कि आपने भारतके किसानोंकी ओर दृष्टि डाली है और धर्मको फैलानेके लिये 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको निःशुल्क देनेकी कृपा की है।

६९१—श्री हरिशरण जे० सी० मिल, बिरला नगर, ग्वालियर।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक रचना गृहस्थोंके लिये बड़ी उपादेय है। मैं भी इसे पढ़कर अपने [illegible] विशेष स्फूर्तिका अनुभव करता हूँ। इसके लिये मैं आपको बधाई देता हूँ।

६९२—श्री इन्द्रदेवप्रसाद, पफुहा, पटना ।

—इस पुस्तककी हमें अत्यन्त जरूरत है । इसके बिना हमें बहुतसे कार्यों में हानि हो रही है ।

६९३—श्री नन्दप्रसाद, पटना ।

—'गृहस्थ-धर्म' को चर्चा दिन दूनो और रात चौगुनी सुन रहा हूँ । हमारे हृदयमें अजीब उल्लास छाया हुआ है ।

६९४—पं० शोभित मिश्र, (प्रधानाध्यापक) साङ्गदर्शन विद्यालय भोरी, गया ।

——आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़, यह हम गृहस्थोंके लिये अत्यन्त उपयोगी मालूम पड़ी । इसलिये इस साङ्गदर्शन विद्यालयमें दो अध्यापकों और 'लाईब्रेरी' तथा दस छात्रोंके लिये कुल १३ तेरह प्रति भेजकर अनुगृहीत करें ।

६९५—श्री सुमन्तप्रसाद, बिलासपुर ।

—आप धर्म प्रचारके लिये कितने उद्योगमें लगे हैं ! मुफ्तमें पुस्तकें देकर देशका कितना कल्याण कर रहे हैं, इसके लिये आपको कोटिशः धन्यवाद है ।

६९४—श्री यदुनन्दन प्रसाद, नूरसराय, पटना ।

—मैं आपकी पुस्तककी प्रशंसा सुन कर हर्षोल्लित हो उठा । आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' के द्वारा गार्हस्थ्य-जीवन बड़े ही आनन्दपूर्वक व्यतीत किया जा सकता है ।

६९७—श्री रामनारायणप्रसाद, मु० रामनगर, पो० फखरपुर, जिला गया ।

—मैंने आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक किताब एक साथीसे लेकर पढ़ी । बहुत उपयोगी जान पड़ी । कृपया एक प्रति मेरे लिये भेजनेकी कृपा करेंगे ।

६९८—श्री नन्दप्रसाद यादव, रेगनियांबाग, सदीसोपुर ।

—'गृहस्थ-धर्म' से मेरा रोम-रोम पुलकित हो उठा । मेरे ग्रामके सब लोग इस पुस्तकके प्रति आकर्षित हो गये हैं ।

६९९—श्री रामकुमार तिवारी, डंकिनगञ्ज, मिरजापुर ।

—आपके द्वारा प्रचारित 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक मैंने देखी । यह पुस्तक मननीय एवं उपादेय समझमें आई । मैं उसे पूर्ण-रूपेण अध्ययन करना चाहता हूँ ।

७००—श्री रामादीन मनहरन, लालबांर्ना, महासमुन्द, रायपुर ।

—आपका संग्रह किया हुआ 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ । यह पुस्तक गृहस्थ-धर्म अनेकानेक उपयोगी विषयों तथा स्तोत्रोंसे सुसज्जित है ।

७०१—श्री लक्ष्मण साह, हजारीबाग।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकसे आप भारतीय गृहस्थोंको लाभ पहुँचा रहे हैं।

७०२—श्री महेन्द्र भगत, बरही, रांची।

—आपने एक अमूल्य पुस्तक प्रकाशित की है, जो भारतीय जनताको मुफ्तमें दी जा रही है। मुझे यह भी सुनने में आया है कि यह 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक गृहस्थ लोगोंके लिये बहुत उपयोगी है। इसलिये हम भी इसे पढ़ना चाहते हैं।

७०३—श्री जवाहर पुस्तकालय, सैदपुरा, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक सर्वथा माननीय है। उसकी जितनी भी प्रशंसा की जाय, थोड़ी होगी। आप इसे निःशुल्क प्रदान कर यशकी ख्याति लब्ध कर रहे हैं। और सचमुच इस योग्य हैं भी।

७०४—श्री गया प्रसाद, भोजपुर, पटना।

—आपकी जनहितकारिणी, धर्मप्रचारिणी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' से लोक कल्याण हो रहा है। क्या मैं भी आशा करूँ कि आपको उपहार-अञ्जलीका एक पुष्प हमें भी प्राप्त होगा, जिसकी भीनी सुगन्धसे मैं धन्य हो उठूं।

७०५—श्री यदु प्रसाद, जोलहपुरा, नूरसराय, पटना।

—मैं आपकी पुस्तककी प्रशंसा सुनकर हर्षोत्फुल हो उठा। पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' के द्वारा गृहस्थ जीवन बड़े ही आनन्दपूर्वक व्यतीत किया जा सकता है।

७०६—श्री जगनन्दन प्रजापति, गोला तारेगना, मसौढ़ी, पटना।

—मैं आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको पढ़कर लाभ उठाना चाहता हूं। मैं आपकी इस पुस्तकसे अपने जीवनको सुखमय बनाना चाहता हूं। आपकी यह पुस्तक मनुष्य जीवनके लिये उपयोगी है। आपके इस पुण्य कार्यके लिये मानव सदा आपका आभारी रहेगा।

७०७—श्री गिरजानन्दन सिंह, रामपुर, गया।

—आप कृपा करके हमारे पतेसे 'गृहस्थ-धर्म' की एक प्रति भेज देनेका कष्ट अवश्य करेंगे। आशा है, आप हमें निराश न करेंगे। मेरी ललचायी आंखों और व्याकुल मनको 'गृहस्थ-धर्म' के सुसन्देश एवं सदुपदेशसे ही सन्तुष्टि मिलेगा—ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है। आपको दयालुतासे मैं भी उचित लाभ उठाऊंगा।

७०८—ग्राम हितैषी पुस्तकालय, हुलासगञ्ज, गया।

—पुस्तक-जगत् एक अभिनव प्रकाशन संस्था है। इसका उद्देश्य जीवन-निर्माणकारी और कल्याणकारी साहित्य का प्रकाशन है। आपने भी 'गृहस्थ-धर्म' नामक एक अनुपम रत्नका प्रकाशन किया है। इस पुस्तकको ख्यातिसे [illegible] भी अवगत हुए। मैं भी इस पुस्तकके लिये आपसे आग्रह करता हूं। आप इस रत्नको देकर हमारे पुस्त[illegible] कृत्य-कार्य करें। इस कार्यके लिये ईश्वर आपको दीर्घायु करें। आपकी ख्याति हमारे पुस्तकालयमें गूंजती रहे[illegible]

७०६—श्री देवनन्दन शर्मा, ग्राम कोरावा, पटना।

—आपने अपनी असीम उदारताका परिचय 'गृहस्थ-धर्म' के द्वारा सारे विश्वको क्षण मात्रमें ही दे दिया। आज आपकी ख्याति संसारके कोने-कोनेमें फैल रही है। इस पुस्तकको देखकर किसके हृदयमें धर्मका संचार न होता होगा ?

७१०—श्री क्षेमचन्द्र शर्मा शिष्य श्री महाराजा तुलसीदासजी का गोंगेलायकर, जोधपुर।

—मैं श्री गुरुमहाराजाकी आज्ञासे आपको सविनय करता हूँ कि श्री गुरु महाराजने आपके यहाँकी छपी हुई 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको हमारे परम मित्रके पास देखा और आज्ञा की कि ऐसी पुस्तक अपने आश्रममें अवश्य रहनी चाहिये। सो, पूज्य महाराजकी आज्ञासे मैं इसके लिये आपसे निवेदन करता हूँ कि आप धन्य है और आपका जन्म सफल है जो आप ऐसी धार्मिक पुस्तक प्रकाशित कर रहे हैं। इस वास्ते हम सब आपके कृतज्ञ हैं। और ईश्वरसे आपको सदा आनन्द चाहते हैं। महाराज आपके इस परोपकारसे कृतज्ञ होंगे। और इस पुस्तककी कीमत लिखेंगे।

७११—श्री विश्वनाथ शर्मा 'शास्त्री', रजवणबाजार, अम्बाला कैंट।

—मुझे आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तक पढ़कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। इसमें गृहस्थ-धर्मके सब नियम, विद्यार्थियोंके लिये भी ब्रह्मचर्य आदि अनेक विषय लिखे हुए हैं। पुस्तक बड़ी ही उपयोगी है। विशेषकर सनातन धर्मके लिये तो और भी श्रेयस्कर है।

७१२—श्री पूसमल सुराणा, दि बैंक आफ इन्दौर लि०, इन्दौर।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़नेसे मालूम हुआ कि इसमें जो बातें लिखी गयी हैं; वे यदि हर गृहस्थ हर रोज उसके अनुसार गृहस्थाश्रमका कार्य नियमपूर्वक करता रहे तो उसका इहलोक और परलोक दोनों अच्छे सुधरते जायें। इन बातों का विचार करनेसे मेरे दिलमें यह भावना उत्पन्न हुई कि एक पुस्तक मैं भी मँगाऊँ।

७१३—श्री बृजनन्दन सिंहा, पो० अतरी, मौ० पथरौरा, जिला गया।

—श्रीमान् धर्मावतार ! आपकी कुशलके लिये नित्य प्रति काली माँ से नेक मनाते रहता हूँ। हम भगवान्से बराबर यही मनाते रहते हैं कि आप बराबर सकुशल रहें, दीर्घायु हों, जिससे देश-कल्याण हो। हमारा विद्यारूपी बीज खेत ही में सूख जाता, अगर श्रीमान्की कृपा दृष्टिरूपी जल-स्रोत उस क्षेत्रसे होकर नहीं प्रवाहित होता। बीज अब छोटे नहीं बल्कि पौदेका रूप ग्रहण कर लिया है। अभी वह चिलचिलाती गर्मीको सहन नहीं कर सकती है। अभी समय-समय पर वही कृपा दृष्टि-रूपी जल-स्रोतकी आवश्यकता है।

७१४—श्री आर० पी० निगम, पो० महम्मदी, जिला खेरी, लखीमपुर।

—मैंने आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' देखी। इसमें बहुत ही विधिपूर्वक और सरल रूपमें प्रत्येक मनुष्यको अपने ... करनेका दिग्दर्शन कराया गया है।

७१५—श्री विद्यारंद सिंहा, वीर, पटना।

—मुझे आपकी 'गृहस्थ-धर्म' किताबकी बड़ी आवश्यकता है। मुझे प्रतीत हुआ कि यह किताब अन्ध-विश्वासमें चलनेवालोंके लिये दीपकके सदृश्य है। समाज आपकी इस देनके लिए सदैव आभारी रहेगा। मैं आपको इस पुस्तककी आशामें चातक बना बैठा हूं। आशा ही नहीं, वरन दृढ़ विश्वास है कि अधिक स्वातिके बूंदके सदृश्य मेरे उजड़े उपवनमें पियूष बरसा देंगे।

७१६—श्री रामप्रसाद, दानापुर कैण्ट, पटना।

—आपके द्वारा निर्मित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' के कुछ पन्नोंको पढ़ा। बहुत आनन्दित हुआ। मैं समझता हूं, इससे मानव-समाजका बहुत बड़ा उपकार हुआ है। खासकर हिन्दू धर्मका पुनः प्रसार इस पुस्तकने काफी किया है। मानव-समाजके कष्टका कारण धर्मकी उपेक्षा है। जबतक मानव-समाजमें धर्मको भावना नहीं जागरूक होगी, तबतक वह सच्चा आनन्द नहीं अनुभव कर सकेगा। धर्मका यह अर्थ नहीं मनुष्य संसारको विपत्तियोंसे घबड़ा कर विरक्त हो जाय, अपितु संसारमें रहकर लोक-कल्याणकी भावनासे प्रेरित हो प्रगति पथपर वह अग्रसर होता रहे। इसकी प्रेरणा आपकी पुस्तकसे मिलती है। इसके विशेष अंशको पढ़नेके लिये मैं उत्सुक हूं।

७१७—श्री शिवनन्दनप्रसाद साव, मु० पुरी, पो० पावापुरी, पटना।

—आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' से जनता काफी लाभ उठा चुकी है और अब भी उठा रही है। आपने इसे जनताके बीच भेंट करने और विश्व कल्याण करनेमें कुछ भी नहीं उठा रखा है। अतः इसके लिये मैं आपको हार्दिक धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता। अत्यधिक व्यक्तियोंके मुखसे मैंने इस पुस्तककी प्रशंसा सुनी है। आपको इस पुस्तक को पढ़नेके लिये मेरी लालसा बहुत दिनोंसे लगी हुई है।

७१८—श्री वेदानन्द झा, बरारी, भागलपुर।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक मन तथा हृदय दोनोंको उज्ज्वल करनेवाली है। अवश्य ही इस पुस्तकसे मानव जीवन सफल बन सकता है।

७१९—श्री लक्ष्मीप्रसाद सेठ, बुलन्दशहर।

—आपने 'गृहस्थ-धर्म' का प्रकाशन कर हिन्दीके एक अंगकी पूर्त्ति की है। इसके साथ यह पुस्तक स्त्री-पुरुष सभीके चरित्रको प्रौढ़ बनानेमें सहयोग दे सकती है।

७२०—श्री रामचन्द्रप्रसाद, पुरैनी, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको जबसे मैंने दिल लगाकर पढ़ा है, मेरी भावना बदल गयी है। और, यही ... है कि इस पुस्तकसे मेरे जैसे अन्य व्यक्ति लाभान्वित हों।

७२१—श्री भूदेव झा, सन्थाल परगना।

—'गृहस्थ-धर्म' मानव-जीवनकी कुंजी है। जनताकी भलाईके लिये इसे प्रकाशित कर आप धन्यवादके पात्र हैं।

७२२—श्री व्रजनन्दनप्रसाद, लालबिघा, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' के गुणोंसे गुणान्वित होकर बहुतायत मनुष्य अपना जीवन सफल बनायेंगे। इस सराहनीय कार्यके लिये संग्रहकर्त्ता बधाईके पात्र हैं।

७२३—श्री वीरेन्द्रकुमार, कानपुर।

—'गृहस्थ-धर्म' का उपदेश बीज मन्त्र है। इसके उपदेशसे ग्रामीण मानव लाभ उठाकर संग्रहकर्त्ताको यशस्वी बनायेंगे।

७२४—श्री रामाधार तिवारी, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' का मूल्य आँकना सम्भव नहीं। मुझे तो दृढ़ विश्वास है कि इस पुस्तकसे गिरा हुआ जीवन उच्च-स्तरपर पहुँच सकता है।

७२५—श्री श्यामानन्द गुप्त, नौबतपुर, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई। मुझे तो ऐसा लगता है कि लेखकने देहातोंका भ्रमण बड़ी गहराईके साथ किया है।

७२६—श्री मथेश्वरराम, भदानी, गया।

—इस पुस्तक (गृहस्थ-धर्म) से किसानोंका बहुत बड़ा लाभ है। सबसे बड़ी विशेषता तो मुझे इस पुस्तकमें यह दिखलायी देती है कि इससे गृहस्थ-धर्म ठीक-ठीक समझमें आ जाता है।

७२७—श्री दयाराम सिंह, बाऊी, गया।

—जबसे 'गृहस्थ-धर्म' देखनेको मिला है, तबसे मेरा कार्य पहलेसे बढ़ गया है। मैं प्रति दिन अपना कार्य करनेके बाद किसानोंको रात्रिमें इस पुस्तकका सार पढ़ाया करता हूं।

७२८—श्री महेश सिंह, सरैयां, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' शिक्षा और उपदेशसे भरी हुई है। सभी किसानोंको चाहिये कि एक प्रति अपने पास रख रामायणकी तरह पाठ किया करें।

७२९—श्री मथुराप्रसाद, अजनौरा, पटना।

—[illegible]ज समस्त विश्व आशापर जीवित है। मुझे भी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकके प्रचारकी आशा है। आपने सोये [illegible]ो जगानेका जो प्रयत्न किया है, उसके लिये यह मेरी शुभकामना अटूट है।

७३०—श्री रघुनन्दनप्रसाद पाण्डेय, नेवरा, बिलासपुर ।

—जिस मनुष्यको मुक्ति प्राप्त करनी हो, वह अवश्य इस पुस्तकको पढ़े । 'गृहस्थ-धर्म' से वर्तमान, भविष्य प्रकाशमान हो सकता है ।

७३१—श्री रामकुमार भारतीय, गंजीपेठ, नागपुर ।

—'गृहस्थ-धर्म' की आलोचना 'कर्मवीर' में पढ़कर हृदय प्रफुल्लित हो उठा । मेरी चेष्टा पुस्तक देखनेकी हुई । बड़ी कठिनाईके साथ प्राप्त करनेपर उल्लिखित पुस्तकको पढ़ना प्रारम्भ किया । जैसे पढ़ता जाता था, एक-न-एक नया सन्देश मिलता जाता था । संध्या होनेपर भी यह पुस्तक हाथसे अलग न हो सकी ।

७३२—श्री मानचन्द्र, कंगरा, पञ्जाब ।

—जबकि देशमें कई दलबन्दियाँ अपना जोर दिखला रही हैं, वैसी स्थितिमें धर्मकी तरफसे 'गृहस्थ-धर्म' का संदेश बहुत बड़ा काम कर सकता है । लेखक इस कार्यके लिये बधाई देने योग्य हैं ।

७३३—श्री मन्त्री-नेहरू पुस्तकालय, मथुरा, मुंगेर ।

—'गृहस्थ-धर्म' के संग्रहकर्त्ताको हृदयसे बधाई !

७३४—श्री मनसादीन गुप्त, सीतापुर, उत्तर प्रदेश ।

—'गृहस्थ-धर्म' के संग्रहकर्त्ताने अवश्य ही धर्म प्रचारका बीड़ा उठाया है । अगर उसमें इतनी हिम्मत न होती, तो आजके युगमें इस तरहका कार्य कभी नहीं हो पाता ।

७३५—श्री जगन्नाथप्रसाद पोस्टमैन, मुजफ्फरपुर ।

—'गृहस्थ-धर्म' जबसे मुझे प्राप्त हुई है, तबसे गीताके साथ इसका भी पाठ प्रति दिन करना शुरू कर दिया है ।

७३६—श्री अम्बिकाप्रसाद विद्यार्थी, तिलैया, हजारीबाग ।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर मनुष्य मानसिक रोग दूर कर सकता है । यह पुस्तक खोखली पुड़िया नहीं, बेश कीमती दवा है । संग्रहकर्त्ताको इस पुस्तकके लिये बधाई है ।

७३७—श्री राजेन्द्रप्रसाद सिंह, अजदा, पटना ।

—'गृहस्थ-धर्म' लोकोपयोगी पुस्तक है । जबतक किसी भी व्यक्तिको देहातका अनुभव नहीं होगा, इस पुस्तकका मर्म समझना कठिन है । ग्रामीण उपकारके लिये संग्रहकर्त्ताको हार्दिक बधाई है ।

७३८—श्री कृष्णदेव पाठक, बिगहा, गया ।

—'गृहस्थ-धर्म' की आलोचना मुझे दैनिक पत्र 'आज' बनारसमें देखनेको मिली । अगर आलोचना [illegible] पुस्तक अवश्य ही लोक-कल्याण और भारतीय संस्कृतिका पुनरुद्धार करेगी ।

७३९—श्री गुरुशरणप्रसाद, सिलाव, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक पढ़नेके बाद जो मेरे अन्दर बुद्धिका विकास हुआ है, उसके लिये संग्रहकर्त्ताको हृदयसे शुभकामना भेज रहा हूं।

७४०—श्रीं रेआज अहमद्, सिंघाड़ा, पटना।

—क्या 'गृहस्थ-धर्म' का प्रकाशन उर्दू में सम्भव हो सकता है? अगर ऐसा हो, तो आपकी यह पुस्तक जीवनके लिये दूसरा कुरान सिद्ध होगी।

७४१—श्री बलदेवप्रसाद पाल, शूज़ापुर, पुरी।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकसे प्रत्येक युवकको अशेष प्रेरणाएं मिलेंगी। आशा है, इसे युवक अपनाकर कृतकार्य होंगे।

७४२—श्री गङ्गाधर प्रसाद, कुशहर, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' का प्रकाशन हिन्दीमें अमूल्य रत्न है। ऐसी पुस्तक शायद बहुत दिनों बाद हिन्दीमें दर्शन करनेको मिली है।

इस सराहनीय कार्यके लिये प्रकाशक धन्यवादके पात्र हैं।

७४३—श्री शत्रुघ्न प्रसाद, हजारीबाग।

—'गृहस्थ-धर्म' ज्ञानका समुद्र है। इसके पारखी गोता लगाकर अमूल्य रत्न निकाल सकते हैं।

७४४—श्री धर्मदत्त दधीच, हनुमान मन्दिर अकोला, (बरार)।

—'गृहस्थ-धर्म' को देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। बहुत दिनोंके बाद मुझे ऐसा मालूम हुआ कि धर्मके जीवट आज भी मौजूद हैं।

७४५—श्री राधा माधव पाण्डेय, 'भूपाल' मराँची, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' की प्रशंसा भारतके कोने-कोनेमें सुनकर मेरा हृदय खिल उठा। आशा है पुस्तकके संग्रहकर्त्ता हमेशा ऐसा ही अवदान दिया करेंगे।

७४६—श्री रामलखन राम, बिहटा, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' पिछड़े हुए किसान समाजको ऊँचा उठानेवाली है। इसे अपना कर ग्रामीण किसान अवश्य ...न्वित होंगे।

...७—श्री महादेवराम, घोघाबाजार, भागलपुर।

—...हस्थ-धर्म' की महानता इस पुस्तकमें संग्रहीत देखनेको मिली। सचमुच यह पुस्तक गृहस्थकी सम्पत्ति और अ... है।

७४८—श्री अर्जुन प्रसाद मिश्र, बलभद्र सराय, पटना ।

—'गृहस्थ-धर्म' किसानोंके लिये अन्धेको आँख और गूँगेको जिह्वा है। अवश्य ही इसके संग्रहकर्त्ता धन्यवादके पात्र हैं।

७४९—श्री कृष्णचन्द्र प्रसाद, योगीपुर, पटना ।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकमें सत्य-महिमा और गो-सेवा परिच्छेद बहुत सराहनीय हैं। आशा है यह पुस्तक सर्वदा आदरकी वस्तु बनी रहेगी।

७५०—श्री योगेन्द्र शर्मा, सीतापुर ।

—'गृहस्थ-धर्म' का प्रकाशन समाज-सुधारके लिये अद्‌भुत वस्तु है। पुस्तकके संग्रहकर्त्ता इसके लिये धन्यवादके पात्र हैं।

७५१—श्री नन्दकुमार झा, हजारीबाग ।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकके संग्रहकर्त्ता जैसे सम्पन्न गृहस्थोंके सदनुष्ठानसे धर्मकी लौ अभी भी टिमटिमा रही है। आपका प्रयास इस इलाकेको स्नेहदान द्वारा उत्तरोत्तर प्रदीप्त करेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

७५२—श्री भूदेव झा, 'साहित्य शास्त्री', सन्थाल परगना ।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको देखनेका सौभाग्य वैद्यनाथ धाम (देवघर) में हुआ। आपने निःस्वार्थ भावना से जो उपकारी कार्य करना प्रारम्भ किया है, उसके लिये आप बधाईके पात्र हैं।

७५३—श्री लक्ष्मण प्रसाद सेठ, बुलन्दशहर ।

—आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' देखनेका अवसर मिला। वास्तवमें आपका परिश्रम सराहनीय है। ऐसी पुस्तक की हिन्दी जगतमें कमी थी। आपने उस कमीको इस पुस्तकके द्वारा पूरा किया है।

७५४—श्री ब्रजनन्दन प्रसाद, वादी, पटना ।

—'गृहस्थ-धर्म' के गुणोंका अनुसरण कर मनुष्य बड़ा आदमी बन सकता है। संग्रहकर्त्ताको जनसभागमनके सामने ऐसी पुस्तक उपस्थित करनेके लिये बधाई।

७५५—श्री रामकुमार गंजीपेठ, नागपुर ।

—'गृहस्थ-धर्म' की आलोचना 'आज' में पढ़कर मुझे आश्चर्य जैसा प्रतीत हुआ। परन्तु, जब पुस्तक स्वयं नजरके सामने पढ़नेको मिली, तो मेरा आश्चर्य मिट गया और गम्भीर अन्वेषकको तरह अपना रूप दिखाने लगी।

७५६—श्रीमती कुमारीकला, पुरानी गोदाम, गया ।

—यह देखकर मैं बहुत हर्षित हुई कि आप लोक-सेवाके लिये एक पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' निकाले हैं। पुस्तकसे लाभ उठाना चाहती हूँ। आशा है, आप मेरी आशाको पूरी करेंगे। —आपकी पुत्री कुमारीकला

७५७—श्री जैकिशोर शर्मा, राघो-बिगहा, देवहरा, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकसे कितने ही ग्राम-वासियोंका उपकार हो रहा है। आप हमारे ग्राममें भी 'गृहस्थ-धर्म' भेजकर हम लोगोंको भी ऋणी बनावें, तो बड़ा उपकार हो। हमलोग अपनेको धन्य मानेंगे तथा आपकी किताबके अनुसार अपने ग्रामको उन्नत बनायेंगे।

७५८—श्री रामदास मिस्त्री, ग्राम सेटारा, पो० भार्थू, गया।

—आपके द्वारा प्रचारित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' की प्रसिद्धिके कारण उसे पढ़नेकी इच्छा हुई है। आप इस पुस्तकको धर्म-कार्यके निमित्त मुफ्त बांट रहे हैं। एतदर्थ धन्यवाद !

७५९—श्री परमेश्वरलाल पटवारी, मठ खजवती, गया।

—आपकी निकाली हुई पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' मिली। इसे पढ़नेसे हमें कितनी बातोंकी जानकारी प्राप्त हुई। मैं अपढ़ आदमी होकर आपको क्या धन्यवाद दूँ ? इस पुस्तककी सुन्दरता में क्या वर्णन कर सकता हूं ? किन्तु दूसरे का होनेके कारण मुझे उससे प्यास नहीं बुझा और उसे हस्तगत करनेके लिये मुझे उपाय सोचते-सोचते बहुत दिन बीत गये।

७६०—श्री रामलग्न त्रिवेदी, ज्योतिषी, सिंघौल मेहूंश, मुंगेर।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक एक अनूठी वस्तु है। आपने गागरमें सागर भर दिया। आपको सहस्रों बार धन्यवाद है। आपको ईश्वर दीर्घजीवी करें।

आपसे यह भी प्रार्थना है, एक प्रति मेरे लिये भेजनेको कृपा करें। जबतक पुस्तक प्राप्त नहीं होगी, तबतक हृदय में शान्ति नहीं होगी।

७६१—श्री असगर अली कम्पोजिटर, दाऊदनगर, पुरानीशहर, जिला गया।

मुझे 'गृहस्थ-धर्म' के अध्ययनसे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। आपका यह कार्य सामाजिक कमजोरियोंको दूरकर उसे प्रौढ़ बनानेके लिए बहुत ही सराहनीय है। आशा है, आपका यह ग्रंथ समाज-सुधारके लिए अत्यन्त उपयोगी होगा और जनता अपने वास्तविक लक्ष्यको समझकर जीवनका वास्तविक उपयोग कर सकेगी। हार्दिक बधाई !

७६२—श्री हरिवंस सहाय, बखरीबाजा, मुंगेर।

—सभी दानोंमें विद्या-दानका स्थान अपने ऋषिमुनियोंने सर्वप्रथम रखा है। उसपर भी वह विद्या-दान, जिसके [illegible] अपने धर्मका प्रचार हो वह तो और भी ऊँचा स्थान पाने योग्य है। गीता प्रेसने धार्मिक पुस्तकोंका प्रचार-कार्य [illegible] हिन्दू मात्रमें धर्मशंखनाद करानेमें हाथ बटाया था। परन्तु आपका स्थान वास्तवमें उनसे भी बढ़ा हुआ है [illegible] यहाँसे धार्मिक ग्रंथोंको छपवाकर मुफ्त प्रचारार्थ वितरण करा रहे हैं। अस्तु आपकी उदारता सराहनीय है।

७६३—श्री बहादुर सिंह गुप्त, श्री दुर्गादास बाहेती, कलकत्ता।

—श्री बोहरा जीके निवास स्थान पर आपके द्वारा संग्रहीत 'गृहस्थ-धर्म' को हमलोगोंने पढ़ा और पुस्तकको प्रत्येक गृहस्थके लिये परम उपयोगी पाया। हमें हार्दिक प्रसन्नता हुई कि आप इस तरहकी समाजोपयोगी पुस्तकोंका प्रकाशन करके हिन्दू-धर्म एवं संस्कृतिकी बड़ी ही सेवा कर रहे हैं। हमारी शुभ कामना है कि आप ऐसी ही पुस्तकोंका प्रकाशन कर समाजको उन्नत करेंगे।

७६४—श्री घनश्यामदत्त शर्मा, चम्पा, बिलासपुर।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक देखी। इस पुस्तकमें सत्य तथा धर्मप्रवर्तक, आयु, आरोग्य, आश्चर्य बल-वर्द्धक वचनोंको पढ़कर हमें असीम हर्ष हुआ। आशा करते हैं कि आपकी इस पुस्तकसे गृहस्थ निसंदेह लाभ उठायेंगे। मैं आपको धन्यवाद देता हुआ आपकी दीर्घायुके लिये ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ।

७६५—श्री गौरीशंकर सिंह, राजेन्द्र विद्यालय, गया।

—मैं आपके ग्रंथको देखकर अत्यन्त आनन्दित हुआ। संसारमें कुछ ही मनुष्य ऐसे होते हैं, जो देशकी सेवाके लिये, शिक्षा प्रचारके लिये इतना बड़ा बोझा उठाकर मुफ्त किताबोंको बांटा करते हैं। आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको देखकर कौन ऐसा भारतीय होगा, जो आपको धन्यवाद दिये बिना रह सकता है? 'गृहस्थ-धर्म' के लिए मैं सदैव आपका कृतज्ञ बना रहूँगा।

७६६—श्री पुनीतलाल मैनेजर, पाठशाला श्री दाऊजी, महल्ला सिगरा, बनारस।

—मैंने आपके 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको मन लगाकर सूचीको सिर्फ पढ़ लिया है, उसके पढ़नेसे मालूम हुआ कि आपने बहुत परिश्रम किया है, देशकी भलाईके लिये। मैं आशा करता हूं कि एक कापी उसकी हमारेको कृपा करेंगे, जिससे मैं अपनेको बड़ेसे बच्चों तकको पढ़वा डालूँ ताकि सुधार हो जाये। यों तो सब लोग अपने घरमें सिखलाते हैं, मगर कुछ बात ऐसी है, उसको लोग नहीं जान पाते हैं।

७६७—श्री रामरत्न शर्मा, अरपागढ़, पटना।

—आप अत्यन्त लाभदायक हितकारी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को जो गड्ढेमें गिरते हुए मनुष्यके लिये प्रकाशका काम करते हुए उसे बचाती है—वितरित कर रहे हैं। मुझे यह देखकर अत्यन्त हर्ष हुआ।

७६८—श्री मंगेशचन्द्र शङ्करलाल जोशी, होल्कर स्टेट, खण्डवा।

—'गृहस्थ-धर्म' को किताब हमने देखी। बहुत उपयोगी है। प्रत्येक गृहस्थके घरमें यह किताब होना आवश्यक है।

७६९—श्री महिपाल ओझा, हेड पण्डित मिड्ल स्कूल विष्णुगढ़, जिला हजारीबाग।

—'गृहस्थ-धर्म' अत्यन्त ही सुयोग्य है। यह गृहस्थोंके लिये आवश्यक जान पड़ता है।

७७०—श्री शिवनारायण लाल, द्वितीय शिक्षक, देवकली, बीहा, गया।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको मैंने अध्ययन किया। गृहस्थाश्रममें मानव अपना भविष्य किस प्रकार बना सकता है, ये सब चीजें आपने स्पष्ट रूपेण समझा दी हैं।

७७१—श्री रामदुलार मौर्य, जलालपुर, जौनपुर।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' की किताब देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसके गुणोंको देखकर मैं बहुत प्रभावित हुआ हूं। यह हिन्दू-धर्मको सहायता पहुंचाने वाली एकमात्र पुस्तक है।

७७२—श्री चन्द्रिका पाण्डेय, मिड्ल स्कूल औंगारी, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म का लोगोंके बीच जोरोंसे प्रचार है। इसमें जन-कल्याणकी बातोंका पूर्ण समावेश है। इसके कई संस्करण भी अबतक हो चुके हैं। इसकी प्रतिष्ठा महामार्मिक पुस्तककी ही तरह हुई है।

७७३—श्री यादवराव, अमृतराव ठाकुर, सरकानगो, जमीहारव, जाटगरिहार, खरगोण।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म नामकी किताब देखी। मुक्तिके लिये उपयोगी है। इसे पढ़कर प्रत्येक व्यक्ति अपना आचरण उच्च बना सकता है।

७७४—श्री दुर्गाप्रसाद शिवसागर प्रसाद, पो०-मु० भाटपाररानी, देवरिया, (यू० पी०)।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तककी प्रशंसा मैंने बहुत से लोगोंके मुंहसे सुना है कि यह पुस्तक गृहस्थोंके लिये अति लाभदायक है।

७७५—श्री रामेश्वर भगत, छया वैदिक विद्यालय, सन्यास आश्रम, गया।

—आप जो पुस्तक प्रकाशित कर रहे हैं, वह गार्हस्थ-आश्रमको उच्च स्तरपर ले जानेका एक साधन है।

७७६—श्रीमती उर्मिला देवी, एकचारी, भागलपुर।

—सानुनय निवेदन यह है कि 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक देखकर मैं विस्मित हो गयी। यह तो विदित हो ही गया कि उक्त ग्रंथ बिना मूल्य ही वितरण हो रहा है। मैं समझती हूँ कि गृहस्थ-धर्म पानेवालोंमें स्त्रियोंकी संख्या काफी होनी चाहिए। स्त्रियोंके लिए यह ग्रंथ बहुत उपयोगी है।

७७७—श्री रामस्वरूप सिंह, प्रधानाध्यापक अ० प्रा० स्कूल, भण्डई, खिजरसराय, गया।

—हमारे देहातोंमें आपकी पुस्तकका यश बहुत तेजीके साथ फैल रहा है। इस पुस्तकसे ग्रामीण अत्यधिक लाभ उठा रहे हैं।

७७८—श्री गुलाब सिंह, पो० त्रिलोचन, बड़ागांव, जौनपुर।

—'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तक हमें बहुत ही प्रिय मालूम होती है। ऐसी पुस्तक कभी भी आजतक देखनेमें नहीं ...पने जीवनको सुखमय व्यतीत करना हो तो यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए।

७७९—श्री शुभदयाल यादव, सदीसोपुर, पटना।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको पढ़नेके लिये मैं उत्सुक हूँ। आपकी इस अनोखी पुस्तकने सभी जगह अपना प्रभाव जमा लिया है।

७८०—श्री रामखलन सिंह, हरिपुर, जौनपुर।

—आज हिन्दू और हिन्दुत्व पतनके कंगारेपर खड़ा एक धक्केकी राह देख रहा है। इस विषम परिस्थितिमें आपकी पुस्तक हिन्दू और हिन्दुत्वकी रक्षा करनेमें सफल हो सकेगी। मैं भी अपने साथियोंमें इस पुस्तक (गृहस्थ-धर्म) का प्रचार करना चाहता हूँ।

७८१—श्री आनन्दीप्रसाद, पिपरपांती, गया।

—मैंने 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकके कुछ पन्ने उलटे। पुस्तक अत्यन्त जीवनोपयोगी प्रतीत होती है। आपके इस परिश्रम द्वारा मानव-समाजका बड़ा उपकार हो रहा है। विशेषकर वैष्णव धर्मावलम्बियोंका।

७८२—श्री भुवनेश्वरप्रसाद सिंह, मो० टोले बाबू खुन्ना सिंह, पो० अथमलगोला, पटना।

—मैंने कुछ दिनों पूर्व आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' की प्रशंसा अपने ग्रामवासियों तथा अगल-बगलके पड़ोसियों द्वारा सुनकर कि इस पुस्तकको पढ़नेसे मानवमें जो बुराई है, वह दूर हो जाता है। इन्हीं बातोंसे इस पुस्तकको पढ़नेके लिये मेरी लालसा लगी हुई है।

७८३—श्री ज० प्र० पालीवाल, प्रधान अध्यापक, अंग्रेजी मिड्ल स्कूल, चौरई, छिन्दवाड़ा

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' एक उत्तम पुस्तक है और प्रचारार्थ उसे मुफ्त वितरित करते हैं। उसकी प्रशंसा सुनकर मेरी इच्छा है कि स्थानीय अंग्रेजी मिडिल स्कूलके विद्यार्थी उसका अध्ययन कर लाभ उठावें।

७८४—श्री मोहनलाल शर्मा, सिगावल, अजमेर।

—आपके यहांसे प्रकाशित ग्रन्थरत्न 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तककी प्रशंसा अत्युत्तम कर्ण प्रत्यक्ष हुई है और पूर्ण इच्छा है कि एक बार चाक्षुष प्रत्यक्ष करूं, क्योंकि इस पुस्तकके सद्‌प्रचार द्वारा हम भी कुछ धार्मिक जगत्‌में सेवा-भाव अभिनय प्रदर्शन कराना चाहते हैं।

७८५—श्री प्रेमचन्द जैन, पंथाला, निमाड़ (तहसील), खण्डवा।

—मुझे मेरे मित्र द्वारा ऐसा मालूम हुआ कि आप लोक-सेवाके निमित्त 'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तक भेजते हैं, जिसे पढ़कर मनुष्य वैसा ही आचरण करनेपर सच्ची राष्ट्र सेवा तथा समाज-सेवा कर सकता है। साथ-ही-साथ अपने जीवनको सुखमय व्यतीत कर सकता है। मेरी कई दिनोंसे ऐसी पुस्तक पढ़नेकी तथा उसके नियमोंको आचरणमें ला[illegible] तीव्र इच्छा बनी हुई है। 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको पढ़कर मेरी इच्छा यह है कि उस पुस्तकको हमारे यहांकी [illegible] आपके नामसे जमा करवा दूं, जिससे सैकड़ों मनुष्य उस पुस्तक द्वारा फायदा उठा सकें।

७८६—श्री कमलाकान्त मिश्र, ग्राम पपियाहींकरवां, पो० बड़ागांव त्रिलोचन, जौनपुर ।

—मैंने आपका प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' पढ़ा। मैं उससे बहुत अधिक प्रभावित हुआ। मेरे विचारमें आपकी पुस्तकके निर्देशानुसार ही हिन्दू संस्कृतिका उत्थान हो सकता है। मेरी यह उत्कट अभिलाषा है कि इसमें बताये हुए सिद्धान्तोंका प्रचार करूं।

७८७—श्री प्रेमनारायण श्रीवास्तव, गांधी पुस्तकालय, ग्राम छतारी, पो० त्रिलोचन बड़ागांव, जिला जौनपुर ।

—'गृहस्थ-धर्म' को मैंने पढ़ा। किसी योग्य मनुष्यके लिये यह किताब बहुत ही लाभप्रद मालूम हुई। इस किताबके द्वारा कोई भी व्यक्ति वैदिक धर्मको शिक्षा ग्रहण कर सकता है। श्रीकृष्णका उपदेश भारतके प्रत्येक हिन्दू बच्चेसे लेकर बूढ़े तकको अत्यन्त आवश्यक है।

मैंने यह आवश्यक समझा कि इस पुस्तकको मंगाकर अपने ग्रामीण पुस्तकालयमें इस पुस्तककी दो प्रति रखकर ग्रामीण बन्धुओंका उपकार कर सकूं। रोचकता और साथ-ही-साथ प्रिय सौन्दर्यता इसी पुस्तकमें मुझे मिली है। पुस्तक भेज ग्रामीणोंका उद्धार करें।

७८८—श्री रामायणी त्रियुगीनारायण शुक्ल, 'श्रीरामरक्षित', बनारी, जांजगीर, बिलासपुर ।

—सेवामें निवेदन है कि आपका छपा पत्र मय पुस्तकके साथ मिला। मैं इस पुस्तकके उपादेयपूर्ण संग्रहको देखकर जितनी भी प्रशंसा करूं, वह कम ही है। आज भारतको आप ऐसे ही मार्मिक भावनाओंकी प्रति मूर्त्ति रूप धार्मिक एवं धनी व्यक्तियोंकी आवश्यकता है। प्रायः सभी विषयोंका तो समावेश है, परन्तु आज दिन हिन्दुओंका कर्तव्य क्या है ? इस विषयका भी समावेश कर देना सम्भवतः पुस्तककी उपयोगिताको और भी बढ़ा दे।

जिस संग्रहके पढ़त ही, मिलत श्याम दृग कोर।
अवसि देखिये पुस्तिका, लिखित बंधुवर 'मोर'॥

७८९—श्रीमती सावित्रीदेवी, उर्फ शचीदेवी, उर्म्मिलादेवी, मिड्ल पास, सेक्रेटरी कृष्णदेव शर्मा, अनुराग पुस्तकालय घोसी, हिलसा, पटना ।

—आपका भेजा हुआ 'गृहस्थ-धर्म' प्राप्त किया। पढ़नेसे जो भी सुख मिला, उसे शब्दोंमें वर्णन करना सूर्यको दीपक दिखाना है। इस समय जैसी भारतपर विपत्ति आयी हुई है, आपको यह पुस्तिका जनताके सामने आ पहुंची है। [illegible] सम्भव है कि यह हमारी हिन्दू संस्कृतिके अस्तित्वकी रक्षाका स्तम्भ होगा।

[illegible] पुस्तिकाकी इतनी बड़ी आवश्यकता स्त्री समाजमें प्रतीत होती है कि प्रत्येक पढ़ी-लिखी स्त्रीके पास यह जरूर [illegible]ये।

सम्मतियाँ और उद्गार।

७६०—श्री बाली महतो, ओण्डाल, बर्दवान।

—'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तक गृहस्थाश्रमियोंके लिये बड़े ही उपयोगी है, अतः मैं भी इस पुस्तककी एक प्रति की याचना करता हूं।

७६१—श्री पारसनाथ मिश्र, ग्राम कुसिया, पोस्ट जलालपुर, जौनपुर।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर अत्यन्त प्रभावित हुआ। यह किताब मुझे अपने एक साथीसे प्राप्त हो गई थी। यह मेरा सौभाग्य था। मेरा ख्याल है कि यह पुस्तक हिन्दू-धर्मको डूबती हुई नौकाका एकमात्र आधार बनी हुई है। मैं भी चाहता हूँ कि आपकी पुस्तकके आदेशोंको ग्रहण कर हिन्दू-धर्मकी कुछ सेवा करूँ। इस सेवामें मैं अपना कल्याण समझता हूँ। आशा करता हूँ कि आप मेरी प्रार्थना पर विचार कर इस हिन्दू-धर्म सेवाको एक पुस्तक भेजनेकी कृपा करेंगे।

७६२—श्री कमला प्रसाद, स्टेशन रोड, गया।

—आपने गृहस्थ लोगोंको गार्हस्थ जीवन व्यतीत करते हुए तथा उनको ज्ञानवान और योग्य बनानेके उद्देश्यसे 'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तक प्रकाशित की है।

७६३—श्री आर० के० ठक्कर, पोस्ट बांसजोड़ा, मानभूम।

—आपकी तरह यदि हमारे हिन्दू समाजके कर्णधार धर्मके लिए निःशुल्क धर्मोपदेशकी किताबें समाजके अन्तर्गत प्रचार कर उचित शिक्षा दें, तो समाजका उद्धार होनेमें देर न लगेगी। 'गृहस्थ-धर्म' जैसी किताबें पढ़कर उसके सार तत्व को भलिभांति ग्रहण कर ज्ञान प्राप्त करें, तो एक रोज यही मानव उन्नतिकी परम सीमाकी ओर अग्रसर होगा।

७६४—श्री ठाकोरलाल, कालूपर, अहमदाबाद।

—आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' का अवलोकन किया। नाम देखते ही पढ़नेकी इच्छा हुई। पुस्तक चन्द रोजके लिए लाया था। यह मुझे बहुत पसन्द आयी। मैंने सोचा यदि यह पुस्तक अपने पास हो तो अत्यन्त शान्तिसे पढ़ सकें, और दूसरोंको भी लाभ दे सकें। यह पुस्तक ज्ञानको अमूल्य निधि है।

७६५—श्री लक्ष्मीनारायण शर्मा, नौडीहा, शमशेरनगर, गया।

—मैं आपको इस अथक परिश्रमके लिए बार-बार धन्यवाद देता हूँ कि आप 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको प्रत्येक ग्राममें भेजकर जनतामें गृहस्थ-धर्म की भावना उत्पन्न कर रहे हैं। मैं आपकी इस पुस्तकको पढ़कर बहुत सन्तुष्ट हुआ।

७६६—श्री मुंगेश्वर प्रसाद, लोहरडागा, रांची।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर अति प्रसन्न हुआ। इच्छा बलवती हुई कि एक प्रति मैं अपने साथ रखूँ, का[illegible] इससे अच्छो और कोई पुस्तक मनुष्यके लिए कल्याणकारी मेरी दृष्टिमें नहीं आती। अतएव सादर साजु[illegible] लिखता हूँ कि मेरे कल्याणके लिये एक प्रति 'गृहस्थ-धर्म' भेज दीजिये।

७९७—श्री पं० रूपचन्द्र मिश्र, सिवनी सखौं, जिला बिलासपुर (सी० पी०)।

—गृहस्थोंका आदरणीय 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक आया। सब उत्कण्ठापूर्वक उसे देखने लगे। सौभाग्यसे मुझे भी देखनेको मिला। एक-दो शीर्षक देखनेके बाद मुझे ऐसा आनन्द आया कि मैं मन्त्रमुग्धवत उसे देखते ही रहा, मन चाहा, उसे देखने ही रहूँ पर विवश था मुझे लौटाना था, अतः किन्तु मैं उसे पूरा देखने तथा उसके द्वारा शिक्षाप्रद बातोंको ग्रहण करने तथा अभ्यास (छन्दर श्लोकोंका) करनेके निमित्त अपने पास रखना ही चाहता हूँ, तथा योग्यतानुसार, अपने देहातवालोंको भी इस बातके लिये बाध्य करूँगा, ताकि वे छन्दर पथ पर आरूढ़ हों, उसी आशासे उनसे पता पूछ तुरन्त आपके पास लिख भेजा। मुझे विश्वास है कि आप मेरी आशाको अवश्य पूर्ण करेंगे।

७९८—श्री मोतीलाल, रसीसाबाजार, पैठाना, पटना।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक लोगोंमें नवीन जीवनका संचार कर रही है तथा इसकी प्रसिद्धि दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ रही है। मुझे कुछ क्षणोंके लिये आपके पञ्चम संस्करणकी एक प्रति पढ़नेका अवसर प्राप्त हुआ। कुछ विषयों पर दृष्टि निक्षेप करने पर ही मुझे पता चल गया कि निसन्देह ही यह भावना जीवनके लिये कल्याणकारी है। आपने जो अपने विचारोंको एकत्र करके इस पुस्तक द्वारा लोगों तक पहुँचानेका कष्ट किया है, ऐसी सद्भावनाका मैं हृदयसे स्वागत करता हूँ। सच तो यह कि इसकी प्रतियोंकी माँगके अनुसार किसी भी संख्यामें जनता तक बिना मूल्य पहुँचना आपकी महान उदारताका परिचायक है। केवल इतना ही नहीं, इस पुस्तकके द्वारा हिन्दू-धर्मकी नींव मजबूत करने एवं उसके पुनरुत्थानमें आपका बहुत बड़ा हाथ है। आपने जीवनके हर एक पहलुओं पर प्रकाश डाला है और उसे सुखमय बनानेकी भरसक चेष्टा की है। इसे पढ़कर कोई भी व्यक्ति अपनेको सुधारकर गार्हस्थ-जीवनको सुचारु रूपसे चला सकता है। अतः आपसे अनुरोध है कि इसकी एक प्रति भेजकर हम ग्रामीण जनताको अन्धारमय जीवनमें ज्योति प्रदान कर अग्रसर होनेका अवसर दें। आशा है आप ऐसे धर्मानुरागी हम देहातियोंके जीवनकी उन्नति करनेमें प्राण-पणसे चेष्टा करेंगे।

७९९—श्री योगीन्द्र साह सोनार, पो० परसा थाना जी० छपरा, सारन।

—आपका "गृहस्थ-धर्म" अत्यन्त ही समयोपयोगी और डूबते हुए भारतीय समाज के लिये नौका तुल्य है। आपके प्रयासने समाज में एक नवीन युगस्थापित करनेका यह नया तरीका अख्तियार किया है। इसके लिये धन्यवाद!

८००—श्री बलदेवप्रसाद सिंह, पटना।

—"गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक हमारे इलाके के प्रत्येक मानवके हृदयमें नवीन भाव संचार कर रही है। ऐसी प्रकाशनके लिये कोटि-कोटि धन्यवाद!

सम्मतियाँ और उद्गार !

८०१—श्री राजनारायण सिंह, भागलपुर ।

—इस 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकके आधारपर कोई भी व्यक्ति अपने जीवनको सार्थक बना सकता है। इससे मनुष्य को सत्कर्म करनेकी प्रेरणा मिलती है। आप वास्तवमें धन्य हैं।

८०२—श्री जगजीवनराम साव, गङ्गापुर, गया ।

—आपकी किताब 'गृहस्थ-धर्म' से मानव-समाजमें फैली हुई बुराइयोंका बहुत हदतक उद्धार होगा। इस धर्म-काण्डसे आपका नाम धर्मके इतिहासमें सोनेके अक्षरोंसे लिखा जायेगा। आप निश्चय ही महापुरुषोंमें हैं। आपकी बराबरी करनेवाला कोई नहीं है।

८०३—श्री हरिप्रसाद, ग्राम पण्डितपुर, पटना ।

—'गृहस्थ-धर्म' का अध्ययन कर हृदय गद्गद् हो गया। सचमुचमें यह पुस्तक एक अनुपम रत्न है। आपने इसकी रचना कर छत्र मानवताको जगाया है तथा जर्जर सनातन धर्मको नवजीवन प्रदान करनेका उपाय सोचा है। यह पुस्तक एक बार पढ़ लेनेकी चीज नहीं है। बल्कि प्रति दिन पाठ करनेकी चीज है। ऐसी ही पुस्तकके द्वारा मनुष्य अपने चरित्रका निर्माण कर सकता है।

८०४—श्री विश्वनाथ साह, मु० लोदाम, पो० जशपुरनगर, जिला रायगढ़ ।

—आपकी धर्म-सेवा दुनियामें विख्यात होती जा रही है, और होती जायेगी। आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तक सभी ओर अपना यश फैला रही है। भगवान आपकी जय-जयकार करें।

८०५—श्री रामप्रसाद शर्मा, मु० सिमरा जमशेद, पो० जाखिम, जिला गया ।

—'गृहस्थ-धर्म' में परमोपयोगी विषय उपदेश, प्रार्थना तथा मन्त्र-प्रकरण आदिका समावेश करनेके लिये हृदयसे बधाई है। हमारे ग्रामके अनेक व्यक्तियोंने इस पुस्तकके आधारपर अपने चरित्रका निर्माण किया है।

८०६—श्री रामानुज शास्त्री, देहरादून ।

—आपकी संग्रहीत पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' वर्तमान धार्मिक ह्रासके युगमें संशय-ग्रस्त जनताके लिये वास्तवमें शान्ति प्रदायिनी तथा कल्याण पथ-प्रदर्शकका काम करनेवाली है। इसको छापकर और सर्व जनताके लाभार्थ वितरण कर आप धर्मकी वास्तविक सेवा तथा जनताका उपकार कर रहे हैं। आपका यह कार्य अत्यन्त प्रसंशनीय है।

८०७—श्री विनयप्रसाद सिंह, खलीलाबाद, पटना ।

—आपकी दयालुता, उदारता और यश चारों ओर गूंज रहा है। जो अपना सारा जीवन परोपकारमें बिताता हो, वही सज्जन मनुष्य है। मनुष्य शरीर पाना अति दुर्लभ है। उसीका जीवन सार्थक है, जो विद्यादान देत[illegible] दुनियामें ज्ञानदानसे बढ़कर कोई भी दान नहीं है। आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक सच्चे मार्गपर चलनेमें सहायत[illegible] इसका अध्ययन करनेसे मनुष्य सचमुच सच्चा मानव बन सकता है।

८०८—श्री रामाधार पाण्डेय, जोशीमठ, गढ़वाल।

—'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तक बड़ी सुखदायनी और प्रकाशिनी है। इसके अन्दर जीवनकी ज्योति है। जिस मनुष्यने अपना जीवन खो दिया है, वह उसे पुनः किस प्रकार पा सकता है, इसका पूर्ण ढङ्गसे विवरण दिया गया है।

८०९—श्री भगवान सिंह, रसूलपुर, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक गृहस्थोंके लिये बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुई है। इस स्वाधीन भारतमें इसकी ख्याति दिन दुगनी और रात चौगुनो हो रही है। सभी व्यक्ति इसकी प्रशंसा कर रहे हैं। 'गृहस्थ-धर्म' के साथ साथ आपकी ख्याति भी फैल रही है।

८१०—श्री विनोदकुमार शर्मा, मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट, कलकत्ता।

—पुस्तककी उपादेयता और उत्तमताके कारण सभी वर्गके लोगोंने इसकी सराहना की है, सदाचार मनुष्यके जीवनकी सफलताकी कुञ्जी है। 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक सदाचारी बननेकी प्रेरणा देती है।

८११—श्री रामनरेश त्रिपाठी, अमरावती।

—सद्गृहस्थ बननेके लिये यह पुस्तक परमावश्यक है। इसमें लोकोपयोगी साधनोंको प्रचुरता है। इस पुस्तकके अध्ययनसे धर्म और ईश्वरके प्रति मनुष्यको निष्ठा वृद्धिगत होती है।

८१२—श्री लखन प्रसाद सिंह, बिगहा-मण्डल, पटना।

—सब लोग ग्रामीणोंको हेय दृष्टि देखनेका प्रयत्न किया करते हैं। धन्य हैं इस पुस्तकके संग्रहकर्त्ता, जिन्होंने ग्रामीण जनताके लाभार्थ ऐसी अनुपम पुस्तकका निःशुल्क वितरण किया है।

८१३—श्री जगतनारायण प्रसाद सिंह, पटना।

—आप 'गृहस्थ-धर्म' द्वारा जनताकी अपार सेवा कर रहे हैं। आप बधाईके पात्र हैं। वास्तवमें यह किताब विद्यार्थियों और साधारण जनताके लिये बहुत उपयोगी है।

८१४—श्री भगवान प्रसाद, सिगरा, बनारस।

—'गृहस्थ-धर्म' के कुछ ही अंशोंको पढ़कर मैं काफी प्रभावित हुआ। सचमुच यह प्रत्येक गृहस्थके लिये पठनीय है। 'गृहस्थ-धर्म' की एक प्रति प्रत्येक परिवारमें उचित मार्ग-प्रदर्शनको क्षमता रखती है, विशेषकर नवयुवकोंके लिये तो यह सच्चे अभिभावकका कार्य करती है।

८१५—श्री रामाशीष सिंह, कोडरमा, जिला हजारीबाग।

—इस पुस्तकमें दिये गये उपदेशों और मन्त्रोंको पढ़कर मनको शान्ति मिलती है। इन उपदेशोंको जीवनमें ... तो मनुष्य इस संसाररूपी समुद्रमें आसानीसे पार हो सकता है।

८१६—श्रीमती मन्नादेवी, बुद्ध-मार्ग, पटना ।

—अपने धर्मको न पहचान कर हमारी जो बहनें अधर्म की ओर प्रवृत्त हो रही हैं, उन्हें सन्मार्ग पर लानेके लिये 'गृहस्थ-धर्म' बहुमूल्य ग्रथ है । इसमें धर्म-शास्त्रोंका सारा निचोड़ रख दिया गया है ।

८१७—श्री दीनदयालु त्रिपाठी, पो० वीर, जिला पटना ।

—'गृहस्थ-धर्म' के मुफ्त वितरण द्वारा मानव-समाज तथा राष्ट्रकी सेवा हुई है । सेठ मनसुखराय मोर धन्यवादके पात्र हैं, जिन्होंने इस तरहकी कल्याणकारी पुस्तक जनता जनार्दनकी सेवामें अर्पित की है ।

८१८—श्री राजकुमार मिश्र, हजारीबाग ।

—आपकी कीर्ति हमारे जिलेमें खूब ही फैल गयी है । ऐसी सुन्दर पुस्तककी रचनाके लिये हम आपको हार्दिक धन्यवाद देते हैं । मेरे विचारसे विद्यार्थियोंको नयी शिक्षा देनेके लिये इस पुस्तकको अनिवार्यंतः आवश्यकता है ।

८१६—श्री राजकुमार सिंह, इटावा, उत्तर प्रदेश ।

—कालके प्रभावसे आर्य जातिमें से धर्म शिक्षा उठी जा रही है । ऐसी अवस्थामें आर्य जातिको इस विपत्तिसे बचानेके लिये आपने 'गृहस्थ-धर्म' लिखा है, और उसे बिना किसी मूल्यके वितरित कर रहे हैं । यह आपकी मानव उदारताका परिचायक है । भगवान आपको दीर्घायु बनायें ।

८२०—श्री सूर्यनाथ पाण्डेय, बीना, मध्यभारत ।

—'गृहस्थ-धर्म' से मैं विशेष प्रभावित हुआ । मानव-मात्रके लिये यह पुस्तक कितनी उपयोगी है, इसका अन्दाज लगाना कठिन हो नहीं, वरन् असम्भव है । इस पुस्तककी रचना कर आपने जिस विलक्षण एवं अलौकिक विचार तथा प्रखर बुद्धिका परिचय दिया है, वह सर्वथा सराहनीय है । आशा है, आगामी पीढ़ीके स्त्री-पुरुष आपके सुन्दर उपदेशोंसे फायदा उठाकर जीवन क्षेत्रमें किसी प्रकारकी कमी नहीं मालूम करेंगे । समस्त पुरुष एवं स्त्री समुदायसे मेरी यह प्रार्थना है कि वे इस अमूल्य पुस्तकको अपनाकर अपना लौकिक एवं पारलौकिक सुधार करनेकी चेष्टा करेंगे ।

८२१—श्री परदेशी राम, बख्तियारपुर ।

—आपने इस पुण्य कर्मसे अपने लिये भारतवर्षमें एक ऊँचा स्थान सुरक्षित कर लिया है । जनताकी आँखें आपकी ओर लग गयी हैं । आपकी इस पुस्तकसे असंख्य गृहस्थोंको लाभ पहुंच रहा है ।

८२२—श्री मातादीन पाठक, बेन, गया ।

—पुस्तककी मुख्य-मुख्य बातें पढ़कर मैंने शिक्षा ग्रहण की है । मेरे जीवनमें काफी सुधार हुआ है । पुस्तक मेरे पास सदाके लिये रहती, तो न जाने मेरे जीवनमें कितना सुधार होता ।

८२३—श्री मेवालाल मिश्र, नयाटोला, बनारस।

—आपकी धर्मोपदेशक पुस्तकें धर्मकी महान रक्षा कर रही हैं। आपका नाम भी तो वैसा ही है। हृदयको सुख देनेवाला जैसा आपका नाम है, वैसे ही आपके गुण भी हैं।

८२४—श्री रामनन्दन प्रसाद, नईगोदाम, गया।

—मुझे आपकी बनाई हुई पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। वास्तवमें 'गृहस्थ-धर्म' सम्बन्धसे जितनी भी पुस्तकें अबतक निकली हैं, उनमेंसे आपकी पुस्तककी गणना अनमोल रत्नोंमें की जा सकती है। परमात्मा आपको दीर्घायु बनायें, यही मेरी एकान्त प्रार्थना है।

८२५—श्री अनिरुद्ध प्रसाद सिंह, मुगलसराय।

—आपकी इस पुस्तकमें सत्यके दर्शन होते हैं। 'गृहस्थ-धर्म' जैसी सत्य, अहिंसा और ज्ञानसे भरपूर पुस्तकको प्रकाशित करनेके लिये सारा देश आपका ऋणी रहेगा।

आपकी किताबसे मैं इतना प्रभावित हुआ हूँ कि इसे प्राप्त किये बिना न दिनमें चैन न रातको नींद हो आयी। मानव-जीवनका उच्चतम लक्ष्य आनन्द और सुखकी प्राप्ति ही है। और यह वास्तविक आनन्द 'गृहस्थ-धर्म' में ही मिलता है।

८२६—श्री भूदेव सिंह, खिजरसराय, गया।

—आपने भारतवासियोंके लिये एक अमूल्य निधि निकाली है। जो देशकी गिरी अवस्थाको ऊँचा उठा सकती है। इस इलाकेमें धर्मकी कमी है। आपकी अमूल्य निधि-'गृहस्थ-धर्म' से ग्रामीण लाभ उठा रहे हैं।

८२७—श्री मोहनलाल महतो, टिकारी, गया।

—इस महादानसे आपका यश सारा देश ही गा रहा है। सचमुच आप जैसे परोपकारी व्यक्ति संसारमें बहुत ही कम दिखाई पड़ते हैं। परमात्मा करें, आप और भी जन-धनसे सम्पन्न हो जायें।

८२८—श्री रामस्वरूप शर्मा, जहानाबाद।

—बड़े सौभाग्यकी बात है कि लोक-हितार्थ ऐसी उपयोगी किताब मुफ्तमें दे रहे हैं। आपको कोटिशः धन्यवाद है! किताब अत्यन्त उपयोगी है। नवयुवकोंको, जिनके ऊपर गृहस्थीका बोझ पड़नेवाला है, इस पुस्तककी एक प्रति हमेशा अपने पास रखना चाहिए।

८२९—श्री बद्रीप्रसाद तिवारी, पुरानी गोदाम, गया।

—मैंने आपके जन-हितार्थ छपाये गये ग्रंथकी उपयोगिताके बारेमें अनेक व्यक्तियोंसे मुक्तकण्ठसे प्रशंसा सुनी है। [illegible]न है कि इसकी शिक्षायें ग्राह्य हैं। मेरे लिये भी इसकी एक प्रति भेजनेकी कृपा करें।

८३०—श्री गरमेश्वरी साहू, हजारीबाग।

—इस मानव-जीवनके उद्धारके लिये आपका उपकार सर्वोपरि है। आप मानव-जीवनके अन्धकारको हटाकर उसमें प्रकाश डालनेके लिये जो सेवा कर रहे हैं, उसके लिये आपको सहस्रों धन्यवाद हैं!

८३१—श्री कृष्णदेव सिंह, स्टेशन रोड, पटना।

—इस पुस्तकसे अनभिज्ञ समाजको आगे बढ़ानेका अवसर मिल रहा है। यह पुस्तक सभीके लिये अति हितकारक और उन्नति पथ-प्रदर्शक है।

८३२—श्री अनूपनारायण सिंह, बिगहा-मण्डल, पटना।

—पुस्तक प्रत्येक गृहस्थके लिये उपयोगी है। सेठजीने धर्म तथा उसकी शिक्षाओंको एकत्रित कर अनूठे ढंगसे लेखबद्ध कर दिया है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि इसे बिना मूल्य वितरण किये जानेकी व्यवस्था की गयी है। इस पुस्तककी जितनी भी प्रशंसा की जाये, थोड़ी है।

८३३—श्री महेशप्रसाद, ग्राम सुजानपुर, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक हम मानवोंके लिये कल्याण-मार्ग प्रदर्शक है। इससे मनुष्योंके हृदयका घोर अन्धकार शीघ्र ही दूर हो जाता है। इस पुस्तककी एक-एक पंक्ति उच्च विचारसे ओत-प्रोत एवं उपदेशसे परिपूर्ण है। जिस व्यक्ति की अभिलाषा आपके द्वारा प्रकाशित इस ग्रथके अध्ययन की ओर लग जायेगी, उसका सारा विचार शीघ्र ही अन्तःकरणसे विदा हो जायेगा।

८३४—श्री अयोध्यानाथ सिंह, प्राधानाध्यापक, पण्डौल, बिहार।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकके प्रकाशन एवं उसके निःशुल्क वितरणके लिये कोटिशः साधुवाद। युवकोंके लिए यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी प्रतीत हुई है।

८३५—श्री रामनगीना सिंह, लंगरटोली, पटना।

—इस पुस्तकमें लिखित विभिन्न विषयोंको पढ़कर पथ-भ्रष्ट व्यक्ति पवित्र मार्गपर आ सकते हैं। ऐसी कल्याण-कारी पुस्तकको प्रकाशित करनेके लिये इसके संग्रह-कर्त्ता निस्सन्देह बधाईके पात्र हैं!

८३६—श्री रामचन्द्रप्रसाद, भागलपुर।

—आप हमारे लिए सचमुच परमात्माके लिए तुल्य हैं। आप जैसे महात्माओंके फलस्वरूप हिन्दू-धर्मका निश्चय ही पुनरुत्थान होगा।

८३७—श्री शुकदेवप्रसाद सिंह, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' को देखकर मुझे अति हर्ष हुआ। जनतामें बिना मूल्य इस पुस्तकको वितरित कर बड़ा उपकार कर रहे हैं। आपके प्रति ग्रामीण जनता आपकी कृतज्ञता प्रकट कर रही है।

८३८—श्री हरिहरप्रसाद, महदीपुर, पटना।

—गरीबीके कारण इतनी उपयोगी पुस्तकको खरीदनेसे हम वंचित रह जाते। बिना मूल्य इस पुस्तकको देकर आप निश्चय ही हमारा भारी उपकार कर रहे हैं।

८३९—श्री नारायणप्रसाद सिंह, भागलपुर।

—'गृहस्थ-धर्म' बहुत ही उपयोगी पुस्तक है। इससे मुझे बहुत लाभ हुआ है।

८४०—श्री सन्तसिंह, नयी गोदाम, गया।

'देशके कल्याणके लिये आप जिस सुन्दर और लाभदायक पुस्तकका प्रचार कर रहे हैं, उसने यहांकी जनतामें भारी प्रभाव जमा लिया है।

८४१—श्री सेवक महतो, अन्दर किला, गया।

—आजकी दुनियामें जनताकी भलाई करनेवाले आप जैसे महापुरुष विद्यमान है, यह बात 'गृहस्थ-धर्म' से भली-भांति प्रकाशमें आ जाती है।

८४२—श्री रूपनारायण पाण्डेय, अशोक पथ, पटना।

—आपकी दातव्य पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' काप्रचार जोरोंके साथ हो रहा है। इस पुस्तकके द्वारा आपकी कीर्त्ति सर्वत्र फैलेगी। मनुष्यके चरित्रको ऊंचा उठानेवाली यह अद्वितीय पुस्तक है।

८४३—श्री रामप्रसाद, रेगनियाबाग, पटना।

—आपकी सुन्दर और लाभदायक पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को देखकर मेरा हृदय आनन्दसे विभोर हो गया।

८४४—श्री केदारप्रसाद, बोधगया, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक, जिसमें शास्त्रोंके निचोड़ोंका संग्रह किया गया है, बहुमूल्य है। इस पुस्तकको प्रकाशित कर आपने पुरुष और नारी दोनोंके जीवनका उद्धार किया है। आप वास्तवमें धन्य हैं।

८४५—श्री रमेशचन्द्र, राजगीर, जिला पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' की मैंने अति प्रशंसा सुनी है। भारतके कोने-कोनेमें इस पुस्तककी ख्याति फैल गयी है। इसकी प्रशंसा एवं इसके द्वारा ज्ञान प्राप्तिके विषयमें सुनकर कौन ऐसा पुरुष होगा, जिसके हृदयमें इसे पढ़नेकी उत्कट अभिलाषा न हो ? इस पुस्तकका पूर्ण अध्ययन करनेके लिये मेरे मनमें तीव्र उत्कण्ठा है।

८४६—श्री सिद्धेश्वर पाठक, सुल्तानपुर, (उत्तर-प्रदेश)।

—आपके द्वारा संगृहीत पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को देखकर मेरे दिलमें अदम्य उत्साहकी लहर व्याप्त हुई है। हमारे ...त्र इस पुस्तकको पढ़नेके लिए लालायित हैं।

८४७—श्री रामजनम सिंह, वीरभूम ।

—'गृहस्थ-धर्म' पढ़नेसे अति लाभ होता है । ज्ञान प्राप्तिका तथा ईश्वर-शक्तिका एकमात्र यही गृहस्थ-धर्म ही साधन है । आपको कोटिशः धन्यवाद है कि ऐसी सुयोग्य पुस्तकका आयोजन कर आप समस्त प्राणिमात्रको ज्ञानका प्रकाश दिखला रहे हैं ।

८४८—श्री विन्देश्वरीप्रसाद, इटावा, (उ० प्र०) ।

—आप लाखों रुपये खर्च कर 'गृहस्थ-धर्म' नामको पुस्तक धर्म प्रचारके हेतु बांट रहे हैं । ऐसे धार्मिक कार्यके लिए आपकी जितनी प्रशंसा की जाये, वह बहुत थोड़ी होगी ।

८४९—श्री आशाराम, जौनपुर ।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर मेरे हृदयमें तूफान आ गया । मैं अपने शरीरके अन्दर नये रक्तका संचार हुआ पाता हूँ ।

८५०—श्री ईश्वरशरण, पटना ।

—इस पुस्तकको पढ़कर मैं फूला नहीं समाया । ऐसी सुन्दर पुस्तकके लिए मैं आपको बधाई देता हूँ कि आप कितनी सुन्दर पुस्तक देनेमें समर्थ हुए ।

८५१—श्री विष्णुप्रसाद, रांची ।

—'गृहस्थ-धर्म' संसारकी सर्वोत्कृष्ट पुस्तकोंमें है, जो सर्वसाधारण जन-समुदायके लिये अति हितकारी तथा उन्नति की पथ-प्रदर्शिका है ।

८५२—श्री युद्धवीर सिंह, नया टोला, पटना ।

—'आपने घोर अन्धकारमें पड़े हुए गृहस्थोंको प्रकाश देनेके लिए भटके हुए लोगोंके पथ-प्रदर्शनके लिये एवं गृहस्थ-जीवनमें स्वर्गके समान सुखका उपभोग करनेके लिये 'गृहस्थ-धर्म' नामकी जिस पुस्तकका निर्माण किया है, और उसे आप बिना मूल्य दे रहे हैं, यह आपके महान हृदयका ही द्योतक है ।

८५३—श्री त्रिवेणी पाठक, मुजफ्फरपुर ।

—आपने 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक वितरित कर एक महान सेवा की है । विशेषकर कलियुगमें अन्धकारको नाश करनेके लिए यह पुस्तक प्रकाश पैदा करनेकी शक्ति संचारित करती है ।

८५४—कामताप्रसाद, सिगरा, बनारस ।

—यह पुस्तक तो लोगोंपर जादूका असर कर रही है । परमात्मा आपकी हर तरह सहायता करें, [illegible] कामना है ।

८५५—श्री धनीराम साहू, पीरपैंती, भागलपुर ।

—आपने 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक प्रकाशित कर देशका बड़ा कल्याण किया है। हार्दिक धन्यवाद !

८५६—श्री दुलारेलाल, सब्जीमण्डी, आगरा ।

—आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' हम अज्ञानसे भरे लोगोंमें ज्ञानकी ज्योति जगानेमें समर्थ हो रही है। आपको हार्दिक धन्यवाद है।

८५७—श्री गौरीशङ्कर सिंह, पुरानी गोदाम, गया ।

—यह पुस्तक आपको अमूल्य देन है। वास्तवमें आपको इस पद्धतिसे विश्व-कल्याण होगा। जन-साधारणको भी इससे अति लाभ है। आशा है, इसी प्रकार आप मानव-जातिके उत्थानमें सहयोग देते रहेंगे।

८५८—श्री चन्द्रशेखरप्रसाद, अमरसिंह बिगहा, गया ।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक भारतके कोने-कोनेमें गृहस्थोंको धर्मोपदेशके द्वारा परम कल्याण कर रही है। आप निःशुल्क धर्म सेवा प्रचारसे भारतका कल्याण करते हुए विद्युत प्रकाश फैला रहे हैं।

कल्याणकी इच्छा रखनेवाले व्यक्ति गृहस्थ-धर्मके पथपर चलनेके लिए एवं उसके सदुपदेश करनेके लिए अत्यन्त उत्सुक हो रहे हैं।

८५९—श्री सुखदेव साव, दामोदरपुर, पटना ।

—आजका समय हिन्दुओंके लिए दुर्दिनोंका है। आज नयी रोशनी और फैशनके लोग तथा थोड़ी-सी अंग्रेजी पढ़े-लिखे नवयुवक हमारे विशाल भारतीय धर्मको महत्व-हीन समझते हैं। आज जिस गतिसे आर्य-धर्म, आर्य रहन-सहन, तथा हमारी गौरव-गरिमा नष्ट होने जा रही है, उसे देखकर मनमें दुख भर जाता है।

ऐसे समयमें आपकी इस धार्मिक पुस्तकके प्रचारसे कौन ऐसा अभागा होगा, जो आपकी सराहना न करेगा ? आप धन्य हैं ! भगवान् आपकी मनोकामनायें पूरी करें।

८६०—श्री भगवतीचरण, बेन, पटना ।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक समाजमें सुधारकी लहर प्रवाहित कर रही है। समाज-सेवा ही इस पुस्तकका प्रधान लक्ष्य है। आजके गृहस्थ अपने कर्तव्यको भूलकर सर्वनाशकी ओर अग्रसर हैं। ऐसी स्थितिमें आपकी पुस्तक अद्भुत कार्य कर रही है।

८६१—श्री रामनिहोरा सिंह, भागलपुर ।

—आपको यह लिखते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है कि आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक हम भारतीयोंकी है [illegible] पना है।

[illegible]

८६२—श्री नन्दलाल साहू, जेसीडीह, बिहार।

—आपकी किताब 'गृहस्थ-धर्म' से बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ। इस पुस्तकके द्वारा मनुष्य अपनी शारीरिक, मानसिक और नैतिक उन्नति कर सकता है। इसे पढ़नेवाला अपने साथ-साथ दूसरेको भी उन्नतिशील बना सकता है। आजके युगमें यह पुस्तक बहुत ही लाभदायक है।

८६३—पं० सत्यराम द्विवेदी, दिल्ली।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको एक व्यक्तिसे मुझे पढ़नेका सौभाग्य मिला। जहांतक मैं इसे पढ़ पाया हूँ, उतने ही मेरी आँखे खुल गई हैं। यदि इसमें लिखे हुए नियमोंका पालन किया जाये, तो मनुष्यका बहुत कुछ सुधार हो सकता है।

८६४—श्री दुर्गापाण्डेय, बनारस।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक वास्तवमें गृहस्थाश्रमको उच्च स्तर पर ले जानेका एक सुन्दर साधन है।

८६५—श्री विश्वनाथ सिंह, एकचारी, भागलपुर।

—आपने इस कलिकालमें पाप कार्यमें रत लोगोंको धर्मकी राहमें लानेके लिये, जो व्रत धारण किया है, उसकी प्रशंसा लेखनी द्वारा किस प्रकार की जा सकती है? केवल एक पोस्टकार्ड डाल देने मात्रसे ही इतनी बड़ी और उपयोगी पुस्तक प्राप्त हो जाती है। ऐसी उदारता वर्तमान समयमें आप जैसे विरले ही महापुरुष कर सकते हैं। इस पुस्तकके द्वारा न जाने कितने अगणित लोगोंका उपकार होगा।

८६६—श्री बद्रीप्रसाद यादव, झुमरीतिलैया।

—मैं अपने धर्म, नीति आदि विषयोंमें पूर्ण जानकारी प्राप्त करना चाहता हूँ। आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' का यश चारों ओर फैल गया है। यह बहुत विख्यात हो गई है।

८६७—श्री सुरेश सिंह, अकबरपुर, गया।

—आपके द्वारा प्रचारित 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको देखकर मेरा हृदय प्रफुल्लित हो उठा। इसके बारेमें मैंने जैसी प्रशंसा सुनी थी, इसे ठीक उसीके अनुरूप पाया।

८६८—श्री रामसिंह रावत, सलामपुर, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' जैसी उत्तम पुस्तकका निर्माण करनेके लिये मैं आपको धन्य मानता हूँ। प्रशंसाकी बात तो यह है कि इस अमूल्य ग्रंथको आप मुफ्त वितरण करते हैं। यह ग्रंथ वास्तवमें बहुत लाभदायक है।

८६९—श्री रामयतन शर्मा, गुरारू, जिला गया।

—आपकी पुस्तक सब जगह प्रसिद्धि पा रही है। गृहस्थोंके लिये यह तुलसीकृत रामायणकी तरह है।

८७०—श्री परमेश्वरी गुप्त, पाई बिगहा, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' के कारण इस समय आप देवतुल्य हो रहे हैं। आपकी उज्ज्वल कीर्ति चारों दिशाओंमें फैल रही है। अपने इस ग्रंथ द्वारा आप कितने ही मानवोंको उन्नति उच्च शिखर पर चढ़ा रहे हैं। और दानवोंको मानव बना रहे हैं।

८७१—श्री दीनदयालु, ग्राम लखापुर, गया।

—आपकी पुस्तकका जोरोंसे प्रचार हो रहा है। इस पुस्तकसे चरित्र-निर्माण करनेमें बड़ी मदद मिलती है। सभी विषय बड़ी सरलतासे समझाये गये हैं।

८७२—श्री रामप्रवेश, सलेमपुर, गया।

—मेरी हार्दिक इच्छा है कि आपकी आदर्श पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर कुछ ज्ञान प्राप्त करूँ। मेरे अनेक मित्र, जिन्होंने आपको पुस्तकका अध्ययन किया है, इसको भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं।

८७३—श्री भगवान प्रसाद, कमरुद्दीनगञ्ज, बिहारशरीफ।

—'गृहस्थ-धर्म' मनुष्योंके लिये संसारमें रहते हुए भी सुख और शान्तिसे भवसागर पार करनेका सुगम उपाय है। इसमें आप अपना अमूल्य समय और धन लगा रहे हैं। इस समय संसारमें आप जैसे त्यागी गृहस्थोंकी बड़ी आवश्यकता है।

८७४—श्री आनन्द राम वैद्य, बिलासपुर।

—'गृहस्थ-धर्म' को जो भी पढ़ता है, वही उसकी बड़ी प्रशंसा करता है।

८७५—श्री रामदुलारे मिश्र, मीरघाट, काशी।

—आपने संसारके कल्याणके लिये तथा हिन्दू समाजको जागृत करनेके लिये जो 'गृहस्थ-धर्म' रचा है, वह अत्यन्त ही उपयोगी है। यह पुरुषोंके अलावा नारी समाजके हितके लिये भी बड़ा उपयोगी है।

८७६—श्रीमती रामप्यारी देवी, मैंजरा, पटना।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक बड़ी ही सुन्दर है। यह आधुनिक युगके पथ-प्रदर्शकका काम करता है।

८७७—श्री काशीप्रसाद श्रीवास्तव, वृन्दावन, यू० पी०।

—यह हम ग्रामीणको लाभ देनेवाली अत्यन्त सुन्दर पुस्तक है। जो गृहस्थ इसे पढ़कर उसीके अनुसार अपना [illegible]ेगा, वह सफलताकी कठोर चट्टानसे कभी नहीं टुकरा सकता है।

[illegible]८—श्री गौरीशंकर, घोसी, गया।

[illegible]की 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको पढ़कर मैं आनन्दके सागरमें डुब गया।

८७९—श्री रामनारायण सिंह, डिहरी, पटना ।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको देखकर प्रसन्नता हुई। धर्ममें आपकी ऐसी श्रद्धा और वृद्धिके लिये ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ। आपकी इस पुस्तकसे बड़ा उपकार हो रहा है। मुझे विश्वास है कि स्मृति, पुराण, प्रतिपादित धर्मका पुनरुत्थान अवश्य होगा। ईश्वर आपके इस विनोदको सफल करे।

८८०—श्री जदुनन्दन सिंह, एकचारी, भागलपुर ।

—बहुत प्रसन्नताकी बात है कि आपने 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तककी रचना कर अपनी अद्भुत विद्वताका परिचय दिया है। हम गृहस्थोंको भलाईके लिये आपने बहुत ही अनुपम रत्नकी रचना कर हम लोगोंका बड़ा ही उपकार किया है।

८८१—श्री रामखिलावन सिंह, सब्जी मण्डी, आगरा ।

—हमें यह सूचित करते हुए अपार आनन्द हो रहा है कि 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक गृहस्थोंके लिये अत्यन्त उपयोगी है। इसे पढ़कर हमें जो आनन्द हुआ है, उसके लिये हम आपके हमेशा आभारी हैं।

८८२—श्री ब्रह्मदेव, देहरादून, उत्तरप्रदेश ।

—आपकी पुस्तकसे जन-समुदायकी कितनी भलाई हुई है, इसे लिखना सूर्यको दीप दिखाना है। पुस्तक सचमुच अनमोल रत्न है।

८८३—श्री केदारनाथ गुप्त, रफीगञ्ज, गया ।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक अज्ञानीको ज्ञान प्रदान करनेवाली उत्तम सामग्री है। यह पुस्तक हिन्दू धर्मकी अनोखी वस्तु है। इसे पुरुषके अलावा मा-बहनें भी पढ़कर लाभान्वित हो सकती हैं।

८८४—श्री सुदामा सिंह, गइंतीपुर, पटना ।

—आपकी इस पुस्तकसे देशका बहुत बड़ा सुधार होगा। इस पुस्तककी उपयोगिताका मूल्य तभी मालूम होगा, जब कि पढ़कर जीवनके सुधारोंमें लग जाय।

८८५—श्री मधुसूदन प्रसाद सिंह, तूतवाड़ी, गया ।

—आपकी यह पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' बहुत ही प्रशंसनीय है। यह पुस्तक भारतकी संस्कृतिकी रूप-रेखा एवं हमारे घरकी सीधी-सादी महिलाओंको उचित राह पर लानेवाली पुस्तक है।

८८६—श्री रामाश्रय मिश्र, पुरवा, रायबरेली ।

—आपकी पुस्तकमें सन्ध्या-तर्पण आदिकी विधि विस्तार सहित है। इसको पढ़कर मनुष्य अपना [illegible] बना सकता है। आपको इस पुस्तक प्रकाशनके लिये हार्दिक धन्यवाद !

८८७—श्री जनार्दन पाण्डेय, वरनी, पटना।

—आपने वर्तमान समयमें मनुष्योंके लिए एक विचित्र ग्रंथ तैयार किया है। आपका 'गृहस्थ-धर्म' किसानोंके लिये तुलसीदासका रामायण है।

८८८—श्री रामवृक्ष सिन्हा, कुजापी, गया।

—आपकी यह पुस्तिका धर्मसे अभिज्ञ मानवको भिज्ञ बना सकती है। इस पुस्तकसे मनुष्य धर्मज्ञ बनकर सन्मार्ग प्राप्त कर सकता है।

८८९—श्री देवकीनन्दनप्रसाद, पटना।

—आपका यह ग्रंथ धर्म और गार्हस्थ्य दोनोंका प्रचार करता है। इसको पढ़ना मानव-जीवनके लिये बहुत उपयोगी है।

८९०—श्रीमती यशोदादेवी अध्यापिका, गर्ल्स लोअर-प्राईमरी स्कूल, हजारी, हिलसा, पटना।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक हमें थोड़े ही समयके लिए देखनेको मिली। पुस्तककी उपयोगिता देखकर मैं मुग्ध हो गया।

८९१—श्री कुलानन्द पाठक, सहकारी अध्यापक, धनौरा माध्यमिक विद्यालय, भागलपुर।

बड़े ही हर्षकी बात है कि आपने 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक निर्माण कर भारतीय जनताकी बड़ी भलाई की है। सम्प्रति देशके लिए ऐसे ही ग्रन्थोंकी आवश्यकता है।

८९२—श्री वृजनन्दन शर्मा शिक्षक, मि० स्कूल सिंघाड़ा, विक्रम, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक किताब बहुत ही अच्छी है। इसको पढ़नेसे लोग फायदा उठा सकते हैं। हमारे यहां लाइब्रेरी है। मैं इसको लाइब्रेरीमें रखना चाहता हूँ। जिससे लोग पढ़कर फायदा उठा सकें, इसलिए कृपया इस पुस्तकको भेज देंगे।

८९३—श्री वशिष्ठ मिश्र, सनातनधर्म प्रकाशन मण्डल, बिरला मन्दिर, पटना।

—देश जाहि धर्मानुरागी, परम श्रद्धेय! आपने जो 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक निकला है, उससे लोगोंकी तृप्ति नहीं होती है। सभी प्रशंसा करते हैं। मैं भी आपकी पुस्तक पढ़ना चाहता हूँ तथा आपका प्रचार भी करना [illegible]ता हूँ।

[illegible]४—श्री रविराम गौंटिया, साराडीह, सारंगढ़, रायगढ़।

[illegible] नों [illegible]पकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। उसे आद्योपान्त [illegible]ट अभिलाषा है।

८९५—श्री विश्राम सिंह, हेड-मास्टर, अहिआपुर, गया।

—महानुभाव ! आपका 'गृहस्थ-धर्म' अपने कर्त्तव्यको भूले हुए गृहस्थोंके लिये अत्यन्त कल्याणकारी होनेके कारण प्रति दिन स्वाध्यायके योग्य है।

८९६—श्री इन्द्रदेवप्रसाद, मखदुमपुर, गया।

—कृपया 'गृहस्थ-धर्म' की एक प्रति भेजनेका कष्ट करें। मैं इससे अत्यन्त प्रभावित हुआ हूँ और वास्तवमें यह पुस्तक एक बहुमूल्य रत्न है।

८९७—श्री विश्वनाथ, बरबीघा, मुंगेर।

—मुझे यह भाग्यवश यह ज्ञान प्राप्त हुआ कि आप 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक प्रदान करते हैं। उनके शीर्षकको ही जानकर मेरे दिलमें उसके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। मेरे दिलमें एक तरहकी लहरें उठने लगी।

८९८—श्री महेश्वरप्रसाद सिंह, बांस बिगहा मठपर, पमेड़ां, जिला पटना।

—आपका विश्व-प्रचारक जो 'गृहस्थ-धर्म' है, उसे आप निःशुल्क देकर संसारकी भलाई कर रहे हैं।

८९९—श्री विश्वेश्वर दयाल अग्रवाल 'विशारद', जौहरी बाजार आगरा।

—एक मित्रके यहां आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। पुस्तक नित्य पठनीय तथा संग्रहणीय है। मैं संस्कृतका ज्ञाता हूं, क्योंकि मैं राजकीय संस्कृत कालेज बनारससे मध्यमा परीक्षोत्तीर्ण हूं तथा श्री अग्रवाल इण्टर कालेज आगरामें संस्कृत एवं हिन्दीका अध्यापक हूं।

९००—पं० काशीनाथ झा 'प्रेमधन', मो० पो० बघरा, दरभङ्गा।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' नामक ग्रंथ पढ़कर मैं मन्त्र-मुग्ध हो गया। इसकी प्रशंसा मैं कहांतक करूं ? वर्णनातीत एवं 'मुकास्वादानवंत' लिखनाही प्रयास समझता हूं।

९०१—श्री मुखी पाहरख बहादुर, राजभण्डारी, मलंगवा, पो० सोनबरसा, मुजफ्फरपुर।

—आपका लिखा हुआ 'गृहस्थ-धर्म' नामक ग्रंथ देखा। बहुत उत्तम प्रकारसे लिखा हुआ है। धार्मिक विषयका इससे बढ़कर दूसरा पुस्तक न देखा। इसमें गृहस्थ-धर्म और सदाचार नित्य पाठके स्तोत्र इत्यादि बहुत विषय लिखे हैं, इसलिये आपसे निवेदन है कि एक प्रति हमको भी भेज दी जावे, तो सप्रेम नित्य मनन करूंगा और बाल-बच्चोंको भी पढ़ाऊँगा।

९०२—श्री कृष्णदत्त शर्मा, दधीचि कुटीर, पो० नगर-ग्गड़, शेखावाटी (राजस्थान)।

—भगवान्‌की कृपासे आपने 'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तक प्रकाशित कर तथा मुफ्त वितरण कर विश्व-कल[illegible] मार्गमें परोपकारकी भावना समुत्पन्न की है।

६०३—श्री रघुनाथप्रसाद वर्म्मा, लक्ष्मीपुर करंजा, रामवक्स भैंतीपुर, पटना।

—आप अत्यन्त लाभदायक हितकारी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को जो गड्ढेमें गिरते हुए मनुष्योंके लिए प्रकाश का काम करते हुए उसे बचानी है—वितरित कर रहे हैं। मुझे यह देखकर अत्यन्त हर्ष हुआ।

६०४—श्री रामरत्नप्रसाद शर्मा, अरपागढ़।

—आजतक 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक नहीं प्राप्त हो सकी। इसका क्या कारण है? बहुत दिनोंसे 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकका ध्यान लगा हुआ है।

विनती हमारी सुनिये, हे! मन सुख राय मोर!
जितने पुस्तकालयमें अति, 'गृहस्थ-धर्म' की सभीको है लालसा॥

६०५—श्री सुशीलकुमार सिन्हा, एम० ए०, सरवाहनपुर, सुघड़ी, गया।

—आपकी संग्रह की हुई पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' देखनेका सुअवसर मुझे एक सज्जनके यहां मिला। वहां समयकी कमीसे पुस्तकके कुछ ही पृष्ठ मैं पढ़ सका, पर उतनेसे ही आद्योपान्त पढ़ने और लाभ उठानेकी उत्कण्ठा हो गयी। परन्तु उक्त सज्जनसे यह पुस्तक मुझे फिर नहीं मिल सकी। इसलिये मैं आपसे निवेदन करूंगा कि उक्त पुस्तककी एक प्रति भेजनेकी कृपा करेंगे। इसके लिए मैं आपका चिर कृतज्ञ रहूँगा।

६०६—श्री जगदीप सिंह 'प्रदीप' म० वि० पो० नारायणपुर, एकङ्गरसराय, पटना।

—विदित हुआ है कि आपके द्वारा 'गृहस्थ-धर्म' नामकी एक अत्यन्त जनोपयोगी पुस्तक प्रकाशित हुई है। हमारे सर्व हितैषी पुस्तकालयमें इसका अभाव बहुत खटकता है। मेरा अनुनय है कि हम स्थानीय जन-समूहकी उपयोगिताका स्मरण कर पुस्तककी एक प्रति भी भेजकर अपनी उदारताका लाभ प्रदान करें।

६०७—श्री वासुदेवप्रसाद सिंह, मो० पाठकचक, पो० महादेव सिमरिया, (मुंगेर)।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक वितरण करनेकी आपने जो व्यवस्था की है, उसके लिये हार्दिक धन्यवाद है! अतः आपसे सानुरोध प्रार्थना है कि मेरे नामपर भी एक प्रति शीघ्र भेज दें, जिसको मैं प्रेमपूर्वक पढ़ूंगा और लाभ उठाऊँगा और आप भी पुण्यके भागी बनेंगे।

६०८—श्री एकादशप्रसाद सिंह, प्रधानाध्यापक, राष्ट्रीय गांधी स्मारक, बुनियादी पाठशाला, बेलकप्पी, हजारीबाग।

—आशा है, आपका ध्यान इस गरीब शिक्षण संस्थापर आकृष्ट होगा। यदि आपकी विशेष कृपा हुई, तो यहांके [illegible]कीं बच्चे आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' से लाभ उठा सकेंगे। इस दयाके लिए यह संस्था आपका सर्वदा अनुगृहीत [illegible] योग्य सेवाकी प्रतीक्षा करें।

६०९—श्री राजेन्द्रप्रसाद 'राजीव' मो० पो० पूजापुर, पूर्णिया।

—आपने 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक बिना मूल्य वितरण करनेकी आदर्श उदारता दिखलाई है। अतः आपसे अनुरोध है कि उक्त पुस्तककी एक प्रति अविलम्ब मेरे पतेसे भेजनेकी कृपा करें। निश्चय ही जनहित कार्यमें यह आपका प्रशंसनीय उद्योग है, जिसकी सराहना कोई भी पढ़े-लिखे लोग मुक्तकण्ठसे करेंगे।

६१०—श्री चन्द्रराम, जेवरका दुकान, हिलसा, पटना।

—मैं आपकी 'गृहस्थ-धर्म नामक पुस्तकको मंगानेके लिए उत्सुक हो रहा हूँ। आपके 'गृहस्थ-धर्म' की मैंने बहुत बड़ाई सुनी। उस पुस्तकमें बहुत अच्छी-अच्छी बातें भरी हुई हैं। इससे लोगोंको बहुत फायदा होता है, इसलिये मैं आपके पास इस पत्रको भेज रहा हूँ।

६११—श्री श्यामलाल रानी पश्चमन्दिर चौक, हजारीबाग।

—आजकल हमारे नगरमें आपके 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको पढ़कर अनेकोंने लाभ उठाया है। मेरा भी दिल चाहता है कि 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकके उपदेशानुसार काम करूं। मुझे इस किताबको पढ़नेकी लालसा बहुत दिनोंसे हो रही है, पर पुस्तक नहीं मिलनेके कारण लाचार हूं।

६१२—श्री लक्ष्मीनारायण द्विवेदी, ग्राम-पिररा, पो० रातू, ज़िला रांची।

—आपकी प्रचार की हुई 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तककी झलकको देखकर मुझे अत्यन्त ही हर्ष हुआ है। मुझे आपकी पुस्तकमें दिये गये नियमोंका पालन करना है और अपना तथा अपने स्वजनोंका शरीर और धर्म भी बचाना है, इसलिये कृपा कर आप अवश्य ही 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक भेजिये। अगर आप नहीं भेजियेगा, तो मुझे शान्ति नहीं मिलेगी। मैं शिवजीकी पूजा करता हूं। इस कार्यमें भी मुझे सहायता मिलेगी।

६१३—श्री बलिराम शर्मा, आर० डी० हाई स्कूल, राजगृही, पटना।

—आप एक 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक गृहस्थोंको मुफ्त भेजकर पुण्यके भागी बन रहे हैं। मैं समझता था कि इस घोर कलयुगमें ऐसा कार्य कोई भी नहीं करता होगा, परन्तु आपकी दानशीलताके गुणोंको देखकर आश्चर्य हो गया है। मैंने देखा कि ऐसे घोर कलयुगमें भी लोग पुण्य करते हैं। 'गृहस्थ-धर्म' द्वारा आपने बहुतसे गृहस्थोंका उपकार किया है तथा कर रहे हैं। मुझे भी 'गृहस्थ-धर्म' नामक किताबकी जरूरत है।

६१४—श्री सुदामाराम रागा, पेलावल, हजारीबाग।

—मैं एक गृहस्थका पुत्र हूं। मैं इस पुस्तकको पढ़कर कृषिमें उन्नति करना परमावश्यक समझते हुए अपना और जन-समाजमें भी 'गृहस्थ-धर्म'का प्रसार करना चाहता हूं, क्योंकि किसानोंका धर्म दिन-प्रति-दिन लुप्त हो रहा है। इसलिये मैं इस पुस्तकको पढ़कर लाभ उठाना चाहता हूं। मुझे इस पुस्तककी नाम सुनते ही पढ़नेकी काफी प्रबल हो उठी है।

६१५—श्री विश्वनाथ चौधरी, मुहम्मदपुर, वाढ़, पटना।

—विश्व-कल्याण, देशकी उन्नतिके परम सीमापर पहुँचाने एवं समाज तथा लोक-परलोकको देखते हुए आपने जो पुस्तककी रचना की है। चारों दिशामें नाम-काम दोनों ही गुञ्जित हो रहा हैं और वह पुस्तक है, 'गृहस्थ-धर्म'। आपने इस पुस्तककी रचना अपने स्वार्थके लिये नहीं, बल्कि जो देश सांसारिक माया-मोहमें फँसकर अवनतिके गर्तमें दिनानुदिन गिरता जा रहा है, उसका स्तर ऊँचा करनेके लिये ही आपने इस पुस्तकको निर्माण की है और इस कार्यमें यह पुस्तक सफलता भी खूब पायी है।

६१६—श्री समलियाप्रसाद चोबे, सहायक शिक्षकयवनी, रायपुर।

—आप धर्म प्रचार-सम्बन्धी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक छापकर इसका प्रचार कर रहे हैं। इसके लिये अनेकानेक धन्यवाद !

मैं चाहता हूं कि आपकी पुस्तकसे कुछ धर्म-शिक्षा प्राप्त कर सकूँ तथा अन्य लोगोंको शिक्षा दे सकूँ।

६१७—श्री रामजन्म सिंह शिक्षक, रुखाय विद्यालय, चण्डी, पटना।

—आपकी कृपा-दृष्टि दुनियाके लोगोंके ऊपर है। आपका प्रचार किया हुआ 'गृहस्थ-धर्म' बहुत ही अच्छी पुस्तक है। इसके पढ़नेसे बहुत ही ज्ञान प्राप्त होता है। इस किताबको हमने अपने दोस्तसे लेकर देखा था, लेकिन इसे पूरा पढ़ न सके। हम इस किताबके लिये बहुत ही इच्छुक हैं। श्रीमान्‌का कृपा हो तो इस गरीबकी अभिलाषा पूरी हो सकती है।

६१८—श्री वासुदेव सिंह, ग्राम लखना, पोस्ट पुनपुन, जिला पटना।

—मुझे बहुत दुख हुआ जब कि मैं अपमानित किया गया ! एक सज्जनके हाथमें 'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तक देखी तथा पढ़नेकी इच्छासे उनसे अनुरोध किया कि महाशय क्यों मैं इस पुस्तकको दस मिनटके लिये भी देख सकता हूँ ! उन्होंने मुझे टका-सा जवाब दिया 'नहीं' ! मैंने पूछा क्यों ? उन्होंने कहा खरीदकर पढ़ो ! मैंने निश्चय किया कि एक प्रति खरीद लूँ। तलाश भी की। मगर वंचित रहा। किसी प्रकार पता पा चुका हूँ। मैं तत्काल आपके पास लिख रहा हूँ। जिस भी तरह हो मुझे एक प्रति 'गृहस्थ-धर्म' को भेजनेकी कृपा करेंगे। ऐसा नहीं कि उसी सज्जनकी तरह आप भी हमें निराश करें। हरेक बीटको मैं डाकप्यूनकी इन्तजारी करूँगा।

६१९—श्री उम्मेद सिंह, प्रधान पाठक सोनसरी हाल, नरियरा, जांजगीर, बिलासपुर।

—'गृहस्थ-धर्म' का दर्शन पाकर अति हर्षित हुआ। आपको धन्यवाद है। मैं भी इसका सदुपयोग करनेके लिये ...की [illegible]ना जीवन सुधारनेके लिये आपके ग्रंथ 'गृहस्थ-धर्म' को आजीवन अपने पास रखना चाहता हूँ। कृपाकर मेरे तथा [illegible]के हितार्थ एक प्रति इस अनमोल ग्रंथको भेजनेकी कृपा हो।

६२०—श्री प्रेमीहृदय, साहित्यभूषण सह-सम्पादक वैश्य-वाणी, दानापुरकैंट, पटना।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक किताब देखी। बड़ी अच्छी जँची। इसके मनन एवं अध्ययनसे मानव-जीवन सुखमय और गतिशील बना सकता है। श्लोकें तो जन-साधारणके लिये बहुत बड़े कामकी चीज होंगे। इसमें प्रदर्शित विचारोंके समर्थन हेतु पुस्तक अपने पास रखना मैं बहुत जरूरी समझता हूँ।

६२१—श्री दशरथलाल अग्रवाल, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' बहुत ही अच्छी पुस्तक है। आपने मानव जातिको सुमार्ग पर चलनेका पंथ बतलाया है। मैं आपको सहस्त्रों धन्यवाद देता हूँ। आप दीर्घायु हों।

६२२—श्री नारायण राम, हेड मास्टर, चिरी बेसिक स्कूल, पो० चिरी, रांची।

—आपका ग्रंथ 'गृहस्थ-धर्म' सचमुच आजकलके समाजको कुरीतियोंसे बचा सकता है। इस अनमोल ग्रंथसे गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेवाले नौजवान संयम पालनकर समाजकी काया पलट दे सकते हैं और सतयुगके समाजका पुन-र्निर्माण कर सकते हैं, जो भारतवर्षके लिये अत्यन्त आवश्यक है। ऐसे अनमोल ग्रंथको निःशुल्क भेजनेका जो यज्ञ आपने ठाना है वह राष्ट्रके लिये महान त्याग है एवं अमर कीर्ति प्राप्त करना है।

६२३—श्री रामविलास देवी प्रसाद खंडेसवाल, गवालियर।

—आपकी संग्रहकी हुई 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक मैंने अपने एक मित्रके पाससे लेकर पढ़ी। वह मुझे बहुत ही रोचिक व प्रिये लगी, जिसे पढ़कर मुझे बहुत ही आनन्द प्राप्त हुआ। उसी समयसे मेरी यह हार्दिक इच्छा हो उठी कि इस पुस्तक को मैं सदा अपने पास रखूँ और उससे केवल मैं ही नहीं बल्कि मेरे मित्रगण भी उसको पढ़कर कुछ लाभ उठा सके। यह पुस्तक गृहस्थके लिये बहुत ही लाभदायक है।

६२४—श्री प्रोफेसर चित्तरञ्जन, एम० ए०, अंग्रेजी विभाग, राजेन्द्रकालेज, छपरा।

—महात्मा भगवन्नारायण स्वामीजी परिवार-परिवारमें घूम-घूमकर योग-प्राणाया प्रार्थना आदि की शिक्षा सरल रूपसे दिया करते हैं। कार्य कुछ दिनोंसे जारी है। उनका उद्देश्य है प्रत्येक परिवारको सद्‌गृहस्थोंसे भर देना जो कर्त्तव्य-परायण, स्वस्थ, बुद्धिमान्, दिनचर्याके पक्के कर्मयोगी हों तथा लौकिक और पारलौकिक सभी सुखोंको प्राप्त करने योग्य हों। कहीं-कहीं वे योग-विद्याके अभ्यासियोंका संघ भी खोलना चाहते हैं जहाँ जिज्ञासुओंको प्राथमिक बातोंकी जानकारी कराई जा सके।

उनकी आज्ञासे मैं आपके पास यह पत्र भेज रहा हूँ। कृपया बताएँ कि उनके उद्देश्यमें आप कहाँतक [illegible] सकते हैं क्योंकि आपके 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकसे पता चला कि आपका हृदय बहुत विशाल तथा विचार [illegible] आपकी अकांक्षाएँ भी बहुत व्यापक है।

९२५—श्री यूगेश्वर सिंह, परमदेव सिंह, विष्णुपुरा, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक बहुत जोरोंसे प्रचलित रहा है। और ग्रामीण इससे बहुत लाभ उठा रहे हैं।

९२६—श्री द्वारका प्रसाद, पोस्ट-मास्टर, गोला, हजारीबाग।

—मैंने आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक किसी साथीके पास देखी। पुस्तक देखने पर मुझे अत्यन्त रुचिकर तथा उपयोगी प्रतित हुई। एवं उसे पढ़नेकी उत्कट अभिलाषा मेरे मनमें हुआ, परन्तु मेरे पास न रहनेके कारण अपनी अभिलाषापूर्ण करनेमें लाचार हूँ। इसलिये निवेदन है कि कृपया 'गृहस्थ-धर्म' का एक प्रति भेजकर मेरी अभिलाषा पूर्ण करनेकी कृपा करेंगे।

९२७—सुरेन्द्रनाथ तिवारी, १४, तुलारामबाग, पोस्ट दारागञ्ज, प्रयाग।

—सप्रेम साधुवाद! 'गृहस्थ-धर्म' का लोकहिताय संकलन करके आपने परम पुनीत कार्य किया है। साथ ही इसका बिना मूल्य वितरण आपकी परोपकार-वृत्तिका परिचायक है, जो सोनेमें सुगन्धिका कार्य करता है।

यों तो इस परमोपयोगी ग्रंथको अपने लखनऊ निवासी एक मित्रसे लेख मैंने इसे देख लिया है परन्तु नित्य-नैमित्तिक कर्ममें इसकी आवश्यकता होनेसे साग्रह निवेदन है कि एक प्रति मुझे भी भेजकर अनुग्रहित करें। मेरा परिवार तो इससे लाभ उठायेगा ही, साथ ही मेरे वाचनालयकी सामग्री होनेसे अन्य स्वजनोंके भी काम आयेगा। इत्यलम।

९२८—श्री केशवआर्य विशारद, मलाना निवासी, जिला शाजापुर।

—साहित्य-धुरीण मनीषी कर्मठ विद्याव्यसनी: माननीय पूज्य सेठ साहब श्री 'मनसुखरायजी मोर' आदर्श प्रणेता, 'गृहस्थ-धर्म'! श्रोमन्नमस्ते !!

वैसे तो गत वर्ष आपने मुझपर कृपावन्त होकर 'गृहस्थ-धर्म' नामक पूर्वार्ध पुस्तक निःशुल्क भेजी थी। पुस्तक क्या है! शास्त्रमंथनका नवनीत है, जिसके सेवनसे मानसिक ज्ञानतन्तुओंकी अभिवृद्धि होती है। अधिक प्रशंसाके पुल बाँधकर उसपरसे आपको निकालना मेरी सामर्थ्य और सम्मतिसे परे हैं।

९२९—श्री श्रीकृष्ण प्रसाद सिन्हा, सहायक शिक्षक, हुसैनपुर, बिहारशरीफ।

—बहुत खुशीकी बात है कि आपने 'गृहस्थ-धर्म' नामक एक उत्तम पुस्तक निकालकर हम गृहस्थों और कृषकोंका बहुत उपकार किया है। हमने तो आपकी पुस्तक पढ़कर बहुत आनन्द प्राप्त किया है। केवल आनन्द ही नहीं, बल्कि अपने जीवनकी अनेक बुराईयोंको दूर करने और उसे पहिचाचनेमें समर्थ हुए हैं। इसके लिये मैं आपका आजन्म आभारी [illegible]। आपकी पुस्तक मैंने एक मित्रके हाथमें पायी और उसे पढ़कर बहुत लाभ उठाया। उसी समय हमारी इच्छा है [illegible] री आपके चरणोंमें अपनी अकांक्षा अर्पित करूँ! आशा है कि मेरी कामना और माँग पूरी होगी। केवल मैं [illegible]की [illegible]ा नहीं चाहता बल्कि स्त्री-समाजमें भी इसका प्रचार करना चाहता हूँ। अभी, अभी जो पत्र आपके यहाँ [illegible] बासकर अपनी स्त्रीके लिये मँगा रहा हूँ, जो इससे लिये बहुत इच्छुक है।

६३०—श्री विष्णुशरण अग्रवाल एम० ए० एल० एल० बी० सेक्रेटरी, बालप्रेम पुस्तकालय, रामनगर, नैनीताल।

—कुछ समय पूर्व मैं बनारस गया था। वहाँ मैंने नागरी प्रचारिणी सभाके प्रधानमन्त्री पं० रामनारायणजी मिश्र के निवास स्थान पर आपके द्वारा सम्पादित तथा प्रचारित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' देखी। पुस्तक देखकर मन बहुत आन्दित हुआ। परन्तु थोड़े ही समय वहाँ रहनेके कारण मैं उसका पूर्णरूपसे अवलंकित न कर सका और पढ़नेकी लालसा मनमें ही रह गयी। यदि वह बाजारमें बिकती होती तब तो उसके प्राप्त होनेमें कुछ कठिनाई पड़ती नहीं, परन्तु वह तो केवल आपके पाससे ही प्राप्त हो सकती है। अतएव मेरा आपसे अविलम्ब प्रार्थना है कि उक्त पुस्तककी एक प्रति भेजकर अनुग्रहित करें। इनके व्ययके लिये उसे आप वी० पी० से भेजें। वी० पी० अविलम्ब छुड़ा ली जायेगी।

६३१—पं० जगन्नाथ शास्त्री 'याज्ञिक' संस्काराध्यक्ष (आर्य धर्मोपदेशक) पुरोहित, रामरेखाघाट मन्दिर, पो० बक्सर, जिला शाहाबाद।

—श्रीमान् श्रद्धेय सेठ जी ! सादर सप्रेम जय-हिन्द ! मैं एक धर्म प्रचारक और उपदेशक व्यक्ति हूँ। मेरा काम लोगोंमें सद्धर्मकी प्रवृत्ति बढ़ाना है। एतदर्थ षोडश संस्कारोंका प्रचल, उसकी ओर जनताकी अभिरुचि दिलाना तथा वर्णाश्रमकी सनातन मर्यादा लोगों पुनः प्रतिष्ठित करना कराना है। अभी नवयुवकोंके विवाहोत्सवमें सम्मिलित होकर उन वरोंको 'गृहस्थ-धर्म' की महानतता समझा कर उन्हें सत्य-सनातन वैदिक-धर्ममें दीक्षित करना है जो पाश्चात्य सभ्यताके चकाचौंधमें बुरे तौरसे प्रवृत्त हैं। क्या आप ऐसे होनहार पाश्चात्य-प्रवृत्तिवाले हिन्दू नवयुवकोंके पथ-प्रदर्शकमें सहायक होकर सुयश और पुण्यके भागी न होंगे ? अवश्य आपको मेरे इस धर्म-शिक्षण कार्यमें हाथ बटाना चाहिए। और इसका एक ही उपाय है कि "सर्वेषामवे दानानां ब्रह्म दानं विशिष्यते" इस मनु वाक्यानुसार अपने "ब्रह्म-ज्ञान" का दान मुझे प्रचुर मात्रामें दीजिये। सो कैसे ?

अपना संग्रहीत 'गृहस्थ-धर्म' की विशेष प्रतियाँ अमूल्य रूपमें मेरे पास भेज कर। ताकि ऐसे-ऐसे धर्म-जिज्ञासुओंको अमूल्य रूपमें मैं भेट कर सकूं जिससे स्वधर्ममें उनकी प्रवृत्ति बढ़े और वे इस 'गृहस्थ-धर्म' की महानताको समझ सकें।

६३२—श्री बालेश्वर शर्मा, प्रधानाध्यापक, नन्दलाल लिड्ल स्कूल, श्रीवर गोपालपुर, पो० चेसी, जिला पटना।

—आपकी सुपुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' की उसको सदुपयोगिताकी मनोरम झाँकी देख-सुनकर सचमुच मैं अचम्भित रह गया। दिलमें उस पुस्तक-रत्नको पानेकी बलवली इच्छा हुई अथवा यों कहिये कि तबसे मैं बेचैन रहने लगा।

मुझे विश्वास है कि अब आपकी कल्पना मेरे हृदयके भावोंकी जड़तक पहुंच गई होगी। यदि आप मेरी लालसाओंका लहूलुहान न कर मेरे पनपते हुए अरमानोंमें गङ्गाजल डालनेकी कृपा करें, तो सचमुच आपका मुझपर [illegible] आभार रहेगा। विशेष क्या कहूं ? विशेष कहनेकी मुझमें क्षमता है ही कहां ? न तो मैं कोई लेखक ही [illegible] भावुक-हृदय कवि ही। हां, इतना तो अवश्य कहूंगा कि आपका प्रसाद पानेके लिए मैं व्याकुलतासे [illegible] रहूंगा। मैं उसीको पाकर अपनेको कृतकृत्य तब मानूँगा।

६३३—श्री मदनमोहन, गवर्नमेण्ट इण्टर कालेज, पौढ़ी, गढ़वाल।

—महानुभाव! आजतक मेरी अभिलाषा-युक्त आंखें आपके उपहारकी ओर थी। डाकियेको पूछते-पूछते आखिरमें थक चुका हूं। अगर मेरा मनिआर्डर भी आनेवाला होगा, तो शायद मैं डाकियेको इतना न पूछता। आखिर डाकियेने जब मुझे पागलकी उपाधि देकर आलंकृत किया। तब अपना मुंह लेकर उसके सामने भी नहीं फटकता हूं। यह सब काम आपके आश्वासन देनेपर हुआ।

आज यथोतिक नैराश्यके अन्धकारमें भटकता हुआ आपके सम्मुख हस्त लिखित पत्र भेंट करता हूं। मुझे सपनेमें भी आशा नहीं थी कि आप इस प्रकार मेरे प्रति निर्दयताका व्यवहार कर मुझे नैराश्यके लिये बाध्य करेंगे। मेरी आत्मगौरवको आत्म-सम्मानको जीवनके अर्थात् रसको एक अन्धेरी कोठरीमें रख छोड़ेंगे। ये सब बातें आपके उदार हृदयको, आपकी कीर्त्तिका आपके परोपकारके ज्वलन्त उदाहरण हैं। आपने लिखा है पुस्तक छप रही है। अगर आप छपनेवाली लिखते तो मुझे २ महीनेकी देर भी सहर्ष स्वीकार करनी पड़ती, परन्तु......क्या मैं आपकी पुस्तककी कल्पना करके ही सो जाऊं? क्या आपके लिये मेरा पत्र भेजना और आपका मेरे लिये पत्र आना मेरी अकाट्य कल्पनाकी उड़ान थी या आधी रात्रिका स्वप्न!

क्षमा कीजिये! खैर, क्षमता महापुरुषोंमें ही हुआ करती है। 'गृहस्थ-धर्म' के लिये बेचैन होकर ही मैंने यह कटु पत्र लिखा है।

सृष्टि को विनाश से बचाइये।

["सृष्टिको विनाशसे बचाइये" शीर्षक लेखका, जो पर्चेके रूपमें हिन्दीके साथ-साथ बङ्गलामें भी छपा था, और जिसे इस पुस्तकके प्रारम्भिक पृष्ठोंमें दिया जाता है—शिक्षित बङ्गाली, बङ्गाली सज्जनोंने किस प्रकार हार्दिक स्वागत किया, यह नीचे दिये गये कुछ पत्रोंसे स्पष्ट है। ये पत्र अंग्रेजीमें लिखे गये हैं। यहाँ इनका अनुवाद दिया गया है।]

डा० अनिलकुमार चटर्जी,

डी० एम० एस० का पत्र इस प्रकार है :—

१७, रामकृष्ण लेन, चातरा।

श्रीरामपुर, २२ अगस्त, '५१।

सेवामें,

श्री मनसुखरायजी मोर,

कलकत्ता।

श्रीमान्,

एक ऐसे विषय पर, जो अबतक हमारे देशमें अछूता रहा है, नये-तुले शब्दों और आकर्षक भाषामें लिखे गये आपके पर्चेका स्वागत करते हुए मैं बड़े हर्षका अनुभव कर रहा हूं। आपका प्रकाशन सुखद और शुभ है, जिसकी आवश्यकता कदापि अस्वीकार नहीं की जा सकती है।

आपका—

अनिलकुमार चटर्जी।

मेजर पी० एन० बनर्जीका पत्र :–

श्याम बाबूका घाट,
चिनसुरा ।

प्रिय श्री मोरजी,

मैंने बङ्गला में लिखे गये एक पर्चें को देखा, जो सम्भवतः आपके द्वारा प्रकाशित हिन्दी पर्चेंका अनुवाद है। पर्चेंमें व्यक्त आपके विचारोंकी मैं बड़ी सराहना करता हूं, यद्यपि पश्चात्य सभ्यताके प्रभावके कारण, इन विचारोंका आम जनता सच्चे अर्थमें सराहना न कर सकेगी। पाश्चात्य पद्धतिकी औषधियोंमें दक्षता प्राप्त मेरे जैसे डाक्टरके लिये यद्यपि आपके पर्चेंमें व्यक्त समस्त विचारोंसे सहमत होना सम्भव नहीं, फिर भी मैं इस बातको स्वीकार किये बिना नहीं रह सकता कि आपके विचारोंका ठोस आधार है, और वे तर्कपूर्ण हैं। मुझे आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' का अध्ययन करनेसे बड़ी प्रसन्नता होगी। मुझे इस बातसे भी बड़ी प्रसन्नता होगी, यदि आपकी पुस्तकका प्रचार बङ्गालके प्रत्येक घर में विशेषतः शिक्षित समुदायमें हो।

भवदीय—

पी० एन० बनर्जी।

प्रेषक :—

सुरेन्द्रनाथ चक्रवर्ती, बी० एस० सी०

शिक्षक : बङ्ग-विद्यालय,

चन्द्रनगरसे लिखते हैं :—

सेवामें,

श्री मनसुखराय मोर,

५, क्लाइव रो,

कलकत्ता।

प्रिय महोदय,

बङ्गलामें लिखे गये आपके पर्चोंको पढ़कर मुझे बड़ा हर्ष हुआ। आपके विचार बड़े सुन्दर हैं। मैं इस बातकी सिफारिश करना चाहूंगा कि आपके 'गृहस्थ-धर्म' का सप्तम संस्करण बङ्गालके प्रत्येक घरमें पहुंचे, जिससे वर्तमान पीढ़ी स्वस्थ और आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करनेमें समर्थ हो सकें।

इस विश्वमें कदम रखनेके लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूं, और आपकी सफलताकी कामना करता हूँ।

भवदीय—

सुरेन्द्रनाथ चक्रवर्ती।

सम्मतियाँ और उद्गार !

दक्षिण भारतके हिन्दी प्रचारककी सम्मति—

६३७—श्री के० सोमदेव हिन्दी प्रचारक, हैण्डचा सेवा आश्रम, सण्डे मार्केट नेयूर त्रावनकोरसे लिखते हैं :—

—श्रद्धेय ! मैं श्री काशीजीमें शास्त्रोंका अध्ययन करता रहा। उस समय श्रीमान् रामनारायण मिश्रजीने आपकी लिखी हुई "गृहस्थ-धर्म" नामक पुस्तक दी थी। मैंने आद्योपान्त पढ़ डाली है। सच कहता हूँ कि ऐसी उपयोगी किताब जिसमें मनुष्य-जीवनको सार्थक बनानेकी सब सामग्री विद्यमान हों, बिरली ही हैं। इतना तो मैं धैर्य्य-पूर्वक कह सकता हूं कि मैंने ऐसी किताब नहीं देखी। मैंने आपकी किताबको अपने सब मित्रोंको दी है, वे भी मेरी जैसी ही राय रखते हैं। इस महान कार्यके लिए मैं जन-सेवकके प्रतिनिधिके तौरपर आपको धन्यवाद देना चाहता हूं। साथ ही सर्व-शक्तिमान परमेश्वरसे आपकी चिरायु तथा आरोग्यताके लिए प्रार्थना करता हूं। मैं बनारस रहते समय कलकत्ता जाकर आपके दर्शन भी करना चाहता था। पर ऐसा सौभाग्य नहीं मिला था।

आप जानते होंगे कि ट्रावनकोरमें इस समय ईसाइयोंका जोर चरम सीमातक पहुँच चुका है। वे अपनी तमाम शक्तियोंको ट्रावनकोरमें प्रयोग कर रहे हैं। इस समय ट्रावनकोरमें उनकी संख्या ३३ फी सदी है। यहांकी कांग्रेस सरकार इसी तरह अपनी लापरवाहीसे काम लेती रहेगी, तो कम-से-कम १५ सालके अन्दर चालीस या पचास फी सदी तक पहुँचनेका अति तीव्र प्रयत्न कर रहे हैं।

आगामी वाले मार्च महीनेमें कन्या कुमारीके निकट एक हिन्दू-धर्म कांफ्रेंस होनेवाली है। यह कांफ्रेंस लगातार पांच दिन तक होगी। आप हमारे पूज्य अतिथि बनकर आ सकें, तो आपका उपदेश या भाषण हो तो बहुत ही अच्छा है ! अतः आपसे उपर्युक्त संघकी तरफसे नम्र निवेदन है कि आप हमारी प्रार्थनाको स्वीकार कर हमारी कांफ्रेंसकी शोभा बढ़ानेकी कृपा करें।

६३८—श्री भरतराज, रांची।

—आपने जो मेरे लिए 'गृहस्थ-धर्म' की एक पुस्तक भेजी, उसको पढ़कर मैंने अपने खराब चाल-चलनको सुधारा। इससे मुझे बहुत तरहका लाभ हुआ। इस किताबके नियमोंसे मैं आगे चलकर एक अच्छा आदमी बन जाऊंगा। इस बातके लिए आपको धन्यवाद है। इस किताबको पढ़कर मैं बहुत-सी खराब आदतोंको सुधारा। मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप मुझे ईश्वर ही की तरह राह दिखानेवाले हैं।

मैं इस किताबके नियमोंपर दूसरोंको चलानेकी भी कोशिश कर रहा हूं, जिससे हमलोग आगे चलकर कुछ-न-कुछ [illegible]रेका उपकार करें।

[illegible] सोचता हूं कि आपके इस नियमका सारे संसारमें फैलावे। अब मैं खुशी आनन्दपूर्वक होकर सभी मनुष्य [illegible]।

श्री नगेन्द्रनाथ चक्रवर्ती,
बी० एल० प्लीडर,
जजेज कोर्ट,
हुगलीसे लिखते हैं :—

श्री मनसुखरायजी मोर,
५, क्लाइव रो, कलकत्ता ।

प्रिय महोदय,

आपके पर्चेको देखनेका अवसर मिला । जिस समय मैं इसे पढ़ रहा था, तो मुझे समय और स्थानका कोई ध्यान ही न रहा । मुझे ऐसा लगा, मानो मैं वैदिक युगमें हूँ, ऐसा युग जो भारतके उत्थान, धर्म, नैतिक-आचरणका स्वर्ण-युग था । आपके लेखसे यह बात पूर्णतः स्पष्ट है कि सृष्टिके मूक प्राणियोंके प्रति आपकी सहानुभूति है । मुझे वास्तवमें इसका कोई बोध नहीं था कि आधुनिक समयमें जबकि मनुष्य इतने स्वार्थी हैं, विश्वमें कम-से-कम एक व्यक्ति तो ऐसा है, जो इनके लिये सोचता और कार्य करता है । मनुष्यके खाद्य-भोजनके रूपमें मास और दूधका पूर्णतः बहिष्कार करनेके लिए आपने जो कारण बतलाये हैं, वे अत्यन्त प्रामाणिक और ठोस हैं । वैज्ञानिक विश्लेषणकी बात भी काफी महत्व रखती है ।

मेरी प्रार्थना है कि आप इस पर्चेको काफी बड़ी संख्यामें वितरित करें, ताकि इसमें व्यक्त विचार प्रत्येक हिन्दूको मालूम हो जायँ । यद्यपि मुझे आपकी पुस्तक "गृहस्थ-धर्म" को पढ़नेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ, फिर भी इस पर्चेके आधारपर मैं उसकी उपयोगिताका स्पष्ट आभास मिल जाता है ।

मैं आपके दीर्घ-जीवनकी कामना करता हूँ, जिससे कि आप देश, धर्म और पीड़ित मानवताके लिए कार्य कर सकें ।

भवदीय,
नगेन्द्रनाथ चक्रवर्ती ।

९३९—श्री साधराम साव बनारी, मार्फत, सखाराम साव शिक्षक, जांजगीर, पोस्ट-जांजगीर, बिलासपुर ।

—मैंने आपकी कीर्तिका बखान पढ़ा है तथा 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक, जो आप बतौर समाज-सुधारके बिना मूल्य लिए दे रहे हैं, उसे भी किसी अपरिचित व्यक्ति द्वारा पाकर रेलवे यात्रा करते समय सिर्फ एक घण्टे तक पढ़ पाया। मैं आपका नाम गजटमें पढ़ा था तब मुझे यह दृढ़ विश्वास नहीं हुआ था कि यह पुस्तक इतनी शिक्षाप्रद तथा उपयुक्त मार्गदर्शक होगी पर उस पुस्तकको पढ़ने पर मैंने उस महाशयसे कीमत देकर भी लेना चाहा, पर उन्होंने साफ इन्कार कर दिया। मैं अपने गांवका प्रमुख व्यक्ति हूँ और गांवके प्रत्येक पंचायती तथा सामाजिक सुधारमें विशेष हाथ बटाता हूँ। मेरा दृष्टिकोण भी समाज-सुधारकी ओर ही अधिक है। अस्तु अच्छा होता कि यदि वह पुस्तक आपके पास बची हो तो अवश्य ही एक प्रति भेजनेकी कृपा करेंगे।

६४०—श्री लक्ष्मीनारायण हेड मास्टर, रफीगंज, गया।

आदरणीय महानुभाव ! सप्रेम वादना ! आपका अमूल्य ग्रंथ जो बिना मूल्य धर्म प्रचारार्थ वितरित किया जा रहा है, देखनेका अवसर मिला। पुस्तक बड़े परिश्रमके पश्चात तैयार की गई है। इससे मानव मात्रका कल्याण अवश्य होगा। मैंने उसे कतिपय साधारण पढ़े लिखे और भगवत्-प्रेमी जनोंको सुभलाभी था। पुस्तकमें एक विशेषता यह है कि उसमें सभी देवताओंके श्लोक लिखे हैं और पीछे कुछ भजन भी है, जो उनलोगोंको बड़े रुचिकर प्रतीत हुए।

६४१—श्री रामेश्वर प्रसाद, कृष्णा-प्रकाश रोड, गया।

—इस पुण्यके कार्यने आपकी उदारता का एक उज्ज्वल उदाहरण भारतीय जनताके समक्ष उपस्थित किया है। आपने भारतीयोंमें नव चेतना एवं नव-अनुभूतिका उद्रेक दिया है। आपकी उदारतासे भारतीयोंने एक अपूर्व प्रसाद पा लिया है। मैं भी इस प्रसादका एक टुकड़ेके लिये अपनी भावनाकी सेवामें भेजा रहा हूँ। आशा है, निराशा नहीं मिलेगी।

६४२—श्री बालमुकुन्द शर्मा, ५३ एम०टी० बैरेक्स कानपुर रोड, इलाहाबाद।

—क्या आपकी बनाई हुई 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तककी एक प्रति हमलोगोंको उपलब्ध हो सकती है ? यदि एक प्रति भेजनेका प्रबन्ध करें तो बड़ी कृपा होगी। इसके लिये किसी प्रकारका मूल्य अथवा डाक महसूल भेजनेकी आवश्यकता हो तो हम वह भी भेजनेको तैयार हैं अथवा वी० पी० द्वारा भेजनेका प्रबन्ध हो सकता है तो वैसा करा दें, बड़ी कृपा होगी। पुस्तककी उपयोगिताको देखकर ही इतना आग्रह है। इससे बढ़कर उसकी क्या प्रशंसा की जाय कि ऐसी पुस्तक प्रत्येक गृहस्थके यहाँ पहुंचनी चाहिए।

६४३—श्री रामानुज शर्मा, हाटी, जिला गया।

—मैंने आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' नामक किताबकी प्रशंसा बहुत सुनी है। ग्रामके गृहस्थ-जीवनके लिये यह पुस्तक अपना एक अमूल्य स्थान रखती है। अतः यह पुस्तक पुस्तकालयमें खासकर ग्राम पुस्तकालयके लिये अनिवार्य समझी जा सकती है। हमारा पुस्तकालय सदा आपका ऋणी [illegible]।

६४४—श्री सीताराम मिस्त्री, चौखण्डी, बिहारशरीफ, जिला पटना।

आप आर्य-कुल तिलक, हिन्दू जाति झलक, भारतीय मान-मर्यादाके रक्षक, विद्याके दृढ़ स्तम्भ, देशके सच्चे सपूत और हिन्दू-धर्म तथा गृहस्थ-धर्मके जीवनदाता हैं। इसी विचारको लेकर आपने हम गृहस्थ-धर्मसे अनभिज्ञ लोगोंके बीच इसके प्रचारके लिये अपने सतत उद्योगोंसे पुस्तक भेज-भेज कर, गृहस्थ-धर्म की विशेषता समझानेकी चेष्टा की है। इसे देखकर आपके प्रति असीम श्रद्धा उत्पन्न होती है। इसके लिये हम आपके अत्यन्त आभारी हैं।

६४५—श्री नरेश प्रसाद मिलकी, लरपावर, भगलस, गया।

—श्रीयुक्त असामान्य महोदयजी पस्य सेवाया मिद प्रार्थना-पत्र प्रेशय पूर्ण आशा करो कि यत् भवान यत् गृहस्थ-धर्म नामा पुस्तकम् इतस्ततः प्रेष्य पूर्ण साधुवाद प्राप्तः।

तस्य एक प्रतिमस समक्षे। इपि प्रेप्यमें मनोरथ सफल कर्तुं भवान् अण रयमेव समर्थः भविष्यति इति आशा म हे। अहम् अस्य अधितुं तस्य अनुसरितुंश्च पूर्ण ललायितो स्मिअतं मे प्रार्थना अवश्य एक करि ष्यति भवान् इति।

६४६—श्री रामप्रकाश राम, पुरानी गोदाम, गया।

—आपके द्वारा निर्मित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' के कुछ पन्नोंको पढ़ा। बहुत आनन्दित हुआ। मैं समझता हूं इससे मानव-समाजका बहुत बड़ा उपकार हुआ है। खासकर हिन्दू धर्मका पुनः प्रसार इस पुस्तकने काफी किया है। मानव-समाजके कष्टका कारण धर्मकी उपेक्षा है। जबतक मानव-समाजमें धर्मकी भावना नहीं जागरूक होगी, तबतक वह सच्चा आनन्द नहीं अनुभव कर सकेगा। धर्मका यह अर्थ नहीं कि मनुष्य संसारकी विपत्तियोंसे घबड़ा कर विरक्त हो जाय, अपितु संसारमें रहकर लोक-कल्याणकी भावनासे प्रेरित हो प्रगति पथपर वह अग्रसर होता रहे। इसकी प्रेरणा आपकी पुस्तकसे मिलती है। इसके विशेष अंशको पढ़नेके लिये मैं उत्सुक हूं।

६४७—श्री रामदीन तिवारी, औरङ्गाबाद, जिला गया।

—आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' से जनता काफी लाभ उठा चुकी है और अब भी उठा रही है। आपने इसे जनताके बीच भेंट करने और विश्व कल्याण करनेमें कुछ भी नहीं उठा रखा है। अतः इसके लिये मैं आपको हार्दिक धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता। अत्यधिक व्यक्तियोंके मुखसे मैंने इस पुस्तककी प्रशंसा सुनी है।

६४८—कामताप्रसाद, सिंगरा, बनारस।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक मन तथा हृदय दोनोंको उज्ज्वल करनेवाली है। अवश्य ही इस पुस्तकसे मानव जीवन सफल बन सकता है।

६४९—श्री दुखीराम मिस्त्री, ओबरा, जिला गया।

—आपने 'गृहस्थ-धर्म' का प्रकाशन कर हिन्दीके एक अंगकी पूर्ति की है। इसके साथ यह पुस्तक स्त्री-पुरुष सभीके चरित्रको प्रौढ़ बनानेमें सहयोग दे सकती है।

६५०—श्री रामनाथ सिंह, रफीगञ्ज, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' में परमोपयोगी विषय उपदेश, प्रार्थना तथा मन्त्र-प्रकरण आदिका समावेश करनेके लिये हृदयसे बधाई है। हमारे ग्रामके अनेक व्यक्तियोंने इस पुस्तकके आधारपर अपने चरित्रका निर्माण किया है।

६५१—श्री रमेशचन्द्र पाठक, जिला पटना।

—आपकी संग्रहीत पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' वर्तमान धार्मिक ह्रासके युगमें संशय-ग्रस्त जनताके लिये वास्तवमें शान्ति प्रदायिनी तथा कल्याण पथ-प्रदर्शकका काम करनेवाली है। इसको छापकर और सर्व जनताके लाभार्थ वितरण कर आप धर्मकी वास्तविक सेवा तथा जनताका उपकार कर रहे हैं। आपका यह कार्य अत्यन्त प्रसंशनीय है।

६५२—श्री बैजनाथ प्रसाद, पत्थर चौक, गया।

—आपकी दयालुता, उदारता और यश चारों ओर गूंज रहा है। जो अपना सारा जीवन परोपकारमें [illegible] हो, वही सज्जन मनुष्य है। मनुष्य शरीर पाना अति दुर्लभ है। उसका जीवन सार्थक जो विद्यादान देता है।

६५३—संसारी मनुष्यका हित ।

—भगवत कृपासे थोड़े समयके लिए एक सज्जनके घरपर आपका 'गृहस्थ-धर्म' नामक शुभ-ग्रन्थ देखनेका सुअवसर प्राप्त हुआ । आपने इस बहुमूल्य ग्रंथमें दुर्गाजीके चरित्रको दर्शाकर संसारी मनुष्यको बहुत लाभ पहुँचाया है । आपकी इस दयालुताके लिए कोटिशः धन्यवाद !

मेरी उत्कट अभिलाषा है कि 'गृहस्थ-धर्म' का नित्य पाठ कर इस असार-संसारमें कुछ करने और कहने लायक हो सकूं ।

—चन्द्रिका मिश्र, शाहबाजपुर, पो॰ बिहटा, बिसलपुरा, पटना ।

६५४—असहाय गृहस्थोंके जोवनका सहारा ।

—'गृहस्थ-धर्म' का प्रचार कर आपने ऐसा कार्य किया है, जो अबतक किसीने भी नहीं किया था । सब दानोंमें विद्यादानका सबसे अधिक महत्व है । निस्सहाय गृहस्थोंके लिए आपकी यह पुस्तक जीवनका सहारा है ।

—कमलेश्वरप्रसाद सिंह 'राना', पो॰ दोगाही ताहर, ग्राम घोघा, जिला भागलपुर ।

६५५—जनताकी भलाई ।

—'गृहस्थ-धर्म' जैसी पुस्तकोंकी इस समय बड़ी आवश्यकता है । इस पुस्तक द्वारा आपने जनताकी अपरिमित भलाई की है । इस पुस्तकसे आपका यश चारों दिशाओंमें फैल रहा है । आप निश्चय ही धन्य हैं ।

—छोटू सिंह, ग्राम गौशनगर, पो॰ तेऊस, जिला पटना ।

६५६—परम सन्तुष्ट ।

—इस पुस्तकमें बहुत अच्छी बातें हैं, जिन्हें पढ़कर मैं अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ । मैं चाहता हूँ कि इस पुस्तकको सदा अपने पास रखूँ ।

—दिनेश्वर शर्मा, ग्राम पत्राटोली, पो॰ लोहरडागा, जिला राँची ।

६५७—भारतवासी कृतज्ञ रहेंगे ।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको देखनेसे मनमें नयी भावना उत्पन्न हो उठती हैं । ऐसी बेजोड़ पुस्तकके प्रकाशनके लिए भारतवासी सदैव आपके कृतज्ञ बने रहेंगे । इस पुस्तकको पढ़नेमें मुझे बड़ा ही आनन्द मिलता है ।

—गङ्गाधरप्रसाद मिश्र, खपरियावान, हजारीबाग ।

६५८—जीवनसे सामञ्जस्य ।

—पुस्तकका अध्ययन मैंने इसकी उपयोगिताका जीवनसे सामञ्जस्य किया । यह पुस्तक वास्तवमें गृहस्थ-धर्मका [illegible]दर प्रणालीसे विवेचन करती है । इस पुस्तक-रत्नकी मुझे अति आवश्यकता है ।

—देवराज शर्मा 'देव', आलरिया मन्दिर, मु॰ पो॰ डिडवाना, (मारवाड़) ।

६५९—संग्रहकर्त्ता प्रातःस्मरणीय हैं।

—धर्मको उन्नत बनानेके लिए आपने अपनेको न्योछावर कर दिया है। आपकी पुस्तकके अध्ययनसे पाठक निश्चय ही धर्मके कार्योंमें हाथ बटाने लगेंगे। 'गृहस्थ-धर्म, के संग्रहकर्त्ता निःसन्देह प्रातःस्मरणीय हैं। इस पुस्तकके लेख नवयुवकोंके लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

—आनन्द मिश्र 'स्वावलम्बी', विष्णुगढ़ हजारीबाग।

६६०—आनन्दकी सीमा नहीं।

—मेरा विश्वास है कि 'गृहस्थ-धर्म' पानेके लिए मेरी आशा अवश्य पूरी होगी। मैं भगवानसे यही प्रार्थना करता हूँ कि आप जैसे परोपकारी व्यक्ति सदैव सुखी रहें और इसी तरह शुभ कार्यपर चलते रहें। 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर मेरा हृदय गद्‌गद् हो उठा। अतीव प्रसन्नता हुई। आनन्दका ठिकाना न रहा।

—ज्ञानीराम अग्रवाल, मु०पो० जैप पटना, कालाहांडी, जिला बलांगीर, (उड़ीसा)।

६६१—सात्विक-जीवनकी प्रेरणा।

—प्रेमाभिवादन ! 'गृहस्थ-धर्म' मनुष्यको अपना जीवन सात्विक बनानेकी प्रेरणा देती है। पुस्तकमें इसका कोई मूल्य लिखा हुआ नहीं है ! अतएव मूल्य सहित 'गृहस्थ-धर्म' को भेजनेकी कृपा करें।

—उमाशङ्कर, ग्राम धनौती, पो० पोरा, जिला शाहाबाद।

६६२—पुस्तकके माध्यमसे छात्रोंको शिक्षा।

—'गृहस्थ-धर्म' द्वारा आप समाजकी सेवा कर रहे हैं। सच तो यह है कि समाजके कल्याणके लिए आप अपना तन, मन, धन सभी न्योछावर कर रहे हैं। मैं रांची जिलान्तर्गत एक बुनियादी विद्यालयमें शिक्षक हूँ। मैं आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' के माध्यमसे छात्रोंको सच्चरित्र बना रहा हूँ। इस पुस्तकसे मुझे बड़ी सहायता मिल रही है।

—ज्वालाप्रसाद, बुनियादी विद्यालय, पो० चीरीं, जिला रांची।

६६३—जीवनकी ज्योति।

—सुखदायिनी, प्रकाशिनी, आनन्द, मंगलदायिनी, ये कुछ विशेषण हैं, जिन्हें 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकके आगे लगाना जरूरी मालूम पड़ता है। इस पुस्तकके अन्दर जीवनकी ज्योति है।

—रवीन्द्रनाथ, माध्यम विद्यालय, फरीदपुर, पो० नेऊरा, जिला गया।

६६४—सामाजिक, नैतिक तथा धार्मिक शिक्षा।

—आपने राष्ट्र-धर्मकी रक्षा तथा समाजके उपकारके लिए जो कष्ट उठाया है, उसके लिए प्रत्येक भारतीय आप[illegible] कृतज्ञ रहेगा। 'गृहस्थ-धर्म' में सामाजिक, नैतिक तथा धार्मिक शिक्षा भरी हुई है।

—श्रीकान्त मिश्र, दीवी तालाब, सजदलीडेरा, गया।

९६५—श्री ईश्वरशरण, सन्तकोलम्बस कालेज छात्रालय, हजारीबाग।

—मैंने अपने एक साथीके पास आपके यहांसे भेजी गयी 'गृहस्थ-धर्म' तथा तीन छोटी पुस्तकें देखी और पढ़ीं। इनमें 'गृहस्थ-धर्म' ने मुझे बहुत अधिक प्रभावित किया। मेरी हार्दिक इच्छा है कि आप कृपाकर मेरे लिए भी 'गृहस्थ-धर्म' भेज देनेका अनुग्रह करें।

९६६—श्री नर्मदेश्वर झा, आयुर्वेदाचार्य, मु० कुम्भी, समाय, पटना।

—वास्तवमें यह पुस्तक अनुपम है। आज सामाजिक-सुधार तथा सनातनधर्मके प्रचारार्थ 'गृहस्थ-धर्म' जैसी पुस्तकोंकी ही आवश्यकता है। धर्मके प्रगाढ़ अध्ययनके लिए आपको बार-बार धन्यवाद है। अपने अध्ययनसे आप जनता-जनार्दनको भी लाभ पहुंचा रहे हैं। उच्च और श्रेष्ठ मानवोंकी यही विशेषता है।

९६७—श्री रघुवीर आर्य, जैतिया बाजार, नन्दलालाबाद, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' मुझे बहुत लाभदायक पुस्तक मालूम पड़ती है। अनेक व्यक्ति इससे ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं और अपने चरित्रका निर्माण कर रहे हैं।

९६८—श्री श्यामराव मिस्त्री, मु० पो० कांरामाजी, जिला सम्बलपुर।

—कृपाकर वी० पी० द्वारा 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक भेज दें। मैं आपका बहुत बड़ा उपकार मानूंगा। इस पुस्तक की ख्याति तथा इसमें लिखित विषयों और गुणोंको सुनकर मेरी आन्तरिक इच्छा है कि ऐसी अद्भुत पुस्तकको अपने पास रखूँ। इस पुस्तकको प्राप्त करना और उसके उपदेशोंपर चलना गृहस्थाश्रमको उज्ज्वल करना है। आपको विश्वास दिलाता हूं कि वी० पी० छुड़ानेमें मैं कोई कोर-कसर उठा न रखूँगा। इसे प्राप्त किये बिना मेरा हाल पानी बिना जैसे मछली तड़पे वाला हो रहा है।

९६९—श्री सीताराम, मोहल्ला मानपुर पेहानी, महावीर स्थान, बुनियादगञ्ज, जिला गया।

—लोगोंका कहना है कि 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक चरित्र-निर्माणके लिए अनुपम है। इस पुस्तकको प्राप्त करनेपर मैं इसमें लिखे हुए उपदेशोंपर अमल करूंगा और इससे मेरे परिवारवालोंका भी भला होगा।

९७०—श्री रामबालक सिंह, ग्राम शाईस्ताबाद, पो० अलीनगर पाली, जिला गया।

—हर्षका विषय है कि 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक सभी दृष्टिकोणसे लाभदायक सिद्ध हुई है। इससे समाजका सुधार हो रहा है और इसकी ख्याति चारों ओर गुञ्जायमान हो रही है।

९७१—श्री श्यामदास साव, ग्राम मछहारा, पो० देवहरा, गया।

—इस पुस्तकके द्वारा मनुष्य उन्नतिकी सीढ़ीपर चढ़ सकता है। मैं इस तरहकी पुस्तकके लिये परेशान था। —मेरी मनोकामना पूर्ण कर दी। ईश्वर आपको दीर्घायु रखें।

६७२—श्री बृजनन्दनप्रसाद सिंह, ग्राम मथुरापुर केयूट, हुमासगञ्ज, गया।

—मैं आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' के लिए हमेशा लालायित रहता हूं। आपकी यह पुस्तक जन-हितके उद्देश्य से लिखी गयी पुस्तकोंमें अग्र-गण्य है। मैं एक गृहस्थ हूँ और इस पुस्तकके द्वारा अपनी पिछली भूलोंका संशोधन करना चाहता हूं।

६७३—श्री रामरूपप्रसाद, भारती पुस्तकालय, सलारपुर, पटना।

—श्रीमान् इस पुस्तकको दीन किसानोंके हितार्थ छपवा कर महान यशके भागी बन रहे हैं। मैं इस पुस्तकको अपने पुस्तकालयमें रखनेके लिए लालायित हूँ, जिससे आम जनता इसे पढ़कर शिक्षा ग्रहण करे। पुस्तकालय और उसके असंख्य पाठक आपके चिर-कृतज्ञ रहेंगे।

६७४—श्री रामवचनप्रसाद शर्मा, भार्थू, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' द्वारा आप मानवोंको सच्चा मार्ग दिखला रहे हैं। अपार धन व्यय कर आपने जनताके कल्याण का जो पुनीत व्रत धारण किया है, भगवान आपको उसका सुफल एक-न-एक दिन अवश्य देंगे।

६७५—श्री शिवनन्दन सिंह, लंगरटोली, बांकीपुर, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' किताबको देखकर मेरा मन गद्‌गद् हो गया। इसे पानेके लिए मैं अधीर और व्याकुल हो उठा हूँ।

६७६—श्री राजेन्द्रप्रसाद, सब-रजिस्ट्री आफिस मसौढ़ी, पटना।

—आप 'गृहस्थ-धर्म' नामक जिस पुस्तकको देशके कल्याणके हेतु वितरित कर रहे हैं, वह अति सुन्दर और लाभदायक है।

६७७—श्रीमती पार्वतीदेवी, अध्यापिका, ग्राम सालारपुर, पो० नगरनोहसा, जिला पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर मैं अपनी बालिका पाठशालामें बालिकाओंको शिक्षा दे रही हूँ। बालिकाओंके लिए भी कुछ प्रतियाँ भेजनेकी कृपा करें, जिससे उन्हें समुचित रूपसे शिक्षा दी जा सके।

६७८—श्री कमलाप्रसाद सिंह, ग्राम मल्लिकपुर, पो० सिलाव, जिला पटना।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तककी सर्वत्र प्रशंसा हो रही है। वास्तवमें यह पुस्तक गृहस्थोंके लिए अत्यन्त ही लाभदायक है।

६७९—श्री लक्ष्मण महतो, ग्राम अस्ताखरजमाँ, पो० चण्डी, पटना।

—यह किताब सचमुच बहुत उपयोगी है। इसे एक बार पढ़कर तबियत नहीं भरती। यह पुस्तक [illegible] भण्डार है।

९८०—श्री विन्देश्वरीप्रसाद ठाकुर शिक्षक, नालन्दा कालेजियेट स्कूल, विहारशरीफ।

—आप 'गृहस्थ-धर्म' जैसी अनमोल पुस्तक हम लोगोंको निःशुल्क देते हैं, इसके लिए आपको धन्यवादके अतिरिक्त हम दे ही क्या सकते हैं? इस पुस्तकको पढ़कर सर्वसाधारण व्यक्ति अत्यन्त लाभ उठा रहे हैं। इस पुस्तकका मूल्य चुकाने लायक हम लोगोंके पास कोई साधन नहीं है।

९८१—श्री देवनन्दनप्रसाद सिंह, सहायक शिक्षक, हाई इङ्गलिश स्कूल, मखदुमपुर, गया।

—यह पुस्तक सभी श्रेणीके लोगोंके लिए उपयोगी प्रतीत होती है। समाजके कल्याणके सभी गुण इस पुस्तक में विद्यमान हैं। इस पुस्तकको जो एक बार देख लेता है, वह इस आद्योपान्त पढ़े बिना नहीं रहता।

९८२—श्री रामसुमिरन शर्मा, ग्राम सोरंगपुर, पो० भलोटी, पटना।

—आपने 'गृहस्थ-धर्म' नामक जो किताव प्रकाशित की है, वह गृहस्थोंके लिए बड़ा ही उपयोगी है। इस किताबको पढ़कर हर एक किसानको लाभ उठाना चाहिये।

९८३—श्रीमती राजमहल मिश्रा, मु० पो० नदवां, पटना।

—आपका नाम धर्म-प्रचारकोंमें सुनकर अति आनन्दित हो, मैं यह पत्र लिख रही हूँ। मेरी विनम्र प्रार्थना है कि आप यह कार्य करते रहें। यह अनुपम कार्य है। धार्मिक कार्योंको अग्रसर करनेके लिए आज देशको आप जैसे महानुभावोंकी परम आवश्यकता है।

९८४—श्री कामेश्वर शर्मा, ग्राम चैनपुरा, पो० सकूराबाद, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक आजसे ५० वर्ष पूर्व छापी जाती तो भारतवर्षकी ऐसी खराब हालत कदापि न होती। इस पुस्तकसे देशकी धार्मिक स्थितिमें बड़ा सुधार होगा। इस पुस्तकमें जितनी बातें लिखी गयी हैं, सब गृहस्थोंके बड़े कामकी हैं, गृहस्थ इस पुस्तकको पढ़कर बहुत लाभ उठा रहे हैं, और इसके अनुसार काम करने लगे हैं।

९८५—श्री बालमुकुन्द शर्मा, विहारशरीफ।

—सर्व-जन शुभचिन्तक आदरणीय श्री मनसुखरायजी! आपका शुभ परिचय मैंने आपके 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक द्वारा प्राप्त किया। विभिन्न विषयोंका इसमें अद्भुत संग्रह है। मैंने आपकी 'कीर्त्ति' 'गृहस्थ-धर्म' का आद्योपांत अध्ययनोपरान्त, सर्वप्रथम जिस वस्तुको उपलब्धि की, वह है—"निःस्वार्थ भावानुप्रेरित होकर "हिन्दू सत्य-सनातन-धर्म संस्थापनार्थ" उसके पदाम्बुजोंकी अर्चना करना।" वस्तुतः जन-समुदायके हितेच्छु, सहृदय, धर्मानुरागी, सात्विक, आदर्श जीवनोपासक, विपुल-सम्पत्तिशाली आप जैसे युग-धर्म-संस्थापकके लिए यत्किञ्चित कथन अल्पज्ञताका ही परि-[illegible] होगा।

[illegible]लिदास विरचित 'कुमारसम्भव वर्णित—'यथा सता सासपदीनमुच्यते' सिद्धान्तके अनुकूल आपके 'गृहस्थ-धर्म' [illegible] आपका परिचय प्राप्त कर मैंने अपार सुखका अनुभव किया।

९८६—श्री रामकृष्णलाल, प्रधानाध्यापक, गवर्नमेंट सिनियर वेसिक स्कूल, मोहनचक, पो० विक्रम, जिला पटना।

—मुझे यह जानकर हर्ष हुआ कि आप अपने यहांकी प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' प्रचारार्थ निःशुल्क वितरण कर रहे हैं। आपसे निवेदन है कि कृपया विद्यालयकी पुस्तकालयके लिये दो प्रतियाँ अवश्य भेजकर कृतार्थ करेंगे।

९८७—श्री कृष्णप्रसाद सिंह, रासबिहारी विद्यालय, नालन्दा, पटना।

—आपने 'गृहस्थ-धर्म' में रामायण, महाभारत, वेद, पुराण, मनुस्मृति आदि प्राचीन पुस्तकोंका गूढ़तत्व रख दिया है। नगरोंमें, देहातोंमें जहाँ भी देखिये, कहीं रामायण की, कहीं महाभारत की खोज थी, लेकिन अब प्रत्येक मनुष्य को अपने पास 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक रखना अत्यन्त आवश्यक है।

९८८—श्री श्रीमती सावित्री उपाध्याय, उदयभण्ठा कर्नाड, बिलासपुर, मध्यप्रदेश।

—आपके ग्रंथकी प्रशंसा करना सूर्यको दीपक दिखाना ही समझा जायेगा। कहींसे मिलने पर मैंने अध्ययन किया है, तो प्राकृतिकमें ही आपने आधुनिक सभी समस्याओंका उल्लेख कर दिखाया। आपने स्त्री-धर्म इत्यादिके लिये जो बातें लिखी हैं, उसके लिये मैं आपका तथा देवियोंके तरफसे आपके कुटुम्बका आभारी प्रदर्शित करता हूँ। देवियोंके लिये यह अमूल्य ग्रंथ है। इसे उनलोगोंके हृदयमें रखना प्रथम कर्त्तव्य हो जाता है।

९८९—श्री ज्योतीप्रसाद शर्मा, मन्त्री, श्री नवल प्रेम सभा, दिल्ली।

—जय धर्म की। आपकी ओरसे प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को देखकर चित्तको बड़ी प्रसन्नता हुई। आपका यह कार्य अनुकरणीय है। हमारी सभाके सदस्योंके लिये यदि आप बीस पुस्तकें भेज सकें तो बड़ी कृपा होगी। हमारी सभाका सतसंग प्रायः नित्य प्रति होता रहता है। सदस्य तो बहुत हैं परन्तु केवल विशिष्ट सदस्योंके लिये ही ये बीस प्रतियोंकी प्रार्थना की है। आशा है आप स्वीकार कर अनुगृहित करेंगे।

९९०—पं० ज्वालाप्रसाद तिवारी पुरोहित, ग्राम बनारी, पो० जांजगीर, बिलासपुर।

—श्रीमान् सेठजी! प्रेमाभिवादन! आपकी 'गृहस्थ-धर्म' की प्रशंसाकी धूम मची हुई है। अतएव, कृपया एक प्रति प्रेषित कर अनुगृहित करें।

९९१—श्री उपेन्द्रनाथ वरियार, सूर्य्यगढ़ा अस्पताल, पो० सूर्य्यगढ़ा, मुंगेर।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक बहुत अच्छी है। उसमें धर्मका मार्ग बतलाया गया है। मैं धर्मको बहुत मानता हूँ और धर्म भी मुझे बहुत मानता है।

९९२—श्री ब्रजकिशोर प्रसाद श्रीवास्तव, मार्फत् सेण्ट्रल जेल, हजारीबाग।

—आपने 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकका प्रचार कर आपने गृहस्थोंको उच्चतम बनानेकी कोशिश की

सम्मतियाँ और उद्गार !

६६३—श्री परमेश्वरी प्रसाद राभण, मु०-पोस्ट चोरेया, जिला राँची।

—आप जो बिना मूल्य 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक वितरण कर अपने देश तथा समाजकी सेवा कर रहे हैं इसके लिये आप अनन्य धन्यवादके पात्र हैं। आशा है मेरे लिये भी एक प्रति भेजनेकी कृपा करेंगे ताकि मैं पढ़कर दूसरोंको भी पढ़नेके लिये देनेमें समर्थ हो सकूँ। ईश्वरसे प्रार्थना है आपका पवित्र उद्देश्य सफलीभूत करें।

६६४—श्री चक्रधर झा, ग्राम डेरू, पो० घोरैया, भागलपुर।

—पुस्तक बड़ी ही उपदेश तथा लोक-परलोक सुधारक है। बड़ी दया हो यदि एक मुझे भी भेजें जिससे खुद तथा परिवारके बच्चे उस मार्गका अवलम्बन कर अपनेको सुमार्गका राही बना सकें। आपकी यह पुस्तक लोक-परलोकका सुखदाता है। पुस्तक देख मुझे जो प्रसन्नता हुई वह आपसे क्या बताऊँ? उससे भी अधिक प्रसन्नता उस दिन होगी, जिस दिन खुद या परिवारके किसी भी बच्चेको उस पुस्तकके उपदेशानुसार अनुसरण करते देखनेको नजर आयेगा।

६६५—श्री शत्रुघन प्रसाद सिंह, पनकी, पो० सीलाव, पटना।

—आपका जो किताब 'गृहस्थ-धर्म' निकला हुआ है, वह पढ़ने योग्य है। हमारे गांवमें एक पुस्तकालय है। आपके किताबका नाम सुनकर लोग उस किताबको पढ़नेके लिये उत्सुक हैं और रोज गांववाले हमको उस किताबको मंगानेके लिये तङ्ग करते हैं। अतः मैं आपके पास यह पत्र लिख रहा हूँ कि कृपाकर उस किताबको भेजकर परम यशके भागी बनें।

६६६—श्री रायसुहावन प्रसाद, महेशपुर, पो० हिलसा, पटना।

—मैं अपने जीवनको गृहस्थाश्रममें व्यतीत कर रहा हूँ। गृहस्थके लिये गृहस्थीकी पूरी जानकारी होना आवश्यक है। अगर पूरी जानकारी न होने पर गृहस्थोंमें कभी भी सफलता नहीं पा सकता है। इसीलिये मैं आपकी इस पुस्तककी आवश्यकता समझ रहा हूँ।

६६७—श्रीमती शारदा देवी 'धर्म-विशारद', मुकाम अकरौजा, पो० शहरतेलपा, गया।

—मुझमें इतनी सामर्थ्य तो नहीं है कि अपनेको धर्मपरायण समझूँ पर मेरी प्रवृति धर्मकी ओर अवश्य है। गृहस्थ स्त्रीके उपयोगकी यह पुस्तक अवश्य होगी, चूंकि यथानामः तथा गुणः भी इस पुस्तककी सार्थकताको प्रमाणित करती होगी, यही मेरा व्यक्तिगत अनुमान है। अतः श्रीमानसे सादर अनुरोध है कि आप कृपया इस पुस्तकको एक प्रति भेजनेकी कृपा करेंगे।

६६८—श्री गजानन राम ऊंवाराम जोशी, भामपुरा, होलकर स्टेट।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक देखी, हर व्यक्तिके लिये उपयोगी है। इस पुस्तक द्वारा आपने मानवोंकी बहुत है।

९९९—श्री केशवप्रसाद शर्मा, ग्राम सुवालपुर, पो० मकन्दपुर, जिला भागलपुर ।

—आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' सभीके लिए बहुत उपयोगी है । उस पुस्तकमें बहुतसे जीवनोन्नतिके प्रश्न हल किये गये हैं । मनुष्योंको इस रीतिका अवलम्ब लेना बहुत जरूरी है । खासकर गृहस्थीके लिए इस पुस्तकको पढ़कर लाभ उठाना चाहिये ।

१०००—श्री भोलाप्रसाद, महल्ला तिसखोरा, पो० आराप, जिला पटना ।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक ग्रामीण भाइयोंको काफी फायदा पहुंचाती है । मैं ग्रामवासियोंके बीच इस पुस्तक को पढ़कर उनके जीवन स्तरको ऊँचा उठानेका प्रयत्न करूंगा ।

१००१—श्री रामशरणप्रसाद, सहायकाध्यापक, श्री वैदिक साहित्य विद्यालय, पो० अतासराय, पटना ।

—यह पुस्तक गृहस्थ-धर्मियोंके लिये बेजोड़ साबित हुई है । आप जो अनभिज्ञ गृहस्थोंको अपने धर्मका अवलम्बन सिखा कर जो कृपा कर रहे हैं, उसके लिए आपको विशेष रूपसे धन्यवाद !

१००२—श्री सहदेव सिंह, ग्राम भवनपुरा, जिला भागलपुर ।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकमें सब धर्म आपने दिये हैं । मेरी इच्छा होती है कि उसे मंगाकर आपके बताये हुए धर्मपर चलूं । इसलिये कष्ट करके एक पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' भेज देनेकी कृपा करें । मैं धर्मका प्रचार करूंगा ।

१००३—श्री कामता राम, ट्रान्समैट, सी० ओ० डी०, कानपुर ।

—'गृहस्थ-धर्म' में जीवनसे लेकर मरण तकको बातें प्रकट की गयी हैं ।

१००४—श्री शिवभजन पण्डित, पोर्टर डि० सुपरिण्टेण्डेण्ट आफिस, ई० आई० रेलवे, पो० खगौल, पटना ।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक आपको कितावका बिहारमें बहुत प्रचार हो रहा है ।

१००५—श्री देवेन्द्र शर्मा, हिलसा, पटना ।

—आपने जिस 'गृहस्थ-धर्म' का प्रचार किया है, वह बहुत अच्छी पुस्तक है । इससे मानसिक उन्नति, गृह-उन्नति और सारे संसारकी उन्नति, मानव-समाजकी उन्नति हो सकती है, इसमें सन्देह नहीं ।

१००६—श्री गयाप्रसाद सिंह, छजोई, पो० कुर्था, जिला गया ।

—'गृहस्थ-धर्म' के बारेमें मुझे कई एक विश्वास-पात्र मित्रोंसे मालूम हुआ है कि श्रीयुत् मनसुख मोरने हिन्दू समाजके उत्थानके लिये और राष्ट्रको मजबूत बनानेके लिये इसे प्रकाशित किया है ।

सम्मतियाँ और उद्गार !

१००७—श्री दशरथ प्रसाद सिंह, छोटेलाल मोख्तार, मुहल्ला मुरादपुर दर्जीटोला, पोस्ट बांकीपुर, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' किताबको देखकर बहुत खुशी हुई। इसके लिये हम ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं कि हर प्राणीके हृदयमें इसी तरहकी सद्भावना पैदा हो जिससे इस कलयुगमें धर्मका प्रचार हो तथा हर प्राणीका उद्धार हो। अतः आपसे निवेदन है कि एक प्रति 'गृहस्थ-धर्म' भेजनेकी कृपा करेंगे, जिसको पढ़कर कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकूं।

१००८—श्री रामनारायण प्रसाद सिन्हा, कमरुद्दीनगञ्ज, पो० बिहारशरीफ, पटना।

—मैं भी चाहता हूँ कि आपकी किताबको पढ़कर उसकी शिक्षासे लाभ उठाऊँ। मैं इस बातसे बहुत प्रसन्न हूँ कि आप गृहस्थोंको शिक्षाकी किताबें मुफ्त देते हैं। मैं भी एक गृहस्थ हूँ और म्युनिसिपैलिटीका मेम्बर भी हूँ।

१००९—श्री चन्द्रेश्वरप्रसाद शर्मा शिक्षक, काजी साहब लेन, नयी गोदाम, गया।

—आपकी किताब 'गृहस्थ-धर्म' की चर्चा सुनकर चित्त प्रसन्न हो जाता है। आपका परोपकार भी सराहनीय एवं आदर्शपूर्ण है। कृपया मेरे लिए भी थोड़ा कष्ट सहकर एक प्रति 'गृहस्थ-धर्म' भेज दें, तो मैं आपका कृतज्ञ रहूँगा।

१०१०—श्री आजाद पुस्तकालय, रौनियां, पो० खिजरसराय, जिला गया।

—महाशय, हमारे पुस्तकालयमें आपकी 'गृहस्थ-धर्म' की पुस्तक नहीं है। अतः यहांकी ग्रामीण जनता पढ़नेके लिए उत्सुक रहती है।

१०११—श्री भागवतप्रसाद सिन्हा, नीरपुर, पो० नूरसराय, पटना।

—महाशय, मुझे ज्ञात हुआ है कि आप 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक मुफ्त भेजते हैं, जिससे कि बहुतसे लोग अत्यन्त लाभ उठा रहे हैं और बहुतसे लोग जिनका खराब आचरण था, सुधर गये हैं। अतः मैं भी आपसे निवेदन करता हूँ कि ऊपर लिखे पतेके अनुसार एक प्रति भेजनेकी कृपा करेंगे।

१०१२—पं० भागवत शर्मा, सरौती, पो० अरवल, जिला गया।

—सप्रेम अभिवादन ! आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' की मैंने बहुत प्रशंसा सुनी है। शायद वैदिक तथा सनातन धर्मके रहस्योंको जीवनमें उतारनेका उसमें रास्ता बताया गया है। कृपाकर ऊपर लिखे पतेसे मेरे लिए भी एक प्रति भेज दें, जिसके लिए मैं सदा आपका कृतज्ञ रहूँगा।

१०१३—श्री सीतारामप्रसाद, पो० बुनियादगञ्ज, जिला गया।

—महाशय, नम्र निवेदन यह है कि आप जो एक पुस्तक प्रचार कर रहे हैं, जिसका नाम 'गृहस्थ-धर्म' है, उसे एक [illegible] कष्ट करें।

१०१४—श्री चन्द्रदेवप्रसाद सिंह, गवर्नमेण्ट कालेज, पो० महेन्द्रू, पटना।

—महाशय, आपकी किताबकी ख्याति बहुत लोगोंसे सुन चुकनेके बाद मुझे भी उत्कट इच्छा हुई कि मैं भी मंगाकर उस किताबको जरूर पढ़ूं। इस किताबसे लोग बहुत प्रभावित हो रहे हैं तथा हिन्दू संस्कृति मजबूत हो रही हैं।

१०१५—श्री रामप्रवेश शर्म्मा, मु० बाबुपट्टी साड़ा, पो० मऊ, जिला गया।

—दया सागर! आप जो 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तिका प्रचलित करके हम देहातियोंको सुधार रहे हैं, आपकी उदारताके लिए मैं आपको कोटिशः नमन करते हुए धन्यवाद देता हूँ। इस पुस्तिकासे गृहस्थोंको अत्यन्त लाभ हो सकता है।

१०१६—श्री महावीरप्रसाद सिंह, जम्होर, जिला गया।

—मैंने अपने एक साथीके पास आपके यहांसे भेजी गयी 'गृहस्थ-धर्म' तथा तीन छोटी पुस्तकें देखी और पढ़ीं। इनमें 'गृहस्थ-धर्म' ने मुझे बहुत अधिक प्रभावित किया। मेरी हार्दिक इच्छा है कि आप कृपाकर मेरे लिए भी 'गृहस्थ-धर्म' भेज देनेका अनुग्रह करें।

१०१७—श्री जयनारायण यादव, भगवानप्रसाद यादव, रघुनाथपुर, पटना।

—आप 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक वितरण कर रहे हैं, जो अमूल्य चीजोंसे सम्पूर्ण है और यह आपके यशको बिजलीकी नाईं फैला रही है। मैं भी एक महाशयके हाथमें देखकर बहुत प्रेमसे देखा। लेकिन ज्यादा नहीं पढ़ सका, तो भी जो कुछ देखा उसीसे समझता हूँ कि यह बहुत ही उपयोगी पुस्तक है। अतः आपसे नम्र निवेदन है कि मेरी इच्छाको पूर्ण करनेके लिए कृपा कर 'गृहस्थ-धर्म' नामक एक पुस्तक भेज दें।

१०१८—श्री माधव घोष अष्टाङ्ग आयुर्वेदिक कालेज, भागलपुर।

—प्रिय महोदय! किसी सज्जनके द्वारा मुझे यह मालूम हुआ कि आप भारतीय गृहस्थोंके सेवार्थ 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक निर्मूल्य वितरण कर रहे हैं। महाशय, सचमुचमें आजका गृहस्थ-समाज अज्ञानके अन्धकारमें पड़ा हुआ है। आशा है, आपका यह पुस्तक उन गृहस्थोंका पथ-प्रदर्शक होगा, जो कि अपनी राहसे भटक कर दुःख शोक भोग रहे हैं।

१०१९—श्री कुलदीपलाल चेयरमैन, दाऊदनगर, जिला गया।

—वास्तवमें यह पुस्तक अनुपम है। आज सामाजिक-सुधार तथा सनातनधर्मके प्रचारार्थ 'गृहस्थ-धर्म' जै[illegible] पुस्तकोंकी ही आवश्यकता है। धर्मके प्रगाढ़ अध्ययनके लिए आपको बार-बार धन्यवाद है। अपने अध्यय[illegible] जनता-जनार्दनको भी लाभ पहुंचा रहे हैं। उच्च और श्रेष्ठ मानवोंकी यही विशेषता है।

सम्मतियाँ और उद्‌गार !

१०२०—श्री दीनबन्धुप्रसाद पोद्दार, पकरिया, पो० राहौद, जिला बिलासपुर ।

—महोदय, आपका 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक बहुत ही शिक्षाप्रद तथा उपादेय है । धन्यवाद !

१०२१—श्री सीताराम सिन्हा, ग्राम अस्थाना, पो० रामजानपुर, जिला मुंगेर ।

—आप अपनी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' धर्म-प्रचारार्थ मुफ्त वितरित कर रहे हैं । आपका यह पुण्य-कार्य सर्वथा सराहनीय एवं अनुकरणीय है ।

१०२२—श्री नारायण सिंह 'साहित्य भूषण' सहकारी अध्यापक पी० डी० मि० स्कूल, पो० जमुई, जिला मुंगेर ।

—'गृहस्थ-धर्म' को अवलोकन करनेसे गृहस्थोंके सच्चे धर्मका ज्ञान हुआ । गृहस्थोंको ऐसी पुस्तक सर्वदा अपने पास रखनी चाहिये और गीता-रामायणके समान इसका अभ्यास, मनन और चिन्तन करना चाहिये ।

१०२३—श्री रामकिशोरप्रसाद, महल्ला दारागञ्ज, गया ।

—अहं 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकम् पठिष्यामि । पुस्तकं नास्ति ।
च अस्या मम् इच्छा अति अस्ति । शीघ्रं गृहाण ॥ एतदर्थं धन्यवाद !

१०२४—श्री कामेश्वर प्रसाद शर्मा, बुनियादगञ्ज, गया ।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक वास्तवमें गृहस्थाश्रमको उच्च स्तर पर ले जानेका एक साधन है ।

१०२५—श्री रञ्जन सूरिदेव, ग्राम भुनेश्वर नाथ धौनी, पो० सरैयाहाट, दुमका (सं० प्र०) ।

—श्रद्धेय ! श्रीयुत् मनसुखराय मोरजी । भाग्यवश आपका 'गृहस्थ-धर्म' देखनेको मिला । बहुत उपयोगी है । आपका प्रयास परहितकी दृष्टिसे स्तुत्य और अभिनन्दनीय है ।

१०२६—श्री मंगल पण्डित, लंगरटोली, पो० बांकीपुर, पटना ।

—मुझे 'गृहस्थ-धर्म' की नितान्त आवश्यकता है । और आप लोक-कल्याणकी भावनासे प्रेरित हो लोगोंको इसे निर्मूल्य वितरण कर रहे हैं । इसे पढ़कर मैं भी धार्मिक बातोंको जानकर संसारके सत्कर्मोंको करनेमें समर्थ हो सकूँ ।

१०२७—श्री रंजीतसिंह नेगी, गवर्नमेण्ट इण्टर कौलेज, पौरी, गढ़वाल ।

—सप्रेम सादर अभिवादन । मुझे आपकी इन पवित्र भावनाओंको देखकर कि आप बे-मूल्य जनताको शिक्षाप्रद दे रहे हैं, अति प्रसन्नता हुई । आपहीके समान महानुभावोंके पुण्य-कर्मोंसे यह दुरात्माओंसे भरपूर संसार आजतक नहीं तो कभीके प्रलयके बादल इसपर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेते !

१०२८—श्री बाबूलाल वर्मा, लखनी बिगहा, पो० खगौल, पटना।

—इस पुस्तकको पढ़नेके लिये हमारा हृदय व्याकुल हो रहा है, इसलिये आपसे करबद्ध प्रार्थना है कि कृपाकर जल्दसे जल्द इस पुस्तकको भेज दें।

१०२९—श्री जटाधारीलाल ओवरसियर, मंगलबाजार, हजारीबाग।

—मैं यहाँ देख रहा हूँ कि आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकने तहलका मचा दिया है।

१०३०—श्री मोहन आयुर्वेदिक कार्यालय, मसोढ़ी, पटना।

—आप जन-सुधारकी चेष्टा रखकर 'गृहस्थ-धर्म' नामक ग्रंथसे मानव-समाजकी सेवा कर रहे हैं। अतः मैं भी इस ग्रंथके लिये प्रार्थी हूँ।

१०३१—श्री कालीराम नन्दूराम, अटासराय, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' अत्यन्त आनन्दित हृदयसे पढ़ा। अति सुन्दर है। सचमुच यह पुस्तक बहुत रमणीक है। आपको कहाँतक धन्यवाद दिया जाय ? मैं इतना अवश्य कहूँगा कि इस पुस्तकसे ही मैं सुधर सकता हूँ। कोई भी पुस्तक अभी-तक ऐसी प्रकाशित न हुई कि, जो इस संस्थाको उन्नतिके शिखर पर ले जानेकी युक्ति निकाले।

१०३२—श्री सोहराई महतो, ग्राम बेनीपुर, पोस्ट औंगारी, पटना।

—मेरा मन 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़नेके निमित्त उत्तेजित हो उठा है। यह सोचकर, कि मैं भी उसे पढ़कर कुछ शिक्षा प्राप्त करूँगा। आपकी किताब जीवनके सुधारकके लिये बहुत ही अच्छी है।

१०३३—श्री बिछरप्रसाद वर्मा, कोपाखुर्द, पो० नौबतपुर, पटना।

—मैं 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर अपने दुखी जीवनको सुखी बनाना चाहता हूँ। इसलिये आपसे सादर अनुरोध है कि आप जल्दसे जल्द 'गृहस्थ-धर्म' को भेजकर मेरे जीवनको सफल बनायें और यशके भागी बनें।

१०३४—श्री चन्द्रशेखर शर्मा, पो० हटी, गया।

—मैंने आपका 'गृहस्थ-धर्म' देखा। बड़ी उत्तम पुस्तक है। यह गृहस्थोंके लिये ही नहीं, बल्कि समस्त मानव समाजके लिये अत्युत्तम है। यह सिर्फ हिन्दुओंके ही नहीं, अपितु समस्त प्राणियोंको सन्मार्ग पर ले आ सकती है।

१०३५—श्री युगलकिशोर प्रसाद शर्मा वैद्य, आयुर्वेदिक औषधालय समर्था, पोस्ट कल्याणपुर, जिला दरभंगा।

—आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' देखनेको मिला। बहुत ही सुन्दर और प्रशंसनीय है।

१०३६—श्री मथेश्वर सिंह, अग्रवाल हाई इंग्लिश स्कूल, बेलागंज, गया।

—आपने 'गृहस्थ-धर्म' सम्बन्धी बहुत-सी पुस्तकें लिखे हैं। इनमें 'गृहस्थ-धर्म' के अध्ययनसे हम गृहस्थ लोग गृहस्थीमें अधिक उन्नति कर सकते हैं। इस पुस्तकको मुफ्तमें भेजनेकी जो आप अपनी उदारताका परिचय दिये हैं, उसके लिये भगवान आपको दीर्घायु बनावें।

१०३७—श्री रामलाल तेली, बाहनीडीह, बिलासपुर।

—इस पुस्तकमें लिखित नियम गृहस्थोंके लिये मुझे बहुत-सी उपयोगी मालूम हुए। आप जो यह काम धर्म प्रचारके हेतु धर्मार्थ कर रहे हैं, इसके लिये आपको हार्दिक धन्यवाद है।

१०३८—श्री विष्णुदयाल शर्मा, श्री महन्थकेशव संस्कृत कालेज, फतुहा, पटना।

—आपने धर्म प्रचारके उद्देश्यसे अपनी ओरसे व्यय कर 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक प्रकाशित की है, और उसका वितरण भी प्रत्येक व्यक्तिका पत्र पाकर किया करते हैं। अस्तु इस शुभ समाचार पाकर मैं भी अपनी धार्मिक कार्यक्षेत्रों में प्रवृत्तिके लिये उस ग्रंथका अवलोकन करना अपने जीवनका मुख्य उद्देश्य समझ कर आपके पास पत्र भेज रहा हूँ।

१०३९—पं० हीरालाल शास्त्री वैद्य, मु०-पो० बिलहा जिला बिलासपुर।

—आपका भेजा हुआ 'गृहस्थ-धर्म' मिला। एतदर्थ धन्यवाद। साथ ही उपरोक्त संग्रहका उपयोग हो रहा है एवं इसका लाभ सज्जनोंको अध्ययनके लिये देकर किया जा रहा है। उनका कथन है कि इस गुल्मण्डलके पिछले पाँच पुष्प पढ़नेको मिलें तो जीवनका मार्ग सरल एवं उपयोगी हो सकता है।

१०४०—श्री शत्रुघ्न शर्मा, हुलासगंज, गया।

—यह कहना अतियुक्ति नहीं होगी कि आपकी निकाली हुई किताब, 'गृहस्थ-धर्म' धार्मिक पुस्तकोंमें अग्रगण्य है। इसमें गृहस्थोंके लिए बड़े कामकी बातें हैं। इसे पढ़कर अनेकों व्यक्ति अपना लाभ उठा रहे हैं।

१०४१—श्री डोमनराना, हजारीबाग।

—जबसे मैंने इस पुस्तकका नाम सुना है, तभीसे उसे पढ़नेके लिए इस प्रकारसे व्यग्र हो उठा हूँ, जिस प्रकार भूखा आदमी भोजनके लिए बेचैन हो उठता है।

१०४२—श्री भोंदलराम उरांव, गवर्नमेन्ट नार्मल स्कूल, बिलासपुर।

संस्था... आदर्श जीव... महानुभाव, मैंने सुना है कि जन-हितार्थ आपके यहांसे 'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तक धर्मार्थ वितरण की जाती ... होगा। ... है। जीवनका पहला गृहस्थ-आश्रममें प्रवेश होने जा रहा है। अस्तु, इस कालमें इस धर्मको ... होगा।

१०४३—श्री शिवनारायण नागर, भरूनी, जी० आई० पी० रेलवे।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक पढ़कर अति प्रसन्नता प्राप्त हुई। उसमें अच्छे-अच्छे विषय, जैसे ब्रह्मचर्य आदि अति रुचिकर व ज्ञानकी वृद्धि करनेवाले ज्ञात हुए।

१०४४—श्री देवनन्दनप्रसाद सिंह, पो० बरबिघा, मुंगेर।

—आज न मालूम कौन-सा चाँद उगा है, जो गृहस्थ-धर्म को भी अन्धेरेमें सहायक हो रहा है। जो सदा दूसरोंका मुहताज रहता है, वह कभी आपकी इस महती कृपासे अपने पैरोंपर खड़े होकर चलेगा। आप इस कार्यके लिए मेरी बधाई स्वीकार करें। आपने जिस प्रकारसे अनेक भाइयोंकी सराहनीय सेवाएँ की हैं, उसी प्रकारसे इस प्रार्थना-पत्रको स्वीकार करते हुए मेरे हृदयको भी शान्ति प्रदान करें।

१०४५—श्री रामचन्द्र वर्म्मा, मु० पोस्ट छरियारी, जिला गया।

—सप्रेम सादर चरण स्पर्श! ईश्वरको महती अनुकम्पासे आपके यहांकी प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' का नाम सुनते ही मेरा मन-मयूर आनन्द-घटा अवलोकन कर नृत्य करने लगा। अतः श्रीमान्से सादर प्रार्थना है कि एक प्रति 'गृहस्थ-धर्म' मुझे अध्ययन करनेके लिये भेज दें ताकि उस पुस्तकका नाम सदा स्मरण करता रहूँ।

१०४६—श्री लाछोराम, थाना रोड, पोस्ट सिलाव, जिला पटना।

—आप जनताके हितके लिये 'गृहस्थ-धर्म' नामक सुन्दर पुस्तक प्रचार कर उसे अच्छे और उच्च मार्गपर ले जा रहे हैं। जिस व्यक्तिको यह पुस्तक प्राप्त होती है, वह पढ़कर अपने बुरे विचारोंको त्याग कर अच्छे मार्गकी ओर चलने लगता है।

१०४७—श्री हीराप्रसाद, इब्राहिमपुर बाजार, जिला गया।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकसे मनुष्यको गति प्राप्त हो जाती है और उसकी बुरी आदतें छूट जाती हैं।

१०४८—श्री जीतनारायणप्रसाद, मो० वाजीतपुर, पोस्ट खलीलाबाद नेतौल, जिला पटना।

—आपका यह कार्य देशकी प्राचीन संस्कृति लानेके लिये अद्भुत काम कर रहा है। आशा की जाती है कि इससे उन लोगोंकी पलक खुल जायगी, जो अपना कर्त्तव्य खो बैठे हैं।

१०४९—श्री दुःखन ठाकुर, पोस्ट घोघा, भागलपुर।

—बड़े ही हर्षकी बात है कि आप हिन्दुस्तानके प्रत्येक समाजमें 'गृहस्थ-धर्म' की एक-एक प्रति भेजकर समाजकी अभिवृद्धिमें सहर्ष लग पड़े हैं। पूर्ण आशा है, आपके कार्यों द्वारा प्रत्येक समाज अपनेको अन्धकार [illegible] कर पायेगा।

१०५०—पं० राघोप्रसाद शर्मा, ग्राम पारागांव, पोस्ट राजिम, जिला रायपुर।

—आपने जो 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक प्रकाशित करायी है, मुझे एक सज्जनके पाससे देखनेको मिली। सचमुच यह पुस्तक पिछड़े हुए गृहस्थको उन्नत बनानेमें पूरी सहायक है।

१०५१—श्री बच्चूप्रसाद सिंह, बरान्ही, पोस्ट भण्डारी, पटना।

—ईश्वर आपका कल्याण करे। वास्तवमें आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक अत्यन्त लाभदायक है।

१०५२—श्री गणेश प्रसाद 'मेहरा', जगदीशपुर, पोस्ट लारी, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक गृहस्थोंके लिए फायदेमन्द है। इस किताबको पढ़कर गृहस्थ अपनेको दावेके साथ सद्गृहस्थ बना सकता है।

१०५३—श्री कृत्यनारायण शर्मा, मुकाम बैंगनी, पोस्ट हुलासगंज, गया।

—कृपया एक प्रति 'गृहस्थ-धर्म' (जिसमें सन्ध्या, विष्णु, सहस्त्र नाम, अनेक देवताओंकी प्रार्थनाएँ, आरती आदि हैं) मेरे वास्ते शीघ्रातिशीघ्र भेज देनेकी अनुकम्पा करें, ताकि हमारे बच्चे भी सुशिक्षा प्राप्त कर अपना जीवन सफल बनावें। आपकी इस कृपालुताके लिए मैं ईश्वरसे सदा विनयी हूँ कि आप दीर्घायु हों और दिन दूनी, रात चौगुनी की रफ्तारमें आपकी तरक्की हो। परमात्मा ऐसा ही करें।

१०५४—श्री रामानुग्रह नारायण सिंह, हाई स्कूल, वजीरगंज, गया।

—साग्रह प्रार्थना है कि आप हमारे विद्यालयके निम्नलिखित शिक्षकोंके नामसे कमसे कम 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक भेज दें, चूंकि वे शिक्षक आपकी उक्त पुस्तकके अत्यन्त प्रेमी हैं, वे चाहते हैं कि वे इस किताबका अध्ययन करें। शिक्षकोंका नाम इस प्रकार है—

श्री हरनाथ सिंह, शिक्षक। श्री रामानुग्रह नारायण सिंह, शिक्षक।
श्री कामेश्वर प्रसाद, शिक्षक। श्री जगदीश प्रसाद सिंह, शिक्षक।
श्री कृष्णदेव प्रसाद सिंह, शिक्षक। श्री सिद्धेश्वर पाण्डेय, शिक्षक।
श्री बद्री पाण्डेय, शिक्षक। श्री वीरेन्द्रकुमार सिंह, शिक्षक।

१०५५—श्री नन्दकिशोर पाण्डेय, मुकाम नैली, पोस्ट नूरसराय, पटना।

—आपने गृहस्थोंके पालन करने योग्य सदुपदेशोंको अपनी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकमें संकलित कराया है। [illegible] धार्मिक गृहस्थोंकी सेवामें अमूल्य वितरण की जाती है। अस्तु, मुझे भी यह पुस्तक देखने एवं उससे कुछ करनेकी इच्छा जाग्रत हुई है।

१०५६—श्री अच्युतानन्द सिंह शिक्षक, मिडिल स्कूल जमुई, पोस्ट जमुई, मुंगेर।

—मैंने आपलोगों द्वारा प्रकाशित एवं प्रचारित 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक अपने एक मित्रके पास देखी है। आपने गृहस्थोंके लिये ऐसी उत्तम पुस्तक लिखी है, इसके लिये मैं आपलोगोंको कोटिशः धन्यवाद देता हूँ। सुननेमें आया है कि धार्मिक लोगोंको उपर्युक्त पुस्तक मुफ्तमें भेजी जाती है। अगर इस पुस्तकके खरीदनेमें कीमत भी लगे तो मैं खरीदनेके लिये तैयार हूँ। इसलिये आपलोग एक पुस्तक मेरे नामसे निःशुल्क या वी० पी० द्वारा भेजकर अनुगृहीत करें और पुण्य और यशके भागी बनें।

१०५७—पंडित रघुनाथ मिश्र, सहबाजपुर, पो० जहानाबाद, गया।

—मुझे आपका 'गृहस्थ-धर्म' अत्यधिक पसन्द आया। आपकी यह पुस्तक मानव कल्याणके लिये उपयोगी है।

१०५८—छात्रहितकारी पुस्तकालय नेटार, पोस्ट खुशरूपुर, पटना।

—यह जान अपार हर्ष हुआ कि आप लगातार कई वर्षोंसे मन, वचन, कर्मसे जनताकी सेवामें निमग्न हैं। आपने जनताके कल्याणके लिये अनेकानेक पुस्तकें भेंट की हैं। उन पुस्तकोंमें 'गृहस्थ-धर्म' भी एक पुस्तक है, जो विशेष कर कृषक समुदायके लिये कल्याणकारी ज्ञात हुई है।

१०५९—श्री भोलानाथ पाण्डेय, मुक़ाम ओलपाड़ा, पोस्ट घोसा, जिला भागलपुर।

—मैं भी 'गृहस्थ-धर्म' रूपी आपके तैयार किये पुष्पको लेकर अपने अकर्मण्य जीवनको सफल बनाना चाहता हूँ। इसलिये श्रीमान्‌से नम्र निवेदन यह है कि मेरी इस आशालताको पुण्य-रूपी पानी देकर नव-जीवनका संचार करेंगे।

१०६०—श्री महावीर सिंह, खादी भण्डार, भागन विगहा, पोस्ट मोरा तालाब, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर लोग फायदा उठा सकते हैं। मैं विहार खादी समिति, खादी भण्डार भागन विगहा का मैनेजर हूँ। अतः इसको पढ़कर फायदा उठाऊँगा और लोगोंको भी फायदा कराऊंगा। इस चीजका प्रचार भी मैं करूंगा।

१०६१—श्री 'भारतोत्थान पुस्तकालय' गोहड़ी, पोस्ट लखीसराय, जिला मुंगेर।

—बड़े हर्षकी बात है कि आप जनताकी सेवा, विद्याका प्रचार, देहातके अल्प ज्ञानी, गृहस्थोंकी सेवा करनेके लिये अपनी सरस्वती-रूपी विद्याका भण्डार खोल दिये, जो आज हिन्दुस्तानके कोने-कोनेमें फैल गया है।

श्रीमान्, जिस कोमल नेत्रोंसे आप सभीको देख रहे हैं, वह नम्र दृष्टि मुझ जैसी अभागिनीके ऊपर भी करें। अपनी अनुकंपा देकर मुझे कृतार्थ करें। मेरी अभिलाषाकी पूर्त्ति करना आपकी पवित्र आत्माके ऊपर ही [illegible] अभिलाषा यह है कि 'गृहस्थ-धर्म' नामक सुन्दर एवं मनोरंजक पुस्तक प्राप्त हो।

सम्मतियां और उद्गार !

१०६२—श्री खीरोधरप्रसाद सिंह, ग्राम मरसूआ, पोस्ट वेन, जिला पटना ।

—'गृहस्थ-धर्म' के प्रचार हेतु हमारे लिये 'गृहस्थ-धर्म' की एक प्रति भेजनेका कष्ट करेंगे। इस समय भारतीय गृहस्थोंकी अवस्था दयनीय हो रही है। इस अवस्थामें आपने इस पुस्तकको प्रकाशित करके बड़ा ही उपकार किया है। आशा है, हम भी आपकी यह पुस्तक पढ़कर लोक-कल्याण और चरित्र निर्माणमें सहायक होंगे।

१०६३—श्री बालगोविन्दप्रसाद 'धर्म-रत्न', मिडिल स्कूल, सन्यास आश्रम, पोस्ट बुनियादगञ्ज, जिला गया ।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक प्रसिद्ध हो चुकी है। यह घर-घरमें व्याप्त है। अस्तु, इस समय यह पुस्तक व्याख्यान, कथा, गायन इत्यादि द्वारा धर्म-भावको जागृत करनेके लिये महान कार्य कर रही है। प्रस्तुत पुस्तकमें गृहस्थ-जीवनमें पालनीय अनेकानेक नियमोंका उल्लेख विस्तारपूर्वक किया गया है। अतः मैं आपकी भूरि-भूरि प्रशंसा करता हूँ। आपकी पुस्तकसे बड़ा उपकार होनेवाला है।

१०६४—मंत्री जगदीशप्रसाद सिंह, श्री साहित्य पुस्तकालय, ग्राम गंगटी, पटना ।

—सर्व सद्‌गुण सम्पन्न, धर्मज्ञ श्री मनछखराय मोरजी ! आप जो 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकका संग्रह कर, निज व्ययसे छपवा कर मुफ्त वितरण कर रहे हैं, इसके लिये हम आपको हार्दिक बधाई देते हैं कि आप कलिकालमें इतना अच्छा संग्रह प्रकाशित कर प्रचार कर रहे हैं, कितनी उन्नति देशकी होगी, आप धन्यवादके पात्र हैं। भगवानने ऐसे श्रेष्ठ कार्यमें मन दिया है, धन्य हैं, आप धर्मज्ञ पुरुष !

१०६५—श्री भगवानदास केशरी चौकपर, पोस्ट मुकाम मसौढ़ी, जिला पटना ।

—'गृहस्थ-धर्म' किताबका सब जगह बहुत प्रचार हो रहा है। वह किताब बहुत सुन्दर और धर्म उपदेश तथा पढ़ने योग्य है। इसमें स्त्री और पुरुषोंमें धर्मका असर पड़नेकी बातें हैं। हमें इस किताबपर बहुत श्रद्धा है।

१०६६—श्री अंशुमान शर्मा, प्रधान-मन्त्री, साहित्य मन्दिर सेवती, मखदुमपुर, गया ।

—'गृहस्थ-धर्म' जैसे श्रेष्ठतम प्रकाशनके लिये हार्दिक साधुवाद ! देश एवं समाजकी इस उपकार प्रियताका शुभ प्रयत्न सर्वथा अनुकरणीय है।

कृपया लौटती डाकसे मन्दिरके शिक्षार्थियोंमें वितरणके लिये कुछ प्रतियां भेज दें। मन्दिर इसके लिये आपका सहर्ष आभार स्वीकार कर रहा है।

१०६७—श्री रामजन्म पांडेय, गौरी विगहा, पोस्ट डब्रूर, जिला गया ।

—प्रिय महोदय, जय हिन्द ! मैं नजर उठाकर देखता हूँ, तो विदित होता है कि आप जनताको बहुत ज्ञान ...से आपको भी जनताकी तरफसे कोटिशः धन्यवादके सिवा और क्या प्राप्त हो सकता है ?

१०६८—श्री गुलजारीलाल पटवारी, पुरानी गोदाम, गया ।

—कृपाकर वी० पी० द्वारा 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक भेज दें। मैं आपका बहुत बड़ा उपकार मानूंगा। इस पुस्तक की ख्याति तथा इसमें लिखित विषयों और गुणोंको सुनकर मेरी आन्तरिक इच्छा है कि ऐसी अद्भुत पुस्तकको अपने पास रखूँ। इस पुस्तकको प्राप्त करना और उसके उपदेशोंपर चलना गृहस्थाश्रमको उज्ज्वल करना है। आपको विश्वास दिलाता हूं कि वी० पी० छुड़ानेमें मैं कोई कोर-कसर उठा न रखूँगा।

१०६९—श्री परशुराम सिंह, दयालपुर, पोस्ट मिरचाईगञ्ज, जिला पटना।

—महोदय ! आपसे नम्र निवेदन यह है कि आप जो 'गृहस्थ-धर्म' नामक किताब जनतामें वितरण कर रहे हैं, उसमें बहुत-सी बातें हैं, उसे पढ़नेके लिये मेरे दिलमें भी बहुत उत्सुकता हुई है, इसलिये यह आवश्यक पत्र आपके पास भेज रहा हूँ।

१०७०—श्री बद्रीनारायण, अकबरपुर, एच, ई, स्कूल, गया।

—श्रीमान प्रणाम ! हम लोगोंने 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकका अध्ययन किया। अभाग्यवश अधिक समय नहीं देख सका, क्योंकि एक मित्रसे उस किताबको यहां लाया था। हम लोग इस किताबको पढ़नेके लिये बहुत ही उत्सुक हैं। अतः करबद्ध प्रार्थना है कि 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको भेजकर कृतार्थ करें।

१०७१—श्री बद्रीनारायण सिंह, मोकाम-पोस्ट कलेर कचहरी रोड, जिला गया।

—'गृहस्थ-धर्म' एक बहुत अच्छी पुस्तक है। इसमें शुभ-शुभ अच्छे-अच्छे नियम तथा मन्त्र दिये गये हैं, इसलिये मुझे इसे पढ़नेका सुअवसर दिया जाये। आपकी दयासे यह पुस्तक निश्चय ही मिल सकती है। भगवान आपको कृतार्थ करें।

१०७२—श्री ब्रह्मदेव सिंह, चामुविगहा, पोस्ट मखदुमपुर, जिला गया।

—आपके कार्यालयसे 'गृहस्थ-धर्म' नामक जो पुस्तक निकली है, उसकी ख्याति दिन दूनी, रात चौगुनी हो रही है। अनेक मनुष्यों तथा गृहस्थों द्वारा इसकी प्रशंसा हो रही है। यह गृहस्थोंके लिये अधिक लाभदायक सिद्ध हुई है। मेरी भी आकांक्षा है कि इस पुस्तकका सहवास करूं।

१०७३—श्री चन्द्रिका पुस्तकालय, पोस्ट-ग्राम रेवतीपुर, जिला गाजीपुर।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको एक प्रति हमारे पुस्तकालयमें है। पुस्तककी लोकप्रियताके पाठकोंकी संख्या बढ़ गयी। कितने ऐसे पाठक हैं जो नित्य पूजा-पाठमें तन्मय रहते हुए अपने पास इस पुस्तकको रखनेके इच्छुक हैं। आशा है कि जल्द ही इस पुस्तककी प्रति भेजकर पाठकोंको उत्साहित करेंगे।

१०७४—पं० भगवतीप्रसाद जोशी 'तरल', 'पत्रकार' पोस्ट देवप्रयाग, (गढ़वाल-हिमालय)।

—धर्म-प्राण सेठ मनसुखरायजी मोर द्वारा संग्रहीत पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' मेरे हाथ लगी। एक मित्रसे उसे मांगा। आज ऐसे युगमें, जबकि आध्यात्मिक गुरु भारत ही स्वयं पतनके घोर गर्तमें पहुंचा हुआ है, अनार्य प्रवृत्तियां यहां अपना अड्डा जमा रही हैं, सनातन धर्मपर महान् विपत्ति आयी हुई है, ऐसे समयमें इस पुस्तकका प्रकाशन करके धर्म-प्राण सेठजीने आर्य विचारोंके प्रचारार्थ एक महान् कार्य किया है। स्वयं मैं इस पुस्तकपर इतना हावी हो गया कि तर्क द्वारा उसे व्यक्त नहीं कर सका।

१०७५—श्री ओराम मुण्डा लाइब्रेरी, नदिया विरला होस्टल, पोस्ट लोहरडागा, जिला रांची।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक पढ़कर मुझे अपार आनन्द हुआ। इस वर्त्तमान अवस्थामें यदि इसी प्रकारकी पुस्तकें देशमें प्रचार की जायें तो हमारे गृहस्थोंकी बहुत भलाई होगी। हमलोगोंने एक छोटा-सा पुस्तकालय कायम किया है जिसमें ऐसी पुस्तकोंकी अभी तक बहुत कमी है। अतः हम यह प्रार्थनापत्र भेजकर आशा करते हैं कि आप अवश्य एक प्रति भेककर शीघ्र कृतार्थ कीजियेगा। इस उपकारके लिये हम सदा आपके ऋणी बने रहेंगे।

१०७६—श्री मथुरा प्रसाद सिंह, क्लोथ मर्चेंट, चौकबाजार, पोस्ट मोकामा, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक हमारे सामने एक महान आदर्श उपस्थित करती है। इसके आधार पर एक साधारण गृहस्थ, गृहस्थ ही क्यों चाहे वह किसी भी श्रेणीका युवक हो, पक्का और आदर्श धार्मिक बन सकता है। प्रस्तुत पुस्तक को उपहारके रूपमें वितरण कर आपने इस नीतिका अवलम्बन किया है, जिससे निसन्देह आप जनता जनार्दनकी सेवा बड़े-से बड़े पैमाने पर कर सकनेमें समर्थ हो सकेंगे।

१०७७—श्री देववंश प्रसाद शर्मा, ग्राम पोखवां, जिला गया।

—बहु-जन हिताय, बहु-जन सुखाय, यही तो सज्जनोंका सिद्धान्त रहता आया है, और है भी। शायद श्रीमान्‌ने भी इसी सिद्धान्तका समर्थन करते हुए गृहस्थोंकी भलाईके लिये 'गृहस्थ-धर्म' को प्रकाशित किया है तथा इसके प्रचारार्थ अनेक कष्ट भी उठा रहे हैं। और कष्टमें ही आपको आनन्द भी मिल रहा है। आपकी अपूर्व देनसे आज कलिकालकी जनता जनार्दनकी भलाई भी शत-प्रतिशत हो रही है। जिस ग्रामकी जनता आपकी अपूर्व देनसे अभी वंचित हैं, उन्हें भी आ[illegible] अपूर्व देनको हासिल करनेके लिए एक सुनहला मौका प्राप्त हुआ है, और साथ ही अति उमंग और उत्साह भी। होगा हो[illegible]ड़ी हुई जनता जनार्दनके हितार्थ एक प्रति 'गृहस्थ-धर्म' भेजनेकी कृपा करेंगे, क्योंकि इसकी प्रशंसाको सुनकर र[illegible] वंचित रहना महान मूर्खता है।

१०७८—श्री लक्खीप्रसाद सिंह, मुक़ाम-पोस्ट बुद्धुचक्क, जिला भागलपुर।

—'गृहस्थ-धर्म' नाम की पुस्तक मुफ्तमें जो दे रहे हैं, इसका क्या मतलब है? हमलोग इतनी मोटी पुस्तक मुफ्तमें पाकर खुश तो होते हैं, पर इस बातका मनमें बराबर तर्क हुआ करता है। अतः आपसे प्रार्थना है कि इस चीजको समझानेका कृपया कष्ट करेंगे।

१०७९—श्री पंडित विष्णुदत्त मिश्र, जिंगी ठाकुरवारी, पोस्ट कुड़ू, जिला रांची।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक जो आप संसारके कल्यांणार्थ छपवाकर प्रेमी जनों या पाठकोंके लिये दान रूपमें भेजा करते हैं, सो उस पुस्तककी प्रशंसा सुनकर मुझे अपार हर्ष होता है। एक मित्रके द्वारा मैंने उपरोक्त पुस्तककी बड़ाई सुनी कि 'गृहस्थ-धर्म' का पढ़ना हर एक गृहस्थके योग्य है। इसलिये उस मित्रसे श्रीमान्‌का पता लेकर मैं आपकी सेवामें पत्र भेजकर आशा करता हूँ कि, महाशयजी जहाँतक हो शीघ्रातिशीघ्र उपरोक्त पुस्तकको भेजनेकी अवश्य कृपा करेंगे।

१०८०—श्री रामविलास सिंह, मिडिल इंग्लिश स्कूल, मुक़ाम-पोस्ट खटांगी, गया।

—कृपाकर अपने 'गृहस्थ-धर्म' की एक प्रति मेरे पते पर भेजनेका कष्ट करें। मैंने जबसे इस पुस्तकके बारेमें सुना है कि यह भारतीय समाजके लिये 'आदर्श-प्रतीक' है, तभीसे इसे पढ़नेके लिये उत्सुकता बढ़ रही है।

१०८१—श्री लोकनाथ सिंह, स्थान भैंसासुर, पोस्ट बिहारशरीफ, पटना।

—पटनासे प्रकाशित दैनिक 'विश्वमित्र' में मुझे १२ अक्तूबरको 'गृहस्थ-धर्म' के बारेमें एक समालोचनात्मक लेख देखनेको मिला था, तभीसे 'गृहस्थ-धर्म' देखनेकी उत्सुकता बढ़ती जा रही है। क्या मैं आशा करूँ कि शीघ्र ही मुझे उसकी एक प्रति प्राप्त हो सकेगी?

१०८२—श्री विष्णुपद पाठक, ग्राम पटखौलिया, पोस्ट अतिमी (नासरीगञ्ज) शाहाबाद।

—एक दिन ट्रेनमें एक सज्जनके हाथमें मुझे 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक देखनेका सौभाग्य हुआ था और तभीसे मैं इसकी खोजमें हूँ। बड़ी ही कृपा होगी, यदि एक प्रति मुझे प्रदान करें।

१०८३—श्री शिवनाथ चतुर्वेदी, अजीत साइकिल हाउस, कृष्णाचौक, पटना।

—आपकी लिखी हुई 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक वस्तुतः प्रत्येक भारतीयके लिये आदर्श प्रतीक है। अचानक एक पुस्तकालयमें मुझे यह देखनेको मिली थी, तभीसे मेरा प्रयास जारी है कि इसकी एक प्रति बराबर मेरे घरमें रहे। कृपया एक प्रति भेजनेका कष्ट करें, तो बड़ा ही उपकार हो।

१०८४—श्री चन्द्रिका प्रसाद, (हरिजन) मोकाम उदयरामपुर, पोस्ट घोंघा, भागलपुर।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' की चर्चा आज देशके अधिकांश लोगोंकी जबान पर है। स्वभावतः मेरी [illegible] बढ़ती जा रही है, कि आखिर यह कैसी पुस्तक है। क्या एक प्रति मुझे प्रदान करनेका कष्ट उठायेंगे।

१०८५—श्री बाढ़न पासवान, खालशा, पोस्ट बिन्द, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' की प्रशंसा तो मैं क्या कर सकता हूँ, परन्तु हाँ, इतना कहे बिना नहीं रहा जाता है कि जिस तरह हमारे घर-घरमें गीता, रामायणका होना जरूरी है, उससे कम महत्व 'गृहस्थ-धर्म' का भी नहीं है। यह देशके प्रत्येक नागरिकके लिये पठनीय एवं नित्य मननीय ग्रंथ है। मुझे भी इसकी एक प्रति चाहिए। यदि भेजनेका कष्ट करें तो मैं चिर आभारी रहूँगा।

१०८६—श्री मोहनलाल अग्रवाल, मुकाम मांहो, पोस्ट लोहरडागा, जिला रांची।

—मैंने सुना है कि आपकी स्वलिखित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' मुफ्तमें वितरित की जाती है और यह गिरे हुए समाज के लिए सम्बल-स्वरूप है। कृपया एक किताब मुझे भी भिजवा दीजिये।

१०८७—श्री वर्गी विरंवन, मुकाम वरही, पोस्ट मन्दार, रांची।

—मैंने सुना है कि 'गृहस्थ-धर्म' का पुनः सातवां संस्करण प्रकाशित हो रहा है। इधर बहुत दिनोंसे उसकी तलाशमें था। इस पुस्तक द्वारा गृहस्थ-धर्मको बड़ा बल मिलता है! कृपया एक प्रति भेज दीजिये ताकि मैं पढ़ूँ और बन्धु-बान्धवोंको भी पढ़नेके लिये प्रोत्साहित करूं।

१०८८—श्री रामचन्द्र मेहता, नयी गोदाम, गया।

—आपकी दानशीलता एवं धर्मानुरागके बारेमें सुनकर मेरे हृदयमें आपके प्रति विशेष श्रद्धा उत्पन्न हुई। आपका 'गृहस्थ-धर्म' एक धर्म-ग्रन्थकी तरह घर-घरकी शोभा बढ़ावे यही मेरी अभिलाषा है। कृपया मुझे भी एक प्रति प्रदान कीजिये।

१०८९—श्री बद्रीप्रसाद सिंह, खरखूरा वलुआही, कुशवाहा, क्षत्रिय भवन, गया।

—आप 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको निःशुल्क वितरण कर समाजोन्नतिका पथ अत्यन्त सरल बना रहे हैं। वर्त्तमान कालीन युगके इतिहासमें आपका नाम अमर रहेगा। मुझे भी एक प्रतिकी आवश्यकता है। भेजनेकी कृपा करें।

१०९०—श्री लाल सिंह, मिडिल स्कूल खजूर, पोस्ट सेवनर, गया।

—निश्चय ही 'गृहस्थ-धर्म' भारतीय समाजके नये युगके लिये धर्म-शास्त्रकी तरह है। इसके निःशुल्क प्रचारमें केवल एक ही भावना काम कर रही है और वह यह कि इस ग्रंथ द्वारा आप पुरातन भारतीय नागरिक सभ्यता संस्कृतिको आगे बढ़ाना चाहते हैं। निस्सन्देह आपका यह प्रयास सराहनीय है। कृपया एक प्रति मुझे भी भेज देनेका कष्ट कीजिये।

१०९१—रामदहीनप्रसाद सिंह, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' के बारेमें मैंने कई जगह कई तरहकी बातें सुनीं। उसका मूल तत्व यही निकला कि यह ग्रंथ [illegible]त्य पठनीय है। कृपया एक प्रति मुझे भी प्रदान करनेकी कृपा करें।

१०६२—श्री शिवदयाल राम चौधरी, ग्राम रूपसुपुर, पोस्ट बुनियादगंज, गया।

—आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तकका नाम आज घर-घरमें तुलसीकृत रामायणकी तरह गणना पा रहा है। मुझे भी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक पढ़नेकी हार्दिक इच्छा है।

१०६३—श्री शालिग्रामप्रसाद सिंह, मोकाम वीर ओईयारा, हाई स्कूल, पटना।

—आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' की प्रशंसा मैं अपने साथियों द्वारा सुना हूँ। मुझे इस पुस्तकको पढ़नेकी अभिलाषा है। अतः आप कृपा कर मुझे इसका एक प्रति भेज देंगे।

१०६४—श्री चन्द्रमणिप्रसाद सिंह, पोस्ट मखदुमपुर, गया।

—आपके इस ग्रंथके लिये आपकी जितनी ही प्रशंसा करें थोड़ी है। मुझे इसको पढ़नेकी प्रबल इच्छा है। अतः आप कृपाकर मुझे इसकी एक प्रति भेज देंगे।

१०६५—श्रीमती सुभद्रादेवी, मोकाम दुखेसरपुर, महल्ला लालगंज, जिला गया।

—आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' माँ-बहनोंके लिये भी अति हितकर है। मुझे इस पुस्तकको पढ़नेकी लालसा है। अतः आप कृपाकर मुझे भी इसकी एक प्रति भेजनेका कष्ट उठावेंगे।

१०६६—श्री कपिलदेव शर्मा, सलीमपुर अहरा, श्री निवास आश्रम, पटना।

—मैंने आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' की बड़ी प्रशंसा सुनी है। सौभाग्यवश मुझे उसे देखनेका भी शुभ-अवसर प्राप्त हुआ। मैं अपने ग्राममें जनताकी सेवाके हेतु एक पुस्तकालय चला रहा हूँ। इसमें आपकी पुस्तककी आवश्यकता है। अतः आपसे साग्रह निवेदन है कि आप इसकी एक प्रति मेरे पुस्तकालयके लिये भेजकर यश के भागी बनें।

१०६७—श्री देवईश्वर सिंह, बाकरपुर, पोस्ट जट डुंमरी, पटना।

—आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' आज संसारके कोने-कोनेमें विख्यात है। मैं इसको पढ़ना चाहता हूँ। अतः आपसे करबद्ध प्रार्थना है कि आप कृपा कर उक्त पुस्तककी एक प्रति भेजकर मुझे कृतार्थ करें।

१०६८—श्री बिमल सिंह, मोकाम बढ़ौना, पोस्ट कोबिल, पटना।

—यह जानकर मुझे बहुत हर्ष होता है कि आपने 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक प्रकाशित कर हिन्दू-समा[illegible] सेवा की है। मुझे इस पुस्तकको पढ़नेकी प्रबल इच्छा है। अतः आपसे नम्र निवेदन है कि आप कृपाकर [illegible] की एक प्रति मुझे भेजकर मेरी इच्छाकी पूर्ति करें।

१०९९—श्री रामदास महतो, गया।

—मैंने अपने मित्रों द्वारा आपकी पुस्तककी प्रशंसा सुनी है। मुझे इसको रखनेकी प्रबल इच्छा है। अतः आप कृपा कर मेरे लिये इसकी एक प्रति भेज देंगे।

११००—श्री शालिग्राम द्विवेदी, मुक़ाम टेटुआ, पोस्ट अतरी, जिला गया।

—आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' में धर्मयुक्त बातें भरी हुई हैं। मैं इस पुस्तकको पढ़ना चाहता हूं। अतः श्रीमान इसकी एक प्रति भेजकर मुझे कृतकृत्य करें।

११०१—श्री अम्बिकाप्रसाद शिक्षक, हाई स्कूल, कुर्था, जिला गया।

—आपके इस अपूर्व साहसको देखकर मैं मुक्त-कण्ठसे प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। आज 'गृहस्थ-धर्म' का प्रचार बड़े पैमानेके साथ हो रहा है। इससे उत्साहित होकर मैं इस पुस्तकको पढ़ना चाहता हूं। अतः आपसे साग्रह निवेदन है कि आप उक्त पुस्तककी एक प्रति भेजकर मुझे लाभान्वित करेंगे।

११०२—श्री विशारत्न पाठक, आचार्य्य संस्कृत विद्यालय बलछीं, जिला पटना।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तककी कई जगह तथा कई सज्जनोंके मुखसे प्रशंसा सुनकर मुझे इसको पढ़नेकी उत्कट अभिलाषा है। अतः आप इसकी एक प्रति भेजकर मुझे कृतार्थ करें।

११०३—श्री चन्द्रमणि प्रसाद, मखदुमपुर बाजार, पोस्ट मखदुमपुर, गया।

—आपके द्वारा प्रचारित 'गृहस्थ-धर्म' अति ही उपकारी और धार्मिक पुस्तक है।

११०४—श्री दुर्गा पाण्डेय, मोकाम मछुरापुर केउर पोस्ट हुलासगंज, गया।

—एक दिन जब मैं अपने ग्राममें घूम रहा था कि आपके द्वारा प्रचारित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को देखा। उसे पढ़कर मन आनन्दित हो उठा।

११०५—श्री रामेश्वर प्रसाद, मोकाम सान्डा, पोस्ट मसौढ़ी, पटना।

—आपके द्वारा प्रचारित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' एक धार्मिक पुस्तक है। मुझे इसके अनुसार चलनेकी प्रबल इच्छा है।

११०६—श्री नन्दकुमार सिंह, मौज़ा खनेटा, थाना बेलागंज, गया।

—एक छात्रने जो कि बेला स्कूलमें पढ़ता है, मुझे आपके द्वारा प्रचारित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' दी। जब मैंने उसके कुछ पृष्ठोंको पढ़ा तो मैंने उस पुस्तकको उसे देना नहीं चाहा, क्योंकि वह बहुत प्यारी पुस्तक थी। परन्तु वह ले गया, मुझे उसे पढ़नेकी लालसा लगी ही रह गयी।

११०७—श्री इन्द्रदेव महतो, मखदुमपुर हाई स्कूल, गया।

—एक दिन जब मैं गया जा रहा था कि आपके द्वारा प्रकाशित धार्मिक 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको देखा। देखकर मन प्रसन्न हुआ। आपकी यह पुस्तक आज-आर्यावर्तके कोने-कोनेमें गूँज रही है।

११०८—श्री जगदीश प्रसाद सिंह, मोकाम बेलदारोपर, पोस्ट नूरसराय, पटना।

—मैंने एक सज्जनके हाथमें आपके द्वारा प्रचारित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को देखा। कुछ पृष्ठोंको पढ़ने पर मेरा मन आनन्दित हो उठा। मुझे इसे पुनः पढ़नेकी लालसा लगी ही रह गयी।

११०९—श्री कीर्तिप्रसाद शर्मा, पोस्ट बेगमपुर, जिला पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक जनताकी भलाईके लिये निःशुल्क भेज दिया करते हैं। मैं यह देखकर बहुत आनन्दित हुआ। मुझे उस किताबको अपने पुस्तकालयमें रखनेकी प्रबल इच्छा है।

१११०—श्री बन्धु चौधरी, मोकाम-पोस्ट हिलसा, पटना।

—आपके द्वारा प्रचारित 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक सचमुचमें ही मानव-समाजको उन्नति पर ले जानेका एक अमूल्य साधन है।

११११—श्री जयगोविन्दप्रसाद, हिलसा।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक धार्मिक पुस्तकको पढ़कर मैंने बहुत लाभ उठाया है।

११११२—श्री रामचन्द्रप्रसाद सेन, पोस्ट मखदुमपुर, गया।

—आपके कार्यालयसे 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक जो निकल रही है, उसकी प्रशंसा सुन कर मेरा मन आनन्दित हो जाता है।

११११३—श्रीमती रामप्यारी देवी, पोस्ट मुखतारगञ्ज, पटना।

—सचमुचमें 'गृहस्थ-धर्म' नामक धार्मिक पुस्तक हम महिलाओंके लिये अति लाभदायक पुस्तक है। मुझे इस पुस्तकको पढ़नेकी लालसा है।

११११४—श्री साधूशरणप्रसाद, पोस्ट अनौत, पटना।

—मुझे ज्ञात हुआ है कि आपके यहां 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक निःशुल्क वितरण किया जाता है। यह पुस्तक पढ़ने योग्य है।

११११५—श्री आदित्यराम पाण्डेय, पोस्ट बुरमा, जिला रांची।

—जब मैंने अपने मित्रों द्वारा आपके 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकका प्रशंसा सुनी तो मन बहुत प्रसन्न हुआ। इसके लिये आपको धन्यवाद !

११११६—श्री बसन्तलाल जगदीशप्रसाद, पोस्ट भतहर, पटना।

—मैंने अपने ग्रामीणोंसे सुना है कि आपके यहांसे समाजोपयोगी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' निःशुल्क वितरण किया जाता है। मुझे भी पढ़नेकी हार्दिक इच्छा है।

११११७—पण्डित पीताम्बरनाथ शर्मा, पोस्ट बुरमा, जिला रांची।

—ज्ञात हुआ है कि आप 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक जन-समाजके हितार्थ निःशुल्क वितरण कर रहे हैं। मुझे भी इसे पढ़नेकी लालसा है।

११११८—श्री हरिहरप्रसाद सिंह, पोस्ट हुलासगञ्ज, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तककी ख्याति दिन दूनी, रात चौगुनी देखकर मन आनन्दित हो उठता है।

११११९—श्री गोदबचाप्रसाद सिंह, ग्राम सुलतानी, पोस्ट पण्डूई, जिला गया।

—आपके द्वारा जो 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक प्रकाशित की गयी है, वह सचमुच ही आप उदारताका परिचायक है।

११२०—श्री देवनारायण पाण्डेय शास्त्री, पोस्ट तेल्हाड़ा, जिला पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक धार्मिक पुस्तक निःशुल्क वितरण कर आप हिन्दू-धर्मकी महान सेवा कर रहे हैं।

११२१—श्री रामअनुज सिंह, पोस्ट खिजर सराय, जिला गया।

—आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' की प्रशंसा सभी कर रहे हैं।

सम्मतियाँ और उद्गार !

११२२—श्री कृष्णनन्दनप्रसाद सिंह, ग्राम अलावां, पत्रालय-परबलपुर, पटना ।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक, जिसमें गृहस्थोंको कर्त्तव्यानुसार चलनेका मार्ग दर्शाया है । महान धार्मिक ग्रंथ है ।

११२३—श्री मछूसाव, मुकाम धमौल, पोस्ट पिंजरावां, जिला गया ।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक धार्मिक पुस्तक निःशुल्क दान कर देशकी बड़ी सेवा कर रहे हैं ।

११२४—श्री बसन्तप्रसाद, मुकाम औगांरी, पोस्ट औगांरी, जिला पटना ।

—मैंने 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकके विषयमें अपने साथियों द्वारा जानकारी हासिल की । इस पुस्तकको मैं अध्ययन करना चाहता हूँ ।

११२५—श्री सिद्धेश्वरराम, मोकाम मखदुमपुर, पोस्ट धराउत, जिला गया ।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक गृहस्थोंको अपने कर्त्तव्य मार्गपर चलनेको बाध्य करती है।

११२६—श्री दारोगाराम, मुकाम दयालचक, पोस्ट पडौल, गया ।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक गरीबोंका सहारा है । ईश्वर आपको इस कार्यमें पूर्ण सफलता दे ।

११२७—श्री जगदेव साहु, पत्रालय-खिजिरसराय, जिला गया ।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक धर्म और उपादेयके ख्यालसे बहुत ही अच्छी है ।

११२८—श्री हरिलाल बासुदेव प्रसाद, मोकाम मथुरिया, पोस्ट बिहारशरीफ, पटना ।

—मुझे बहुत खुशी है कि आप गृहस्थोंके प्रत्येक दिन काम आनेवाले धार्मिक पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को प्रकाशित कर वितरण कर रहें हैं । इस पुस्तकसे हमें नया जीवन मिला है ।

११२९—श्री गनौरीप्रसाद सिंह, दलदलीचक, पो० हिलसा, पटना ।

—आपके द्वारा प्रचारित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' का नाम आज हिन्दुस्तानके कोने-कोनेमें गूँज रहा है ।

११३०—श्री केदार प्रसाद, मसौढ़ी हाई स्कूल, पो० मसौढ़ी, पटना ।

—मैंने आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको पढ़ा । यह गृहस्थोंके लिये अति उपयोगी है ।

११३१—श्री रामबिलास सिंह, ग्राम अमैना, पो० थकराबाद, जिला गया ।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकका नाम एवं गुण सुनकर बहुत हर्ष हुआ है । मैं भी उस पुस्तकसे अच्छे गुण प्राप्त करना चाहता हूँ । इसीलिये मुझे इस पुस्तकको पढ़नेकी हार्दिक इच्छा है ।

११३२—श्री सुरेश प्रसाद, ग्राम-पो० अगारो, पटना ।

—'गृहस्थ-धर्म' के उपदेशोंपर चलकर मैं अपने मानव-जीवनको सफल समझ रहा हूँ ।

११३३—श्री पंडित गंगाविशुन जोशी धानमण्डी, मोकाम-पो० पुष्करराज, अजमेर ।

—आपकी निर्माण की हुई 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक हमने देखी। देखकर बहुत हर्ष हुआ कि श्रीमान् परोपकार्थ उक्त पुस्तकको निःशुल्क वितरण कर रहे हैं।

११३४—श्री रामशुभग शर्मा, मखदुमपुर हाई स्कूल, पो० मखदुमपुर, गया।

—आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' मुझे एक रोज पढ़नेको मिला था। मैं इसके कुछ पृष्ठोंको पढ़ा, तो मेरा मन बहुत प्रसन्न हुआ। मुझे इस पुस्तकको पूर्ण रूपसे पढ़नेकी अभिलाषा बनी ही रह गयी।

११३५—श्री गौरीशंकर प्रसाद, हाई इंगलिश स्कूल, फतुहा।

—आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' आधुनिक युगके लिये अति उपयोगी है।

११३६—श्री रामआसरे प्रसाद, मिडिल स्कूल, जोगीपुर, हिलसा, पटना।

जन-समाज हितार्थ आपने 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक प्रकाशित की हैं। उसका अध्ययन कर मेरी आँखें खुल गयी हैं।

सम्मतियाँ और उद्‌गार !

११३७—श्री शिवराज शर्मा, मोकाम कसमा, पोस्ट सरता, गया।

—कुछ समय पूर्व मैं पटना गया था। वहाँ अपने साथियोंके पास आपके द्वारा प्रचारित 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़ा। पुस्तक गृहस्थोंके लिये अति उपयोगी है।

११३८—श्री दुन्नी साह, मोकाम महुवरी मिलकी, पोस्ट अतासराय, पटना।

—मैंने अपने मित्रके पास आपके द्वारा प्रचारित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' देखी। पुस्तक देखकर मन बहुत आनन्दित हुआ परन्तु मैं उसे पूर्णरूपसे अध्ययन नहीं कर सका। पढ़नेकी लालसा मनमें लगी रह गयी।

११३९—श्री रामाश्रय शर्मा, मोकाम आंकूपुर, पोस्ट पाईबिगहा, गया।

—मेरे ग्रामवासियोंको आपके द्वारा प्रचारित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' के विषयमें विदित हुआ है। वे इस पुस्तकको पढ़नेके लिये ललायित हैं।

११४०—श्री मिश्रीलाल, आर० बी० स्कूल हिलसा, पटना।

एक दिन जब कि मैं पटनामें घूम रहा था कि एक व्यक्तिके हाथमें आपके द्वारा प्रचारित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को देखा। देखने पर इसको पढ़नेके लिये मुझे हार्दिक इच्छा हुई। अतः आपसे अनुरोध है कि आप इस पुस्तकको भेजकर मेरी अभिलाषा पूरा करें।

११४१—श्री रामेश्वर सिंह यादव, दानापुर, पोस्ट खगौल, पटना।

—आपके द्वारा जो 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक प्रचारित हुआ है यह अत्यन्त ही उपदेश-प्रद है।

११४२—श्री शंकरलाल पण्डा, मोकाम श्री शितला माता, मिर्जापुर।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकमें गृहस्थोंके फायदेकी बातें लिखी हुई हैं। मैं श्री शितला माताका पूजारी हूँ। मैं इस पुस्तकको पुनः अध्ययन कर प्रचार करना चाहता हूँ।

११४३—श्री एस० के० दत्ता, जी० पी० ओ०, पटना।

—जबसे मैंने अपने मित्र द्वारा 'गृहस्थ-धर्म' की प्रसन्नता सुनी है तबसे मुझे भी इसे पढ़नेकी प्रबल इच्छा हुई है। आप मुझे भी 'गृहस्थ-धर्म' भेजकर कृतार्थ करेंगे।

११४४—श्री शिवसहाय महतो, पोस्ट मुरगांव, पटना।

—आपको धन्यवाद है कि आप 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक जनताके बीच प्रचार कर यशके भागी बने हैं। इस पुस्तकसे अनभिज्ञ समाजको आगे बढ़नेका अवसर मिल रहा है। मुझे इसे पढ़नेकी प्रबल इच्छा है।

११४५—श्री रामलक्षणप्रसाद, पचरुखिया, पोस्ट हाटी, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक धार्मिक पुस्तकको देखकर मैं आपको कोटिशः धन्यवाद देता हूं। प्रशंसाकी कि आप इसे बिना मूल्य वितरित कर रहे हैं। मुझे इसको पढ़नेकी लालसा है।

११४६—श्री शिवनारायणप्रसाद, मोकाम सलेमपुर, पो० टिकारी, गया ।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक बहुत अच्छी है। इसको पढ़कर लोग फायदा उठा सकते हैं। मेरे पास एक लाइब्रेरी है। मैं उसमें रखना चाहता हूँ, इसलिये कृपाकर एक प्रति भेज देंगे।

११४७—श्री गौतमप्रसाद वर्मा, मोकाम साल्हे, पो० किरारी, बिलासपुर ।

—आपके 'गृहस्थ-धर्म' को देखनेका सुअवसर प्राप्त हुआ। मैं इसका आद्योपान्त अध्ययन करना चाहता हूँ, इसलिये मुझे एक प्रति भेज दीजिये।

११४८—श्री कामेश्वरप्रसाद, पो० ठाकुर गांव, जिला गया ।

—आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' मुझे थोड़े ही समयके लिये मिली। इसकी उपयोगिता देखकर मैं मुग्ध हो गया। मैं इसका पुनः अध्ययन करना चाहता हूँ।

११४९—श्री शङ्करलाल पटेल, मुकाम साल्हे, पो० किरारी, रायगढ़ ।

—आपका 'गृहस्थ-धर्म' मैं अपने सहपाठीके पास देखा। पढ़नेपर मन प्रसन्न हुआ। मुझे इसको आद्योपान्त पढ़नेकी इच्छा है।

११५०—श्री लालबहादुर, पो० साल्हे, पो० किरारी, बिलासपुर ।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' को देखकर मेरा मन आनन्दसे प्रफुल्लित हुआ कि यह देश सेवाके लिये यह एक अनुपम दान है। मैं भी इसको पढ़कर लाभ उठाना चाहता हूँ।

११५१—श्री गोपालदास वैष्णव, मोकाम पो० केरा, बिलासपुर ।

—आपका 'गृहस्थ-धर्म' का प्रचार करता है। यह प्रत्येक मानवके पढ़ने योग्य है। मुझे इसको पढ़नेकी प्रबल इच्छा है।

११५२—श्री लीलाधर साव, मोकाम पो० चौपा, बिलासपुर ।

—आपकी यह पुस्तक धर्मसे अनभिज्ञ पुरुषको भिज्ञ बनाती है। इस पुस्तकको पढ़कर मनुष्य धार्मिक बनकर सन्मार्ग प्राप्त कर सकता है, इसलिये मुझे भी इसकी एक प्रति भेज देंगे।

११५३—श्री सुरेन्द्रप्रसाद बागाल, लोहरडागा, जिला रांची ।

—आपने वर्त्तमान समयमें मनुष्योंके लिये एक विचित्र ग्रंथ तैयार किया। मुझे इसको पढ़नेकी प्रबल इच्छा है।

११५४—श्री गणेशराम, शिवशङ्करलाल शराफ, पो० सोबलौदा, बिलासपुर ।

—आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' में सन्ध्या, गायत्री, ईश्वर भजन इत्यादि-इत्यादि बातें हैं। मैं [illegible] इसको पढ़कर ईश्वर-भक्ति करना चाहता हूँ।

सम्मतियाँ और उद्‌गार !

११५५—श्री कनलाबाई साहब, पो० किरारी, मोकाम रायबाढ़, बिलासपुर ।

—बड़े ही हर्षकी बात है कि आपने 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक प्रकाशित कर देश और जनताकी बड़ी भलाई की है। मुझे भी ऐसी पुस्तकोंको पढ़नेकी हार्दिक इच्छा है।

११५६—श्री नन्दकुमार पटेल, मुकाम सालह, पो० किरारी, बिलासपुर ।

—आपका 'गृहस्थ-धर्म' हम ग्रामीणोंको फायदा देनेवाली पुस्तक है। जो गृहस्थ इसे पढ़कर इसके मुताबिक चलेंगे, उनका जीवन सुधर जायेगा। मुझे भी इसको पढ़कर अपने जीवन-मार्गको ठीक करना है।

११५७—श्री बिशु साहु, मोकाम पो० बिशुनगढ़, जिला हजारीबाग ।

—गरीबीके कारण प्रत्येक आदमी इस पुस्तकको नहीं खरीद सकते थे, परन्तु आप धन्य हैं कि आप इसको निःशुल्क वितरित कर रहे हैं।

११५८—श्री गोविन्दप्रसाद, टाउन, जबलपुर ।

—आपने हिन्दू धर्मको जागृत बनानेके लिये जो 'गृहस्थ-धर्म' रचा है, वह अत्यन्त ही उपयोगी है।

११५९—श्री दुर्गाप्रसाद मिश्र, पो० शमशेरनगर, जिला गया ।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर मैं अपने निःरक्त शरीरमें रक्तका संचार होते पाया। मैं इसे एक अपने पास रखना चाहता हूं।

११६०—श्री कुतीशुन पण्डित, आत्मा शर्मा, मोकाम सेमरा, पो० रतनपुर, जिला बिलासपुर ।

—'गृहस्थ-धर्म' संसारको सर्वोत्कृष्ट पुस्तकोंमें है, जो जन-समाजके लिये अति हितकारी सिद्ध हुई है।

११६१—श्री लाछुनीप्रसाद गुप्ता, मो० पो० सेमरा, जिला बिलासपुर ।

—आपकी पुस्तकका जोरोंसे प्रचार हो रही है। आपकी पुस्तकसे चरित्र-निर्माणमें बड़ी मदद मिलती है।

११६२—श्री प्रयागराम, मुकाम पोखरपुर, पो० पावापुरी, पटना ।

—मैं आपके 'गृहस्थ-धर्म' के एक पुस्तक एक सज्जनके हाथमें देखी। वे इसकी बहुत प्रशंसा कर रहे थे।

११६३—श्री नाथूराम पटवारी, पो० चौरिया, जिला बिलासपुर ।

—आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' आजकी दुनियाको बहुत फायदा पहुँचाती है। मैं इसके पढ़नेके लिये इच्छुक हूं।

११६४—श्री तुलसीराम बानी, किराना मर्चेंट, पो० चापा, पटना ।

—यह पुस्तक आपकी अमूल्य देन है। इससे विश्व-कल्याण होगा।

११६५—श्री मेहतर, सतनामी, पो० सपोस, रायगढ़ ।

—आपका 'गृहस्थ-धर्म' आज अज्ञान समाजमें ज्योति जगानेवाला है ।

११६६—श्री दुर्गाप्रसाद मण्डल, पो० तरार, जिला भागलपुर ।

—आपको हार्दिक धन्यवाद है कि आप 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक निःशुल्क वितरित कर गरीब जनता, समाज और धर्मकी उन्नति कर रहे हैं ।

११६७—श्री दुर्गा यादव, नसदरपुर, पो०बरबीघा, जिला मुंगेर ।

—आपके 'गृहस्थ-धर्म' में आचरण तथा धर्म सुधारनेके सभी गुण भरे हुए हैं । मैं इसको पढ़कर अपना आचरण सुधारना चाहता हूं ।

११६८—श्री वासुदेव मोदी, मोकाम पो० डोमचांच, हजारीबाग ।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक विश्वकी श्रेष्ठ पुस्तकोंमें है ।

११६९—श्री हरिवंशशिव, मोकाम पो० विष्णुगढ़, हजारीबाग ।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ । यह बहुत ही उपयोगी पुस्तक है ।

११७०—श्री माधोराम, पुरानी गोदाम, गया ।

—आप जनताके हितके लिये 'गृहस्थ-धर्म' नामक सुन्दर पुस्तक प्रचार कर उसे अच्छे और उच्च मार्गपर ले जा रहे हैं । जिस व्यक्तिको यह पुस्तक प्राप्त होती है, वह इसे पढ़कर अपने बुरे विचारोंको त्याग कर अच्छे मार्गकी ओर चलने लगता है ।

११७१—श्री नन्दकिशोर प्रसाद, पो० जोगसर, भागलपुर।

—आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' अज्ञानताको दूर कर ज्ञानकी ज्योति जगानेमें समर्थ हो रही है। मुझे इस पुस्तकको पढ़नेकी हार्दिक इच्छा है। अतः आप इसकी एक प्रति भेजकर मुझे कृतार्थ करें।

११७२—श्री गोखुलप्रसाद पटेल, साल्हे, पो० किरारी विलासपुर।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' आज आर्य्यावर्त्तके कोने-कोनेमें तुलसीकृत रामायणकी तरह ही प्रशंसा पा रहा है।

११७३—श्री रामचन्द्र सिंह, क़ाशीडिह, पो० बगार, शाहाबाद।

—आपका 'गृहस्थ-धर्म' को जो जनताके बीच निःशुल्क वितरित किया जा रहा है, यह आपके प्रति लोगोंका श्रद्धा प्रगट कराती है। प्रत्येक व्यक्ति उसको पढ़नेके लिये लालायित हैं। मुझे भी ऐसी धार्मिक पुस्तक पढ़नेकी श्रद्धा है।

११७४—श्री नन्हकू महतो, पो० मोकाम ढाक, हजारीबाग।

—आप एक धार्मिक पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' जनताके बीच निःशुल्क वितरितकर यशके भागी बन रहे हैं। इसके लिये जनता आपका नाम आजीवन याद करेगी।

११७५—श्री चौधरी मोदी, मोकाम पो० मनसोडीह, हजारीबाग।

—आपके पास लिखते हुए बड़ा हर्ष होता है कि आपका 'गृहस्थ-धर्म' हम भारतीयोंके लिये सभ्यताकी निशानी है। मुझे भी इसको पढ़नेकी प्रबल इच्छा है।

११७६—श्री रामपुकार सिंह अरई, पो० शेवहर, गया।

—आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' हम अज्ञान गृहस्थोंके लिये अन्धकारमें बिजलीकी चमकके समान है। मैं गृहस्थ होनेके नाते इस पुस्तकको पढ़कर अपना मार्ग सुधारना चाहता हूँ।

११७७—श्री रामआसरेप्रसाद सिंह, अंगारी, पो० शङ्करपुर, ईमामगञ्ज, गया।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' का नाम सुनकर मैं आनन्दसे प्रफुल्लित हो उठा। मुझे भी पढ़नेकी लालसा है। आप कृपा कर एक प्रति मुझे भी भेज देंगे।

११७८—श्री रामस्वरूप सिंह, अहियारपुर, पो० सिहाटी, गया।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' एक धार्मिक पुस्तक है। सबसे प्रशंसाकी बात यह है कि आप इसे बिना मूल्य वितरित कर रहे हैं। मुझे इसे पढ़नेकी हार्दिक इच्छा है।

११७९—श्री रामटहल राना, (खुर्द) कसियाडीह मंडई, हजारीबाग।

—आपके द्वारा प्रचारित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' धार्मिक बातोंसे ओत-प्रोत है। मुझे धर्मकी बातें जाननेकी इ[illegible] है। आप कृपाकर इसका एक प्रति मुझे भेज देंगे।

११८०—श्री भगवानप्रसाद, मोकाम सुखदेव बिगहा, पो० काको, गया।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर मानव अपना लोग-परलोक बना सकता है। आपको इस पुस्तक प्रकाशनके लिये जनताका हार्दिक धन्यवाद है।

११८१—श्री राजेन्द्रराम, पिपला, पो० डुमरी, पटना।

—मैं आपका 'गृहस्थ-धर्म' पढ़कर लाभ उठाना चाहता हूँ। अतः आप महानुभावसे सादर अनुरोध है कि आप इसकी एक प्रति मुझे भेज दें।

११८२—श्री महमदु मियां, क्लाथ मर्चेण्ट, मोकाम राबीगञ्ज, गया।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकमें शिक्षाकी बातें भरी हुई हैं। मैं उसको पढ़कर शिक्षा हासिल करना चाहता हूँ।

११८३—श्री केदारनाथ वर्मा, पो० अतासराय, जिला पटना।

—मुझे यह जानकर बहुत हर्ष होता है कि आप विश्व उद्धार हेतु बहुत परिश्रम तथा अर्थ व्यय कर अपना 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक निःशुल्क वितरित कर रहे हैं। मुझे इसको पढ़नेकी प्रबल इच्छा है।

११८४—श्री रामाकान्त तिवारी, पो० मखदुमपुर, गया।

—मुझे यह ज्ञात हुआ है कि आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक शिक्षाकी सभी बातोंसे ओत-प्रोत है। मैं एक गरीब विद्यार्थी इसको पढ़कर शिक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ। आप कृपाकर मुझे इसकी एक प्रति भेजें।

११८५—श्री लखनलाल जूना, बिलासपुर।

—आप अपनी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक निःशुल्क वितरित कर एक समाज तथा देशसेवककी गणना हासिल कर रहे हैं। यह सुन मुझे बहुत हर्ष होता है। मुझे भी आपकी रची हुई पुस्तक पढ़नेकी लालसा है।

११८६—श्री रामदास सोनार, मोकाम पो० किरारी, बिलासपुर।

—आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' में अपने कर्त्तव्यानुसार चलनेकी चीजें दर्शायी गयी हैं। मैं एक विद्यार्थी अपने कर्त्तव्यकी जानकारी करना चाहता हूँ। अतः आप कृपाकर मुझे इसकी एक प्रति भेज देंगे।

११८७—श्री श्यामलाल अघरिया, मोकाम पो० किरारी, बिलासपुर।

—आपने वर्त्तमान समयमें मनुष्योंके लिये एक विचित्र ग्रन्थ तैयार किया है। आपका 'गृहस्थ-धर्म' गृहस्थोंके लिये रामायण और गीताके समान है।

११८८—श्री कन्हैयालाल पटेल, मोकाम मुल्ला, पो० सपोस, जिला बिलासपुर।

—आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' में कीर्त्तन, भजन और लक्ष्मी गणेशकी स्तुति भरी हुई है। मैं [illegible] कर उसके गुणको मां-बहनोंको भी सुनाना चाहता हूँ।

११८९—श्री राजेन्द्रप्रसाद, मन्त्री अशोक पुस्तकालय त्रिपुरा, पो० परसा, पटना।

—आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को देखकर मन आनन्दित हुआ। मैं जनताकी सेवाके लिये एक त्रिपूरा ग्राममें छोटी-सी पुस्तकालय चला रहा हूँ। उस पुस्तकालयमें ऐसी पुस्तकोंकी आवश्यकता है।

११९०—श्री जनक सिंह, पो० अतासराय, पटना।

—आपका 'गृहस्थ-धर्म' एक ऐसी अच्छी धार्मिक पुस्तक है, जिसको मनुष्य पढ़कर अपने पथको सुधार सकता है। मुझे इसको पढ़नेकी प्रबल इच्छा है।

११९१—श्री मलभद्र सिंह, हाई स्कूल पद्मा, पो० पद्मा, हजारीबाग।

—आपका यह पुण्य कार्य है। मैं इसके लिये आपको हार्दिक धन्यवाद दे रहा हूँ। ईश्वर आपके कार्यमें वृद्धि करें।

११९२—श्री भैय्यारामजी गुप्ता, पो० अपित, बिलासपुर।

—आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' में ईश्वर भजन, गायत्री इत्यादि बातोंकी जानकारी हासिल होती है। मुझे इसको पढ़नेकी प्रबल इच्छा है।

११९३—श्री गौरीशंकर प्रसाद सिंह, पोस्ट एङ्गरसराय, पटना।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक आज्ञानीको ज्ञान प्राप्त करनेका उत्तम सामग्री है। यह पुस्तक अनोखी वस्तु है। हमें इसे पढ़कर अपने अज्ञानतारूपी अन्धकारको दूर करना है।

११९४—श्री ब्रजभूषण पाण्डेय विशारद, पोस्ट हिलसा, पटना।

—आपकी 'गृयस्थ-धर्म' मानवको सुपथपर लानेके लिये एक अच्छा दान है। इसे पढ़कर प्रत्येक मानव अपनेको सुपथ पर ला सकता है।

११९५—श्री शिवनन्दन प्रसाद, कासिमपुर, पोस्ट अत्तासराय, पटना।

—आपको लिखते हुए परम हर्ष होता है कि आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' हम भारतीयोंको धर्म-पथ पर चलनेकी निशानी है। इसके पढ़नेसे अपने कर्त्तव्यका ख्याल हो जाता है। यह पुस्तक प्रत्येक मानवके लिये उपयोगी है।

११९६—श्रीमती शारदा देवी, ग्राम नागपुर, पोस्ट अजयपुर, पटना।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक महिलाओंके लिये भी अति उपयोगी जान पड़ा है। अबला जातिके लिये यह पुस्तक पथ-प्रदर्शकका काम देती है, उन्हें अपने धर्म-पथपर चलनेको बाध्य करती है। इसको पढ़नेकी इच्छा है। कृपया एक प्रति मेरे लिये भी भेज देंगे।

सम्मतियाँ और उद्‌गार !

११९७—श्री रामप्रसाद सिंह, ग्राम गणपतबीघा, पोस्ट हिलसा, पटना ।

—आपके द्वारा प्रचारित 'गृहस्थ-धर्म' ग्रामीणोंके लिये अति उपयोगी है। ग्रामीण होनेसे मुझे भी इसकी अति आवश्यकता है।

११९८—श्री सुरेशप्रसाद, मोकाम केशोपुर, पोस्ट हिलसा, पटना।

—आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' एक धार्मिक पुस्तक सिद्ध हुई है। यह नवयुवकों और विद्यार्थियोंके लिये भी उपयोगी है।

११९९—श्री अवधेशकुमार, पोस्ट मसौढ़ी, पटना।

—इस मानव-जीवनके उद्धारके लिये आपका दान सर्वोपरि है। आपने मानव-जीवनकी त्रुटियोंको दूर करनेका मार्ग सोच निकाला है। ऐसी अन्धकारमय परिस्थितिमें मुझे इसको पढ़कर अपना भविष्य उज्ज्वल बनाना है।

१२००—श्री पंडित दिवाकर पाण्डेय, मोकाम कहौली, पोस्ट अत्तासराय, पटना।

—आपके यहां जो धर्म-प्रचारके हेतु 'गृहस्थ-धर्म' नामक किताब छपी है वह अत्यन्त हितकर तथा समाज-सुधारक एवं सत्य-पथ-प्रदर्शकका काम करती है।

१२०१—श्री परशुराम शर्मा, ग्राम सिकरिया, पोस्ट टिकारी, गया।

—आप 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकका विना मूल्य वितरण कर एक महान सेवा कर रहे हैं। मुझे भी उक्त पुस्तक को पढ़नेकी प्रबल इच्छा है।

१२०२—श्री चन्द्रदीप शर्मा, मोकाम मई, पोस्ट सिझौरा, जिला गया।

—आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' मुझे थोड़ेसे समयके लिये मिली। इसकी उपयोगिता देखकर मैं मुग्ध हो गया ! मैं इसे पुनः अध्ययन करना चाहता हूँ।

१२०३—श्री जमुनाप्रसाद, पोस्ट काशियावान, पटना।

—आपके द्वारा प्रचारित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' हर जगह प्रसिद्धि पा रही है। गृहस्थोंके लिये यह गीता और रामायणके समान है। ऐसी पुस्तकको मुझे पढ़नेकी हार्दिक इच्छा है। अतः आप महानुभावसे प्रार्थना है कि आप कृपया मुझे एक प्रति भेजकर यशके भागी बनें।

१२०४—श्री परमानन्द टेलर मास्टर, मुकाम किरारी,
पोस्ट सपोस, बिलासपुर।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकके प्रकाशन एवं उनके निःशुल्क वितरणके लिये कोटिशः धन्यवाद ! हम युवकोंके [illegible] क बहुत ही उपयोगी प्रतीत हुई है।

सम्मतियाँ और उद्गार।

१२०५—श्री गोपालसिंह, मुकाम वाजितपुर कछा,
पोस्ट टिकारी, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' को देखकर मुझे अति हर्ष हुआ। जनतामें विना मूल्य इसे वितरितकर आप यशके भागी बने हैं। जनता आपके प्रति कृतज्ञता प्रगट करती है।

१२०६—श्री प्रफुल्लकुमार गुप्ता, मुकाम काँपी,
पोस्ट बुन्डु, जिला रांची।

—मैं अपने धर्म आदि विषयोंकी जानकारी हासिल करना चाहता हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपके 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर मैं अपने धर्मकी जानकारी हासिल कर सकता हूँ।

१२०७—श्री श्यामपति देवी, पोस्ट माधार।
पटना।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक अज्ञानीको ज्ञान प्रदान करनेवाली वस्तु है। इसको पढ़कर माँ-बहन भी लाभ उठा सकती हैं। मुझे पढ़नेकी प्रबल इच्छा है। इसलिये कृपा करके मुझे भी इसकी एक प्रति भेज देंगे।

१२०८—श्री अवधनारायण प्रसाद, मो० जैतीपुर,
पोस्ट रामवसौटी, पटना।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक एक ऐसी वस्तु है जिसको पढ़नेसे मनुष्य अपनी शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक उन्नति कर सकता है।

१२०९—श्री कन्हैयालाल पाठक, -पो० घुटकू,
जिला बिलासपुर।

—हमें यह जानकर अत्यन्त हर्ष होता है कि आप अपने और खर्चसे 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक प्रकाशितकर निःशु[illegible] मुझे भी इसकी आवश्यकता है।

सम्मतियाँ और उद्‌गार !

१२१०—चरणोंमें श्रद्धाञ्जलि—

—आपके चरण कमलोंमें मैं अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूं। आपकी ख्याति आज भारतके कोने-कोनेमें फैल चुकी है। आपकी इस सहानुभूतिपर आज हमारे कृषकगण आपकी प्रशंसा किया करते हैं। जब आपकी ख्यातिका समाचार मुझे मिला, तो आनन्द सागरमें गोता लगाने लगा।

१२११—पुस्तककी ख्याति फैल रही है—

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकका यश और ख्याति भारतके कोने-कोनेमें फैल रही है। आपने तो इस पुस्तकके द्वारा गृहस्थोंको अपने कर्त्तव्य-पथपर अधिकाधिक रूपमें अग्रसर होनेके लिये प्रोत्साहित किया है। अस्तु मैं भी गृहस्थ होनेके नाते अपनेको इस अमूल्य उपहारको प्राप्त करनेसे वंचित नहीं रखना चाहा।

१२१२—दीर्घायुकी कामना—

—आपकी निर्माण की हुई 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक हमने देखी। अत्यन्त हर्ष हुआ कि श्रीमान परोपकारार्थ धनका ऐसा उपयोग कर रहे हैं। परमेश्वर श्रीमानको कुशल रखे। अत्युत्तम पुस्तक होनेके कारण हमारी इच्छा हुई कि हमारी लाइब्रेरीमें भी दो पुस्तक रहें, जिससे कि जहांतक हो सके, परोपकार में इससे लाभ उठावें।

१२१३—अतीव प्रसन्नता—

—यह जानकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई कि आप 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक विना मूल्य प्रदान कर हम लोगोंके धर्मोपदेश के साथ-साथ आप अपनी उज्वल कीर्ति चारों दिशाओंमें विस्तार कर रहे हैं।

१२१४—पुस्तकके उपदेशोंके रसास्वादनसे आनन्द ।

—आपके द्वारा संग्रहित 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक दिनपर दिन अत्यन्त लोकप्रिय होती जा रही है। इसके उपदेशोंका रसास्वादन करनेमें अनुपम आनन्द और सुख प्राप्त होता है।

—हितलाल शर्मा, अध्यापक,
ग्राम परासी, पटना ।

१२१५—पुस्तककी शिक्षाओंके प्रचारका संकल्प ।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर मुझे अपार आनन्द प्राप्त हुआ। जिस प्रकार महात्मा गौतम बुद्ध जगह-जगह घूमकर अपने धर्मका प्रचार करते थे, उसी प्रकार मैं भी अपने इलाकेमें सर्वत्र घूम-घूम कर आपकी पुस्तकमें बताये गये उपदेशोंका प्रचार कर रहा हूँ। ग्रामीण जनता इन उपदेशोंसे बहुत प्रभावित हुई है। आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी, कि जनता आपकी पुस्तककी शिक्षाओंको ग्रहण करती जा रही है।

—कारूप्रसाद, ग्राम माध्यमिक विद्यालय,
दामोदरपुर बलधा, पटना ।

१२१६—चरित्र-निर्माणके लिये अद्वितीय ।

—आपकी किताब मुझे बहुत पसन्द आयी। विशेषतः चरित्रोत्थान के लिये यह पुस्तक अद्वितीय है। मैं तथा मेरे सभी साथी इसकी अमूल्य शिक्षा और उपदेश ग्रहण कर महान सुख और आनन्दका अनुभव कर रहे हैं।

—महाबीर प्रसाद माली, सोहांसड़ी, जिला हिसार,
(पूर्व-पञ्जाब)

१२१७—ब्रह्मचर्य्यका पालन ।

—जो भी व्यक्ति आपकी किताबको देखता है, वह इसे पढ़नेकी अभिलाषा प्रकट करता है। इस पुस्तकके आधार पर छात्र अपने ब्रह्मचर्य धर्मका पूर्णरूपेण पालन कर सकते हैं। 'गृहस्थ-धर्म' वास्तवमें एक आदर्श पुस्तक है।

—कपिलदेव सिंह, टिकारी रोड, गया ।

१२१८—ज्ञानकी वृद्धि

'गृहस्थ-धर्म' अत्यन्त सुन्दर पुस्तक है। इसे पढ़नेसे ज्ञान बढ़ता है। विशेषकर गृहस्थों और विद्यार्थियोंके लिये तो यह ज्ञानका भंडार है। आपने कई नयी चीजोंकी खोज की है। ग्रामवासियोंको आपकी इस पुस्तकको पढ़ने की बड़ी अभिलाषा है।

—हरदेव सिंह, ग्राम गोढना, पोस्ट हांसाडीह, पटना।

१२१९—ज्ञान प्राप्तिका सर्वोत्तम मार्ग ।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर मैंने बहुत ज्ञान प्राप्त किया। यह पुस्तक बड़ी उत्तम है और ज्ञान प्राप्तिका एक सर्वोत्तम मार्ग है। इस पुस्तकका नित्य अभ्यास करनेसे मनुष्य गुणवान और ज्ञानवान बन सकता है।

—रामावतारप्रसाद वर्मा, पुराना जेल-खाना, गया ।

१२२०—गुणोंका ग्रामोंमें विस्तार ।

—आपकी पुस्तक गृहस्थों और छात्र-छात्राओंके लिये लाभदायक तथा अति हित-कारक है। इस पुस्तकके द्वारा आपके गुण हमारे ग्राममें फैल गये हैं।

—रामशरण गोप, ग्राम चन्द[illegible]
पो० पोख[illegible]

१२२१—दिमाग बढ़ता है।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़नेसे दिमाग बढ़ता है। आप धन्य हैं, जो देशवासियोंकी इतनी भलाई कर रहे हैं। इतनी बड़ी किताब मुफ्तमें वितरित कर रहे हैं। हम इसे ईश्वरीय कृपा समझते हैं।

—वंशी महतो, विसनपुर, पटना।

१२२२—सर्वगुण सम्पन्न।

—'गृहस्थ-धर्म' सर्वगुण सम्पन्न है। ऐसी उत्तम पुस्तकका निःशुल्क वितरण कर आप मानव-समाजका बड़ा परोपकार कर रहे हैं।

—नागेश्वर सिंह, ग्राम हेमजापुर,
पो० खुसरूपुर, पटना।

१२२३—पुस्तकके पठन-पाठन में स्वर्गीय आनन्द !

—'गृहस्थ-धर्म' सचमुच अद्वितीय ग्रंथ है। इसके पठन-पाठनसे स्वर्गीय आनन्द प्राप्त होता है ! मेरे कई साथी इसे पढ़नेके लिये उत्कण्ठित हैं।

—सरयूप्रसाद, ग्राम बोएना,
पो० हरनौत, पटना।

१२२४—धर्म-प्रचारकोंकी श्रेणीमें

—'गृहस्थ-धर्म' के कारण आपका नाम धर्म-प्रचारकोंकी श्रेणीमें आ गया है। आपकी —पकसे लोगोंका बड़ा हित हो रहा है।

—प्रसाद, ग्राम खरनारा, पो० चेरा,
जिला पटना।

१२२५—अध्ययनके लिये लालायित।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको पढ़कर मैं अपनेको कृतार्थ समझ रहा हूँ। हमारे समाजके अनेक व्यक्ति इस महान मार्मिक ग्रंथका अध्ययन करनेके लिये लालायित हैं।

—मन्त्री आर्यकुमार संघ, पो० नेमदारगंज, गया।

१२२६—हिन्दू-धर्मकी सेवा।

—आपने 'गृहस्थ-धर्म' का जनतामें प्रचारकर हिन्दू-धर्मकी बहुत बड़ी सेवा और हिन्दू जातिका बहुत बड़ा उपकार किया है। इस पुस्तक को पढ़कर हमारे ग्रामवासी और धर्म-पिपासु व्यक्ति अपनी प्यास बुझाना चाहते हैं।

—मन्त्री श्री शालिग्राम पुस्तकालय, खटांगी, गया।

१२२७—लोग बड़े चावसे पढ़ते हैं।

—मैं आपको किताबको देखकर दंग रह गया। हमारे गांवके आसपासकी ग्रामीण जनता इस पुस्तकसे बहुत लाभ उठा रही है। लोग बड़े चावसे इसे पढ़ते हैं।

—रामप्रसाद 'रजक' मंत्री, जनता पुस्तकालय कुसरे, पो० करपी,
जिला गया।

१२२८—जीवनमें सुधार।

—आपकी पुस्तकके मुताबिक मैं 'गृहस्थ-धर्म' का पालन करने लगा हूँ। मैं अपने जीवनमें बहुत सुधार हुआ पा रहा हूँ। अतएव आनंदित हो आपको इसकी सूचना देना अपना कर्त्तव्य समझा।

—शिवनाथ साव, पो० मौ, गया।

१२२९—धार्मिक भावनाकी रक्षा।

—इस घोर कलिकालमें संसारके मनुष्योंमें धर्मकी भावना विलीन होती जा रही है। लेकिन आप जैसे धर्म-प्रिय महानुभावोंको हार्दिक धन्यवाद है, जो मनुष्यको धर्माचारी बनानेके लिये 'गृहस्थ-धर्म' जैसी अनुपम और वृहद् पुस्तक निःशुल्क प्रदान कर रहे हैं।

—रामनन्दन सिंह, चाकन्द मिडिल स्कूल, जिला गया।

१२३०—धर्म-प्रचारकी अद्भुत प्रणाली।

—आपका धर्म-प्रेम तथा धर्म-प्रचारकी प्रणाली अद्भुत और सर्वथा अनुकरणीय है। आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' द्वारा वैदिक मंत्र, धर्मोपदेश तथा उनका विशद् विश्लेषण हृदयमें समा जाता है, और आपकी धर्म-सेवा तथा आपके त्याग को देखकर विस्मित रह जाना पड़ता है।

—पं० उपेन्द्रमोहन मिश्र, 'शास्त्री', ग्राम विधिपुर, हरिमन्दिर, पो० करौरा, पटना।

१२३१—धर्मकी रक्षाका कार्य।

—सम्प्रति हिन्दू-धर्मपर कुठाराघात हो रहा है। लेकिन बड़े ही हर्षका विषय है कि आपके समान धर्मात्मा परहितेच्छु महान भाव हमारे इस धर्म-प्रधान भारतमें अवतरित होकर धर्मके प्रचार तथा उसकी रक्षा करनेके लिये अपना सर्वस्व अर्पण करनेको कटिबद्ध हैं।

—सीताराम मिश्र, शास्त्री, हेड पण्डित, चाकन्द हाई स्कूल, जिला गया।

१२३२—पुस्तक बहुत सफल सिद्ध हुई है।

—आपकी कीर्त्ति चारों तरफ फैल चुकी है। आपकी आध्यात्मिक पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' बहुत ही सफल सिद्ध हुई है।

—रामाधार 'राम' पटना वेसिक ट्रेनिङ्ग स्कूल, महेन्द्रू, पटना

१२३३—अच्छे कार्य करनेकी प्रेरणा।

—'गृहस्थ-धर्म' का हमारे प्रान्तमें व्यापक प्रचार हुआ है। इसमें बहुत अच्छी-अच्छी बातें हैं, जिन्हें पढ़कर मनुष्योंको अच्छे कार्य करनेकी प्रेरणा मिलती है। इस पुस्तकके द्वारा मनुष्यका आचरण भी उच्च बनता है।

—सिद्धेश्वर शर्मा, ग्राम बडीहा, पो० पभेड़ा, जिला पटना।

१२३४—सत्यसे परिपूर्ण।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़नेसे पाठककी भावनाएँ धर्मकी ओर अग्रसर होती हैं। यह पुस्तक धर्म और सत्यसे परिपूर्ण है।

—रामप्रताप साव, मोहल्ला रानीगञ्ज, पो० टिकारी, गया।

१२३५—भारतवासियोंका उपकार।

आपकी किताबको पढ़कर मैं इस नतीजेपर पहुंचा हूँ कि इस पुस्तकके द्वारा आपने भारत-वासियोंका बड़ा उपक[illegible] किया है। मैं तथा मेरा सारा परिवार इस पुस्तकसे लाभ उठा रहा है।

—डा० बाजो सिंह, होमियोपैथिक प्रैक्टिशनर, हिन्दुस्तानी प्रेस, [illegible]

१२३६—पुस्तकका महत्व धर्म-ग्रंथोंसे कम नहीं।

—'गृहस्थ-धर्म' अत्यन्त लाभदायक किताब है। रामायण, महाभारत आदि धर्म-ग्रन्थोंसे इसका महत्व किसी दर्जे कम नहीं। ऐसी लोकोपकारी पुस्तकके निर्माणके लिये भगवान आपको दीर्घायु रखे यही मेरी आन्तरिक इच्छा है।

—देवनारायण सिंह यादव, पो० टेहटा, गया।

१२३७—ग्रामीणको वास्तविक शिक्षा देती है।

—अर्वाचीन युगमें कवियोंके कोविद हृदयसे प्रस्फुटित क्रांतिकी झंकृतिने विश्वमें रुक्रांतिकी बाढ़ ला दी है। पर अहा! प्राचीन संस्कृतिकी झलक ने तो मेरे मानसमें आनन्दका घड़ा उड़ेल दिया। इसका श्रेय आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को है। हमारी आर्य संस्कृतिके वाक्य अमृतकी वर्षा करते हैं। प्रस्तुत पुस्तकमें आपने सचमुच वेद, पुराण, उपनिषद् आदि धर्म-ग्रंथोंके अमूल्य रत्नोंको जड़ दिया है। हम ग्रामीण जनताका खेती ही एकमात्र जीवनोपार्जन का सहारा है। हममें अधिकांश निरक्षर और अशिक्षित हैं। मानव-जीवनको पाकर अशिक्षाका अभिशाप सचमुच बहुत दारुण होता है। आपकी यह पुस्तक हम ग्रामीणोंको वास्तविक शिक्षा देती है। इस पुस्तकके द्वारा 'गृहस्थ-धर्म' का मर्म भलीभांति समझमें आ जाता है।

—श्री रघुनन्दन प्रसाद सिन्हा, ग्राम रूपसपुर, पो० हरनौत, पटना।

१२३८—भौतिकवादी मानवका हित।

—आपने एक ऐसी पुस्तक लिखी है, जिससे भौतिकवादी मानवको बड़ा ही फायदा हो सकता है। 'गृहस्थ-धर्म' से यह बात भलीभांति स्पष्ट हो जाती है कि आप इस कलिकालमें भी सतयुगकी आभाको छिड़काना चाहते हैं। अतः आपको कोटिशः धन्यवाद है।

—श्री युगलकिशोर वर्मा, इडवैंकवार्ड होस्टल, इञ्जीनियरिंग कालेज, पटना।

१२३९—बड़ी कामकी वस्तु।

—आपका 'गृहस्थ-धर्म' सचमुच बहुत कामकी चीज है। इसकी एक प्रति प्रत्येक गृहस्थके घरमें रहनेसे उसका बड़ा कल्याण होगा।

—श्री आनन्द प्रसाद ज्योतिषी, मु०-पोस्ट बटसार, जिला भागलपुर।

१२४०—सभी वर्गके लोगोंके लिए हितकर।

—'गृहस्थ-धर्म' संसारके मानवोंके लिए एक अति उत्तम पुस्तक निकली है। यह सभी वर्ग, सम्प्रदाय और स्तरके लोगोंके लिये अति हितकारक और उन्नति पथ-प्रदर्शक है।

—श्री सत्यनारायण सिंह, मन्त्री श्री नवजीवन पुस्तकालय, ग्राम पवय, पो० पोखरया, जिला मुंगेर।

१२४१—जीवन सार्थक ।

—'गृहस्थ-धर्म' सर्वथा संग्रहणीय पुस्तक है । इस किताबको पढ़कर मैं अपने जीवनको सार्थक समझने लगी हूँ । मेरी अनेक सहेलियोंको भी इस किताबने अत्यधिक प्रभावित किया है ।

—श्रीमती शारदा देवी श्रीवास्तव, वीरनामा लौन, मल्लाहटोली, नादरागंज, गया ।

१२४२—अन्धकार का नाश ।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़नेसे अविद्यारूपी अन्धकार दूर होकर विद्यारूपी सूर्यका उदय हो जाता है । धर्म-प्रचारका आपका यह कार्य सर्वथा स्तुत्य है ।

—श्री दासराम दीपराम, सरपेन्टाइन रोड, हाईकोर्ट, पटना ।

१२४३—तहलका मच गया ।

—यह पुस्तक सचमुच बड़ी अनोखी है । हमारे इलाकेमें इसने एक प्रकारका तहलका-सा मचा दिया है ।

—श्री रामप्रदेश सिंह, सहादतनगर, पो० वीर, पटना ।

१२४४—सम्मानमें वृद्धि ।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक द्वारा जनताका उपकार तो होही रहा है, साथ ही इस पुस्तकसे आपका सम्मान भी बढ़ रहा है । भगवान आपका भला करें ।

—सेक्रेटरी वैदिक पुस्तकालय, जहानाबाद, गया ।

१२४५—सच्ची पथ-प्रदर्शक ।

—राष्ट्रोन्नतिकी दिशामें आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' सच्चे पथ-प्रदर्शकका कार्य करती है । इस पुस्तकके आधार पर प्रत्येक गृहस्थ अपनी आत्मिक उन्नति कर सकता है ।

—डा० आर० डी० कनौजी वैद्यराज, ग्राम-पोस्ट जुना धमनगांव, अमरावती ।

१२४६—गृहस्थोंका लाभ ।

—'गृहस्थ-धर्म' द्वारा आप मानव-समाजको उन्नतिके पथपर अग्रसर करा रहे हैं । इस पुस्तकको पढ़ने और इसके उपदेशोंके अनुसार कार्य करनेसे गृहस्थ भाइयोंका अत्यन्त लाभ हो सकता है । ईश्वर आपको दीर्घजीवी बनावें ।

—श्री दोपलाल, ग्राम भगवानगंज, पो० सिगौरी, जिला पटना ।

१२४७—ग्रामीणोंका धर्म-शास्त्र ।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक ग्रामीण जनता तथा विद्यार्थियोंके लिये बड़ा हितकर साबित हुआ है । विशे... ग्रामीणोंके लिये तो यह धर्म-शास्त्र की ही तरह है ।

—श्री रामाश्रेय प्रसाद सिंह शर्मा, ग्राम सलारपुर, पो० परवलपुर...

सम्मतियां और उद्गार !

१२४८—प्राणोंका संचार ।

—इतना लिखना पर्याप्त होगा कि इस पुस्तकसे गृहस्थोंके फटे हृदयमें प्राणोंका संचार होकर जीवनके विविध क्षेत्रों में उनकी उन्नति होगी ।

—श्री रामानन्द सिंह शिक्षक, माध्यमिक विद्यालय, जोगीपुर, पो० हिलसा, पटना ।

१२४९—विशाल व्यक्तित्वका परिचायक ।

—'गृहस्थ-धर्म' में संग्रहित विषय आपकी परोपकारी विचारधारा और विशाल व्यक्तित्वकी स्मृति दिलाते हैं। आपका ध्येय कितना व्यापक है, तथा इतने वृहद व्यापारिक केन्द्रमें रहते हुए भी आर्य-ग्रंथोंमें आपका कितना मोह है, यह इस पुस्तक द्वारा भलीभांति स्पष्ट हो जाता है। आपसे मिलनेकी बड़ी इच्छा होती है। आगे ईश्वरकी जैसी इच्छा हो। आपकी पुस्तकको देखकर कालेजके छात्रों और प्रोफेसरोंने भी इसकी प्रतियोंकी मांग की है।

—श्री वैद्य तीर्थराज मिश्र, व्याकरण-तीर्थ प्राणाचार्य पहाड़पुर, औषधालय, दशाश्वमेघ घाट, काशी ।

१२५०—अन्तःकरणसे धन्यवाद ।

—'गृहस्थ-धर्म' ने राजेन्द्र पुस्तकालयके सदस्यों और गांव के महिला आदर्श शिक्षण शिविरकी सदस्याओंको अपनी ओर आकर्षित किया है। ऐसे पवित्र ग्रंथका प्रचार करनेके लिये हमारे इलाके, कोराय तथा उसके आसपासके निवासी आपके अन्तःकरणसे धन्यवाद देते हैं। आप जैसे पथ-प्रदर्शक और मानव-प्रेमी व्यक्ति की भगवान सदैव कुशल-मंगल बनाये रखे।

—श्री मदनमोहन पाठक (दिनकर) अध्यक्ष, राजेन्द्र पुस्तकालय कोराय, पो० डगूर, जिला गया ।

१२५१—हिन्दू जाति जन्म-जन्मान्तर ऋणी रहेगी ।

—बड़े ही हर्षका विषय है कि श्रीमान्‌ने धर्मकी रक्षाके लिये अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। हिन्दू धर्मको डूबनेसे बचानेके लिये आप जिस प्रकार कटिबद्ध हैं, उसके लिये हिन्दू जाति जन्म जन्मान्तर आपकी ऋणी रहेगी। 'गृहस्थ धर्म' ने हमें यह सन्देश दिया है कि धर्म-प्रेमियोंकी आज भी कमी नहीं है। जनताको धर्माचारी बनानेके उद्देश्यसे ही आप 'गृहस्थ-धर्म' का अधिकाधिक प्रचार कर रहे हैं।

—डा० वासुदेव सिंह, ग्राम सोनाचक, पो० रामबक्स जैतीपुर, पटना ।

१२५२—ग्राम-पंचायतके कामोंमें सहायता ।

—हमारे ग्राममें एक ग्राम-पंचायत है। गाँव तथा उसके आसपासके लोग अपने झगड़े इस पंचायसे तय कर [illegible] हैं। आपकी किताब 'गृहस्थ-धर्म' से पंचायतके कार्योंमें बड़ी सहायता मिली है, और मिल रही है। इस पुस्तकसे [illegible]प्र[illegible]योंको और भी अनेक तरहके लाभ पहुँच रहे हैं।

—रामेश्वर सिंह, देवी बिगहा, पो० असौमा, जिला गया ।

१२५३—प्रकाश देनेवाली पुस्तक ।

—यह पुस्तक आलोक प्रदान करनेवाली है । 'गृहस्थ-धर्म' द्वारा हमारा वर्तमान समाज इस घोर अन्धकारमें अपने निर्दिष्ट मार्गको देख सकता है । आपकी इस पवित्र रचनासे हम सब आभारी हैं ।

—सूर्य्यबली मिश्र, ग्राम पासिवादीकलाँ, पो० त्रिलोचन बड़ा गाँव, जिला जौनपुर ।

१२५४—श्री रामलषणलाल, सुभाष हाई इङ्गलिश स्कूल, इसलामपुर, पो० अतासराय, जिला पटना ।

—'गृहस्थ-धर्म' में अच्छे-अच्छे उपदेश लिखे हुए हैं । ये सब उपदेश गृहस्थ-धर्मके लिये नितांत आवश्यक हैं । इस पुस्तकको पढ़नेसे मेरा हृदय मारे आनन्दके नाच उठा ।

१२५५—श्री भैय्याराम गुप्ता औषधालय, श्रीपत, बिलासपुर ।

—आपने 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक प्रकाशित कर अन्धकारमें पड़ी हुई जनताको सूर्यकी ज्योति दिखलाकर सचेत कर दिया । इस पुस्तकको पढ़नेसे मेरे दिलमें भी नयी स्फूर्ति और उमंगका संचार हुआ है, जिसके लिए मैं जीवन-पर्यन्त आपका आभारी रहूँगा ।

१२५६—श्री जगदेव सिंह, ग्राम बेलदारीपर, पो० नूरसराय, पटना ।

—जनहितके हेतु 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकका प्रचार करनेकी आपने महान कृपा की है । अन्धकारमें भटके हुए मनुष्योंका मार्ग-दर्शन करनेके लिये, उन्हें पतनके गर्तसे बाहर निकालनेके लिये और मनुष्योंके जीवनको सफल बनानेके लिये इस पुस्तकमें बहुत-सी सामग्री भरी हुई है ।

१२५७—श्री यमुना शर्मा, ग्राम चातर, पो० हाटी, जिला गया ।

—'गृहस्थ-धर्म' छात्र-छात्राओंके मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक विकासके लिये अत्यन्त उपयोगी है ।

१२५८—श्री लक्ष्मीकान्त शर्मा, ग्राम सलेमपुर, पो० परैया, गया ।

—आजकल हमारे अधिकांश भाई हिन्दू-धर्म क्या है, इसका क्या महत्व है आदि बातें बिल्कुल भी नहीं जानते । लेकिन हमारा विश्वास है कि 'गृहस्थ-धर्म' से हमारे ऐसे भाइयोंको ज्ञान मिलेगा और उनका अन्धकार दूर होगा । जो लोग पाश्चात्य सभ्यताके नशेमें अपनी संस्कृति और धर्म को भूल गये हैं, उन्हें इस पुस्तकको अवश्य पढ़ना चाहिये ।

१२५९—श्री ताराचरण गिरि महन्थ, मंगलागौरी-मन्दिर, गया ।

—श्रीमान् मनसुखरायजी ! मुझे सचमुच आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को देखकर अपार प्रसन्नता हुई। पुस्तक आजके युगके अनुसार अद्वितीय है ।

१२६०—श्री चन्द्रमणिप्रसाद, मखदुमपुर बाजार, जिला गया।

—वर्तमान समयमें भारत समस्त उन्नत राष्ट्रोंमें पिछड़ा जान पड़ता है। इसका कारण यह है कि यहां अब पहलेके-से वीर, विद्वान, ब्रह्मचारी तथा ज्ञान-विज्ञानकी बातें जाननेवाले नहीं हैं। जिन बच्चोंके मां-बाप ही कच्चे हैं, वे भला कैसे हृष्ट-पुष्ट हो सकते हैं? यह सभी बातें इस कारणसे हो रही हैं कि हमको पूरी तरह 'गृहस्थ-धर्म' की जानकारी नहीं है। जिस दिन भारतवासी गृहस्थ-धर्मको पूरी तरह जान जायेंगे, उस दिन देशकी उन्नति सुनिश्चित होगी। गृहस्थ-जीवन किस तरह व्यतीत करना चाहिये, मां-बापका संतानके प्रति क्या कर्त्तव्य है, पत्नीके प्रति पतिका क्या कर्त्तव्य है, गृहस्थाश्रममें रहनेवाले लोगोंको इन तमाम बातोंकी जानकारी नितांत आवश्यक है। देशकी वर्त्तमान दयनीय परिस्थितियोंके दिनोंमें आपकी ऐसी कृपा हुई कि आपने इन तमाम बातोंसे मानवोंको परिचित कराने के लिये 'गृहस्थ-धर्म' नामक किताब निकाली है। इस पुस्तकसे देशको प्रकाश पहुँचेगा। यह पुस्तक पशु-तुल्य मानवोंको सच्चा मानव बना सकती है।

१२६१—डा० रामचुन्नागनप्रसाद शर्मा, मोजहिदपुर, पो० एकांगसराय, जिला पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' में धर्मकी बहुत-सी बातें भरी हुई हैं। इसकी एक प्रति प्रत्येक शिक्षित नर-नारीको सदैव अपने पास रखना चाहिये।

१२६२—श्री पोपाऊ मिश्र, पाठकटोली, मु० पो० हिलसा, पटना।

—मेरी पत्नीने आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको अपनी एक सहेलीके पास देखा। उसने इस पुस्तकको खरीदकर लानेके लिये मुझे विवश किया। आजकल वह नैहर गयी हुई है। एक साथीसे मुझे आपका पता प्राप्त हुआ है। मेरी इच्छा है कि यह पुस्तक मिलनेपर मैं ससुराल जाऊँगा और उसे अपनी स्त्रीको दे आऊँगा। मेरी स्त्रीकी अनेक सहेलियाँ भी इस पुस्तकको पढ़ना चाहती हैं।

१२६३—श्री सिद्धेश्वर मिस्त्री, मु० चतरनीमा, पो० रफीगञ्ज, गया।

—असंख्य लोग आपकी पुस्तकके अनुसार आचरण करने लगे हैं। इस पुस्तकने हम लोगोंपर अपना प्रभुत्व जमा लिया है।

१२६४—श्री बन्धु चौधरी, शिवनन्दनप्रसाद, मु० पो० हिलसा, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' मानव-जीवनके उत्थानमें बड़ी सहायक है। इस पुस्तकमें अनुपम शिक्षाएं भरी पड़ी हैं।

१२६५—श्री भरतलाल, ब्राह्मणो बाजार चांपा, जिला बिलासपुर।

—धर्म-प्रचारके लिये आप 'गृहस्थ-धर्म' का प्रचार कर रहे हैं, जिसके लिये आपको सहस्रों धन्यवाद है। महिलाओं तथा विशेषकर गृहस्थोंके लिये यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी है।

१२६६—श्री रामेश्वरप्रसाद, ग्राम साण्डा, पो० मसौढ़ी, जिला पटना।

—आपका यश मसौढ़ी थानेमें इतना फैल गया है कि वर्णन नहीं किया जा सकता। आपकी प्रशंसा सुनकर मेरा दिल आनन्द-विभोर हो उठा है। 'गृहस्थ-धर्म' में आपने अपना दिल खोलकर रख दिया है। भला आपका यश क्यों न फैले ?

१२६७—श्री मिश्रीलाल पन्नालाल, मु० पो० बरबीघा, जिला मुंगेर।

—'गृहस्थ-धर्म' बहुत बढ़िया पुस्तक है। इसमें बहुत अच्छी-अच्छी बातें दी गयी हैं। पुस्तक वास्तवमें बहुत हितकारी है।

१२६८—श्री मालिकचन्द यादव, लोहड़ा दौलतपुर, पो० हिलसा, पटना।

—इतनी मोटी और लाभदायक पुस्तक मुफ्तमें देना परमात्मासे कम भलाई करना नहीं है। हम लोगों तो आप ही परमात्माके तुल्य हैं। हम अवश्य ही गरीब हैं, लेकिन आपने हमें अमीरोंसे भी ऊँचा उठा दिया

१२६९—श्री इन्द्रदेव महतो, मखदुमपुर, हाई स्कूल, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' ने आर्यावर्त्तके कोने-कोनेमें धूम मचा रखी है। इसका यश और ख्याति दिनों-दिन सूर्यकी प्रखर किरणोंकी भांति प्रकाशमान हो रही है।

१२७०—श्री पीताम्बरनाथ शर्मा, ग्राम ठाकुरगांव, जिला रांची।

—'गृहस्थ धर्म' नामक पुस्तकसे विश्वका महान कल्याण हो रहा है। इस पुस्तकने मेरे हृदयमें बहुत बड़ा स्थान बना लिया है।

१२७१—श्री याज्ञवल्क्य सिंह, प्रधानाध्यापक, माध्यमिक विद्यालय सिंगरियावां, पो० करापपुर सराय, जिला पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' सर्वथा प्रशंसनीय और पूर्ण धार्मिक ग्रंथ है। प्रत्येक हिन्दूको यह ग्रंथ अपने घरमें रखना चाहिये और उसके अनुकूल आचरण करना चाहिये।

१२७२—श्री आचार्य हरिगोपाल, बी० काम० इनकमटैक्स प्रैक्टिशनर, आचार्य चौक, बीकानेर (राजस्थान)।

—मैंने आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' पढ़ी। पुस्तक पढ़कर चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ। आपने ऐसी पुस्तक प्रकाशित करवाकर धर्म, देश और समाजकी वास्तविक सेवा की है। इसके लिये आपको हार्दिक धन्यवाद है। इस नास्तिकताके युगमें जबकि हमलोग पाश्चात्य रंगमें रंगे हुए हैं, आपकी पुस्तक लोगोंको ज्ञान देकर सही रास्ते पर ला सकती है। कमसे कम मैं और मेरे साथी तो इससे बहुत ही प्रभावित हुए हैं। ऐसी पुस्तकोंकी वास्तवमें बड़ी आवश्यकता है। यह पुस्तक प्रत्येक सद्गृहस्थके घरमें रखने लायक है।

१२७३—श्री लक्ष्मीप्रसाद शुक्ल, ग्राम अड़भार, जिला बिलासपुर।

—'गृहस्थ-धर्म' एक अत्युत्तम पुस्तक है। यह पुस्तक हिन्दुस्तानके सभी वर्गोंके गृहस्थाश्रमके लिये प्राण-स्वरूप है।

१२७४—श्री अमृत प्रसाद सिंह, ग्राम दरिया चौक, पोस्ट बरबीघा, मुंगेर।

—इस पुस्तकमें आपने मानव समाजको उन्नत करनेका सही रास्ता दिखाया है। प्रत्येक व्यक्तिको इसे पढ़नेसे कुछ न कुछ लाभ अवश्य ही हो सकता है।

१२७५—श्री रामलषण सिंह, ग्राम शाहजहांपुर, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' द्वारा अन्य बातोंके साथ साहित्यकी भी बड़ी सेवा हुई है। इसके लिये हम साहित्य-सेवी आपके आभारी हैं।

सम्मतियां और उद्‌दार !

१२७६—श्री रामलषण प्रसाद सिंह, ग्राम चखांवा, पोस्ट रफीगञ्ज, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक इस बातका प्रतीक है कि आप समाजके उद्धारके लिये काफी कोशिश कर रहे हैं। यह वास्तवमें बहुत ही अच्छी पुस्तक है। इस पुस्तकसे निस्संदेह जनताका अपरिमित हित हो सकता है। पुस्तक द्वारा आपकी भावनाओं और विचारोंका भलीभांति दिग्दर्शन हो जाता है। आपने समाजको सभ्य एवं शिक्षित बनानेके उद्देश्य से 'गृहस्थ-धर्म' के रूपमें एक आदर्श उपस्थित किया है।

१२७७—श्रीमती शारदा देवी, ग्राम लैलख पो० घोघा, भागलपुर।

—आपकी किताब 'गृहस्थ-धर्म हम दीन और अनाथ महिलाओंके लिये जीवनका सहारा बन गयी है। यह अत्यन्त ही सुन्दर पुस्तक है।

१२७८—श्री बेनीमाधव प्रसाद, ग्राम माधोपुर, सवतहुआ, पो० हरनौत, पटना।

—धर्मके प्रति मेरी भावना अधूरी थी। लेकिन आपकी किताब 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर मेरे धार्मिक विचारोंमें परिपक्वता आ गयी है। मैं अपने चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश पा रहा हूँ।

१२८९—श्री प्रभाकर झा, ग्राम डेमरा, पो० ए० डी० मशिपुर, जिला दुमका।

—हमारे गांवके करीब एक सौ व्यक्ति अपने समयको व्यर्थमें नष्ट करते थे। व्यर्थकी बातोंसे मन बहलाव होता था। लेकिन जबसे आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक किताब इस गांवमें पहुँची है, लोग एकत्रित होकर उसे सुनते हैं। सुनाने वालोंको भी बड़ा आनन्द मिलता है।

१२८०—श्री वासुदेव सिंह, बेलागंज, गया।

—आपकी किताब किसानोंके बड़े काम की है। इसमें जीवनोपयोगी अनेक बहुमूल्य उपदेश भरे पड़े हैं।

१२८१—श्री रामभजु पण्डित, ग्राम चरेत, पो० हरनौत, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' की भूरि-भूरि प्रशंसा हो रही है। अपढ़ तथा सभ्य सभी वर्गके लोग इसके प्रति बड़ा आदर-भाव दिखला रहे हैं। गृहस्थोंके लिये तो आपकी यह धर्म-पुस्तक अत्यन्त ही उपयोगी है।

१२८२—श्री रामचन्द्र प्रसाद, ग्राम पण्डया चौक, पटना।

—मेरा जीवन बड़ा दुखमय था। किसी काममें तबियत नहीं लगती थी। लेकिन जबसे मैंने आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़ा है, मेरा दिल बदल गया है। मैं नया जीवन अनुभव कर रहा हूँ। ऐसी अनुपम किताब निकालने के लिये आपको कोटिशः प्रणाम।

१२८३—श्री ब्रजमोहन प्रसाद, हिलसा, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर बहुत ज्ञान मिलता है। इस पुस्तकको प्रकाशित कर आपने मनुष्यों [illegible] दिखलाया है।

सम्मतियाँ और उद्गार !

१२८४—श्री श्रवणकुमार महारथी, उच्चाङ्गल विद्यालय, करायपरसराय, जिला पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' के साथ-साथ श्री मनसुखराय मोर का यश भी विजलीकी तरह प्रकाशित हो रहा है। इस पुस्तक को पढ़कर मैं इतना अधिक प्रभावित हुआ हूँ कि मैंने आजीवन इसके नियमोंका पालन करनेका व्रत धारण कर लिया है।

१२८५—पं० गनौरी पाण्डेय, ग्राम रायपुर कोयाबीघा, पोस्ट चण्डी, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' कृषकों तथा गृहस्थोंकी रामायण बन चुकी है। यह सर्वत्र आदर पा रही है। कृषक लोग इसे पढ़कर बहुत ज्ञान प्राप्त करते हैं। आप वास्तवमें धन्य हैं।

१२८६—श्री बलदेव नारायणलाल मास्टर, लंगूर गली, पटना सिटी।

—वर्तमान समयकी धार्मिक पुस्तकोंमें 'गृहस्थ-धर्म' का स्थान अग्रगण्य है। यह मानवको आध्यात्मिक शक्ति का विकासकर उसे उन्नतिकी ओर अग्रसर करती है।

१२८७—श्री बालचन्द चौधरी, हाई स्कूल हाटी, लोदीपुर, गया।

—हिन्दू धर्मको फिरसे उज्ज्वल करनेवाली यह 'गृहस्थ-धर्म' अद्वितीय और निराली पुस्तक है। इस पुस्तकको पढ़नेसे बड़ी शांति प्राप्त होती है।

१२८८—श्री प्रधानमन्त्री, जनता हितैषी पुस्तकालय, गुसाईं मठ, पो० बाली-बेलछी, जिला पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' द्वारा आप सचमुच मानवताकी बड़ी सेवा कर रहे हैं। हमारे पुस्तकालयमें 'गृहस्थ-धर्म' की बड़ी कमी महसूस की जा रही है। इस पुस्तकको हमें कमसे कम दस प्रतियाँ चाहिये, क्योंकि सदस्यगण इसकी अत्यधिक मांग करते हैं। यदि इन प्रतियोंके लिये कुछ रकम भी लगे, तो आप निसंकोच लिखें, हम सहर्ष भेज देंगे।

१२८९—श्री मुन्द्रिका प्रसाद, माध्यमिक विद्यालय, हाटी।

—यह पुस्तक हम विद्यार्थियोंके मानसिक विकासके लिए अत्यन्त उपयोगी है। विद्यार्थियोंकी मानसिक उन्नति पर राष्ट्रका जीवन निर्भर करता है। इस प्रकार आप वास्तवमें राष्ट्रीय जीवनको उच्च बनानेमें सहायक हैं।

१२९०—मन्त्री आदर्श पुस्तकालय, मु० बाकीपुर, पो० पतुहा, जिला पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' को निःशुल्क बांटकर आप जाति और धर्म की बड़ी तरक्की कर रहे हैं। इस पुस्तकसे अच्छे कार्य करनेकी प्रेरणा मिलती है। स्पष्ट है कि आपके हृदयमें देश, जाति और धर्मकी भलाई करनेकी धुन सवार है।

१२९१—श्री सत्येन्द्रकुमार सिंह, मुकाम कोरी, हजारीबाग।

—आप जैसे सम्पन्न और धर्मानुरागी महानुभावोंके सदनुष्ठानसे हिन्दू जातिमें धर्मकी लौ अब भी टिमटिमा [illegible] 'गृहस्थ-धर्म' से मनुष्योंको ज्ञानकी प्रखर ज्योति मिलती है, और उनके अज्ञान-रूपी अन्धकारका नाश होता [illegible] आपको दीर्घायु रखें।

१२६२—श्री शिवचरण प्रसाद, मुकाम सिकदर, पो० बुनियादगञ्ज, गया।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकमें ज्ञानकी बातें भरी हुई हैं। यह पुस्तक गीता, वेद और रामायण की ही तरह पूजनीय है।

१२६३—श्री नन्दलाल, पो० कराई परसुराई, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक हम मानवोंके लिये कल्याण मार्ग-प्रदर्शक है। प्रत्येक मानव इसको पढ़कर लाभान्वित होते हैं।

१२६४—श्री रघुनन्दनप्रसाद तिवारी, मु० राजेश्वर मन्दिरके पास, बरार।

—आपके द्वारा प्रचलित 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर मनुष्योंके हृदयका घोर अन्धकार दूर हो जाता है। इसे पढ़कर मेरा अज्ञान-रूपी अन्धकार बहुत हदतक दूर हो गये।

१२६५—श्री सेना भगत, पो० गुम्बला, रांची।

—'गृहस्थ-धर्म' की एक-एक पंक्ति उच्च विचारसे ओत-प्रोत एवं उपादेयसे परिपूर्ण है। ऐसी अमूल्य पुस्तकके लिये आपको कोटिशः प्रणाम।

१२६६—रामसिंह, पो० कराई परसराई, पटना।

—जिस व्यक्तिकी अभिलाषा आपके द्वारा प्रकाशित इस ग्रन्थके अध्ययनकी ओर रहेगी, उसका दुर्विचार शीघ्र ही अन्तःकरणसे विदा हो जायगा।

१२६७—श्री गयाप्रसाद चौबे, पो० रामगढ़, बिलासपुर।

—आपने भारतवासियोंके लिये एक अमूल्य वस्तु निकाली है, जो देशकी गिरी अवस्थाको ऊंचा उठा सकती है। 'गृहस्थ-धर्म' वास्तवमें अनुपम रत्न है।

१२६८—श्री रामईश्वरप्रसाद सिंह, पो० हिलसा, पटना।

—वर्तमान समयमें हमारे देशमें धर्मकी कमी है। मैं ग्रामीण जनताके मध्य आपकी पुस्तकके अमृत-तुल्य उपदेशोंका प्रचार कर रहा हूँ।

१२६९—श्री बुधीनाथ महतो, पो० बड़कागांव, हजारीबाग।

—बड़े सौभाग्यकी बात है कि लोक-हितार्थ ऐसी उपयोगी किताब मुफ्तमें दे रहे हैं। मुझे 'गृहस्थ-धर्म' के प्रति अति श्रद्धा है।

१३००—श्री मखनलाल जैसवाल, शालिनी रोड, मध्य-भारत।

आपके द्वारा प्रचलित 'गृहस्थ-धर्म' सिर्फ पठनीय ही नहीं बल्कि नित्य पूजा-पाठ करने योग्य है।

सम्मतियाँ और उद्गार !

१३०१—श्री महावीर पुस्तकालय, पो० नूरसराय, पटना ।

—आप एक महान ईश-भक्त और देश-शुभचिन्तक हैं। इसका प्रमाण हमें आपके द्वारा प्रचलित 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकसे मिल जाता है। जनता इस पुस्तकसे अतिलाभ उठा रही है।

१३०२—श्री रामविलास सिंह, पो० हिलसा, पटना ।

—सभी मनुष्य गरीबोंको नीची दृष्टिसे देखते हैं। आप धन्य हैं कि 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक प्रकाशित कर निःशुल्क वितरित कर रहे हैं। मुझे उपर्युक्त पुस्तक पढ़नेसे बहुत लाभ हुआ है।

१३०३—श्री रामनारायणप्रसाद, पो० हिलसा, पटना ।

—आपकी पुस्तक जब गृहस्थ-समाजमें प्रवेश करती है तो मानो धर्मका फैलाव होने लगता है। मुझे 'गृहस्थ-धर्म' के प्रति अत्यन्त प्रेम हो गया है। मैं नित्य इसका पाठ करता हूँ।

१३०४—श्री मथुराप्रसाद वर्मा, पो० नौबतपुर, पटना ।

—आपके द्वारा प्रचलित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर मेरा जीवन सुखमय बन रहा है। ईश्वर आपको दीर्घायु रखें।

१३०५—श्री रामेश्वर दयालु, जीवन सुधार औषधालय, हजारीबाग ।

—'गृहस्थ-धर्म' को देखकर मन आनन्दित हुआ। मुझे इसको पढ़कर अपार आनन्द और स्वर्गीय सुख प्राप्त होता है।

१३०६—श्री लोकनाथ शर्मा, पो० चांपा, बिलासपुर ।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर जनता जीवन भर आपकी ऋणी रहेगी। इसे प्रकाशित कर आप अमर हो चुके हैं।

१३०७—श्री चन्द्रेश्वर झा, पो० डोमचांच, हजारीबाग ।

—आपके द्वारा प्रचलित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर प्रत्येक मनुष्य अपनी जीवन-नौका आसानीसे पार लगा सकता है। मुझे इस पुस्तकके प्रति अति श्रद्धा उत्पन्न हो गयी है।

१३०८—श्री रामगोविन्द मिश्र, कसाप, आरा ।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक, खासकर नवयुवकोंके लिये, जिनके ऊपर गृहस्थीका बोझ पड़नेवाला है, अति आवश्यक है। इसका प्रत्येक उपदेश अमृत-तुल्य है।

१३०९—श्री रामदुलारे दुबे, पो० कसडोला, रायपुर ।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकसे अनभिज्ञ लोगोंको आगे बढ़नेका अवसर मिल रहा है। इस पुस्तककी थोड़े ही [illegible]ति फैल गयी है।

सम्मतियाँ और उद्गार।

१३१०—श्री गोपाललाल, पो० लोहरदागा, रांची।

—इस महादानसे आपका यश संसार ही गा रहा है। परमात्मा करें आप और भी धन-जनसे सम्पन्न हों। आपकी 'गृहस्थ-धर्म' सभी वर्गके लोगोंके लिये महान कल्याणकारी है।

१३११—श्री सूर्यनारायण प्रसाद, पो० घोघा, जिला भागलपुर।

—आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' गृहस्थोंकी नशोंमें नये रक्तका संचार कर रही है।

१३१२—श्री लालाप्रसाद सिंह, पो० कोशियांवा, पटना।

—इस पुस्तकको पढ़कर अपार हर्ष होता है कि आपने जो देशको उन्नतिशील बनानेके लिये परिश्रम किया है, वह सर्वथा अवर्णनीय है। जबतक यह किताब विद्यमान रहेगी, तबतक आपका नाम भी इस संसारमें अमर रहेगा।

१३१३—श्री गोपालशरण सिंह, आरा।

—आपने 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक निकाल कर जनताका बहुत बड़ा उपकार किया है। वर्तमान समयमें आपकी इस किताबकी बड़ी आवश्यकता थी। आपने वास्तवमें एक बड़ी कमीको पूरा किया है।

१३१४—श्री कमलेश्वर शर्मा, गया।

—बड़े हर्षकी बात है कि आप जैसे परोपकारी और धार्मिक सज्जन हमारे देशमें उत्पन्न हुए हैं। आपके द्वारा की हुई भलाई आदर्श-स्वरूप है। मैं 'गृहस्थ-धर्म' का प्रचार करना चाहता हूँ।

१३१५—श्री रामजन्म सिंह, मुकाम रानीपुर, फुलवारीशरीफ, पटना।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' धार्मिक, नैतिक तथा सामाजिक सभी तरहके उद्देश्योंसे परिपूर्ण है। आपने दरअसल तमाम धर्म-ग्रंथोंका सार इसमें भर दिया है।

१३१६—श्री मुन्द्रिका सिंह, शाहाबाद।

—अच्छा गृहस्थ बननेके लिये आपकी 'गृहस्थ-धर्म' किताब परमावश्यक है। अनेक गृहस्थ इसे पढ़कर अपना जीवन सुधार रहे हैं।

१३१७—श्री शंकरलाल, बिजनौर।

—इस पुस्तकको छापकर आपने जन-समुदायका उपकार किया है। मुझे इस पुस्तकमें जीवनकी ज्योति दिखाई पड़ी।

१३१८—श्री बद्रीनारायण, पटना।

—मैंने आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक पढ़ी। वर्त्तमान भारतमें ऐसी पुस्तकोंकी बड़ी आवश्यकता है। अ[illegible] एक बड़ी कमी की आवश्यक पूर्ति की है।

१३१९—श्री छेदी सिंह हेड मास्टर, सतीचौरा लो० प्रा० स्कूल, पो० बेगमपुर, पटना।

—मैंने आपकी 'गृहस्थ-धर्म' का अवलोकन किया। इस पुस्तकने मेरे हृदयको बहुत प्रभावित किया।

१३२०—श्री गोपाल तिवारी, भागलपुर।

—'गृहस्थ-धर्म' पढ़कर मेरे हृदयमें आपके प्रति असीम श्रद्धा उत्पन्न हो गयी है। आपकी यह पुस्तक हिंदी संसारकी अद्वितीय पुस्तकोंमें अग्रगण्य स्थान प्राप्त करेगी।

१३२१—श्री रामविसु प्रसाद, पो० मार्था, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक निःशुल्क जनताके बीच पहुँचानेका उद्देश्य पवित्र है। इसके लिये आपको हार्दिक धन्यवाद है। इस पुस्तकसे लोगोंका बड़ा हित हो रहा है।

१३२२—श्री हरिनन्दन प्रसाद, पो० शकुराबाद, गया।

—सबसे बड़ी बात यह है कि आप हिंदू-धर्मके उखड़े हुए स्तम्भको पुनः दृढ़ रखनेके लिये अग्रसर हुए हैं। इसके लिये आपको अंतःकरण से धन्यवाद है। आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक संसारकी बेजोड़ पुस्तकोंमें है।

१३२३—श्री बाबू रामलखन सिंह, मोकाम बलिया, पो० आम्रा, गया।

—मुझे 'गृहस्थ-धर्म' एक बहुत ही हितकारी तथा धर्मोत्पादक पुस्तक ज्ञात हुई। इसके लिये आपको हार्दिक धन्यवाद है। आपने इस पुस्तक द्वारा धर्मका प्रतिपादन किया है।

१३२४—श्रीमती पार्वती देवी, पो० बुनियादगंज, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' वास्तवमें गृहस्थाश्रमको उच्च स्तर पर ले जानेका अत्युत्तम साधन है। स्त्रियोंके लिये यह महान संरक्षिकाका कार्य करती है।

१३२५—श्री चूरामनलाल पटेल, मो० साल्हे, पो० कोटनो, बिलासपुर।

—आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तकमें उत्तमसे उत्तम विषयोंका समावेश है। इसको पढ़कर प्रत्येक आदमी लाभान्वित हो सकता है।

१३२६—श्री गोखुल प्रसाद, मुकाम ओडाली बनीपैथन, उत्तरप्रदेश।

—मैंने आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर अपने जीवनमें काफी उधार किया है। दिल आपके चरणोंमें लोटना चाहता है।

१३२७—श्री दुन्नीशाह, मो० महवरी मिलकी, पो० अत्तासराय, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको देखकर मन प्रफुल्लित हो उठा। मेरे ग्रामके सभी लोग इस पुस्तकके प्रति बहुत ही गदगद हैं।

१३२८—श्री शारदा देवी, श्री आर्य भाषा औषधालय, योगीपुर, पो० हिलसा, पटना ।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' वास्तवमें हम अबलाओंके लिये अति हितकर पुस्तक है । इसके गुण अवर्णनीय हैं ।

१३२९—श्री मन्त्री रामरत्न सिंह, रामगढ़ पुस्तकालय, पो० मिर्यागंज, पटना ।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' को देखकर बड़ा आनन्द हुआ । धन्य हैं आप जो ऐसी पुस्तकको निःशुल्क वितरित कर रहे हैं ।

१३३०—श्री मथेश्वर मिश्र, मो०-पो० पचरुखिया, शाहाबाद, आरा ।

—आपका यह अथक प्रयास बड़ा ही सराहनीय है । धनका सदुपयोग इसीको कहते हैं । आपकी 'गृहस्थ-धर्म' सर्वथा पाठ करने योग्य है ।

१३३१—श्री रवीन्द्रकुमार सिंह, कुंजापी, गया ।

—आपके द्वारा छपाये गये ग्रंथकी उपयोगिताके बारेमें सभी व्यक्ति मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करते हैं । इसे पढ़कर मैंने बहुत लाभ उठाया है ।

१३३२—जीवनमें सुधार ।

—आपकी किताबको पढ़कर मेरे जीवनमें बहुत सुधार हुआ है । मेरी तरह और भी न जाने कितने व्यक्तियोंके जीवनको इस पुस्तकसे नयी दिशा मिली होगी ? मेरा हृदय आपके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता है ।

—देवशरण महतो, ग्राम डीह, पो० बरबीघा, जिला मुंगेर ।

१३३३—श्री यदुनन्दन प्रसाद सिंह, ग्राम सिन्दूआरा, चण्डी ।

—'गृहस्थ-धर्म' का प्रचार कर आप संसारकी जो सेवा कर रहे हैं, कार्यमें आपकी मनोकामना पूर्ण हो, मेरी यही भगवानसे प्रार्थना है ।

१३३४—श्री रामलाल कलवार, पो० अड़भार, विलासपुर ।

—आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़नेसे प्रत्येक विद्यार्थीके चरित्रका निर्माण हो सकता है ।

१३३५—भारतवासी कृतज्ञ रहेंगे ।

—आपकी इस किताबमें ज्ञानकी बहुत-सी बातें भरी पड़ी हैं । यह पुस्तक वास्तवमें धर्म-ग्रंथोंका बहुमूल्य निचोड़ है । इसका अध्ययन कर मैं अपने जीवनमें बहुत सुधार पा रहा हूँ । आप धन्य हैं । आपकी महिमा अपरम्पार है, जो दूसरोंकी भलाईके लिये इतना कष्ट उठा रहे हैं । वास्तवमें इस संसारमें जन्म लेकर जो दूसरोंकी भलाईमें अपने जीवनको बिता देते हैं, वे धन्य हैं । भारतवासी आपके सदैव कृतज्ञ रहेंगे ।

—गणपतप्रसाद, पो० पतराव, जिला हजारीबाग ।

सम्मतियाँ और उद्गार !

१३३६—श्री बैनदास पनका, मो०-पो० बांसवड़िया, हुगली।

—'गृहस्थ-धर्म' धार्मिक विषयोंसे ओत-प्रोत है। इसको पढ़कर मैंने अनेक गुण प्राप्त किये हैं।

१३३७—श्री मोजराम पटेल, मो० वगरेल, पो० सपोस, बिलासपुर।

—आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक आज आर्यावर्तके कोने-कोनेमें गूँज रही है। 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़ने पर प्रत्येक मानवका चरित्र सुधर सकता है। मुझे इस पुस्तकको पढ़कर स्वर्गीय सुख प्राप्त होता है।

१३३८—जीवन सफल बन सकता है।

—'गृहस्थ-धर्म' एक अलौकिक धार्मिक ग्रंथ है। इसके सदुपदेशोंको अपने जीवनमें उतारनेसे प्रत्येक मानवका जीवन सफल बन सकता है और वह भवसागरसे आसानीसे पार हो सकता है। ऐसी अलभ्य पुस्तकके प्रकाशनके लिये भारतवासी जन्म-जन्मान्तर आपका गुणगान करते रहेंगे।

—सदानन्दप्रसाद शर्मा, पो० बरहरवा, जिला दुमका (संथाल परगना)

१३३९—सहस्रों व्यक्ति दुवा दे रहे हैं।

—आपको पुस्तकको अनेक पथ-भ्रष्ट व्यक्तियोंके जीवनको सुधारनेका श्रेय प्राप्त हो रहा है। ऐसी सुन्दर पुस्तकके प्रकाशनके लिये आपको सहस्रों व्यक्ति हृदयसे दुवाएं देते हैं।

—राधेश्याम सिंह, ग्राम पवय, पो० पोखरमा, मुंगेर।

१३४०—अत्यधिक प्रिय।

—आपको धार्मिक किताब 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़नेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह पुस्तक अत्यन्त सुन्दर है। मुझे तो यह अत्यधिक प्रिय लगी। मेरी धारणा है कि प्रत्येक गृहस्थोंको यह अवश्य पसन्द आयेगी।

—हरिकृष्ण अग्रवाल 'विशारद' चिरनवीसगंज, छिन्दवाड़ा (मध्यप्रान्त)।

१३४१—बहनें शिक्षा ग्रहण करती हैं।

—'गृहस्थ-धर्म' को जो भी बहनें पढ़ती हैं, वे इससे कुछ-न-कुछ शिक्षा ग्रहण करती हैं। आपकी यह किताब दरअसल बहुत गुणकारी है।

—कविलासा बाई शर्मा, मुकाम पोस्ट गतौरा, जिला बिलासपुर।

१३४२—पुस्तकके लिये बेचैन।

—आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म'को पढ़कर हमारी सहेलियोंके हृदयमें ज्ञान प्राप्त होता है। यह किताब सबसे पढ़ने योग्य है। इसे प्राप्त करनेके लिये मेरी बहुत ही सहेलियां बेचैन हैं।

—श्रीमती रुनियां कुंवर, ग्राम साहबनगर, पो० जक्षुमरी, जिला पटना।

१३४३—जीवनकी काया-पलट ।

—आपने 'गृहस्थ-धर्म' को छापकर हिन्दू-समाजकी बहुत भलाई की है। समस्त हिन्दू-समाज आपकी इस उदारताके लिए चिर ऋणी रहेगा। इसके उपदेशोंपर चलकर पथ-भ्रष्ट व्यक्तियोंके जीवनकी कायापलट हो सकती है।

—भोलाप्रसाद भगत, पो० बन्दनवार, जिला सन्थाल परगना।

१३४४—यशका गुणगान ।

—आपने देशके उपकारार्थ 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक प्रकाशित की है। आपके इस कार्यसे देशके-कोने-कोनेमें आपके यशका गुणगान हो रहा है।

—पं० द्वारिकाप्रसाद मिश्र, ग्राम परियाना, पो० लोहसराय, जिला पटना।

१३४५—धार्मिक भावनाओंकी परिपक्वता ।

—संसारमें धर्म ही सर्वश्रेष्ठ है। इसीके आधारपर संसार चल रहा है। आपने 'गृहस्थ-धर्म' जैसी श्रेष्ठ धार्मिक पुस्तक छापकर संसारके मनुष्योंमें धार्मिक भावनाको परिपक्व करनेमें योगदान दिया है।

—इन्द्रदेवप्रसाद मास्टर, माकुम जुङ्गी स्कूल, जिला डिब्रूगढ़, आसाम।

१३४६—पुस्तकालयकी उपयोगिता वृद्धिगत् ।

—'गृहस्थ-धर्म' का अवलोकन और मनन किया। इसमें अनेक धर्म-ग्रंथोंका सार है। यह वास्तवमें अति उत्तम पुस्तक है। इस पुस्तकसे हमारे पुस्तकालयकी उपयोगिता बढ़ी है।

—डा० वृन्देश्वर प्रसाद, ग्राम मुसैला, पो० लखैपुर, जिला गया।

१३४७—पुस्तकके प्रचारार्थ सभाकी स्थापना ।

—आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि पं० रामयश आचार्यने सीतापुर जिलान्तर्गत बिसवां नामक स्थानमें आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' का प्रचार करने एवं मनुष्योंको सत्मार्ग पर चलने और मोक्षका भागी बनानेके लिये एक ब्राह्मण सत्संग सभा स्थापित की है। इस सभाके द्वारा 'गृहस्थ-धर्म' तथा उसके उपदेशोंका धूमधामसे प्रचार हो रहा है।

—श्री सिद्धनाथ सिंह, शुगर मिल बिसवां, जिला सीतापुर।

१३४८—ग्रंथसे कल्याण ।

—'गृहस्थ-धर्म' में गृहस्थोंके जानने योग्य बहुत-सी बातें हैं। सनातन-धर्मावलम्बियोंके लिये तो यह बहुत आवश्यक ग्रंथ है। जनताका इस ग्रंथसे कल्याण होगा। भगवान आपका कल्याण करें।

—श्री कामेश्वर सिंह, ग्राम असियावा, पो० चिजोंरा, जिला

१३४९—जीवनकी गति बदल जाती है।

—आपकी पुस्तक "गृहस्थ-धर्म" की सर्वत्र प्रशंसा हो रही है। यह पुस्तक वास्तवमें प्रत्येक मनुष्यके लिये आदर्श है। इससे जीवनकी गति ही बदल सकती है।

—श्री नारायणदास गोठी, एम० ए० एल० टी०, रजिस्ट्रार, शिक्षा-विभाग परीक्षा, १४, बैंक रोड, इलाहाबाद।

१३५०—मानव-जातिकी ठोस सेवा।

—'गृहस्थ-धर्म' से हमलोगोंको बड़ा उत्साह मिल रहा है। मेरा विश्वास है कि आपकी इस पुस्तक द्वारा हमारे देशके नैतिक स्तरको उच्च होनेमें बड़ी सहायता प्राप्त होगी। मैं तो यहाँतक कह सकता हूँ कि इस पुस्तकका समुचित रूपसे अध्ययन करनेसे अखिल मानव-जाति सभ्यताकी उच्च सीढ़ी पर चढ़ सकती है। मानव-जातिकी ठोस और रचनात्मक सेवा की है।

—श्री नरसिंह प्रसाद सिन्हा, ग्राम नौडीह, पो० खिजरसराय, जिला गया।

१३५१—मनुष्यका जीवन सफल होगा।

—यह एक बहुत अच्छी किताब है। इसका अध्ययन करनेसे मनुष्यका जीवन सफल हो जायेगा। आपकी इस पुस्तकसे लोगोंका बड़ा उपकार होनेवाला है। परमात्मा आपके परिश्रमको सफल करें।

—श्री फिरंगी मिस्त्री, हंसाडीह स्कूल, हजारीबाग।

१३५२—श्री मानिकचन्द गुप्त, मुकाम किरारी, पोस्ट सपोम, बिलासपुर।

—'गृहस्थ-धर्म' किताबका सब जगह बहुत प्रचार हो रहा है। वह किताब बहुत सुन्दर और धर्म उपदेश तथा पढ़ने योग्य है। इसमें स्त्री और पुरुषोंमें धर्मका असर पड़नेकी बातें हैं। हमें इस किताबपर बहुत श्रद्धा है।

१३५३—श्री जानकीप्रसाद, पो० परसा, जिला पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' जैसे श्रेष्ठतम प्रकाशनके लिये हार्दिक साधुवाद! देश एवं समाजकी इस उपकार प्रियताका शुभ प्रयत्न सर्वथा अनुकरणीय है।

१३५४—श्री जगन्नाथ सिंह, पो० अतासराय, पटना।

—कृपया लौटती डाकसे मन्दिरके शिक्षार्थियोंमें वितरणके लिये कुछ प्रतियाँ भेज दें। मन्दिर इसके लिये आपका स्वीकार कर रहा है।

१३५५–रात्रि पाठशाला की पाठ्य-पुस्तकोंमें सम्मिलित।

—हमारे ग्राममें कई महीनोंसे एक रात्रिकालीन पाठशाला चल रही है। जो व्यक्ति स्कूलमें नहीं पढ़ सकते हैं, वे इस पाठशालामें पढ़ रहे हैं। बूढ़े-जवान सभीके लिये यह पाठशाला है। इसमें राजनीति, इतिहास, हिसाबकी पढ़ाई होती है। जबसे हमें आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक प्राप्त हुई, हमने गृहस्थी-सम्बन्धी विषयको भी पाठशालाके पाठ्य-विषयोंमें जोड़ दिया है। 'गृहस्थ-धर्म' का पढ़ाया जाना प्रारम्भ हो गया है। इस पुस्तकसे प्रौढ़ लोगोंको शिक्षा दी जाती है। हमारे पास सिर्फ एक ही प्रति है, जिससे शिक्षा-दानमें बड़ी कठिनाई हो रही है। आप कृपाकर २५-३० प्रतियां भेज सकें, तो बड़ी सुविधा और उपकार होगा।

—लक्ष्मणप्रसाद, 'दीन' रात्रि-पाठशाला, नसीरपुर,
पो० कोबिल, पटना।

१३५६–धार्मिक जागरूकता ।

—'गृहस्थ-धर्म' को वितरित कर आपने गृहस्थ-धर्मके पुनरुत्थान में बड़ी सहायता दी है। आपकी इस पुस्तकसे धार्मिक जागरूकता आई है। इस पुस्तक के आधार पर विद्यार्थियों को प्रतिभाशाली नागरिक बनने में बड़ा सहयोग प्राप्त हो रहा है। हमें कम-से-कम २०० प्रतियों की और आवश्यकता है।

—रवीन्द्रनाथ 'रवि', अध्यापक ।
श्रीनारायण सिंह, 'आर्य' मंत्री ।
लखनलाल, अध्यापक ।
भागीरथ प्रसाद, अध्यापक ।
विहारीशरण, अध्यापक, ।
मथुराशरण शर्मा, अध्यापक ।
विमलचरण, अध्यापक ।
श्रीराम जानकी माध्यमिक विद्यालय,
गुरुशरणपुर, पो० बेन, पटना ।

१३५७—ब्रह्मचर्यकी कुञ्जी ।

—'गृहस्थ-धर्म' को ब्रह्मचर्यकी कुञ्जी कहा जाय, तो मैं समझता हूँ कि कोई अत्युक्ति न होगी। मेरे लिये तो यह किताब बहुत आवश्यक सिद्ध हुई है। मुझे बहुतसे हृदयके रोगोंका सामना करना पड़ रहा था। इस पुस्तकसे मुझे बहुत सहायता मिल रही है।

—रकटू चौधरी, ग्राम खोशडीहरा, पो० शंकरपुर, ईमामगञ्ज, गया।

१३५८—सर्वथा संग्रहणीय ।

—आपने बहुत कठिन परिश्रमके साथ इस पुस्तकको प्रकाशित किया है। यह सर्वथा संग्रहणीय पुस्तक है। ऐसी आदर्श पुस्तककी रचनाके लिए कोटिशः धन्यवाद।

—नरसिंहदास वैष्णव, ग्राम पो० ठठारी तहसील, जांजगीर, जिला बिलासपुर।

१३५९—ग्रामीणोंकी विशेष रुचि ।

—इस पुस्तकके द्वारा आप अपने कर्त्तव्यसे अपरिचित लोगोंको प्रकाश दिखला कर उनके जीवनको सुखमय बनानेमें सहायक हो रहे हैं। हमारे ग्रामके भोले-भाले ग्रामीणोंने इस पुस्तकके प्रति विशेष रुचि दिखलायी है।

—लालदासराम, ग्राम छाताडिहरी, पो० सरना, जिला गया।

१३६०—एक बार पढ़नेसे तृप्ति नहीं होती ।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर हम अपनेको कृतार्थ समझते हैं। इसकी बड़ाई कहांतक की जा सकती है। इसे एक बार पढ़नेसे तृप्ति नहीं होती। बार-बार पढ़नेको जी चाहता है। इसकी महिमाका गुणगान करना शक्तिके बाहर है।

—द्वारकाप्रसाद, पो० बूरमू, जिला रांची।

१३६१—पुस्तकके उपदेशोंपर अमल ।

—आपकी किताब देशभरमें विख्यात हो रही है। इस किताबको पढ़कर बहुतसे लोग इसके अनुसार काम करने लगे हैं। 'गृहस्थ-धर्म' की शिक्षाएं वास्तवमें ज्ञानसे भरी हुई है।

—रामगती मिस्त्री, ग्राम हाजीपुर, पो० रफीगञ्ज, जिला गया।

१३६२—कर्त्तव्य पालनकी अनुप्रेरणा ।

—जिन लोगोंके सामने अपने धर्मका पालन करनेमें बहुत-सी विघ्न-बाधाएं थीं, आपकी बहुमूल्य किताब 'गृहस्थ-धर्म' से बहुत हदतक दूर हो गयी हैं। आपकी यह किताब मनुष्योंको अपने कर्त्तव्योंका पालन करनेकी अनुप्रेरणा देती है।

—दुखहरणराम, ग्राम बसौढ़ा, पो० बिछनपुरा, जिला पटना।

१३६३—गृहस्थाश्रमको सफल बनानेकी कुञ्जी ।

—संसारके कल्याणके लिए 'गृहस्थ-धर्म' एक अत्युत्तम पुस्तक है। गृहस्थाश्रम सब आश्रमोंमें श्रेष्ठ है। ब्रह्मचर्य पालन करनेके बाद ही मनुष्योंको गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना चाहिये। उस समय शरीर पुष्ट, वीर्यवान और आरोग्य रहता है। स्त्री-पुरुषका जो वैवाहिक-सम्बन्ध है, उसीका नाम गृहस्थाश्रम है। इन दोनोंमें पारस्परिक प्रेम होनेसे ही इस आश्रयकी सफलता है। आपकी इस पुस्तकको पढ़कर पति अपनी पत्नीके प्रति तथा पत्नी पतिके प्रति अपने कर्त्तव्यको भली भांति समझ जाती है। अतएव, गृहस्थाश्रमको सफल बनानेकी यह एक सफल कुञ्जी है।

—दामोदर शर्मा, झुमरी तिलैया, जिला हजारीबाग।

१३६४—समाजकी सेवा ।

—'गृहस्थ-धर्म' पढ़कर यहांका समाज आपके प्रति आभार प्रदर्शित कर रहा है। आपने ऐसी पुस्तक प्रकाशित कर समाजकी बड़ी ही सेवा की है।

—विमलराम आर्य, मन्त्री-आर्य-समाज, दयानन्द मार्ग इछाक, जिला हजारीबाग।

१३६५—संसारको बहुत कुछ प्राप्त ।

—विश्वके रङ्ग-मञ्चपर अनेक प्राणी आते हैं और अपना-अपना कौशल दिखला जाते हैं। किसीकी कौशलका अधिक प्रशंसनीय होती है, तो किसीकी कम। संसारमें उसीका नाम अमर रहता है, जो कुछ दे जाता है। सज्जनों, धर्मनिष्ठों एवं सत्यवादियोंकी भीत्तिपर ही यह असार-संसार टिका हुआ है। 'गृहस्थ-धर्म' के रूपमें आपने संसारके लोगोंको बहुत कुछ दे दिया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस किताबसे आपका नाम सदैव अमर रहेगा।

—हरिहरप्रसाद 'धर्म-विशारद', पो० विहारशरीफ, जिला पटना।

१३६६—धर्मका मान बढ़ रहा है ।

—'गृहस्थ-धर्म' से हमारे पाठक तरह-तरहका ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं। आपकी इस किताबसे धर्मका मान बढ़ रहा है।

—प्रधान मन्त्री, जनता पुस्तकालय, ग्राम टेढुआ, पो० अतरी, जिला गया।

१३६७—युवक-पीढ़ीको प्रोत्साहन ।

—आपकी पुस्तककी हमारे इलाकेके कोने-कोनेमें बड़ी बड़ाई हो रही है। अनेक व्यक्ति इसे पढ़ने और इसे पढ़कर इसके उपदेशोंपर आचरण करनेके लिये लालायित हैं। आपकी इस किताबसे युवक-पीढ़ीको बड़ा प्रोत्साहन है।

—छेदनराम, 'धर्मरत्न' मानपुर, बुनियादगञ्ज, गया।

१३६८—सात्त्विक बननेमें सहायक ।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक मनुष्योंको धार्मिक, सात्त्विक एवं ज्ञानवान बनानेमें पूर्ण सहाय्य हैं ।

—रामेश्वर शर्मा, अवधकिशोर, नारायण सिंह, रामदेव मिश्र, ग्राम ताजपुर, पो० हुलासगञ्ज, जिला गया ।

१३६९—एक-एक पृष्ठ ज्ञानसे परिपूर्ण ।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकने हम लोगोंके हृदयोंमें अपना अधिकार जमा लिया है । इसका एक-एक पृष्ठ ज्ञानसे भरा हुआ है । हम लोग आपके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं ।

—कुशेश्वरप्रसाद मिश्र, साहित्याचार्य, छरेन्द्रप्रसाद मिश्र, ग्राम सामस, पो० बरबोघा, जिला मुंगेर ।

१३७०—आँखें खुल गयीं ।

—आप दयाके सागर हैं । गरीबोंका शिक्षित बनाना ही आपने अपना धर्म बना लिया है । 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर हमारी आँखें खुल गयी हैं ।

—उमेश चौधरी, सखीचन्द, घाट रोड, नया बाजार, भागलपुर ।

१३७१—पुस्तकके लिये मन व्याकुल ।

—'गृहस्थ-धर्म' के लिये मैं कई पत्र भेज चुका हूँ । अभीतक पुस्तक नहीं प्राप्त हुई है । क्या बात है ? शायद मेरे पत्र तो नहीं मिले ? मैं इस पुस्तकके लिये अधीर हो उठा हूँ । इसे प्राप्त किये बिना चैन नहीं मिलता । यदि आप निःशुल्क भेजनेमें असमर्थ हैं, तो लिखें कि कितना मूल्य भेजा जाय ? अथवा वी० पी०. भेज दीजिये । मैं छुड़ा लूँगा । जो भी हो, आप यदि मेरा भला चाहते हैं, तो पुस्तक जरूर भेज दीजिये । इसके लिये मेरा मन बहुत व्याकुल है ।

—मंत्री दिव्य गांधी पुस्तकालय, ग्राम बोएना, पो० हरनौत, जिला पटना ।

१३७२—सच्चे शिक्षकका कार्य कर रही है ।

—गृहस्थोंका वास्तविक धर्म क्या है, इससे हम अबतक अनभिज्ञ रहे हैं, इसकी पूर्ण जानकारी प्राप्त करने पर हम बहुत कुछ सफलता पा सकते हैं, देहातोंमें यह जानकारी पानेका मौका बहुत कम रहता है । ऐसे व्यक्ति भी देहातों में बहुत कम रहते हैं, जो लोगोंको 'गृहस्थ-धर्म' की शिक्षा दे सकें । यदि कोई व्यक्ति इस योग्य हो जाते हैं, तो वे देहातोंको छोड़कर नगरोंमें चले जाते हैं । 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकने इस कमीको काफी हद तक दूर किया है । यह देहातियोंके लिये सच्चे शिक्षकका कार्य कर रही है । इसके सदुपदेशोंका ग्रामीण जनता पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ रहा है ।

—श्रीकृष्ण महतो, ग्राम जैप्रकाशपुर, पो० नूरसराय, पटना ।

१३७३—सच्ची राह पर चल रहे हैं।

—'गृहस्थ-धर्म' जैसी उत्कृष्ट पुस्तकके प्रकाशनके लिये हमारा राष्ट्रीय पुस्तकालय आपके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता है। इस पुस्तकको पढ़कर देहातके भोले-भाले किसान सच्ची राह पर चल रहे हैं।

—पुस्तकाध्यक्ष, राष्ट्रीय पुस्तकालय, मोहियपुर, पोस्ट मऊ, जिला गया।

१३७४—गूढ़ विषयोंका स्पष्टीकरण।

—'गृहस्थ-धर्म'ने अनेक गूढ़ रहस्योंका उद्‌घाटन किया है। जीवनके जो अनेक जटिल ग्राम-वासियोंके लिये पहेली बने हुए थे, उन गुत्थियोंको आपने इस पुस्तकमें भलीभांति स्पष्ट कर जनताका अपरिचित लाभ किया है।

—श्री वासुदेव राय, पो० नवादा धरमदासपुर, जिला आजमगढ़।

१३७५—छात्रोंको शिक्षा देनेमें सहायक।

—आपने 'गृहस्थ-धर्म' को प्रकाशित कर देशमें धर्मके प्रचारका जो बीड़ा उठाया है, उसके लिये ईश्वर की ओर आपको धन्यवाद है। अध्यापकोंका कहना है कि इस पुस्तकसे उन्हें छात्रोंको चरित्र-निर्माणकी शिक्षा देनेमें बहुत बड़ी सहायता मिलती है।

—श्री श्यामशर्मा वैद्य, ग्राम राजवाड़ा छोटका, पोस्ट कुरकिहार, जिला पटना।

१३७६—मनुष्यको संयमी बनाती है।

—आपकी किताब 'गृहस्थ-धर्म' जीवनोपयोगी है। जीवनके हर क्षेत्रमें ऐसी किताबोंकी नितांत आवश्यकता है। नित्यकर्म करनेके लिये इससे बड़ी प्रेरणा मिलती है। इसके अतिरिक्त इसके अध्ययनसे मनुष्य संयमशील बन सकते हैं।

—श्री भोजराय शर्मा, वेल्हा, पोस्ट पलारी, जिला रायपुर।

१३७७—पुस्तककी मांग।

—'स्वदेश' के नया साहित्य शीर्षक स्तम्भमें आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तककी सुन्दर समालोचना पढ़कर हमारे पुस्तकालयके सभी सदस्योंकी तीव्र इच्छा इस पुस्तकको पढ़नेकी है। वाचनालयके तरुण-विभागके सदस्यों की ओरसे मैं आशा करता हूँ कि आप पुस्तक भेजकर हमें कृतार्थ करेंगे।

—संचालक तरुण-विभाग, श्री दुर्गा पुस्तकालय, सदरबाजार, विन्ध्याचल (उत्तर-प्रदेश)।

१३७८—हिन्दी साहित्यका सर्वोपयोगी प्रकाशन।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक हिन्दी साहित्यका सर्वोपयोगी प्रकाशन है। इससे समाजका अत्यधिक कल्याण है। आप इसके प्रचारके लिये तन, मन, धनसे तत्पर हैं।

—श्री जनार्दन शर्मा शास्त्री, फतहपुर प्रवेशिका विद्यालय, गया।

१३७९—धर्मके प्रति लोगोंकी आस्थामें वृद्धि ।

—श्रद्धेय धर्मावतार, धर्म-रक्षक ! आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' से लोगोंको धर्मके प्रति आस्था बढ़ रही है । इस पुस्तकसे अज्ञान मनुष्योंमें धर्मके प्रति काफी जागृति पैदा हुई है ।

—श्री रघुनन्दन पासवान, ग्राम शेखपुरा, रूपसपुर, पोस्ट अजयपुर, पटना ।

१३८०—पुस्तकका नित्य पाठ ।

—आपकी इस पुस्तककी ख्याति दिन पर दिन बढ़ रही है । लोग इसके गुणोंसे लाभ उठा रहे हैं । मैं इस पुस्तकका नित्य पाठ किया करता हूँ ।

—श्री रामाश्रय शर्मा, ग्राम इन्द्रपुर, पोस्ट अखदमपुर, गया ।

१३८१—सदैव पासमें रखने योग्य ।

—यह पुस्तक बहुत लाभदायक है । यह सदैव पासमें रखने योग्य है । इससे कदम-कदम पर बड़ी सहायता और सहारा मिलता है ।

—श्री रामचन्द्र प्रसाद, उचाङ्गल विद्यालय, करायपरसराय, जिला पटना ।

१३८२—सत्कर्म करनेकी प्रेरणा ।

—मनुष्योंकी भलाईके लिये आप 'गृहस्थ-धर्म' का प्रचार कर रहे हैं । यह पुस्तक मनुष्योंका सत्कर्म करनेकी ओर प्रवृत्त कर रही है । —श्री ब्रजनन्दन सिंह 'आजाद', ग्राम मथुरापुर केयूर, पोस्ट हुलासगंज, गया ।

१३८३—विकारोंको दूर करनेमें सहायक ।

—'गृहस्थ-धर्म' की बड़ाईसे बिहारका कोना-कोना गूँज उठा है । सभी लोग इसे बड़े चावसे पढ़ते हैं । यह पुस्तक मनुष्योंके शोक, संताप, क्लेश आदि सभी विकारोंको दूर करनेमें बड़ी सहायक है ।

—श्री नन्दुराम साव, कुरमीटोला, पोस्ट दाऊदनगर, जिला गया ।

१३८४—हिन्दू संस्कृतिकी उद्धारक ।

—यह पुस्तक हमारे इस अभागे देशकी उज्ज्वल संस्कृतिका पुनरुद्धार करती है । यह गृहस्थोंके घरोंको सुशोभित करनेवाली निधि है ।

—श्री बालचन्द प्रसाद सिंह, चित्तर बीघा, पोस्ट बाली बेलछी, पटना ।

१३८५—गम्भीर विषयोंका समावेश ।

—आपने इस पुस्तकमें वेद, पुराण, स्मृति, उपनिषद आदि गम्भीर विषयोंका अच्छा समावेश किया है । आपकी यह पुस्तक गृहस्थ-मात्रके लिए अत्यधिक उपादेय है ।

—द्वारिका पाण्डेय, ग्राम पतूत, पो० बिक्रम, जिला पटना ।

१३८६—आत्माको सन्तोष ।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर अत्यन्त आनन्द और आत्माको सन्तोष हुआ । पूजा आदिमें इस पुस्तकसे काफी मदद मिलती है ।

—जीवनलाल शर्मा, रानापुर झाबू स्टेट, पो० रानापुर ।

१३८७—कीर्त्ति और पुण्यका वर्णन ।

—आप ऐसी उपयोगी पुस्तकका वितरण कर हजारों लोगोंको सुमार्गपर लानेके लिये जो प्रयास और व्यय कर रहे हैं, उसके कारण आपकी कीर्त्ति और पुण्यका वर्णन नहीं किया जा सकता । हमारे स्कूलके अन्य शिक्षक आपकी इस पुस्तकके लिये लालायित हैं । कृपा कर उन्हें भी कृतार्थ करें ।

—भृगुराज पाठक, संस्कृत पण्डित, लेस्लीगंज मिडिल स्कूल, जिला पलामू ।

१३८८—धर्म-प्रचारका संकल्प ।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक द्वारा आपने आर्य (हिन्दू) धर्मके प्रचारका संकल्प किया है । यहांके सार्वजनिक पुस्तकालयके लिए इसकी कुछ प्रतियां भेज सकें, तो पुस्तकालयके सदस्योंका बड़ा उपकार होगा ।

—शिवचरण महतो, ईश्वर पाठक हाई स्कूल, मनोहरपुर, सिंहभूमि ।

१३८९—जीवनोपयोगी विषयोंका समावेश ।

—आपकी किताबसे बहुत ज्ञान प्राप्त होता है । इसमें जीवनोपयोगी प्रायः सभी विषयोंका समावेश है । यह पुस्तक बहुत हितकर है ।

—परमेश्वरदयाल, बेलागञ्ज, गया ।

१३९०—सर्वसाधारणको लाभ ।

—यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी है । इसे पढ़कर विद्यार्थी तथा सर्वसाधारण व्यक्ति बहुत लाभ उठा सकते हैं ।

—व्रजविहारीप्रसाद सिंह, हरनौत हाई स्कूल होस्टल, जिला पटना ।

१३९१—बहुमूल्य निधि ।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक नहीं, एक अमूल्य रत्न है । ऐसी निधिको विना मूल्य देकर आप वास्तवमें धर्मको उत्थानकी ओर अग्रसर कर रहे हैं । —रामरतनराम, औरङ्गाबाद, जिला गया ।

१३९२—लोगोंको धर्माचारी बना रहे हैं ।

—आप बड़े ही धर्मात्मा हैं । 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकके रूपमें लोगोंको ज्ञानका खजाना देकर उन्हें धर्माचारी बना रहे हैं । आपके गुणोंको देखकर हम परमात्मासे विनय करते हैं कि वे आपके सभी मनोरथ पूरे करें ।

—रामव्रत गुरु, ग्राम कमरिया, पो० पिंजरावा, गया ।

१३६३—अधिक प्रचारसे अधिक कल्याण ।

—इस पुस्तकको पढ़कर मैंने बहुत कुछ हासिल किया । इसे पढ़नेसे मेरा अन्धकार दूर हो गया । इस पुस्तक का जितना अधिक प्रचार होगा, मनुष्योंका उतना ही अधिक कल्याण होगा ।

—सिद्धेश्वर पाण्डेय, 'विशारद', ग्राम खड़तुकपा, पो० रोभतर, जिला गया ।

१३६४—आत्माकी तृप्ति ।

—'गृहस्थ-धर्म' को आद्योपान्त पढ़कर आत्माको तृप्ति मिली । दिलकी प्यास बुझी हुई मालूम पड़ी । मुझे जो आनन्द प्राप्त हुआ, वह वर्णनातीत है ।

—रामदास आर्य मुकाम पोस्ट सकसोहरा, जिला पटना ।

१३६५—श्री रामचरित्र उपाध्याय, मो० सोन्सा, पो० भण्डारी, पटना ।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको प्रकाशित कर और उसे निःशुल्क वितरित कर आपने मानव जीवनको सफल बनाया है ।

१३६६—श्री अयोध्या प्रसाद चौधरी, सहजन, पो० सहजन, रायबरेली ।

—आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर शरीरमें फिरसे नये रक्तका संचार हुआ प्रतीत होता है ।

१३६७—श्री विन्धेश्वरी शर्मा, मो० ओड़ बिगहा, पो० खरौंगी, गया ।

—'गृहस्थ-धर्म' सनातन-धर्मकी अद्वितीय पुस्तक है । मुझे इस पुस्तकको पढ़कर बहुत लाभ पहुंचा है ।

१३६८—श्री रघुनाथ विद्यार्थी, मो० साल्हे, पो० कोटनी, बिलासपुर ।

—इस पुस्तकके कारण आपका नाम भारत ही में क्या बल्कि सारी दुनियामें अमर रहेगा ।

१३६९—श्री घासीराम विद्यार्थी, मो० साल्हे, पो० कोटनी, बिलासपुर ।

—आपका यह धर्म कार्य अनुपम है । इसके लिये आपको हार्दिक धन्यवाद ।

१४००—श्री रामेश्वर सिंह यादव कलर्क, पावर एकाउन्टस् सेक्सन, डी० एस० औफिस ई० आई० आर० दानापुर, पो० खगौल, पटना ।

—आपके द्वारा जो 'गृहस्थ-धर्म' नामक ग्रंथ निकला है, यह अत्यन्त ही उपदेश-प्रद है । विशेषता तो यह है कि आप ऐसी बहुमूल्य पुस्तकका निःशुल्क वितरण कर रहे हैं ।

१४०१—श्री भरतदास, पो० अड़भार, बिलासपुर ।

—मैं आपकी पुस्तकसे विशेष रूपसे प्रभावित हुआ हूँ । आजकलके विद्यार्थियों और नवयुवकोंके लि[illegible] अति लाभदायक है । इसका अध्ययन कर मैं नयी स्फूर्ति पा रहा हूँ ।

सम्मतियाँ और उद्गार !

१४०२—श्री रामकृष्ण प्रसाद, मो० अतरनावा, पो० विहारशरीफ, पटना।

—आजकलके नवयुवकोंको, जो पश्चात्य वातावरणमें बहे जाते हैं, आप जैसे धर्मात्मा व्यक्तियोंके संरक्षण की आवश्यकता है।

१४०३—श्री हेमप्रकाश नारायण विद्यार्थी, मो० साल्हें, पो० कोटसी, बिलासपुर।

—'गृहस्थ-धर्म' का अत्यधिक प्रचार हुआ है। इस पुस्तकको पढ़नेसे बुद्यात्मक शक्तिका सुधार होता है।

१४०४—श्री राजनन्दन सिंह, मौ० लाट, पो० हुलासगञ्ज, जिला गया।

—आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को प्रत्येक व्यक्तिके पास रखना उतना ही अनिवार्य है, जितना कि तुलसी-कृत रामायणको। मुझे भी इसको रखनेकी अभिलाषा है।

१४०५—श्री रामनारायण प्रसाद, पो० हिल्सा, जिला गया।

—यह किताब आधुनिक संसारके लिये बहुत ही उपयोगी है। इसमें सद्गुणोंका समावेश है।

१४०६—श्री गौरीशंकर मिश्र, पो० एङ्गरसराय, पटना।

—आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तकका नाम आज घर-घरमें तुलसीकृत रामायणकी तरह गणना पा रहा है। मुझे भी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक पढ़नेकी हार्दिक इच्छा है।

१४०७—श्री ब्रजनन्दन प्रसाद पो० हिलसा, पटना।

—आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' की प्रशंसा मैं अपने साथियों द्वारा सुना हूँ। मुझे इस पुस्तकको पढ़नेकी अभिलाषा है। अतः आप कृपा कर मुझे इसकी एक प्रति भेज देंगे।

१४०८—श्री शिवकुमार प्रसाद, पोस्ट अत्तासराय, पटना।

—आपके इस ग्रंथके लिये आपकी जितनी ही प्रशंसा करें थोड़ी है। मुझे इसको पढ़नेकी प्रबल इच्छा है। अतः आप कृपाकर मुझे इसकी एक प्रति भेज देंगे।

१४०९—श्री शारदाप्रसाद ग्राम पो० अजयपुर, पटना।

—आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' मां-बहनोंके लियेभी अति हितकर है। मुझे इस पुस्तकको पढ़नेकी लालसा है। अतः आप कृपाकर मुझे भी इसकी एक प्रति भेजनेका कष्ट उठावेंगे।

१४१०—श्री परमेश्वरराम हलवाई, सिकरिया, पो० टिकारी, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' के प्रचार हेतु हमारे लिये 'गृहस्थ-धर्म' की एक प्रति भेजनेका कष्ट करेंगे। इस समय भारतीय [illegible] की अवस्था दयनीय हो रही है। इस अवस्थामें आपने इस पुस्तकको प्रकाशित करके बड़ा ही उपकार किया है। [illegible] हम भी आपकी यह पुस्तक पढ़कर लोक-कल्याण और चरित्र निर्माणमें सहायक होंगे।

सम्मतियाँ और उद्गार !

१४११—श्री रामरतन सिंह, पो० हिलसा, पटना ।

—मैंने आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' की बड़ी प्रशंसा सुनी है। सौभाग्यवश मुझे उसे देखनेका भी शुभ-अवसर प्राप्त हुआ। मैं अपने ग्राममें जनताकी सेवाके हेतु एक पुस्तकालय चला रहा हूँ। इसमें आपकी पुस्तककी आवश्यकता है।

१४१२—श्री राजकुमार मिश्र, पो० मसौढ़ी, पटना ।

—यह जानकर मुझे बहुत हर्ष होता है कि आपने 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक प्रकाशित कर हिन्दू-समाजकी सेवा की है। मुझे इस पुस्तकको पढ़नेकी प्रबल इच्छा है। अतः आपसे नम्र निवेदन है कि आप कृपाकर उक्त पुस्तक की एक प्रति मुझे भेजकर मेरी इच्छाकी पूर्ति करें।

१४१३—श्री रामकिशुन शर्मा, पो० रफीगञ्ज, जिला गया ।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक प्रसिद्ध हो चुकी है। यह घर-घरमें व्याप्त है। अस्तु, इस समय यह पुस्तक व्याख्यान, कथा, गायन इत्यादि द्वारा धर्म-भावको जागृत करनेके लिये महान कार्य कर रही है। प्रस्तुत पुस्तकमें गृहस्थ-जीवनमें पालनीय अनेकानेक नियमोंका उल्लेख विस्तारपूर्वक किया गया है। अतः मैं आपकी भूरि-भूरि प्रशंसा करता हूँ। आपकी पुस्तकसे बड़ा उपकार होनेवाला है।

१४१४—श्री भोलाराम पटवारी, पो० हजारीबाग ।

—प्रिय महोदय, जय हिन्द ! मैं नजर उठाकर देखता हूँ, तो विदित होता है कि आप जनताको बहुत ज्ञान दे रहे हैं, जिससे आपको भी जनताकी तरफसे कोटिशः धन्यवादके सिवा और क्या प्राप्त हो सकता है ? भगवानने ऐसे श्रेष्ठ कार्यमें मन दिया है, धन्य हैं, आप धर्मज्ञ पुरुष !

१४१५—श्री श्यामलाल दास, पत्थरचौथ, गया ।

—सर्व सद्गुण सम्पन्न, धर्मज्ञ श्री मनसुखराय मोरजी ! आप जो 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकका संग्रह कर, निज व्ययसे छपवा कर मुफ्त वितरण कर रहे हैं, इसके लिये हम आपको हार्दिक बधाई देते हैं कि आप कलिकालमें इतना अच्छा संग्रह प्रकाशित कर प्रचार कर रहे हैं, कितनी उन्नति देशकी होगी, आप धन्यवादके पात्र हैं।

१४१६—विद्यादान देनेमें सहायक ।

—'गृहस्थ-धर्म' को वितरित कर आप देश-वासियोंपर बड़ी दया कर रहे हैं। इस पुस्तकसे लोग बहुत लाभ उठा रहे हैं। मैं एक स्कूलमें अध्यापक हूँ। अपने विद्यार्थियोंको विद्या-दान देनेमें मुझे आपकी इस पुस्तकसे बहुत [illegible] मिलती है। बच्चे भी इस पुस्तककी मांग करते हैं।

—रामकेश्वरप्रसाद मास्टर, मिडिल स्कूल, कतलूपुर, पो० मसौढ़ी, जिला पटना

१४१७—श्री सुरेशप्रसाद, मोकाम केशोपुर, पोस्ट हिलसा, पटना।

—आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' आज संसारके कोने-कोनेमें विख्यात है। मैं इसको पढ़ना चाहता हूँ।

१४१८—धार्मिक कार्योंमें अभिरुचि।

—'गृहस्थ-धर्म' को प्रकाशित और निःशुल्क वितरित कर आपने इस बातका संकेत किया है कि धार्मिक कार्योंमें आपकी बड़ी अभिरुचि है।

नारायणप्रसाद, ग्राम रौली, पो० हरनौत, जिला पटना।

१४१९—कर्त्तव्य पथपर बढ़नेमें प्रोत्साहन।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकका यश और ख्याति भारतके कोने-कोनेमें फैल रही है। इस पुस्तकके द्वारा आपने गृहस्थोंको अपने कर्त्तव्य-पथपर अधिकाधिक रूपसे अग्रसर होनेके लिये प्रोत्साहित किया है। इस पुस्तकके उपदेशोंपर चलनेके लिये हम लोग विशेष रूपसे उत्कण्ठित हैं।

—कालीराम भगवानदास, मुकाम, पो० मखदुमपुर, जिला गया।

१४२०—अमृत-तुल्य।

—यह पुस्तक सचमुचमें गृहस्थोंके लिये बहुत लाभदायक है। इसमें जो बातें लिखी गयी हैं, वे बहुमूल्य और अमृत-तुल्य हैं। हमारे पुस्तकालयके सदस्य इसे पढ़कर लाभ उठा रहे हैं।

—मन्त्री भारतीय पुस्तकालय, मथुरापुर केऊर, पो० हुलासगंज, गया।

१४२१—बहुत-सी बातोंकी जानकारी।

—इसमें प्रायः सभी महा-ग्रंथोंका निचोड़ है। इसका अध्ययन कर मुझे बहुत-सी बातोंकी जानकारी हासिल हुई। सभी व्यक्ति जिन्होंने इसे देखा है, इसकी बड़ाई करते हैं। यह दरअसल बहुत लाभदायक पुस्तक है।

—छमेश्वर शर्मा, पो० पारबिगहा, गया।

१४२२—श्री देवीचरणप्रसाद, ग्राम खुर्द सिकरिया, पो० जमुई, जहानाबाद, गया।

—श्री श्री १०८ श्रीमान् सेठ मनछखरायजी मोरको कोटि-कोटि बार नमस्कार।

ईश्वरकी कृपासे आपके यश और छनादका श्रवण कर हृदय पानी-पानी हो गया। आप धर्मके नामपर अपनी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको प्रदान कर रहे हैं। इस रत्न-सम पुस्तकको मैंने दूसरेसे मांग कर पढ़ा है। अतएव, इसे [illegible]लिये दिल तड़फड़ा रहा है। परन्तु भाग्यका तो मैं खोटा हूँ। कैसे यह पुस्तक मिले? न जाने मेरा पहला [illegible]कर इ[illegible] [illegible]क गया है? फिर भी मैं आपको दयालु जानकर, सन्त-हृदय, ईश्वर-प्रेमी जानकर डेढ़ मासके पश्चात् पुनः [illegible] है। [illegible]ता हूँ।

१४२३—पुस्तकके सारमें मन रमा गया।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको पढ़कर मैं इसके सारमें भींग गया हूँ। मैंने इसके पूर्व ऐसी पुस्तक कभी नहीं पढ़ी थी। मैं अपने साथियोंके लिये कुछ प्रतियोंकी और याचना करता हूँ। आशा है, आप निराशा न करेंगे।

—रामचन्द्र चौधरी, ग्राम मुशकहरी, पो० भोजपुर, पटना।

१४२४—धर्मकी बातें।

—'गृहस्थधर्म' में धर्मकी बातें हैं। यह बहुत अच्छी और लाभदायक पुस्तक है। मेरे अनेक रिश्तेदार भी इसकी मांग कर रहे हैं। पुस्तक न मिलनेसे उन्हें बहुत निराशा होगी।

—प्रदीपप्रसाद, ग्राम इसलामपुर, मोहल्ला देवीस्थान, पो० अतासराय, पटना।

१४२५—श्री रामदेवप्रसाद, ग्राम जोलहपुरा, पो० नूरसराय, पटना।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक हम किसानोंके लिये अत्यन्त लाभदायक है। आपकी इस पुस्तकके साथ-साथ आपके नामका भी यश चारों ओर फैल रहा है। इस पुस्तकको जो व्यक्ति एक बार पढ़ लेगा और इसके नियमोंके अनुसार चलने लगेगा, उससे उसके जीवनमें बहुत सुधार हो जायेगा।

१४२६—श्री द्वारिकाप्रसाद सिंह, मंत्री श्री राष्ट्रीय पुस्तकालय, चौरीया, पो० कोरारी, जिला पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तकको पढ़नेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह अति उत्तम पुस्तक है। आपने अपने सिरपर जो गुरुतर कार्य लिया है, उसके लिये देशकी शिक्षण संस्थाएँ आपकी आभारी रहेंगी।

१४२७—श्री कारूदास, ग्राम जमन बिगहा, पो० पण्डई, जिला गया।

—दयासागर! 'गृहस्थ-धर्म' द्वारा संसारकी बड़ी भलाई कर रहे हैं। इसे प्रकाशित और निःशुल्क वितरित कर आप कृषकों, विद्यार्थियों और गृहस्थोंका हित कर रहे हैं। ईश्वर आपको चिरञ्जीवी बनाये।

१४२८—श्री ब्रजनन्दन सिंह, ग्राम रसीदपुर, पो० सकूराबाद, जिला गया।

—आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' आधुनिक युगकी नूतन पुस्तकोंमें अत्यन्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी है। हिन्दुस्तानके कोने-कोनेमें इसका नाम फैल गया है। वास्तवमें इसके गुण भी ऐसे ही हैं।

१४२९—श्री धनेश्वरराम, ग्राम मकरपुर, पो० मखदुमपुर, जिला गया।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक सचमुच ही गृहस्थोंके लिये उपकारी सिद्ध हुई है। इससे गृहस्थोंको पुण्य-कार्य करनेकी प्रेरणा प्राप्त हो रही है। यह सभी मनुष्योंके पढ़ने योग्य पुस्तक है। यह आज विशाल आर्यावर्तमें सूर्यकी तरह देदीप्यमान हो रही है। इस पुस्तकसे आपकी कीर्त्ति भी फैल रही है।

सम्मतियाँ और उद्गार !

१४३०—श्री शिवकुमार त्रिपाठी, मोहल्ला बरौनी, पो० सण्डीला, जिला हर्दोई।

—अपने शहरके भगवद्प्रेमी विद्वद्वर श्री बाबूलाल जीके यहां सत्संगके समय श्रीमान्‌का द्वारा संग्रहीत अनुपम एवं अनुकरणीय ग्रंथ 'गृहस्थ-धर्म' देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। मानव कल्याणार्थ प्रकाशित यह ग्रंथ सर्वथा मनन करने योग्य है। मेरी अभिलाषा है कि इस सद्ग्रंथका नित्य अध्ययन करके अपने जीवनको सफल और सार्थक बनाऊं। अतएव, जिसप्रकार उचित समझें, इस अलभ्य पुस्तककी एक प्रति भेजनेका कष्ट करें।

१४३१—श्री इन्द्रदेव प्रसाद, ग्राम सोनवर्षा, जिला गया।

—हम गृहस्थोंके परिवारिक जीवनको उन्नत करनेके उद्देश्यसे आपने जो 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक निकाली है, उसके लिये भगवानसे आपकी दीर्घायुके लिये प्रार्थी हैं। हमारा विश्वास है कि आप जैसे महानुभाव ही गृहस्थोंके अन्धकारको हटा सकेंगे। आपकी इस पुस्तकने अद्वितीय प्रसिद्धि प्राप्त की है।

१४३२—श्री नागेश्वर प्रसाद राय, घोघा, जानीडीह, भागलपुर।

—आप जीवनोपयोगी धार्मिक पुस्तक प्रदान कर महापुण्य संग्रह कर रहे हैं। इस पुस्तकके द्वारा समाजका कल्याण होगा।

१४३३—श्रीमती सुशीलादेवी, ग्राम रसूलपुर, पो० नसीरपुर, जिला मैनपुरी, (उ० प्र०)।

—आपकी प्रदान की हुई पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर अत्यन्त शांति और सन्तोष प्राप्त हुआ। यह पुस्तक नारी-समाजके गौरवको बढ़ानेवाली है।

१४३४—श्री लालनारायण सिंह, अमेरा खारिजया, पो० भतहर, जिला पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' को प्राप्तकर खुशीका ठिकाना न रहा। इसे पढ़कर मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि मानो कोई निधि मिल गयी हो।

१४३५—श्री विजयनारायण शर्मा, पुस्तकाध्यक्ष, मुरलीमनोहर पुस्तकालय, चाढ़, पो० टेहटा, जिला गया।

—'गृहस्थ-धर्म' की चर्चा चारों ओर फैल चुकी है। इस पुस्तकको पढ़नेसे नर-नारी बहुमूल्य उपदेश ग्रहण कर अपने जीवनको उन्नत बना सकते हैं। बारबार इस पुस्तकको पढ़नेकी अभिलाषा होती है।

१४३६—श्री भगवान प्रसाद, हाई स्कूल इसलामपुर, पो० अतासराय, जिला पटना।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक देहातोंकी चर्चाका विषय बन चुकी है। इस पुस्तकको छापकर आपने जन-[illegible]क जो सेवा की है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। यह पुस्तक कृषकोंके लिये आदर्श है। कृषकोंके लिये [illegible] है। [illegible] महाभारतसे किसी दर्जे कम नहीं है।

१४३७—श्री वीरेन्द्रकुमार सिन्हा, ग्राम उचीता, पो० शकूराबाद, जहानाबाद।

—आपकी इस पुस्तकमें धर्म-जातिकी उन्नतिका मार्ग मिलता है। इस पुस्तकसे प्रत्येक पाठक अपने स्वास्थ्य को भी सुधार सकते हैं। पुस्तकमें धार्मिक शिक्षाएँ कूटकूट कर भरी हुई हैं। एकबार पढ़नेसे तृप्ति नहीं होती। बारबार इस पुस्तकको पढ़नेकी लालसा लगी रहती है। यही कारण है कि इसकी ख्याति दिनपर दिन बढ़ती जा रही है। पुस्तक के प्रचारके साथ-साथ आपके नामका भी प्रचार काफी जोर-शोरसे हो रहा है। इस पुस्तकको प्रकाशित कर, हमें ऐसा प्रतीत होता है कि आप अमर हो चुके हैं।

१४३८—श्री गोबिन्द प्रसाद, सेक्रेटरी क्रौंच पुस्तकालय, ग्राम कोरा, हजारीबाग।

—आपके द्वारा संग्रहित और प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' से जनताका बड़ा उपकार हो रहा है। हमारे क्रौंच पुस्तकालयके सदस्य मानवोंके कल्याणके लिये धारण किये गये आपके व्रतको देखकर अत्यन्त प्रफुल्लित हैं, और इसके लिये आपको हार्दिक बधाई देते हैं। आपकी इस पुस्तकसे लोगोंको सत्कार्य करनेकी प्रेरणा प्राप्त होती है।

१४३९—श्री रामरतन प्रसाद सिंह, ग्राम पुनर्क, पो० अर्कठिवरिया, जिला गया।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक हम ग्रामीणोंके बड़े कामकी है। यह हमलोगोंके बहुत काम आ रही है। इस पुस्तकको पढ़कर ग्रामवासी अपनेको कृतार्थ समझ रहे हैं। इसे पढ़कर वास्तवमें बुद्धि धर्मकी ओर लगती है। यह साधारण पुस्तक नहीं है। लोगोंकी दृष्टिमें यह एक अति पावन ग्रंथ बन चुका है। लोग उच्च धार्मिक पुस्तकोंकी ही भांति इसका आदर करने लगे हैं। भगवान आपको दीर्घायु रखें।

१४४०—मास्टर सुवालाल मुन्द्रावजा, मिडिल स्कूल, खण्डवा।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक दान करके आपने साहित्यिक मनोविज्ञानके पथको निष्कण्टक किया है। गृहस्थोंके लिए तो यह एक परम आवश्यक पुस्तक है। इससे जीवनके हर क्षेत्रमें बड़ा सहारा मिलता है। इस सात्विक दानके लिए मैं आपको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

१४४१—श्री ब्रजकिशोर अध्यापक, छोटानागपुर राडा, पो० रांतू, जिला रांची।

—मानव उत्थानकी पवित्र भावनाओंके अनुप्रेरित होकर ही आप 'गृहस्थ-धर्म' जैसी उपयोगी किताबका वितरण कर रहे हैं। आपके इस कार्यसे जनताको असीम लाभ पहुँच रहा है। अध्यापकोंके लिए तो यह बड़ी लाभदायक किताब है। इससे छात्रोंके सदुपदेश देने और उन्हें सदाचारी बनानेमें पूरी मदद मिलती है। आपके लोकहितार्थ उठाये गये इस कार्यकी सभी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा कर रहे हैं।

१४४२—श्रीमती सुनीतिदेवी मिश्रा, गायघाट, गुलजारबाग, पटना।

—आपकी किताब 'गृहस्थ-धर्म' मुझे बहुत पसन्द आयी। यह बड़ी ही उपयोगी पुस्तक प्रतीत हुई। पुस्तकको पढ़कर बहुत-सी शिक्षाएँ ग्रहण की जा सकती हैं, और भारतीय महिलाएँ सती-सावित्रीके समान बन

१४४३—श्री नन्दन सिंह, ग्राम गोवन्दिया, पो० भण्डारी, बिहारशरीफ।

—'गृहस्थ-धर्म' दीपक बनकर ग्रामीण घरोंमें आलोक पहुंचा रहा है। इस पुस्तक द्वारा आप विद्या और ज्ञान का जो प्रचार और प्रसार कर रहे हैं, उससे हम ग्रामीण पुनः भ्रातृत्वके सूत्रमें आबद्ध होते जा रहे हैं। आपने हमें ज्ञानवान और सुयोग्य गृहस्थ बनानेका बीणा उठाया है, और इस पुनीत कार्यमें मुक्तहस्तसे धन व्यय कर रहे हैं।

१४४४—श्री रामनरेश शर्मा, बेसिक शिक्षक, गोनपुरा बेसिक स्कूल, पो० मुबारकपुर, जिला पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' बड़े कामकी पुस्तक है। इससे बालकोंको सदाचारकी शिक्षा देनेमें बड़ी सहायता मिलती है। छात्र ही देशके भावी कर्णधार हैं। उन्हें सदाचारी बनाना देशके नैतिक स्तरको उच्च करना है।

१४४५—श्री सत्यनारायण सिंह, ग्राम फतेहपुर, पो० शकूराबाद, जिला गया।

—हमारे देशमें अज्ञानरूपी जो घोर तिमिर छाया हुआ है, उसे उन्मूलन करनेमें आपके द्वारा संग्रहित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' जादूका-सा कार्य कर रही है। आपकी इस पुस्तकसे देशवासियोंका बड़ा कल्याण हो रहा है। इस पुस्तक को पढ़कर लोगोंको अपने कर्त्तव्य-कर्त्तव्यका बोध हो जाता है। इस पुस्तकसे लोगोंका मानसिक विकास होता है। 'गृहस्थ-धर्म' वास्तवमें एक महत्वपूर्ण और आदर्श पुस्तक है।

१४४६—श्री राजेश्वर प्रसाद सेक्रेटरी, श्री गांधी पुस्तकालय आलमपुर, पो० शकूराबाद, जिला गया।

—इस पत्र द्वारा मैं यह अभिप्राय प्रकट करना चाहता हूँ कि आपने 'गृहस्थ-धर्म' को प्रकाशित कर देशको उन्नति की ओर अग्रसर करनेका मार्ग प्रशस्त किया है। इस पुस्तकसे आपका यश फैल रहा है। सभी आपकी मुक्त-कण्ठसे प्रशंसा कर रहे हैं।

१४४७—श्री शिवशंकर सिंह, के० आर० के० हाई स्कूल लक्खीसराय, जिला मुंगेर।

—आपका नाम अमर हो रहा है। यह सोचकर कि जो व्यक्ति अमर है, उनसे गुण लेना पुण्यका भागी बनना है, मैं आपके पास यह पत्र भेजकर 'गृहस्थ-धर्मके लिये याचना कर रहा है। मेरी इच्छा की पूर्ति करें या न करें, वह आपकी मर्जी। फिर भी मैं पुस्तक पानेकी आशा लगाये रहूँगा।

१४४८—श्री जवाहरलाल सिंह, एच० ई० स्कूल नूरा, पो० हांसाडीह, पटना।

क्रिय है

—'गृहस्थ-धर्म' बहुत सुन्दर पुस्तक है। इस पुस्तकको पढ़नेसे बहुत-सी बातोंका ज्ञान होता है। विशेषतः इ क तथा विद्यार्थियोंके लिए तो यह सर्वथा नित्य पठनीय है। इसमें नयी-नयी बातोंकी खोज की गयी है।

है। प हैं।

१४४६—अमृत पान कराकर सभीकी तृप्ति कर दी।

—'गृहस्थ-धर्म' किताब को पढ़कर मैं अपने को धन्य समझ रहा हूं। आपने इस भवरूपी निशामें दीपकका जो प्रकाश दिया है, उसका मूल्य नहीं चुकाया जा सकता। आपने जो लोक-सेवा की है, उसका बदला संसारमें कोई भी नहीं चुका सकेगा। मेरी प्रार्थना है कि आप इस किताब का मूल्य भी निर्धारित करें। आप दयालु हैं, इसी लिये इसका मूल्य नहीं रखा है। आप पापियों को धार्मिक उपदेश देकर उनके पाप-कुञ्जका नाश कर रहे हैं।
हम बहुत पापी हैं। ईश्वरके उपदेशोंको सुनकर हम भवसागरसे पार उतर सकते हैं। हे नाथ! आपने मनुष्योंको इस भवसागर से पार उतारने का मार्ग बतलाया है। आपने अमृत पान करा कर सभी की तृप्ति कर दी है।

—जगदीशप्रसाद सिंह, पो० हरनौत, पटना।

१४५०—श्री सरयूलाल, ग्राम माड़ीपुर, पो० रफीगञ्ज, गया।

आपकी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' सनातनधर्मका प्रतिपादन करनेवाली अद्वितीय पुस्तक है। इससे ज्ञानकी वृद्धि होती है। इसका अध्ययन करनेसे मनुष्यकी बौधिक शक्तिका समुचित विकास होता है। पुस्तक पठनीय ही नहीं, अपितु सर्वथा संग्रहनीय है। ऐसी पुस्तकको प्रकाशित कर आपने मानव-जातिका बड़ा उपकार किया है। आप वास्तवमें धन्य हैं। इस पुस्तकका पाठ कर मनुष्य अपने धर्म और कर्त्तव्यपह डटे रहकर उसका यथोचित रूपसे पालन कर सकता है।

१४५१—श्री माखनलाल शास्त्री प्रधानाध्यापक, ब्रह्मचर्याश्रम, राजिम, जिला रायपुर।

—'गृहस्थ-धर्म' उच्च कोटिका ग्रंथ है। इसमें जीवनोपयोगी अच्छे-अच्छे विषयोंका समावेश है। यह पुस्तक प्रत्येक घरमें रखने लायक है।

१४५२—श्री वर्हद पङ्का, ग्राम दतौत, पो० ठहरी, जांजगीर, जिला विलासपुर।

—यह पुस्तक गृहस्थ-जीवनका सुधार करनेमें बहुत सहायक है। आपने इसमें धर्म-ग्रन्थोंका निचोड़ दिया है, जो मनुष्यके लिये अमृत-तुल्य है।

१४५३—श्री राजेन्द्रप्रसाद 'अनल' ग्राम दाहाबीगहा, जिला पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' ने आश्चर्यजनक प्रभाव डाला है। आप इस पुस्तक द्वारा समाजकी बहुत बड़ी भलाई कर रहे हैं। हम लोगोंके लिये तो आप परमात्मासे कम नहीं हैं। आपकी अनुकम्पासे ग्रामीण लोग अपनेको ऊँचा पा रहे हैं। इस पुस्तकके द्वारा आपका हम ग्रामीणोंके साथ निकटका सम्बन्ध स्थापित हो चुका है।

१४५४—श्री रामलखनप्रसाद, राजेन्द्र साहित्य महाविद्यालय सेवदह, पो० बिरूजू मिल्की, जिला पटना।

—आपने 'गृहस्थ-धर्म' नामक जो पुस्तक प्रचारित की है, उससे समाज बहुत आगे बढ़ रहा है। और, सब लोग मुक्त-कण्ठसे प्रशंसा कर रहे हैं। मेरे अनेक मित्रोंको आपकी इस अद्भुत पुस्तकको प्राप्त करनेकी लालसा है।

१४५५—श्री शम्भूशरण सिंह, ग्राम नवांदा, जिला पटना।

—श्रीमान विद्यार्थियोंको 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक प्रदान कर उनके ज्ञानकी वृद्धिमें महान योगदान दे रहे हैं। इस महादानके लिये विद्यार्थी-वर्ग आपका सदैव कृतज्ञ रहेगा।

१४५६—श्री रामस्वरूप सिंह, ग्राम बोएना, पो० हरनौत, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकका प्रचार कर आप धर्मकी अतिवृद्धि कर रहे हैं। इस पुस्तकको पढ़कर लोग अपने ...ा समाजको ऊँचा बना सकते हैं। पुस्तकको पढ़कर मैं मुग्ध हो गया। आनन्दके मारे मेरी आंखोंमें आँसू

१४५७—श्री ब्रजनन्दन पाण्डेय, 'शास्त्री' ग्राम तुलती मंहई, पो० गुलजारबाग, पटना।

—आपकी पुस्तकको पढ़कर बहुत प्रसन्नता हुई। भगवान आप जैसे महानुभावोंकी सदैव वृद्धि करे, यही मेरी एकाग्र विनय है।

१४५८—श्री सच्चिदानन्द, त्रिवेदी, एच० एम० डी०, ग्राम नारायणपुर,
पो० परवलपुर, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक जनताके लिये बहुत उपयोगी है। लोग इसे पढ़कर तथा औरोंको पढ़ाकर बहुत फायदा उठा रहे हैं।

१४५९—श्री शालिग्राम प्रसाद सिंह, वीर ओईयारा हाई इंगलिश स्कूल, जिला पटना

—मेरे सभी साथियोंका कहना है कि आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक विद्यार्थियोंके लिये पठनीय और साथ-साथ बहुत लाभदायक है।

प्रत्येक विद्यार्थीके लिये अपने जीवनमें एकबार इस पुस्तकको पढ़ लेना अनिवार्य है।

इस पुस्तकसे छात्र-समाजका बहुत कल्याण होनेकी सम्भावना है। इससे चरित्र-निर्माणमें बड़ी सहायता मिलती है।

१४६०—श्री तिलक चौधरी, ग्रेन मर्चेण्ट, मो० मथुरिया, पो० बिहारशरीफ, पटना।

—इस मँहगीके जमानेमें भी आप धर्मके कार्यमें मानवोंकी भलाईके लिये इतना अधिक धन व्यय कर रहे हैं। लेकिन यही आपका यशरूपी धन इस संसारमें आपके नामको अमर करेगा।

१४६१—श्री सीतालाल वर्णवाल, ग्राम-पोस्ट कोडरमा, जिला हजाबाग।

—'गृहस्थ-धर्म' का अध्ययन कर मैंने अत्यन्त ही लाभ उठाया है। तथा इस पुस्तकको प्रकाशित करनेमें आपने जो तन, मन, धनसे प्रयत्न किया है, उसके लिए मैं आपको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि आप धर्मका प्रचार करनेमें पूर्ण समर्थ हों।

१४६२—श्री रामेश्वर सिंह, को-आपरेटिव बैंक लि०, पो० मसौढ़ी, पटना।

—आपको यह लिखते हुए अपार हर्ष होता है कि आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकने हमारे समाज जागृतिकी नयी लहर पैदा कर दी है।

१४६३—श्री मोहन महतो, द्वितीय शिक्षक, ग्राम कम्बलबीगहा, पो० वार्सलीगञ्ज।

—'गृहस्थ-धर्म' की सब जगह बड़ी तारीफ हो रही है। इस पुस्तकसे मानव-समाजका बहुत [illegible] रहा है।

१४६४—आम सभाओंमें 'गृहस्थ-धर्म'के गुणोंकी चर्चा।

श्रद्धेय धर्म-परायण श्रीमान् सेठ मनसुखरायजी मोरके चरण कमलोंमें सप्रेम सादर-प्रेषित।

—आपकी भेजी हुई 'गृहस्थ-धर्म' की १०५ प्रतियां प्राप्त हुईं। परमपिता परमेश्वर एवं जनता जनार्दनकी ओरसे आपको कोटिशः धन्यवाद !

...गत ता० ४-९-५० को श्रीकृष्ण जन्माष्टमीके शुभवसरपर भी मैंने तथा अन्य मर्मज्ञों और विद्वानोंने आम-सभामें 'गृहस्थ-धर्म' के सम्बन्धमें प्रकाश डाला। इसके पश्चात् ता० १५-९-५० को भी श्री गणेशचौथ पूजाके शुभवसरपर श्रीगांधी-भवनमें कवि-वृन्द, विद्वानों, शिक्षकों तथा धार्मिक महानुभावोंकी बैठक में इस धर्म-ग्रन्थकी उपयोगितापर प्रकाश डाला गया। पुस्तककी एक-एक प्रति धर्म-निष्ठ व्यक्तियों की सेवामें सादर पहुंचा दी गयी है।

...आप जैसे उदार महानुभावोंकी दयासे धर्मकी ध्वजा इस भारत-भूमिपर फहर रही है। 'धर्मकी जय हो'! मनसुखरायजी मोरकी जय हो' !!

श्री मथुराप्रसाद 'साहित्य-रत्न', श्री गांधी-स्मारक गवर्नमेण्ट स्कूल, अजनौरा, पो० अजयपुर, जिला पटना।

१४६५–उपकारको जीवनभर भुलाया नहीं जा सकेगा।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको पढ़नेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस किताबको पढ़कर मैं इतना प्रभावित हुआ और मनमें इतना आनन्द हुआ कि मैं उसे लिखनेमें असमर्थ हूँ। आपकी इस परोपकारी भावनाकी मैं हृदय से सराहना करता हूँ।

आपकी यह किताब गृहस्थोंकी आत्माको उज्ज्वल बनानेमें बहुत ही हितकर और सहायता प्रदान करनेमें अपनी अनूठी शान रखती है। इस किताबको पढ़कर मैं जन्मभर आपके उपकारको नहीं भूलूंगा।

मैं ईश्वरसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि आपकी परोपकारी मनोवृत्तिको दिन दूनी, रात चौगुनी बढ़ानेमें सहायता प्रदान करे।

वृद्धिचन्द डागा, मार्फत श्री खेमचन्द चन्दनमल,
कांटाबांजी, जिला बालांगीर (उड़ीसा)।

१४६६—श्री प्रेमबिहारी शिक्षक, साड़ा मिडिल स्कूल, मसौढ़ी, पटना।

—मुझे यह किताब बहुत ही अच्छी ऊँची। गृहस्थोंके लिए यह जीवनोपयोगी है, इसकी उपयोगिताका वर्णन करना मेरी बुद्धिके बाहरकी चीज़ है।

१४६७—श्री चन्द्रमणिप्रसाद सिंह, हाई स्कूल मखदुमपुर, जिला गया।

—'गृहस्थ-धर्म' का प्रचार कर आप मनुष्योंके जीवनको सुखी बनानेका प्रयत्न कर रहे हैं। इस पुस्तकको पढ़नेसे बहुत-सी जानकारी प्राप्त होती है।

१४६८—श्री नारू नदिया हिन्दू हाई स्कूल, पो० लोहरडागा, जिला रांची।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक मुझे बहुत प्रिय और अच्छी लगी। यह छात्र-जीवन और गृहस्थ-जीवनके लिये अत्यन्त ही कल्याणकारी है।

१४६९—श्रीमती सुभद्रादेवी आर्या मार्फत अध्यापक सूर्यनारायण यादव, ग्राम दुखशेरपुर लालगञ्ज, जिला गया।

—यह 'गृहस्थ-धर्म' पति और पत्नी दोनोंके आचरणके स्तरको उच्च बनानेका अत्युत्तम साधन है। मैं इस पुस्तकके उपदेशोंको ग्रहण कर रही हूँ और अपने मोहल्लेकी बहनोंको भी बता रही हूँ।

१४७०—मैनेजर अनन्त स्टोर, जनरल मर्चेण्ट, बिहारशरीफ।

—आपने इतने बड़े परिश्रमके साथ इस पुस्तकको निकाला और इसका कोई मूल्य नहीं रखा, इसके लिये आपको अनेक धन्यवाद है। भगवान आपके परिश्रमको सार्थक करें, यही मेरी उससे प्रार्थना है।

१४७१—श्री बिमल सिंह, ग्राम बढ़ौना, पो० कोंबिल, जिला गया।

—'गृहस्थ-र्म' को निकाल कर और इसका निःशुल्क वितरण कर आप हमारे हिन्दू समाजकी अपूर्व सेवा कर रहे हैं। यह पुस्तक हिन्दू समाजके लिये संस्कृति और सभ्यताका पथ-प्रदर्शक है।

१४७२—श्री रामलखनप्रसाद, एस० एस० एकेडेमी एकरङ्गसराय, जिला पटना।

—हमारे ग्रामके निवासी इस पुस्तकको पढ़कर बहुत प्रसन्न हैं। वे इसकी कुछ और प्रतियां मंगानेको मुझे बाध्य कर रहे हैं।

इन लोगोंका कहना है कि इस पुस्तकसे लाभ उठाकर हमलोग भारतकी अन्नकी समस्याको हल करनेमें समर्थ होंगे।

हम लोगोंका इस पुस्तकके प्रति बहुत प्रेम हो गया है। आपके अपना शुभचिन्तक जान यह पत्र

सम्मतियां और उद्‌दार !

१४७३—श्री बाबूलाल झा, हाई स्कूल कटौना, जिला पटना।

—आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' हमलोगोंके लिये बहुत हितकर सिद्ध हुई है। यह पुस्तक हमारे भविष्यको उज्ज्वल बनानेवाला अगोध शस्त्र है। इस पुस्तकके द्वारा देशकी भावी उन्नति होगी। देशवासी आपके कृतज्ञ हैं। पुस्तकसे आपकी लोकप्रियता भी बढ़ी है।

१४७४—श्री दामोदर प्रसाद, ग्राम अनन्तपुर, पो० जैंतीपुर कुर्था, गया।

—आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' बहुत प्रसिद्धि पा चुकी है। इस पुस्तकमें धार्मिक बातोंका समावेश है। इस समय धर्मकी अवनति हो रही है, और उसकी जगह अधर्म बढ़ रहा है। आपकी इस पुस्तकसे निश्चय ही कुछ न कुछ सुधार होगा।

१४७५—श्री जगदीश महतो, अग्रवाल हाई स्कूल बेलागंज, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़ा। यह पुस्तक मुझे बहुत ही रोचक मालूम पड़ी। धर्मके गूढ़ विषयोंको आपने बड़ी सरलतासे अंकित किया। जटिल और गहन विषय भी बोधगम्य हो गये हैं। यह पुस्तक शिक्षाका मार्ग है। इसे पढ़कर प्रत्येक व्यक्ति ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

१४७६—श्री उमाकान्त मिश्र, 'कुसुमेश' साहित्याचार्य, हेड पण्डित, अग्रवाल हाई स्कूल, पो० बेलागंज, गया।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको पढ़कर मन बहुत प्रसन्न हुआ। यह पुस्तक प्रत्येक गृहस्थके लिए अत्यन्त उपयोगी है। प्रत्येक व्यक्तिको इसकी एक प्रति अवश्य रखनी चाहिए। इसके निःशुल्क वितरणका आपका प्रयास भी परम प्रशंसनीय है।

१४७७—श्री मदनमोहन अग्रवाल बाजार बजरिया, हाथरस, उत्तरप्रदेश।

—मैंने आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' का अध्ययन किया, और इसको मनुष्योंके लिए एक आवश्यकीय ग्रंथके रूपमें पाया। गृहस्थोंके लिए तो यह विशेषरूपसे लाभप्रद पुस्तक सिद्ध हुई है।

१४७८—श्री भोली यादव, ग्राम चन्दनपुरा, पो० पोखरमा, मुंगेर।

—'गृहस्थ-धर्म' जन-साधारणके लिए अति हितकारक और उन्नति पथ-प्रदर्शक सिद्ध हुई है। अधिकांश गृहस्थ गृहस्थीके नियमों, रीतियों तथा अपने आवश्यक कर्त्तव्यसे अनभिज्ञ हैं। उनके लिए यह एक बहुमूल्य प्रकाशन है।

१४७९—श्री मेघासाव, ग्राम मऊ बाजार, पो० मऊ, गया।

—मैं 'गृहस्थ-धर्म' के समुचित ज्ञानके बिना अन्धकारमें भटक रहा था। आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक [illegible] अध्ययन कर मुझे काफी प्रकाश मिला है।

१४८०—श्री जगदीश सिंह, लोअर-प्रायमरी स्कूल, मुरगाँव, पटना।

—आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को सर्वत्र बड़ी बड़ाई हो रही है। यह बहुत अच्छी पुस्तक है। इसमें अच्छे-अच्छे उपदेश भरे पड़े हैं।

१४८१—श्री नवलकिशोर शर्मा, ग्राम सोहसा, पो० नगलाकिञ्जर, गया।

—इस किताबसे लोग बहुत फायदा उठा रहे हैं। हमारे गांवके लोगोंका कहना है कि इस पुस्तकके अनुसार चलकर हम अपनी उन्नति कर सकेंगे।

१४८२—सर्वश्री मोतीलाल जैन, प्रेमनारायण, चतुर्भुज पाठक, श्री महावीर आयुर्वेदिक फार्मेसी ललितपुर, (झाँसी)।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' में धर्म, सदाचार तथा स्वास्थ्य सम्बन्ध बहुमूल्य उपदेशोंका समावेश किया गया है। उज्जैनके हमारे बहुतसे मित्रोंने भी इसकी काफी सराहना की है।

१४८३—श्री निवास शर्मा, नवयुवक पुस्तकालय, टिकईचक, पो० डिहरी, पटना।

—हमारे पुस्तकालयके सदस्य आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकसे बहुत प्रभावित हुए हैं। इस पुस्तकको दूर-दूर भेजकर और पुण्यका संचय कर रहे हैं और मानवोंको लाभ पहुँचा रहे हैं।

१४८४—श्री सच्चिदानन्द उपाध्याय, मुकाम-पो० राजगीर, पटना।

—आप अपनी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' द्वारा न जाने कितने व्यक्तियोंके जीवनमें नयी आशाका संचार कर रहे हैं, और न जाने कितने व्यक्तियोंके जीवनको सुधार कर प्रति दिन पुण्यका संचय कर रहे हैं।

१४८५—पं० सूर्यदेव पांडेय, ग्राम मीरगंग, पो० वजीरगंज, गया।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक अत्यन्त हितकारक तथा समस्त हिन्दू जातिके लिये सुपथगामी एवं धर्म-प्रचारमें अत्यन्त सहायक है।

१४८६—श्री गणेशप्रसाद मालगुजार, ओड़केरा, जिला गया।

—'गृहस्थ-धर्म' का प्रचार बहुत दूर-दूरतक हो गया है। आपको बारम्बार धन्यवाद है। सर्वसाधारण जनता के लिये यह बड़ी उपयोगी पुस्तक है। आम जनताकी इसे बड़ी भलाई हो रही है।

१४८७—श्री कैलाशनाथ त्रिवेदी, सहायक अध्यापक पुरैना, पो० जीतीपुर, जिला वस्ती (उत्तर-प्रदेश)।

—जनताके आचरणको शुद्ध करनेकी भावनासे आपने 'गृहस्थ-धर्म' को प्रचार किया है। इससे लोगोंमें जागृति है। इस पुस्तकके द्वारा हमारे इलाकेकी जनतामें भी नये भाव उत्पन्न हुए हैं।

सम्मतियाँ और उद्‌गार !

१४८८—श्री दामोदर सिंह, ग्राम पचय, मो० पोखरमा, मुंगेर ।

—अत्यन्त हर्षका विषय है कि आप 'गृहस्थ-धर्म' जैसी सर्वोत्कृष्ट पुस्तकको निःशुल्क बाँट रहे हैं। यह पुस्तक सर्वसाधारणके लिये अति हितकारक और उन्नति पथ-प्रदर्शक है। इससे अनभिज्ञ लोगोंको ज्ञानकी ज्योति प्राप्त हो रही है।

१४८९—श्री हरिद्वारप्रसाद, ग्राम मनियारगञ्ज, पो० मलाठी, गया ।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तककी ख्याति देशके कोने-कोनेमें फैल रही है। इस पुस्तक द्वारा आपने गृहस्थोंको अपने कर्त्तव्यपर अधिकाधिक रूपसे अग्रसर होनेके लिये प्रोत्साहित किया है। आपको धन्यवाद है।

१४९०—श्री वासुदेवप्रसाद, ग्राम भगवान बीघा, पो० मोरातलाब, जिला पटना ।

—'गृहस्थ-धर्म' एक ऐसी किताब है, जिसे पढ़नेसे बहुत-सा ज्ञान प्राप्त होता है। इसमें गृहस्थोंके लिये बहुत-सी शिक्षाएं दी गयी हैं। गृहस्थोंके लिये यह बहुत ही अच्छी किताब है।

१४९१—श्री सुरेन्द्रप्रसाद सिंह, श्री कैलाश सिंह, ग्राम थरथरीडीह, पो० चण्डी, जिला पटना ।

—आपकी देश-सेवा सराहनीय है। 'गृहस्थ-धर्म' को प्रकाशित और इसे मुफ्तमें वितरित कर आपने वास्तवमें देशका बहुत बड़ा उपकार किया है।

१४९२—श्री सीताराम मिस्त्री, पो० पाई बिगहा, जिला गया ।

—आपने इस किताबमें आश्चर्यजनक उपदेश भर दिये हैं। इन उपदेशोंके अपने आचरणमें लाकर हजारों व्यक्ति अपनेको सुधार रहे हैं। यह 'गृहस्थ-धर्म' क्या है, इसने हमारे इलाकेके लोगोंपर जादूका-सा असर फेर दिया है।

१४९३—श्री राजेश्वर सिंह, ग्राम आलमपुर, पो० शकूराबाद, जिला गया ।

—'गृहस्थ-धर्म' के प्रति मुझे अतीव श्रद्धा उत्पन्न हो गयी है। आपकी इस पुस्तकके सहारे अनेक व्यक्ति अपनी भूलोंका सुधार कर अपने जीवनको सफल और सार्थक बना रहे हैं।

१४९४—श्री के० एल० गुप्ता एण्ड कम्पनी, पो० टेहटा, जिला गया ।

—आधुनिक युगकी यह श्रेष्ठ पुस्तकोंमें है। यह दिन-पर-दिन लोकप्रिय होती जा रही है। इस पुस्तकके द्वारा आपने मानव-जातिका बड़ा उपकार किया है।

१४९५—श्री जगन्नाथ उपाध्याय, सेक्रेटरी बंशीधर पण्डा ठाकुरबाड़ी, पो० राजगीर (पटना) ।

—आपको हार्दिक धन्यवाद है कि आप सर्वसाधारण जनतामें धार्मिक भावनाओंका प्रचार करनेके हेतु 'गृ नामक पुस्तकको धर्मार्थ वितरित कर रहे हैं। आपकी इस पुस्तकसे हिन्दू संस्कृतिकी महान रक्षा हुई है।

१४९६—श्री जगन्नाथ पाण्डेय वैद्य, पो० बगोदर, हजारीबाग।

—'गृहस्थ-धर्म' क्या है, इसका महत्व क्या है, इसकी रक्षा किस प्रकार हो सकती है आदि बातोंको 'गृहस्थ-धर्म' में बड़ी शानके साथ समझाया गया है। ऐसी सुन्दर और उपयोगी पुस्तकको छापनेके लिये आपको कोटि-कोटि धन्यवाद है। भगवान आपको दीर्घायु करे।

१४९७—श्री आर० के० वर्मा, सेण्ट्रल मेटल इण्डस्ट्रीज, कोतवाली रोड, मिर्जापुर।

—'गृहस्थ-धर्म' के लिये आपको अनेक धन्यवाद। इस परमोपयोगी पुस्तकके प्रकाशनके पीछे आपके सद्उद्देश्य की हम अत्यन्त सराहना करते हैं।

१४९८—श्री अखिलेश्वरप्रसाद शिक्षक, लोअर प्रायमरी स्कूल, जनार्दनपुर, पो० फतुहा, जिला पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तककी सर्वत्र बड़ी प्रशंसा हो रही है। स्कूलोंके शिक्षकोंके लिये यह बहुत उपयोगी प्रकाशन है।

१४९९—श्री सुरेन्द्रनाथ शर्मा, ग्राम वामनपुर, पो० मुबारकपुर, जिला पटना।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको चर्चा इस समय चारों ओर फैल रही है। जनता धीरे-धीरे इसके गुणोंसे परिचित होती जा रही है। मेरे स्कूलके लड़कोंको यह बहुत पसन्द आयी है।

१५००—श्री ईश्वरदत्त पाण्डेय, ग्राम फतेहपुर हरिहर विद्यालय, जिला गया।

—आपने परोपकार तथा गृहस्थाश्रममें रहनेवाले व्यक्तियोंके सुधारके लिये 'गृहस्थ-धर्म' नामक जिस पुस्तकको प्रकाशित किया है, वह अत्युत्तम है। इस पुस्तकको पढ़कर मेरी छाती आनन्दसे गद्गद् हो उठी। इस असार-संसारमें परोपकार ही जीवनका सार है। परोपकारसे बढ़कर अन्य कुछ नहीं। कहा भी है :—

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचन द्वयम्।
परोपकाराय पुण्याय, पापाय परपीड़नम्॥

१५०१—श्री देवनारायणप्रसाद, अं० स्टेशन मास्टर, बेना स्टेशन, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर हजारों भाई उन्नतिके मार्गपर चल रहे हैं। आपकी इस पुस्तकका असर लोगोंके दिलपर जादूके समान पड़ता है।

१५०२—श्री वासुदेवनारायण सिंहा, ग्राम पो० बेगमपुर, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़नेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस पुस्तकसे मैं अत्यधिक प्रभावित हुआ हूँ। मैं निःसंकोच ... हूँ कि इस पुस्तकको प्रकाशित कर आपने मानव-समाजकी बहुत बड़ी सेवा की है।

१५०३—श्रीकान्त झा, वारसलीगञ्ज, गया।

—आपकी यह पुस्तक ग्राम-वासियोंके पथ-प्रदर्शनका कार्य करती है। मैं और मेरा सारा परिवार इस पुस्तकको पढ़कर सत्पथका अनुसरण कर रहा है। इस पुस्तक द्वारा आप असीम यशके भागी बन रहे हैं।

१५०४—श्री भगवानप्रसाद, कमरुद्दीनगञ्ज, पो० बिहारशरीफ, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर अपार हर्ष हुआ। इस पुस्तकके द्वारा लोगोंका हित हो रहा है और आपके यशकी वृद्धि हो रही है। परमपिता परमात्मासे प्रार्थना है कि वे आपका सदैव मंगल करें।

१५०५—'गृहस्थ-धर्म' जैसी आध्यात्मिक पुस्तकोंके प्रचार की आवश्यकता।

—आपकी पुस्तकको मैंने आद्योपांत पढ़ा। मेरा हृदय आनन्दसे तांडव नृत्य करने लगा। मैंने इसे पढ़नेका नियम बना लिया है। आज हमारे देशमें चोरबाजारी और घूसका बाजार गर्म है। लोग अपने स्वार्थोंके वशीभूत होकर जगन्नियन्ता को भी परवाह नहीं करते। स्पष्ट है कि वर्तमान युग भौतिक विज्ञान की ओर जा रहा है। अध्यात्मिक विज्ञान पर किसी का ध्यान नहीं है। लोग इसके प्रति उदासीन होते जा रहे हैं। और इसी कारण भ्रष्टाचार बढ़ रहा है। आज मानव अपने भाईका शोषण करनेमें भी कोई संकोच नहीं करता। ऐसे नाजुक समयमें आपकी 'गृहस्थ-धर्म' जैसी पुस्तकोंके प्रचारकी नितांत आवश्यकता है। विश्वको भारतसे अब भी बहुत कुछ आशा है। आप ही जैसे आध्यात्मवादी सज्जन 'गृहस्थ-धर्म' जैसी पुस्तकोंका प्रकाशन कर भारतवर्षको गौरवान्वित कर सकते हैं।

—श्री परमानन्द सिंह, कदमकुंआ, पटना।

१५०६—श्री बैजनाथ पाण्डेय, ग्राम मथुरापुर, पो० शिवहर, जिला मुजफ्फरपुर।

—'गृहस्थ-धर्म' धार्मिक दृष्टिसे तथा अन्य दृष्टियोंसे बहुत ही अच्छी पुस्तक है। इस पुस्तकको वितरित कर आप महान पुण्यका कार्य कर रहे हैं। इसके लिये आपको अन्तःकरणसे धन्यवाद है।

१५०७—श्री शनिचर महतो, ग्राम वेना, पोस्ट हरनौत, पटना।

—आपको हार्दिक धन्यवाद है कि गरीब किसानोंको अपने धर्म, कर्मसे परिचित करानेके लिये 'गृहस्थ-धर्म' प्रचलित किये हैं। इस पुस्तकसे सुविचारोंका आविर्भाव होता है। इससे धर्मकी पूरी जानकारी प्राप्त होती है।

१५०८—श्री बसन्तराम, अग्रवाल हाई स्कूल, बेलागंज, गया।

—यह किताब हम लोगोंके लिये बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई है। इसने समाजमें नयी लहर और जागृत उत्पन्न हुई है।

१५०९—श्री मथुरा प्रसाद, ग्राम नन्दनपुरा, पोस्ट टेहटा, गया।

—जनताकी भलाईके लिये आप 'गृहस्थ-धर्म' का प्रचार कर पुण्यका संचय कर रहे हैं। जनता इस पुस्तकसे बहुत शिक्षा ग्रहण कर रही है।

१५१०—श्री देवगुरीत सिंह, ग्राम धनकौल, मखदुमपुर, गया।

—आपके कार्यालयसे जो 'गृहस्थ धर्म' पुस्तक निकली है, उसकी ख्याति साहित्य संसारमें दिनपर दिन बढ़ती जा रही है। गृहस्थोंके लिये तो यह अत्यन्त हितकारक साबित हुई है।

१५११—श्रीमती मदनदेवी, लखपति देवी, पोस्ट बेलागंज, गया।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकसे हमलोगोंका बड़ा हित हुआ है। इससे हमारा अन्धकार दूर होकर दिल ज्ञान की ज्योति जगी है। आपको हजारों बार प्रणाम है।

१५१२—श्री नन्दलाल पाठक, ग्राम कनवानी, पो० मझगांव, जिला जौनपुर।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' को मैंने शुरूसे अन्त तक पढ़ा। इस पुस्तकसे मैं अत्यन्त ही प्रभावित हुआ। इस पुस्तकमें जिन नियमों और सिद्धांतोंका प्रतिपादन किया गया है, उनके अवलम्बनसे ही हमारी प्राचीन हिन्दू संस्कृतिका पुनरुद्धार सम्भव है। आपके इस अथक प्रदानसे सर्वसाधारण जनता बहुत लाभ उठा रही है। आपका परिश्रम दरअसल सफल और सार्थक सिद्ध हुआ है।

१५१३—श्री सिद्धेश्वर प्रसाद, द्वितीय शिक्षक, पो० बटसर (हिलसा) पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' से बहुत लाभ प्राप्त होता है। आपने लोक सेवाके लिये काफी त्याग किया है। आपका यह कार्य सर्वथा सराहनीय है।

१५१४—श्री कामता प्रसाद शर्मा, ग्राम चैनपुरा, पो० शकूराबाद, गया।

—इस पुस्तकका संग्रह कर आपने मानव समुदायकी जो सेवा की है, वह अवर्णनीय की है। विशेषता यह है कि मानवके हितोंके साथ-साथ आप पशु-पक्षियोंके हितोंकी रक्षाका सिद्धान्त भी प्रतिपादित किया है। गृहस्थोंके लिये यह आदर्श वस्तु है।

१५१५—श्री जगदीश सिंह, माध्यमिक विद्यालय छात्रावास, एकरंग सराय, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक प्रचलित कर आप जनताकी बड़ी सेवा कर रहे हैं। सभी लोग इस किताबकी प्रशंसा कर रहे हैं। दूसरेका होनेके कारण मुझे इस पुस्तकको दे देना पड़ा। लेकिन तबसे मुझे नींद ही नहीं आती। मैं इस किताबके बताये गये उपदेशों पर अमल करनेके लिये अति लालायित हूँ।

१५१६—श्री देववरण सिन्हा, पटना।

—मैंने अपने एक मित्रसे लेकर आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक को पढ़ा, और इसे महत्वपूर्ण पाया। इस [illegible]कके आधार पर भारतीय अपने नैतिक स्तरको उच्च बना सकते हैं।

१५१७—श्री सतीशचन्द्र प्रसाद वर्मा, नूरसराय, पटना।

मैं दम्पत्य-जीवनको सफल बनानेके लिये इस पुस्तकको अति आवश्यक समझता हूँ।

१९१८—धर्म-प्राण श्रीमान् सेठ मनसुखरायजी मोर

के कर-कमलोंमें सादर समर्पित !

अभिनन्दन-पत्र !

परम श्रद्धेय ! मानवता और सृष्टिका आज जिस भांति दिनों-दिन ह्रास होता जा रहा है, उससे आप मर्माहत हैं। संसारके प्राणी-मात्रको रक्षा हो, उन्हें पूर्ण अभयदान मिले, इसी भावनासे प्रेरित होकर आपने मानवताकी सेवाका जो पुनीत व्रत धारण किया है, वह सर्वथा स्तुत्य है।

महानुभाव ! संसारके समस्त प्राणियोंमें शक्तिका संचार करनेके लिये आप कितने चिन्तित और यत्नशील हैं, आपके द्वारा संग्रहित, प्रकाशित और सहस्रोंकी संख्यामें निःशुल्क वितरित 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक इसका ज्वलन्त प्रतीक है। हम तो यही कहेंगे कि "गृहस्थ-धर्म" वास्तवमें आपकी मानव-कल्याणकारी विचार-धाराका स्वच्छ दर्पण है, जिसमें आपके सात्विक और संयमशील जीवन, धर्म-निष्ठा, सम-दृष्टि, परोपकारी-वृत्ति और उच्चादर्शोंके दर्शन होते हैं। राष्ट्रके जीवनको आप कितना उच्च देखना चाहते हैं, इस धर्म-ग्रंथसे इसका भी पूर्ण परिचय मिलता है। दूसरों कीः शक्ति और अधिकारोंका अपहरण होते देख आपका हृदय तिलमिला उठा है।

परम आदरणीय ! आपके सदृश्य श्रेष्ठ मानवको अपने मध्य पाकर "विश्वबन्धु" परिवारमें आज हर्ष और उल्लास छाया हुआ है। हम अपनेको गौरवान्वित समझ रहे हैं। मानवको राग, द्वेष, कलह एवं विनाशसे बचानेके लिये आपके द्वारा किये जानेवाले प्रयत्नों और उद्देश्यों को अग्रसर करानेके हेतु "दैनिक विश्वबन्धु" सदैव अपनी विनम्र सेवाएं देनेको तत्पर रहेगा, इसका हम आपको पूर्ण आश्वासन देते हैं। भगवान इस पुनीत कार्यमें आपको सफलता प्रदान करें, यही हमारी कामना है।

हम हैं, आपके "विश्वबन्धु" परिवारके सदस्यगण।

२२ सितम्बर, १९५१।

सम्मतियाँ और उद्गार !

१५१९—श्री चन्दन सिंह वैद्य, ग्राम रसौटा, पो० बलौदा, बिलासपुर।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको पढ़कर मुझे अतीव आनन्दकी प्राप्ति हुई। ऐसी बहुमूल्य पुस्तकका प्रचार कर आप सनातनधर्म की महान रक्षा कर रहे हैं। इस पुस्तकके सदुपयोगसे मानव जातिका बड़ा कल्याण हो सकता है।

१५२०—श्री बलराम पाठक, खड़गपुर, जिला मेदनीपुर।

—आपकी रचित 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको पढ़कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। देशोपकार और संस्कृतिकी रक्षाका दायित्व आप जैसे विज्ञ सज्जनों पर ही है। मेरे स्कूलके विद्यार्थियोंकी संख्या १५२१ है। स्कूलके लड़कोंकी शिक्षाके लिये यह एक उपयोगी पुस्तक सिद्ध हुई है। आशा है कुछ और प्रतियाँ भेजकर अनुगृहीत करेंगे। आपका बहुत बड़ा पुण्य होगा।

१५२१—श्री सीताराम गोस्वामी, ग्राम मोहूरयत, जिला गया।

—इस पुस्तकको पढ़कर लोग ज्ञानकी बहुत-सी बातें सीख सकते हैं। यह अपने ढगकी निराली पुस्तक है।

१५२२—श्री रमेशकुमार मिश्र, अपर बाजार शिवालय, रांची।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर मैं आनन्दसे फूला न समाया। मैं किसी दूसरे सज्जनके पाससे इसे लाया हूँ। आप मेरे ऊपर अनुग्रह कर इसकी एक प्रति मेरे लिये भी भेजनेकी कृपा करें। मैं आजीवन आपका उपकृत रहूँगा।

१५२३—श्री रामलगन सिंहा, ग्राम टिकारी चक, पो० डिहरी, जिला पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको दूर-दूर भेजकर आप मानव-जातिका बड़ा हित कर रहे हैं।

१५२४—श्री पूर्णचन्द ज्योतिषी, पो० अहर, पानीपत, जिला करनाल (पूर्व पंजाब)।

—आपकी प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' पढ़ा। बहुत आनन्द प्राप्त हुआ। दूसरेकी होनेके कारण मनकी अभिलाषा पूर्ण न हो सकी। इस पुस्तकको सदैव अपने घरमें रखकर मैं अपने जीवनको सुखी बनाना चाहता हूँ।

१५२५—श्री जमुना महतो, ग्राम शेखअहमी, पो० ओंगारीधाम, जिला पटना।

—अपने सहपाठियोंको लेकर मैंने 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़ा। इससे मुझे बहुत शिक्षा प्राप्त हुई। इस पुस्तकके द्वारा मैं अपने गांवके लोगोंको उपदेश देना चाहता हूँ।

१५२६—श्री सरयू सिंह, ग्राम छतरबिघा, पो० अमांवा, जिला पटना।

—श्रीमान् ने पतनोन्मुख हिन्दू-जातिके परिष्कारके लिये आदर्श तथा उपयोगी शिक्षाओंका संग्रह किया है। ...ी रचना 'गृहस्थ-धर्म' का अध्ययन किया है। इसे पढ़कर मेरी मनोकामना पूर्ण हुई है।

१५२७—श्री कपिलदेव शर्मा, ग्राम सलीमपुर अहरा, श्रीनिवास आश्रम, पटना ।

—राष्ट्रीय तथा सामाजिक कल्याणकी भावनाओंसे प्रेरित होकर ही आपने 'गृहस्थ-धर्म', जैसी श्रेष्ठ पुस्तक निकाली है । आपके इस कार्यके लिये देशवासी सदैव आपके कृतज्ञ बने रहेंगे ।

१५२८—श्री सीताराम लाल, मुकाम-पोस्ट किंगर, गया ।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर लोगोंको अपनी बुद्धि और सामर्थ्यानुसार अपने समाज, देश तथा जातिके सुधारमें हाथ बँटानेकी प्रेरणा मिलती है । घरकी देवियां अपने कर्त्तव्यको पहचाने लगती हैं ।

१५२९—श्री लक्ष्मीनारायण सिंह, ग्राम डीह, पो० बरबीघा, जिला मुंगेर ।

—मानवोंके हितके लिये आप 'गृहस्थ-धर्म' को मुफ्तमें प्रदान कर रहे हैं । यह पुस्तक गृहस्थोंके बड़े कामकी है । इसमें अन्य विषयोंका भी महत्वपूर्ण विवेचन किया गया है ।

१५३०—श्री बालकृत्यप्रसाद, गांधी-छात्रावास, लखपुरा हाई-स्कूल, जिला भागलपुर ।

—'गृहस्थ-धर्म' को शुरूसे आखीरतक पढ़कर मैंने बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त किया । मेरे अन्य कई साथी इस पुस्तक को पढ़नेके लिये व्यग्र हैं ।

१५३१—श्री जगदीशप्रसाद अग्रवाला, मु० पो० नूरसराय, जिला मुजफ्फरपुर ।

—'गृहस्थ-धर्म' का अवलोकन किया । वास्तवमें यह पुस्तक मनुष्य-जातिको उन्नतिकी शिखरपर चढ़ानेमें बड़ी सहायक सिद्ध हो सकती है ।

१५३२—श्री के० एन० शर्मा, क्लर्क फूड आफिस, बिलासपुर ।

—हर्षकी बात है कि आप जनता जनार्दनके लाभार्थ 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकका वितरण कर रहे हैं । किसी गृहस्थको सात्विक एवं नैतिक जीवन किस प्रकार व्यतीत करना चाहिये, इस पुस्तकमें आपने यह सब कूट-कूट कर भर दिया है ।

१५३३—श्री लक्ष्मीप्रसाद मोची, पो० दाहा बिगहा, पटना ।

—आपके इस शुभ कार्यके लिये कौन ऐसा अभागा होगा, जो आपको धन्यवाद न देगा । 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर मन आनन्दसे विभोर हो जाता है । आज किसानोंके बीच अन्धकारका साम्राज्य फैला हुआ है । आपकी इस पुस्तकसे उन्हें ज्ञानकी ज्योति मिलती है ।

१५३४—श्री गुरुचरणराम, माध्यमिक विद्यालय, पो० खिजरसराय, जिला गया ।

—मैंने आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तकका अवलोकन किया । पढ़नेसे दिल नहीं अघाया । आप इस पु[illegible] से अपनी कीर्त्तिको उज्ज्वल बना रहे हैं ।

१५३५—श्री अनिरुद्ध शर्मा, ग्राम कुबरी, पो० उसरी, जिला गया।

—आपके द्वारा संग्रहित 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़नेका सुअवसर प्राप्त हुआ। पढ़कर दिल बहुत आनन्दित हुआ। यह पुस्तक हिन्दुओंके लिये बड़ी ही लाभदायक है। मैं अपने ग्राम-वासियोंको इस पुस्तकको सुनाकर उन्हें सत्कर्मकी ओर अग्रसर करा रहा हूँ। हिन्दू संस्कृतिके प्रति मेरी अगाध श्रद्धा है। मैंने यह दृढ़व्रत धारण किया है कि मैं अपना शेष जीवन हिन्दू-धर्म और संस्कृतिकी रक्षा करनेमें ही व्यतीत करूंगा। आपकी पुस्तकसे मुझे बड़ी सहायता मिल रही है। इससे मुझे बड़ा बल मिला है। हिन्दू समाज आज पथ-भ्रष्ट है। हम अपने कर्त्तव्यसे विमुख हैं। लोग पश्चिमी सभ्यताके दास बन गये हैं। मेरी दृढ़ धारणा है कि 'गृहस्थ-धर्म' हिन्दुओंको इस ह्रासको बचानेमें समर्थ होगी। इस पुस्तकमें गृहस्थोंका क्या कर्त्तव्य होना चाहिये, इसे भली भांति समझाया गया है।

हमारे ग्रामके लिये कुछ और प्रतियोंकी जरूरत है। मैं प्रति दिन इस पुस्तकके उपदेशोंको अपने ग्राम-वासियोंको सुनाया करता हूँ। अधिक प्रतियां रहनेसे ग्राम-वासियोंको यथेष्ट लाभ पहुंच सकेगा और वे धर्म-मार्गसे विचलित न होकर अपनी संस्कृति और धर्मको आसानी से पहचान सकेंगे।

१५३६—श्री नवयुवक हिन्दी पुस्तकालय, चण्डासी, पो० नूरसराय, पटना।

—मैंने आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकका अध्ययन किया। इसे पढ़कर मैं इस नतीजेपर पहुंचा हूँ कि प्रत्येक गृहस्थको इस पुस्तकका अध्ययन और मनन करना अनिवार्य है। आपने परोपकारार्थ इस पुस्तकको बिना मूल्य वितरित करनेको संकल्प किया है, इसके लिये आप धन्य हैं।

१५३७—श्री विष्णुदेव मिश्र, 'विमल' ग्राम करेही, पो० सूर्यगढ़ा, ज़िला मुंगेर।

—हम गृहस्थोंको यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये, क्योंकि इसे पढ़कर गृहस्थ-जीवनको सफल बनानेमें बड़ी सहायता मिलती है। इसे पढ़नेसे हमें कई तरहकी शिक्षा प्राप्त होती है।

१५३८—श्री राजेन्द्रप्रसाद, ग्राम तालसाचा, पो० नदवां, जिला पटना।

—पुस्तकको पढ़नेपर मुझे यह बहुत ही रोचक और लाभदायक प्रतीत हुई, इसे पढ़कर कोई भी व्यक्ति अपने गृहस्थ-जीवनको अच्छे ढङ्गसे व्यतीत कर सकता है। जीवनमें उन्नति करनेका साधन भी इस पुस्तकसे प्राप्ति हो सकता है और इससे सामाजिक उन्नति होती है।

१५३९—श्री अम्बिकाप्रसाद शिक्षक, हाई इङ्गलिश स्कूल, कुर्था, जिला गया।

—आपके इस सत्प्रयाससे हमारी वर्तमान और भावी पीढ़ीको अपनी शाश्वत संस्कृतिको सदैव अक्षुण्ण बनाये रखनेकी प्रेरणा प्राप्त होगी, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। आपके इस अपूर्व साहसकी मुक्त कण्ठसे प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता। 'गृहस्थ-धर्म' का प्रचार बड़े पैमानेपर हो रहा है। आशा है, इस पुस्तकको पढ़कर सर्वसाधारण व्यक्ति आशातीत लाभ उठायेंगे।

१५४०—श्री अखिलेश्वर शर्मा, हाई स्कूल, मखदुमपुर, जिला गया।

—हमारे गांवमें 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़नेके लिये लोग अत्यन्त लालायित हैं। इस ग्राममें इस बातका प्रचार किया गया कि सरकारकी तरफसे 'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तक प्रकाशित की गयी है और उससे लोगोंको फायदा उठाना चाहिये। इस पुस्तकसे ग्राम-वासियोंकी कितनी भलाई हो सकती है, यह वर्णनातीत है।

१५४१—श्री अर्जुन सिंह, ग्राम वडीहा, पो० पभेड़ा, जिला पटना।

—आपकी किताब 'गृहस्थ-धर्म' मानव-जीवनके लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है। इस किताबमें हमारे पूर्वजों और ऋषि-मुनियोंके अनुभव और उपदेश मौजूद हैं। हमारे पूर्वजोंने ब्रह्मचर्य-धर्म और सदाचारका पालन किया। उनके समयमें हमारा देश सारे संसारका शिरोमणि था। उनके उपदेशोंको ग्रहण कर हम अपने खोये हुए गौरवको पुनः [illegible] कर सकते हैं। आपकी इस किताबको पढ़कर हमारा जीवन बहुत कुछ सुधर सकता है। इस किताबके रचयिताकी पीढ़ी-दर-पीढ़ी ऋणी बनी रहेगी।

१५४२—एस० एन० सहाय, हेडमास्टर गुमला हाई स्कूल गुमला, रांची ।

—मैंने अपने स्कूलके एक छात्रके पास आपकी भेजी हुई "गृहस्थ-धर्म" नामक पुस्तक देखी। मैंने बड़ी दिल-चस्पीके साथ इस पुस्तकको पढ़ा। यह पुस्तक छात्रों तथा शिक्षकोंके लिये बहुत उपयोगी प्रतीत होती है। इसे पढ़कर उन्हें बहुत लाभ होगा। उक्त छात्रसे मुझे यह भी ज्ञात हुआ कि आप इसे निःशुल्क वितरित करने की कृपा कर रहे हैं। अतएव, मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप स्कूल के शिक्षकों, छात्रों तथा लायब्रेरी के उपयोगके लिये इसकी २५ प्रतियां भेज देनेकी कृपा करें। इसके लिये आपको धन्यवाद देते हुए—

(हस्ताक्षर) हेड-मास्टर—

(मूल पत्र अंग्रेजीमें)

१५४३—उपयोगी संग्रह।

—प्रभुकी अपार अनुकम्पासे गृहस्थ-धर्मकी मर्यादाकी रक्षा करनेके हेतु आपने 'गृहस्थ-धर्म' नामक उपयोगी संग्रहका प्रकाशन और वितरण किया है। इस कार्यके लिये हम आपको हार्दिक धन्यवाद देती हैं।

(१) गयादेवी, प्रधानाध्यापिका, बालिका विद्यालय, गोनावां, पटना।
(३) शान्तिदेवी, गोनावाँ, पटना।
(२) मंजूदेवी, मार्फत् डाक्टर गिरिजेश नन्दन सिंह, एल० एम० पी०,
सर गणेश चेरिटेबुल डिस्पेन्सरी, गोनावां, पटना।
(४) मालतीदेवी, मार्फत् श्री चन्द्रिकाप्रसाद सिंह, जमींदार, गोनावां, पटना।

१५४४—महिलाओंके लिये पठनीय।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक आपकी पुस्तक हम महिलाओंके लिये सर्वथा पठनीय है।

(१) कमलावतीदेवी, ग्राम बंगपुर,।
(२) चम्पावतीदेवी, ग्राम बंगपुर, पो० परवलपुर, जिला पटना।

१५४५—श्रीमती सुशीलादेवी, अपर प्रायमरी स्कूल रैसा, पो० चण्डी, जिला पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको पढ़कर मैंने बहुत ज्ञान प्राप्त किया। इसके लिये मैं आपकी बहुत कृतज्ञ हूँ।

१५४६—श्री अनन्तप्रसाद शर्म्मा, शर्म्मा मेडिकल स्टोर्स, पो० जमालपुर, जिला मुंगेर।

—आपकी प्रेषित 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक मिली। एतदर्थ अनेक धन्यवाद! ऐसे समयमें आपका यह धार्मिक प्रयास अत्यन्त प्रशंसनीय है।

१५४७—श्री गिरीशमोहन मिश्र, मु० चेदरा, पो० बिशुनगढ़, बजारीबाग।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको पढ़ा। पढ़नेपर दिल अत्यन्त ही खुश हुआ। इसके लिये आपको अनेकानेक धन्याद। आशा है, इस पुस्तकके अध्ययनसे सभीकी भलाई होगी।

१५४८—श्री रामनिवास, बंशी स्टोर, भिवानी, हिसार।

—'गृहस्थ-धर्म' बहुत अच्छी किताब है। इससे जनताको फायदा होता है और इसके पढ़नेसे बहुत ज्ञान प्राप्त होता है।

१५४९—कविराज श्री गणेशप्रसाद पाण्डेय, दातव्य औषधालय, पो० पीरी बाजार, जिला मुँगेर।

—आपके 'गृहस्थ-धर्म' नामक ग्रन्थसे हिन्दू-धर्मके प्रचारमें बड़ी मदद मिलेगी।

सम्मतियाँ और उद्गार !

१५५०—श्री जनार्दन प्रसाद शर्म्मा, ग्राम-पो० कसमार, हजारीबाग ।

—आप बहुत दीन-दयालु हैं । आप अधःपतितोंको उठाकर अग्रसर करनेवाले हैं । आप इस अन्धकाररूपी संसार को अपनी ज्ञान ज्योतिमें जगमगा रहे हैं । आपके सिवा हमलोगोंको दूसरा कोई मनुष्य नहीं बना सकते हैं । हमें पूरा विश्वास है कि आप कुछ ही दिनोंमें संसारके सभी मनुष्योंमें अपनी नवीन ज्योति फैलाकर उन्हें बचावेंगे । आपकी भेजी हुई किताब 'गृहस्थ-धर्म' ने कईएक मनुष्योंको जीवन दिया है ।

१५५१—श्री मुन्शी प्रसाद शर्मा, पो० कराय, जिला पटना ।

—'गृहस्थ-धर्म' ब्रह्मचर्य-धर्म तथा मानव-जीव के उत्थानमें बड़ी सहायक है । आपकी इस पुस्तकका देशके कोने-कोनेमें प्रचार हो रहा है और यह पुस्तक मनुष्य मात्रके देखने और उसपर चलनेके योग्य है ।

१५५२—श्री विन्दालाल प्रधानाध्यापक, मोकाम-पो० तेल्हाड़ा, पटना ।

—मैंने आपके द्वारा प्रचारित 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको एक सहृदय मित्रके पास अध्ययन कर बड़ा ही हर्ष प्राप्त किया । इस महती कृपादानके लिये परमेश्वर सदैव आपको कृपापात्र बनाए रखें ।

१५५३—श्री रामईश्वर प्रसाद सिंह, मो० मलविगहा, पो० हिलसा, पटना ।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको देखनेका अवसर मिला । यह पुस्तक वास्तवमें गृहस्थोंके लिए ही नहीं, बल्कि सभी सभ्य समाजके लोगोंके कामकी सिद्ध हुई है ।

१५५४—प्रधानाध्यापक, लो० अ० प्रा० स्कूल रजवा, पो० परवलपुर, पटना ।

—मैं आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नाम की पुस्तकको पढ़कर अत्यन्त प्रसन्न हूँ । और साथ ही साथ आपको धन्यवाद देता हूँ । ईश्वर आपका हृदय हमेशा परोपकार आदिमें लगा रहे । और ईश्वर आपकी दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की करता रहे ।

१५५५—श्री आशुतोष पुस्तकालय, मौजा सुखचैन, पो० औंगारी, पटना ।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है । यह पुस्तक पढ़ने लायक है क्योंकि सदाके लिए उपयोगी है ।

१५५६—पं० बालगोविन्द पण्डा, मु०-पो० मसमानो, जिला रांची ।

—आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' हिन्दू गृहस्थकी एक अपूर्व निधि है । इसकी उपयोगिता देखकर मन मुग्ध हो जाता है । सनातन धर्मकी सहायता कर आप पुण्यके भागी हैं ।

१५५७—श्री दुवरी दूबे, नं० ५६, बड़तल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता—७ ।

—आपने 'गृहस्थ-धर्म' नाम की जो पुस्तक प्रकाशित करवाई है, वह हम गृहस्थोंके लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध है । और भविष्यमें भी आशा करता हूँ कि आप ऐसी रचनाओं द्वारा मार्ग दिखाते रहेंगे ।

१५५८—श्री बाबूलाल, बंसीलाल, पो० पंधाना, जिला निमाड़, सी० पी० ।

—आपकी भेजी हुई 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक पढ़कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई । इसके लिये आपको बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि आपके द्वारा मानव कल्याण का नया द्वार अवश्य खुलेगा व हमारे देशके हिन्दू समाजका भविष्य भी सुधरेगा । साथ ही उस परमपिता परमेश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि आप जैसे श्रीमान् लोगोंकी धार्मिक भावनाकी उच्चत्तम प्रवृतिकी उन्नति दिनों-दिन हो भी जाये ।

१५५९—पं० यज्ञनारायण मिश्र 'शास्त्री', प्रधानाध्यापक, संस्कृत पाठशाला व पोस्ट लक्ष्मीकान्तगञ्ज, (वसुआपुर), जिला प्रतापगढ़ (अवध) ।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकका दर्शन हमें अकस्मात् एक स्थान पर हो गया । यद्यपि मैं उसे भलीभांति न देख सका, तथापि थोड़े अंशसे ही उसके गुणोंका पता चल गया । आप धन्य हैं, कि ऐसी-ऐसी पुस्तकोंका निर्माण कर देशके कल्याणार्थ निर्मूल्य ही वितरण करते हैं ।

१५६०—श्री मनमोहन प्रसाद साहू, माध्यमिकशाला, भटगांव, पो० भटगांव, रायपुर ।

—आपने असीम कृपा करके लोगोंकी बुद्धिका उत्कर्ष करनेके लिए तथा शिक्षा, नीति, सुकर्म और गृहस्थोंके आचरणके बारेमें 'गृहस्थ-धर्म' नामक मनोहारी पुस्तक छपवाकर जो विचार जाहिर किया है, इसके लिए मैं आपके गौरव को कहांतक वर्णन करूँ ? और कौन पुरुष स्वार्थ-रहित ऐसा कार्य करेगा ?

१५६१—श्री रघुनाथ प्रसाद वर्मा, असस्टिंन्ट स्टेशन मास्टर, मक्सी जी० आई० पी० जिला उज्जैन (मध्य भारत) ।

—सीकरसे लौटते समय मुझे मेरे एक मित्रके पास हिंदी भाषामें लिखी हुई 'गृहस्थ-धर्म' नाम की पुस्तक देखने का अवसर मिला । यह पुस्तक हर एक गृहस्थके लिये अधिक उपयोगी है ।

१५६२—श्री रामलखन तिवारी 'विशारद', सहायक अध्यापक, प्राइमरी पाठशाला मेजा रोड, गांव-पोस्ट मेजा रोड, जिला इलाहाबाद ।

—'गृहस्थ-धर्म' मैंने एक सज्जनके पास देखी । सचमुच यह पुस्तक सामाजिक उत्थानकी एक रमणीय सीढ़ी है ।

१५६३—श्री नारायण प्रसाद, भारती विद्यामन्दिर, पो० भतहर, जिला पटना ।

—'गृहस्थ-धर्म' जैसे उपयोगी ग्रंथके संग्रह तथा बिना मूल्य वितरणके लिये धन्यवाद ।

१५६४—श्री रामकिशोर गुप्ता खण्डेलवाल, विजय स्टोर, पो० कांटाभाजी, रायपुर ।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक खेमचन्द चन्दनमलकी दुकान पर देखी । और उसमेंसे कुछ हिस्से प[illegible] मनुष्य जीवनके लिये यह पुस्तक बहुत उपयोगी है ।

१५६५—श्री लक्ष्मीनारायण सिंह, ग्राम मानो, पो० लखीसराय, मुंगेर।

—'गृहस्थ-धर्म' संसारकी एक सर्वोत्कृष्ट पुस्तक है, जो सर्व-साधारण जन-समुदायके अति हितकारक तथा उन्नति पथ-प्रदर्शक है।

१५६६—श्री शिवदयालराम चौधरी, ग्राम रूपसपुर, पो० बुनियादगंज, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक आपकी प्रस्तुत पुस्तक बहुत प्रसिद्ध हो चुकी है। यह घर-घरमें व्याप्त हूँ। आप इस पुस्तकका प्रचार कर लोगोंको कुमार्गसे हटाकर सुमार्ग पर अग्रसर करा रहे हैं।

१५६७—श्री कामता प्रसाद वर्मा, ग्राम बेलाढ़ी, पो० बेलागंज, गया।

—यह पुस्तक बहुत ही रोचक और नये ढङ्ग पर प्रकाशित हुई है। और साथ ही साथ यह पुस्तक शिक्षाका मार्ग है। इस पुस्तकको पढ़कर हर एक आदमी ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

१५६८—श्री वासुदेव प्रसाद सिंह, श्री शुकदेव विद्यालय, एकंगरसराय, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' का अध्ययन किया। मेरा रोम-रोम धर्म तथा शिक्षासे सिहर उठा। मेरी इच्छा इसमें प्रतिपादित धर्मको गृहस्थोंमें प्रचार करने की है।

१५६९—श्री दीपन चौधरी, पंडितगंज माध्यमिक विद्यालय, पो० पंडितगंज, पटना।

—आपकी सामाजिक एवं धार्मिक सेवा सराहनीय है। आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' सुन्दर भावों एवं उपदेशोंसे परिपूर्ण है। मैं इसके सुन्दर भावोंसे प्रेरित हो गया हूँ।

१५७०—श्रीमती लालपति देवी, स्कूल चैनपुरा, पोस्ट शकूराबाद, गया।

—यह पुस्तक गृहस्थोंके लिये एक बहुत अच्छी पुस्तक है। आपने इस पुस्तकको रच कर जो मानव-समाजकी सेवा की है, वह अवर्णनीय है।

१५७१—श्री श्रीकृष्णनन्दन सिंह, मुकाम सैदपुरा, पो० पोखरामा, मुंगेर।

—आपके दान और दयाका पुष्प 'गृहस्थ-धर्म' लोगोंको बहुत लाभ पहुँचा रहा है। इसमें अपनी तथा अन्य लोगोंकी अपूर्व भलाई है।

१५७२—श्री चन्द्रिका प्रसाद, इ० मि० स्कूल बम्हनीडीह, पो० बम्हनीडीह, बिलासपुर।

—मैंने 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक देखी है। उसमें लिखित नियम गृहस्थोंके लिये मुझे बहुत ही उपयोगी मालूम हुए। आप जो यह काम धर्म-प्रचारके हेतु धमार्थ कर रहे हैं, इसके लिये आपको हार्दिक धन्यवाद है।

१५७३—श्री रामलखन चौधरी, मोकाम कैलाबीघा, पो० तेल्हाड़ा, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' किताब सर्वत्र प्रचलित हो चुकी है। यह पुस्तक बहुत ही सुन्दर है और इसे पढ़कर उच्च शिखर ...ी भावना बनी रहती है।

१५७४—श्री जमुना महतो, ग्राम शेखअली, पो० औंगारी धाम, पटना।

—मैंने 'गृहस्थ-धर्म' अपने सहपाठियोंसे लेकर पढ़ी, इससे मुझे बहुत शिक्षा प्राप्त हुई। मैंने अपने गांवके कितने ही लोगोंको इसकी शिक्षा दी। उन लोगोंको इसका रहस्य मालूम हो गया। वे लोग इसे पढ़नेके लिये उद्यत और लालायित हो रहे हैं।

१५७५—श्री भगवान शर्मा, पुस्तकालयाध्यक्ष, श्री सुभाष मनोविनोद भवन, नेवारी, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक बहुत ही उपयोगी एवं लाभ-प्रद साबित हो चुकी है।

१५७६—डा० अनूपनारायण सिंह, ग्राम नन्तन बिगहा, पो० भतहर, पटना।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तककी प्रसिद्धि सुनकर मुझे भी उसे देखनेकी इच्छा हुई। वह पुस्तक हम गृहस्थोंके लिये उपयोगी है।

१५७७—श्री अनिलकुमार, गांव महुदा, सियाटांगर, पो० सिसई, जिला रांची।

—मैंने 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको एक भाईके पास देखा और इसे पढ़कर मुझे ऐसा लगा कि यह पुस्तक हम जैसे गृहस्थोंके लिये अति लाभ-प्रद है।

१५७८—मन्त्री 'आजाद संघ पुस्तकालय', मो० राजा बिगहा, पो० मखदूमाबाद, जिला गया।

—'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तक अपने एक सज्जनजीके यहां पढ़नेका अवसर प्राप्त हुआ। आपकी यह अमर-कृति अमर रहेगी। यह पुस्तक कल्याणार्थ लिखी गयी है।

१५७९—श्री निवास शर्मा, मो० टिकीचक, पो० डिहरी, जिला पटना।

—इस पुस्तकमें बहुत-सी धार्मिक बातोंकी चर्चा की गयी है। आप इस पुस्तकको वितरित कर जनता-जनार्दन को काफी सेवा कर रहे हैं।

१५८०—श्री ब्रह्मदेवप्रसाद, मो० लक्ष्मीपुर, पो० समयागढ़, पटना।

—इस पुस्तकका मुझे तथा मेरे गांवके लोगोंको पढ़नेका मौका मिला है। इस पुस्तककी शैली-भाषा तथा अन्य दूसरी-दूसरी चीजें पढ़कर हम लोग आपके आभारी हैं और जनता इस पुस्तकको पढ़नेके लिये अत्यन्त इच्छुक हैं।

१५८१—पं० लक्ष्मीनारायण शुक्ल, पो० मुँगेली, जिला विलासपुर।

—आपने जो 'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तक निकाली है, वह सब लोगोंके कल्याणार्थ अति आदरणीय पुस्तक

१५८२—श्री गणेश, लक्ष्मीपुर कचहरी, देवघर, दुमका ।

आप जैसे पुण्यात्मा, पुरुषार्थी, गृहस्थ-धर्म-ज्ञाता, अज्ञानमें ज्ञान देनेवाला दाता, परोपकारी जीवन व्यतीत करनेवाला मनुष्य हमारे पुण्य भारत-खण्डमें अवतार लेकर सोये हुए मनुष्यको ज्ञान देकर जागृत कर देते हैं। अंग्रेजोंके आगमनसे और उनकी गुलामीमें हमलोगोंको बहुत दिनोंतक रहनेकी वजह हमारे गृहस्थी-धर्ममें बहुत हेर-फेर हो गया। फलतः दिन-पर-दिन हमारा पतन होता जा रहा है, क्योंकि हम अपने पूर्वजोंके किये मुताबिक गृहस्थ-धर्म के अनुकूल नहीं चल सके, इसी लिये। एक बार युधिष्ठिरने ग्राह-रूपी धर्मको उत्तर दिया था कि महाराज ग्राहजी मनुष्यको पथ वही अच्छा है, जो अपने पूर्वजोंके किये मुताबिक कर्मपर चले तो उसीका नाम पथ है, क्योंकि संसारमें अनेक मत हैं। वेद अलग हैं, पुराण अलग हैं, सन्त-वाणी अलग हैं।

आज हम आज़ाद हुए फिर भी लाठी (धर्म शास्त्र ज्ञान) बिना अन्धे हैं। इस संसारी बन्धनमें सबसे परम गृहस्थ-धर्म है, जो कि हम बहुत दिनोंसे खोये बैठे हैं। आप हम लोगोंके कर्णधार बनकर एक अति ऊँची चोटीपर पहुंचानेवाला 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक बना कर हमें गढ़ेसे ऊपर करना चाहते हैं। ऐसे कर्णधार को हम हिन्दूवासी एक स्वर से बधाई प्रदान करते हैं और आशा करते हैं कि भविष्यमें भी आपके समान मनुष्य अवतार लेकर हमें नीचे गिरनेसे बचावें।

१५८३—डा० कैलाशप्रसाद, दि राम मेडिकल हाल, मावपाड़ा, पो० अतासराय, पटना ।

—'गृहस्थ-धर्म' बहुत ही अनोखी पुस्तक है । उससे हमें तथा हमारे परिवारको विशेष लाभ पहुंचा है ।

१५८४—श्री संचालक कलकत्ता स्टोर, हेलिडे, रोड, गया ।

—मैंने आपके 'गृहस्थ-धर्म' के कुछ अंश पढ़े हैं । यह बहुत उपयोगी प्रकाशन है । इस शुभ कार्यके लिये आपको कोटिशः धन्यवाद है । पुस्तकसे मुझे लाभ हुआ है ।

१५८५—पुस्तकसे प्रभावित ।

—हम निम्नलिखित व्यक्ति आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको पढ़कर अत्यन्त प्रभावित हुए हैं । और इस पुस्तकका नित्य-प्रति अध्ययन कर रहे हैं ।

श्री गौरीशङ्करजी रामनाथ, मोती बाजार, हाथरस ।

श्री जोहरमल रामप्रसाद, मुड़सान गेट, हाथरस ।

श्री हीरालाल नारायणदास, मुड़सान गेट, हाथरस ।

श्री गेंदामल रामस्वरूप, नयागंज, हाथरस ।

श्री पं० विश्वनाथ फ्लोर मिल, सासनी गेट, हाथरस ।

श्री मुन्नालालजी पोद्दार मोती बाजार, हाथरस ।

श्री पं० रघुनाथ पुजारी बाग, बिसनदयाल हाथरस ।

१५८६—पं० मीठालाल, हिम्मतलाल ओझा, ज्योतिषाचार्य मीरघाट, बनारस ।

—आपके 'गृहस्थ-धर्म' नामक ग्रन्थको देखा । यह ग्रंथ अतीव लोकोपयोगी है । आज ऐसे ग्रन्थकी आवश्यकता है ।

१५८७—श्री राजेन्द्रप्रसाद सिंह, बी० ए०, मार्फत पंडित सूर्यकान्त झा वकील, बेगूसराय, जिला मुँगेर ।

—आपने 'गृहस्थ-धर्म' को पुस्तकके रूपमें संग्रहित कर समाज-सुधारके कार्यको जो अपने ऊपर वहन किया है, इसके लिये सारा भारतीय समाज आपका आभारी रहेगा ।

१५८८—श्री विजय सिंह क्षत्री, प्रधानाध्यापक, हि० मि० स्कूल, भटगांव जमींदारी, भाया-रायगढ़ सी० सी० ।

—आपके यहांकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' यहांके कुछ लोगोंसे अवलोकन करनेका सुअवसर प्राप्त हुआ । धर्मावलम्बीके लिये परमोपयोगी है, जो कि मुझे विशेष रुचिकर लगा है ।

सम्मतियाँ और उद्‌गार !

१५८९—श्री रामचन्द्रप्रसाद ठाकुर, प्रधान मंत्री, श्री कुशेश्वर पुस्तकालय, घघरी, पो० रून्नीसैदपुर, जिला मुजफ्फरपुर।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको आप धर्मार्थ दान कर रहे हैं। इस कृपाके लिये आपको कोटिशः धन्यवाद।

१५९०—श्री महेश्वरप्रसाद साहू, शिक्षक, मु० पो० बिलाईगढ़, जिला रायपुर।

—हम गृहस्थ-धर्मियोंके लिये विशेष हर्षका प्रसंग है कि आपने अपने सतत व कठिन परिश्रमसे हम गृहस्थोंके पथ-प्रदर्शनके लिये 'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तकका निर्माण किया है, उसके अनुसार आचरण कर हम अपना धर्म निर्वाह कर सकेंगे।

१५९१—श्री सूर्यनारायणप्रसाद गुप्त, कृष्णप्रकाश पथ, गया।

—स्वदेश और धर्मके उत्थानके उद्देश्यसे जो कार्य आपने आरम्भ किया है, वह सर्वदा स्तुत्य है। भगवान आपको अपने उद्देश्यमें सफलता दें। मेरी शुभ कामनायें आपके साथ हैं।

१५९२—श्री सुरेशप्रसाद, पो० हाटी, जिला गया।

—आपने कृषकों तथा आम जनताकी उन्नतिके लिये 'गृहस्थ-धर्म' नामक जो पुस्तक प्रकाशित की है, वस्तुतः उससे आधुनिक कृषकोंको काफी सहायता मिलती है। वे इस पुस्तकको अध्ययन कर अपनी पुरानी संस्कृतिको समझते हैं।

१५९३—श्री कैलाश साहू, पो० जोरी, हजारीबाग।

—'गृहस्थ-धर्म' को आप मानव भलाईके लिये जनतामें वितरण कर रहे हैं। यह बड़ी अनमोल पुस्तक है और मानव-जातिके लिये बड़ी उपयोगी है।

१५९४—श्री रामजीप्रसाद सिंह, ग्राम धरणी बिगहा, पो० बेन, जिला पटना।

—इस समय भारतीय गृहस्थोंकी अवस्था दयनीय हो रही है। ऐसे समयमें आपने इस पुस्तकको प्रकाशित करके बड़ा ही उपकार किया है। आशा है कि आपकी पुस्तकको पढ़कर लोगोंको अपना कल्याण करने और अपना चरित्र-निर्माणमें सहायता मिलेगी।

१५९५—कविराज नारायण द्विवेदी, मु० शिवगढ़, पो० विक्रम, जिला पटना।

—मैंने 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको देखा। यह मानव उत्थानका महान साधन है। इसको आपने जन-साधारणके लिये अमूल्य देनेका निश्चय किया है। एतदर्थ हार्दिक धन्यवाद।

१५९६—श्री रघुनन्दनप्रसाद, लोहकार, मो० छोटी पहाड़ी, पो० महेन्द्रू, पटना।

—यह पुस्तक सचमुच ही में पढ़ने लायक है। इस पुस्तकको अगर मनुष्य एक-एक अक्षर पढ़कर उसपर मनन वह अवश्य ही कल्याणकारी बन सकेगा।

सम्मतियाँ और उद्गार !

१५९७—श्री नरेशचन्द्र मिश्र 'भंजन', अमरवाङ्मय साहित्य सदन, पो० मदनपुर, मुंगेर।

—आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' की एक प्रति एक महानुभावसे कुछ देरके लिये देखनेको मिली। यह वस्तुतः प्रत्येक गृहस्थके लिये पठनीय है, विना मूल्य वितरण की महान उदारता और सर्व-साधारण उपकारके लिये अनेकानेक धन्यवाद !

१५९८—श्री शंकरदयाल मिश्र, मु०-पो० बिलाईगढ़, रायपुर, (म० प्र०)।

—आपके इस त्यागकी भावनापर आपको कोटिशः धन्यवाद है। आपकी इस पुस्तकसे मुझे बहुत लाभ पहुंचा है।

१५९९—श्री महावीर प्रसाद 'राकेश', बुनियादी विद्यालय राय धुखा, वृन्दावन।

—'गृहस्थ-धर्म' सचमुचमें गृहस्थ समाजके लिये अच्छी पुस्तिका है। हर एक मनुष्यको इसे पढ़ना आवश्यक है। इस पुस्तकमें जीवनकी आवश्यक चीजोंका अच्छा समावेश है।

१५९०—श्री राज पं० प्रेमानन्दजी, मु०-पो० जेवर, बुलन्दशहर, (उत्तर प्रदेश)।

—'गृहस्थ-धर्म' नामकी आपकी पुस्तक एक सज्जनके पास देखी। धर्मोन्नतिका प्रचार, आपकी इस पुस्तक द्वारा हुआ है। इसके लिए आपको धन्यवाद है।

१६००—श्री रामेश्वर प्रसाद शर्मा, ग्राम सुल्तानपुर, पो० कन्हाईपुर, पटना।

—आपने मानव जातिके कल्याणार्थ 'गृहस्थ-धर्म' नामक जो पुस्तक प्रकाशित करायी है, वह वास्तवमें बहुत सदुपयोगी है। 'गृहस्थ-धर्म' से आपको यश फैल रहा है।

१६०१—श्री सरयू सिंह, ग्राम छत्तरबिघा, पो० अमावां, पटना।

—बड़े हर्ष की बात है कि श्रीमानने हमारी हिन्दू-जाति, जो पतित हो रही थी, के परिष्कारके लिए आदर्श तथा उपयोगी शिक्षाओंका संग्रह किया है। प्रथम बार मैंने आपकी पुस्तकको देखा और इसका अध्ययन किया। मन थिरक उठा। 'गृहस्थ-धर्म' वास्तवमें बहुत उपयोगी प्रकाशन है।

१६०२—श्री चेतनारायण प्रसाद, उचाञ्चल विद्यालय, हरनौत, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक कृषकोंके लिए अत्यन्त उपयोगी है। इससे किसानोंको नया जीवन मिलता है।

१६०३—श्री रामजतन सिंह, ग्राम बाकरपुर, पो० जटडुमरी, पटना।

—इस पुस्तकको देखते ही हमारा हृदय आनन्दके सागरमें हिलोरें लेने लगा। भारतवर्षकी उन्नतिके हेतु आप मुफ्तमें इसे वितरित कर रहे हैं। पाश्चात्य देश विज्ञानमें आज बहुत आगे हैं, परन्तु आध्यात्मिक विज्ञान पर सं[illegible] भारतवर्ष पर ही भरोसा है। इस अवसर पर आप ऐसी पुस्तकका मुफ्त प्रचार कर भारतवर्षका विश्वमें [illegible] कर रहे हैं।

१६०४—श्री रामलगन सिनहा, ग्राम टिकईचक, पो० डिहरी, पटना।

—बड़े ही हर्षका विषय है कि आप 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको दूर-दूर भेजकर मानव-जातिको बहुत फायदा पहुंचा रहे हैं।

१६०५—श्री परमेश्वर साहू, ग्राम गोमहर, पोस्ट औंगारीधाम, पटना।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकसे जनताको बहुत ही फायदा पहुँच रहा है। सभी लोग गृहस्थके नाते इसे पढ़कर लाभ उठानेके लिये इच्छुक रहते हैं।

१६०६—पं० बलराम पाठक, हेड पण्डित हितकारिणी, हाई इंगलिश स्कूल, खड़गपुर।

—पूज्य सेठजी! आपकी रचित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' पढ़कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। आप-से विज्ञ सज्जन ही का काम है, कि देशोपकार और संस्कृतिकी रक्षा करें। कृपया कुछ प्रतियां मेरे स्कूलके लड़कोंकी शिक्षाके लिये भेजनेकी दया अवश्य करेंगे। इस स्कूलमें विद्यार्थियोंकी संख्या १५२१, हैं। यदि बिना मूल्य न भेज सकें तो कृपया भी० पी० भी भेज कर अवश्य अनुग्रहित करेंगे। आपका बहुत पुण्य होगा।

१६०७—श्री रामकेश्वर प्रसाद, विहार रोड हिल्सा, पटना।

—आपने 'गृहस्थ-धर्म' का प्रचारका सारे देशमें हलचल मचा दी है। इस पुस्तकको प्रकाशित कर आप पुण्य संचय कर रहे हैं।

१६०८—श्री दुर्गा प्रसाद मंडल, मो० उदयरामपुर, पोस्ट घोघा, भागलपुर।

—आप 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकका प्रचार कर समाज तथा देशको लाभ पहुंचा रहे हैं।

१६०९—श्री रामलषण प्रसाद, नेताजी श्रीसुभाष हाई इंग्लिश स्कूल, इसलामपुर, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक सभीको निःशुल्क दिया जाता है। इस पुस्तकमें बहुत अच्छे-अच्छे उपदेश दिये हुए हैं और यह उपदेश गृहस्थ-धर्म के लिये बहुत ही श्रेयस्कर हैं।

१६१०—श्री जसकरण अग्रवाल, पोस्ट-मुकाम उतकेला, कालाहान्डी।

—आपने जो 'गृहस्थ-धर्म' छपवाया है, उसमें शिक्षा, पालन, रक्षा, सतीत्व-धर्म, धर्मकी रक्षा तथा अन्य शिक्षा का पालन लिखा है, एवं हर एक बन्धु तथा बहनोंको सादर भेट देते हैं, जिसके लिए मैं आपको बारम्बार धन्यवाद देता हूँ।

१६११—श्री बलिराम प्रसाद सिन्हा, एम० इ० स्कूल, ईस्माइलपुर, गया।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' सचमुच ही इस कलियुगके लिये एक स्वर्णमय किताब है। आज आपकी किताब द्वारा सुधर तथा शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

१६१२—श्री रामानुजाचार्य, वृन्दावन धाम।

—आपकी भेजी हुई २० किताबें मैंने महात्मा लोगोंकी कुटियाओंमें पहुंचा दीं। इस किताबका नाम तो 'गृहस्थ-धर्म' है परन्तु विरक्त और सन्यासियोंने इसे बहुत ही अपनाया, खासकर उपदेशकोंके लिये यह बहुत ही कामकी किताब है। इस-किताबको मैंने महात्माओंके पास पहुंचा दिया है अब उनके पास पहुँचने पर बहुतसे वृन्दावन वासी, संन्यासी, उदासियोंने इसे मांगा है। इसलिये आप कमसे कम ५० किताब अवश्य ही भेजें।

१६१३—श्री बेनीराम चन्द्राकार, मा० गु० मुकाम अछोली, (बिरकोनी) पो० तुमगांव, जिला रायपुर (सी० पी०)।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको अवलोकन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। आजतक ऐसा कोई पुण्यवान लोकोपकारक नहीं निकला, जो सर्वसाधारणके लिये मार्ग प्रदर्शक बने। जगन्नियता श्री सेठ मनसुखरायजी मोरके परिश्रमको सफल बनावें और उनकी सब मनोकामनाओंको पूर्ण करें, यही मेरी मनोकामना है।

१६१४—श्री द्वारिकाप्रसाद दशरथप्रसाद, अग्रवाल, लोहरडागा, जिला रांची।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको हमलोग अपने इष्ट-मित्रोंके साथ पढ़ रहे हैं। यह पुस्तक बहुत ही अच्छी है और सरल भाषामें लिखी गयी है। मन बराबर इसे पढ़ना ही चाहता है और अपने गांवमें भी हम इस किताबको औरोंको पढ़ायेंगे, जिससे इसका प्रचार हो और आपकी किस तरह हम लोग सेवा कर सकते हैं? आप ही ऐसा पथ-प्रदर्शक हम लोगोंको मिले, तो धर्मका नाश न हो।

१६१५—श्री रूपली साव, पो० शकूराबाद, जिला गया।

—आपने जो 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक प्रकाशित किया है, वह हमें परम सुन्दर और भावपूर्ण मालूम पड़ता है। प्रस्तुत पुस्तकमें ज्ञानकी बहुत बातें भरी पड़ी हैं। इसे पढ़कर मनुष्य अपने कर्त्तव्यको जान सकता है।

१६१६—श्री फल्गुनीराम, नदिया हाई स्कूल, पो० लोहारडागा, जिला रांची।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक एक महान् धार्मिक किताब है। यह पुस्तक सचमुच ही एक ऐसी धार्मिक पुस्तक है, जिससे संसारकी काया-पलट हो सकती है। इस किताबमें अनेक आदेश पाये जाते हैं। इन सब चीजोंको अगर हम सीखें और काममें लाने लगें, तो यह सम्भव है कि हमारी आत्माको मुक्ति प्राप्त होगी तथा हमारी सन्तानें दिनों-दिन उन्नतिकी सीढ़ीपर अग्रसर होती जायेंगी।

१६१७—श्री मुरलीधर शर्मा, मि० ई० स्कूल, गुरुशरणपुर, पो० बेन, पटना।

—इस समय भारतीय गृहस्थोंकी अवस्था दयनीय हो रही है। ऐसी अवस्थामें आपने इस पुस्तकको प्रका[illegible] कर देशका बड़ा ही उपकार किया है। आपको पुस्तक पढ़कर लोक-कल्याण और चरित्र-निर्माणमें सहायता मिल[illegible]

१६१८—श्री दुखन सिंह, मु० करकरी, पो० नरकोपी, जिला रांची।

—आपने देश, जाति और समाजकी सेवा और उन्नतिके लिये 'गृहस्थ-धर्म' नामक जो एक अत्यन्त सुन्दर, शिक्षा-प्रद और बहुमूल्य पुस्तक छापी है, उसके लिये हार्दिक धन्यवाद है।

१६१९—श्री बिन्देश्वर पंडित, बरबीघा, जिला मुँगेर।

—मैंने आपके 'गृहस्थ-धर्म' को देखा और उससे बड़ी-बड़ी आशाएँ कीं। आज हमारा गृहस्थ आश्रम जिस तेजीसे गर्त की ओर अग्रसर हो रहा है, वह सर्व विदित है। आपने इस प्रगतिशील पुस्तकका अन्वेषण कर जनता-जनार्दनकी जो महती सेवाएं की हैं, उसके लिये जनता आपकी चिर-कृतज्ञ रहेगी।

१६२०—श्री मोहित ओझा, लुटा नावाडीह, जिला हजारीबाग।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामकी सुन्दर पुस्तकको पढ़नेसे बड़ा ही आनन्द हुआ।

१६२१—श्री पन्नालाल शर्मा, मुकाम वेरछा टाउन, जिला शाहजहांपुर, मध्य भारत।

—हमने आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' देखी। पुस्तक बड़ी उपयोगी है। इससे नित्य-कर्म करनेकी प्रेरणा प्राप्त होती है।

१६२२—श्री पदारथराम, हि० मि० स्कूल, लोहरडागा, जिला रांची।

—यह ग्रन्थ भी गृहस्थ-धर्मावलम्बी व्यक्तियोंके लिये यह अति उपयोगी ग्रंथ है। इस ग्रंथके नियमानुसार चलनेसे मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

१६२३—श्री केदारनाथ शर्मा, बरबीघा, एच० ई० स्कूल, पो० बरबीघा, जिला मुँगेर।

—मुझे यह जानकर अतीव हर्ष हुआ कि आप 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक प्रचारार्थ बांट रहे हैं। दूसरोंका ज्ञानार्जन करानेका यह प्रयास प्रशंसनीय है और खासकर भारतवर्ष ऐसे दरिद्र देशमें। आपके जैसे कुछ और महानुभाव यह कार्य करने लगें, तो निर्धन भारतवासियोंको कुछ पठनीय पुस्तकोंकी प्राप्ति हो सके और खासकर ऐसी पुस्तकोंकी आपके इस उद्देश्यपर आपकोकोटि-कोटि बधाई है।

१६२४—श्री नन्दगोपाल झा, महेशपुर, पोस्ट गोड्डा महेशपुर, संथालपरगना।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक कृषकोंके लिए अत्यन्त आवश्यक है। साथ ही साथ मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि श्रीमान्‌ने बिना मूल्यके पुस्तक प्रदान करनेका बीड़ा उठाया है। श्रीमान्‌को इस शुभ कार्यके लिए मैं धन्यवाद देता हूँ। आपको ईश्वर चिरायु बनावें।

१६२५—श्री युगलकिशोर, पोस्ट चतरा, हजारीबाग।

—आपने अपने अथक परिश्रमसे 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक लिखकर मानव समाज तथा जीवन-संसारका हित

१६२६—श्री यमुना प्रसाद, १० बहसी लेन, पोस्ट नई गोदाम, गया ।

—गुरुमण्डलका छठा पुष्प 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक अपने एक मित्रके यहां पढ़नेका मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। पुस्तक अति उत्तम तथा उपदेशोंसे पूर्ण है। आपका जन-साधारणके कल्याणार्थ ऐसी-ऐसी उत्तम-उत्तम पुस्तकोंका निःशुल्क वितरण करना बहुत सराहनीय है। इस समय भारतमें आप जैसे लोगोंकी ही आवश्यकता है। ऐसी-ऐसी पुस्तकोंका हर एक घरमें रहना चाहिए जबकि गरीबी उत्तम तथा धार्मिक पुस्तकोंका रखना कठिन बना रहा है। इस कार्यके लिए आपको कोटिशः धन्यवाद।

१६२७—श्री दयालकृष्ण घोष, सा० अस्सी हाट, पोस्ट बटसार, भागलपुर ।

—आपकी भेजी हुई पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' प्राप्त हुई। इसके लिये आपको हार्दिक धन्यवाद। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपकी कृपा सदा ही ऐसी बनी रहेगी। इस अमूल्य दानके लिये हमलोग आपके आजीवन आभारी रहेंगे।

१६२८—प्रधानाध्यापक, मिडिल इंग्लिश स्कूल, पोस्ट इस्लामनगर, दरभंगा ।

—सौभाग्यसे मुझे 'गृहस्थ-धर्म' की एक प्रति पढ़नेके लिए मिली। पुस्तक बड़ी ही काम की है। लेखक और वितरणकर्त्ता अनेकानेक धन्यवादके पात्र हैं। कमसे कम इसकी एक प्रति प्रत्येक पुस्तकालय एवं विद्यालयमें अवश्य रहनी चाहिए। इसी दृष्टिकोणसे मैं इसकी एक प्रति अपनी पाठशालामें छात्रों तथा छात्राओंके ज्ञानकी वृद्धिके लिए रखनेके हेतु आपसे मांगनेकी धृष्टता कर रहा हूँ।

१६२९—श्री कुलदीपनारायण झा, प्रधानाध्यापक माध्यमिक विद्यालय, पोस्ट मथुरापुर, ग्राम कहलगांव, भागलपुर ।

—आपके गुरुमण्डलका छठा पुष्प 'गृहस्थ-धर्म' की एक प्रति मुझे देखनेका अकस्मात् अवसर मिला। पुस्तकका महत्व एवं आपका निःस्वार्थ धर्म-प्रचार पर सर्वथा मुग्ध होना पड़ा। कोरे धन्यवादके दो-चार शब्दोंके द्वारा इस पुनीत कार्यके महत्वको मैं कम करना नहीं चाहता। सचमुच आप जैसे कतिपय धर्म परायणों एवं दानवीरोंके कारण ही हिन्दू सनातन धर्मका अस्तित्व अभीतक कायम है।

१६३०—श्री शिवनन्दन चौधरी सहायक शिक्षक, हिं० मा० विद्यालय इसलामपुर, पोस्ट अत्तासराय, पटना ।

—आप इस कलिकालमें हिंदू-धर्मकी रक्षा एवं मानव-जातिके हितके लिए 'गृहस्थ-धर्म' अनमोल पुस्तकको लोगोंके बीच निःशुल्क भेंट कर रहे हैं। यह एक महान् कार्य है। इसके लिए सभी लोग हृदयसे आपके कृतज्ञ हैं।

१६३१—पं० नागेन्द्र मिश्र साहित्याचार्या, ग्राम बीरा, पोस्ट हुलासगंज, गया ।

—यह अत्यन्त उपयोगी किताब है। इसको पढ़नेसे कौन ऐसा पुरुष और स्त्री है, जो कि धर्मकी ओर अपने आकृष्ट नहीं करेगा। इस तरहकी किताबको सभीको अपने पास रखना चाहिये।

सम्मतियाँ और उद्गार !

१६३२—श्री गणेशराम, पो० पाई बिगहा, जिला गया।

—आपने इस किताबमें आश्चर्यजनक उपदेश भर दिये हैं। इन उपदेशोंको अपने आचरणमें लाकर हजारों व्यक्ति अपनेको सुधार रहे हैं। यह 'गृहस्थ-धर्म' क्या है, इसने हमारे इलाकेके लोगोंपर जादूका-सा असर फेर दिया है।

१६३३—श्री ज्ञानचन्द पटवारी, नूरसराय, पटना।

—आप अपनी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' द्वारा न जाने कितने व्यक्तियोंके जीवनमें नयी आशाका संचार कर रहे हैं, और न जाने कितने व्यक्तियोंके जीवनको सुधार कर प्रति दिन पुण्यका संचय कर रहे हैं।

१६३४—श्री मनमन्थ महतो, नयी गोदाम, गया।

—मैंने आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' का अध्ययन किया, और इसको मनुष्योंके लिए एक आवश्यकीय ग्रंथके रूपमें पाया। गृहस्थोंके लिए तो यह विशेषरूपसे लाभप्रद पुस्तक सिद्ध हुई है।

१६३५—श्री मोतीलाल, मखदुमपुर, जिला गया।

—'गृहस्थ-धर्म' जन-साधारणके लिए अति हितकारक और उन्नति पथ-प्रदर्शक सिद्ध हुई है। अधिकांश गृहस्थ गृहस्थीके नियमों, रीतियों तथा अपने आवश्यक कर्तव्यसे अनभिज्ञ हैं। उनके लिए यह एक बहुमूल्य प्रकाशन है।

१६३६—श्री घासीराम हलवाई, सदर बाजार, गया।

—मैं 'गृहस्थ-धर्म' के समुचित ज्ञानके बिना अन्धकारमें भटक रहा था। आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकका अध्ययन कर मुझे काफी प्रकाश मिला है।

१६३७—दैनिक जीवनके लिये आदर्श मान लिया।

—आपके यहांकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक देखी। वास्तवमें यह पुस्तक प्रत्येक घरमें रहनी चाहिये। मैं इस पुस्तक से इतना प्रभावित हुआ हूँ कि मैंने इसे ही अपने नित्य-जीवनके लिये आदर्श मान लिया है।

—सुखनन्दनलाल पटवारी, देवल, पो० भानगढ़, जिला हिसार।

१६३८—पं० भद्रदत्त शर्मा शास्त्री, मुहल्ला खिड़की महादेव, कासगञ्ज, जिला एटा।

—आपके द्वारा संग्रहित 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको एक सज्जनके यहाँ देखा। वास्तवमें हिन्दू संस्कृतिकी रक्षाके लिये आपने महत्वपूर्ण कार्य किया है। अनेक धन्यवाद! पुस्तक सनातन-धर्मकी शिक्षाओंसे परिपूर्ण एवं उपादेय है।

१६३९—आनन्द और शान्ति।

—महाशय! आपका 'गृहस्थ-धर्म' पूरा पढ़कर हमें बहुत और शांति मिल रही है। ऐसा प्रगट हो रहा है कि हमें ...न मिल रहा है। इस पुस्तकसे हम वास्तवमें सदाचार और सनातन-धर्मका पालन कर सकते हैं।

—मनोरंजन सरकार, गया हेड पोस्ट आफिस, गया।

१६४०—श्रीमान् धर्म्मप्राण ! दयासिन्धु ! गो-ब्राह्मण प्रतिपालक, सेठ मनसुखरायजी मोरको सादर शतकोटि धन्यावादाशीर्वादाभिनन्दन ।

महानुभाव !

—आपकी धवल कीर्त्ति भुवन विस्तृत 'गृहस्थ-धर्म' एक मित्र द्वारा अवलोकनकर परमानन्द महोदधिमें निमग्न हुए ।

पं० बद्रीनाथ शर्मा, 'श्रीकृष्ण-गीताश्रम' ग्राम सलबार, पो० इमामगञ्ज, गया ।

१६४१—गृहस्थोंका उपकार ।

—आपके द्वारा संग्रहित 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक देखनेको मिली । पुस्तकने हृदयमें अपना स्थान बना लिया । यह पुस्तक हरएक गृहस्थके मनन करने योग्य है । आपने इस पुस्तकको लिखकर गृहस्थोंका जो उपकार किया है, उसके लिये आपको जितना भी धन्यवाद दिया जाय थोड़ा है ।

—मोतीलाल, ग्राम दुर्जनपुर, पो० रामबन, बिलासपुर ।

१६४२—श्री मोहनलाल, अलख नारायणलाल, पटना सायकिल वर्क्स, बांकीपुर, पटना ।

—आपकी पुस्तकमें जो चीजें लिखी हैं, मेरी समझमें वे जनताके लिये बहुत ही उपयोगी है ।

१६४३—श्रीमती मायादेवी, ग्राम जैंतपुर, पो० हिलसा, पटना ।

—'गृहस्थ-धर्म' के प्रचारसे देशवासियोंका बहुत ही उपकार हो रहा है । आशा है, इस पुस्तकके प्रचारसे हमारे देशका मान बढ़ेगा ।

१६४४—श्री श्यामलाल गुप्ता, पो० नरगोदा, जिला बिलासपुर ।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकका प्रचार अत्यधिक रूपसे हो रहा है । यह अति सुन्दर और हिन्दू संस्कृतिके लिये अति उत्तम पुस्तक है । इस पुस्तकको पढ़कर एक साधारण व्यक्ति भी अपने गृहस्थाश्रमको सफल बना सकता है ।

१६४५—श्री बच्चूप्रसाद सिंह, ग्राम बरान्दी, पो० भण्डारी, पटना ।

—'गृहस्थ-धर्म' द्वारा आप जन-साधारणको बड़ा लाभ पहुँचा रहे हैं । वास्तवमें यह पुस्तक प्रत्येक गृहस्थके घरमें रहने लायक है ।

१६४६—श्री रामनरेश, ग्राम ओढ़ारा, पुनसिया, भागलपुर ।

—सादर अभिवादन ! आपके द्वारा संग्रह की हुई 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक मैंने अपने एक अध्यापकसे, पुस्तक मुझे तथा मेरे साथियोंको अत्यन्त ही प्रिय लगी । हम युवकोंको ऐसी ही पुस्तकोंको मार्ग-दर्शक बनाना चाहिये, तभी देशकी समुन्नति सम्भव है ।

१६४७—श्रीमती लीलावतीदेवी, ग्राम जमुई बाजार, पो० भरतपुरा, जिला पटना।

—आपने 'गृहस्थ-धर्म' को मुफ्त बांटनेका जो उपक्रम बना रखा है, उसके लिये मैं हृदयसे धन्यवाद देती हूँ। इस पुस्तक द्वारा मैं अपनी सखी-सहेलियोंको समझा कर अपने डूबते हुए धर्मकी रक्षा करनेका प्रयास कर रही हूँ। सनातनधर्म-की जय !

१६४८—अन्धकारमें 'गृहस्थ-धर्म'का प्रदीप।

—यह पुस्तक तो गृहस्थोंके लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है। आपने इस अन्धकारपूर्ण जीवनमें 'गृहस्थ-धर्म' नामक प्रदीपको प्रदीप्त किया है। इसका यश और ख्याति सम्पूर्ण आर्यावर्तके कोने-कोनेमें मार्तण्ड रश्मिकी भांति ज्वाजल्यमान एवं प्रकाशित हो रही है। इस उपकारके लिये सच्चिदानन्द, घनश्याम, व्रजवल्लभ, विपिनविहारी, आपके जीवनकी सभी शुभ-कामनाओंको पूरित करें।

—धनेश्वरराम, ग्राम मकरपुर, पो० मखदुमपुर, गया।

१६४९—न जाने कितने सदाचारी बन गये !

—आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' के द्वारा सामाजिक, नैतिक और मानसिक उत्थान हुआ है। आपकी इस किताबने न जाने कितने दुराचारियों को सदाचारी बना दिया, कितने ही कपूतोंको सपूत बना दिया। इसके द्वारा समाज में एक नयी रोशनी आ गयी है और आशा है कि यदि आपका यह कार्य दो-एक वर्ष और चलता रहा, तो हिन्दुस्तानमें राम और भीमकी कमी नहीं रहेगी।

—अलकदेव शर्मा, सभापति, ग्राम सेवा-समिति, डिहुरी, पो० डुलासगंज, जिला गया।

सम्मतियाँ और उद्गार !

१६५०—हेडमास्टर, नेशनल हाई स्कूल, श्रीनगर।

—'गृहस्थ-धर्म' को मैंने बड़ी दिलचस्पीके साथ पढ़ा। इस पुस्तकसे सर्वसाधारण रूपसे हिंदू समाजकी और विशेष रूपसे उनलोगोंको जो अपना सुधार कर रहे हैं, बड़ी सहायता होगी।

१६५१—अलभ्य प्रकाशन।

—आपके द्वारा संग्रहित 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको आद्यान्त अध्ययन कर अमूल्य तत्वको प्राप्त किया। आपने इस पुस्तकमें श्रुति, स्मृति, पुराण, ज्योतिष, आयुर्वेद इत्यादि श्रेष्ठ ग्रंथोंके तत्वोंका विधिवत् संकलन कर मानव-मात्रके लिए कल्याणका साधन बनाया है। 'गृहस्थ-धर्म' विषयक ऐसी कोई पुस्तक इस समय हमारे सामने नहीं है। गृहस्थ-धर्म का जितना संकलन आपकी इस पुस्तकमें है, उतना किसी भी ग्रंथमें एकत्रित नहीं पाया जाता।

—श्री पति पांडेय शास्त्री, ग्राम पतूत, पो० विक्रम, जिला पटना।

१६५२—श्रीमती रामप्यारीदेवी 'प्रभाकर' अध्यापिका, श्री बनवारीलाल वैदिक मिडिल स्कूल अबोहर मण्डी, फिरोजपुर।

—हमलोग प्रायः ऐसी पुस्तकोंकी खोजमें रहा करती थीं, सो आपने 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको लिखकर हमें कृतार्थ कर दिया है।

१६५३—श्रीमती परमेश्वरी देवी, ग्राम धरमपुर सतबरही, पो० हिल्सा, पटना।

—नारी-समाजके लिए यह बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है। इससे मैं कुछ भी शिक्षा ग्रहण कर पाऊँगी, तो अपना जीवन धन्य मानूँगी।

१६५४—श्रीमती उर्मिला देवी, बलदेवसहाय लेन, लोअरबाजार, राँची।

—मुझे अपनी सहेलीसे आपकी लिखी हुई पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। बड़ी दिलचस्पीके साथ मैं उसे पढ़ रही थी कि मेरी सहेली अपने पतिदेव के घर चली गयी और मैं आपकी पुस्तकको समाप्त न कर सकी, मुझे इसका बड़ा खेद है। पर जाते समय उसने कहा कि श्री मोरजी हम ही स्त्री और बालिकाओंके अध्ययनके हेतु इस महान पुस्तकको लिखकर बहुत द्रव्य लगाकर विना मूल्य वितरित करते हैं। जितना मैं पढ़ सकी, उससे मैं समझती हूँ कि हरएक नारी आपके 'गृहस्थ-धर्म' का सदा पाठकर कल्याणके मार्ग पर चलनेमें कोई शंका नहीं रख सकती, और दिन प्रतिदिन उसे उज्ज्वल मार्ग दिखलायी देगा।

१६५५—श्रीमती शान्तिदेवी, ग्राम-पोस्ट सरमेरा, पटना।

—मुझे आपकी पुस्तक बेहद पसन्द आयी। यह जानकर और भी हर्ष हुआ कि आप जनताकी भलाईके इस पुस्तकको मुफ्त ही में भेजा करते हैं। इसके लिए मैं आपको जनता की ओरसे हार्दिक धन्यवाद देती हूँ। भारतवर्षमें इसी प्रकारके लोग हो जांय, तो जनता अपने कर्त्तव्यसे कभी भी च्युत नहीं हो सकती।

१६५६—श्री सचीन्द्रनाथ, लोहरडागा, राँची।

—'गृहस्थ-धर्म' एक महान धार्मिक ग्रंथ है। मुझे इस ग्रंथको पढ़नेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसमें ऐसा-ऐसा उपदेश है कि इस लोकके अलावे परलोकमें भी मानवको सुख मिल सकता है, तथा मानव ईश्वरका दर्शन पा सकते हैं। इस पुस्तकके उपदेशोंको अगर हम समझें तथा उन्हें व्यवहार में लायें, तो हमें अवश्य ही मोक्षकी प्राप्ति होगी। गृहस्थ-धर्मावलम्बियोंके लिए यह अमृतका वृक्ष है। इस ग्रंथके नियमोंको पालन करनेसे भावी सन्तानें भी उन्नतिके पथपर अग्रसर होंगी।

१६५७—श्री द्वारिकानाथ वर्मा, शिक्षक, पाठशाला समसारा, पो० सदीसोपुर, पटना।

—श्री श्री मनसुख रायजी को शतशः धन्यवाद है कि, जिन्होंने लोक-कल्याणार्थ 'गृहस्थ-धर्म' की पुस्तक प्रचार कर हिन्दू-धर्म और संस्कृतिके विकासका पुष्टिकरण किया है।

१६५८—श्री रामउजागर सिंह, ग्राम मचहा, पो० उलाव, मुंगेर।

—'गृहस्थ-धर्म' जैसे धार्मिक ग्रंथके प्रचारके हेतु आप जो कष्ट कर रहे हैं, उससे आम जनता काफी संतुष्ट है।

१६५९—हमारी लगन।

—हिंदू जातिके उत्थानके लिए आपने अच्छी किताबकी रचना की है। 'गृहस्थ-धर्म' के द्वारा आप जनताके हृदयके अन्धकारको दूर कर रहे हैं। हमारी लगन आपकी इस पुस्तकके ऊपर लगी हुई है।

—रामसिंह, देवरिया।

१६६०—श्री रामनारायणराम, सासाराम, शाहाबाद।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर हजारों भाई उन्नतिके मार्गपर चल रहे हैं। आपकी इस पुस्तकका असर लोगोंके दिलपर जादूके समान पड़ता है।

१६६१—श्री भगवत सिंह, ग्राम पो० बेगमपुर, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़नेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस पुस्तकसे मैं अत्यधिक प्रभावित हुआ हूँ। मैं निःसंकोच कह सकता हूँ कि इस पुस्तकको प्रकाशित कर आपने मानव-समाजकी बहुत बड़ी सेवा की है।

१६६२—श्रीरामेश्वर मिश्र, वारसलीगञ्ज, जिला गया।

—आपकी यह पुस्तक ग्राम-वासियोंके पथ-प्रदर्शनका कार्य करती है। मैं और मेरा सारा परिवार इस पुस्तकको पढ़कर सत्पथका अनुसरण कर रहा है। इस पुस्तक द्वारा आप असीम यशके भागी बन रहे हैं।

१६६३—श्री रामकिशुन राम, रफीगञ्ज, जिला गया।

—आपको हार्दिक धन्यवाद है कि गरीब किसानोंको अपने धर्म, कर्मसे परिचित करानेके लिये 'गृहस्थ-धर्म' प्रचलित है। इस पुस्तकसे सुविचारोंका आविर्भाव होता है। इससे धर्मकी पूरी जानकारी प्राप्त होती है।

१६६४—श्री प्यारेलाल सिन्हा, मीठापुर, पटना ।

—आपकी पुस्तकका प्रचार काफी मात्रामें हो रहा है। आपकी पुस्तकको अध्ययन करनेसे लोग काफी लाभ उठा रहे हैं। आपकी पुस्तकको उन्नति दिन दूनी रात चौगुनी हो रही है। क्या देहात और क्या नगर, प्रत्येक जगहोंमें काफी जोर-शोरसे इसका प्रचार हो रहा है ।

१६६५—श्री कैलाश प्रसाद, एच० ई० स्कूल बरबीघा, पो० बरबीघा, मुंगेर ।

—आज सनातन-धर्म और गृहस्थ-धर्म संसारसे लोप होता जा रहा है। आज तक हमें कुछ पता नहीं लगा है। लोग सनातन-धर्म को त्याज्य दृष्टिसे देखते हैं। आपने 'गृहस्थ-धर्म' का प्रचार कर समयकी एक बड़ी कमीको पूरा किया है।

१६६६—श्री राजबहादुर सिंह शिक्षक, बरबीघा, हाई इंगलिश स्कूल, बरबीघा, पटना ।

—'गृहस्थ-धर्म' मुझे एक अत्यन्त सुन्दर, रुचिकर एवं उपयोगी पुस्तक प्रतीत हुई। इस पुस्तक द्वारा आप समाज तथा धर्मकी बहुमूल्य सेवाएँ कर रहे हैं।

१६६७—श्री नौरंगलाल, इटावा बाजार, कानपुर ।

—यह पुस्तक अत्युत्तम है। इसे बार-बार पढ़नेको मन चाहता है।

१६६८—श्री हृदयनारायण महतो, ग्राम कराई, पो० नौबतपुर, पटना ।

—इस पुस्तकके स्वच्छ और सुन्दर शब्दोंको सुननेके लिए गाँवके लोगोंकी भीड़ लग जाती है। आपने वास्तव में ग्रामीणोंके सुख-दुख का पूरा ख्याल कर इस पुस्तककी रचना की है।

१६६९—श्री सूर्यनाथ उपाध्याय, पो० घोषी, गया ।

—इस पुस्तकमें संसारकी भलाई करनेकी सभी क्षमता है। यह अद्भुत मानवीय गुणोंसे परिपूर्ण है। धर्म पर आस्था रखनेवाले व्यक्तियोंके लिए तो यह जीवन-साथी बन चुकी है।

१६७०—श्री रामचन्द्र राम, ग्राम केवल छोटी, पो० शाहजहांपुर, पटना ।

—मैंने आपकी भेजी हुई 'गृहस्थ-धर्म' किताब पढ़ी। पढ़नेके साथ दिल आनन्दसे भर गया। किताब नहीं मानो हमलोगोंके जीवनकी तरक्कीके लिए आपने बढ़िया मार्ग निकाला है। हमारे कितने साथियोंको इस किताबने मार्ग दिखा दिया है। मैं आपको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। मैं क्या लिखूँ दिल फाड़ कर दिखानेका नहीं कि आकर दिल खोलकर दिखा दूँ। मगर मेरी इससे हर तरहकी बुराइयाँ नष्ट होती जा रही हैं। अपने देशकी भलाईके लिए आप अपनी इतने रुपये खर्च कर रहे हैं। धन्यवाद है।

१६७१—श्री अद्वैतानन्द स्वामी, सुकर्म बाजार सिओनी, बी० एन० आर०।

—इस पुस्तक द्वारा आपने हमारे ऋषि-मुनियोंके वाक्योंका प्रचार किया है। ऋषि-मुनियोंके वाक्योंमें ही हमारे जीवनकी सफलताका सार छिपा हुआ है। आप 'गृहस्थ-धर्म' निःशुल्क बाँट रहे हैं। आपका यह कार्य सर्वथा स्तुत्य है।

१६७२—श्री मदनपाल सिंह, ग्राम रातू, जिला रांची।

—मैंने आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को देखा। मानव-जातिके उत्थानको दृष्टिगत करते हुए यह पुस्तक श्रेष्ठ है। इस पुस्तक द्वारा मानव-जातिका बहुत बड़ा कल्याण हो सकता है।

१६७३—श्री कामेश्वर पाठक, पो० खटांगी, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकसे लाखों व्यक्ति अपने जीवनका सुधार कर रहे हैं। इस पुस्तकसे आपका यश भी काफी फैल रहा है। आप वास्तवमें धन्य हैं।

१६७४—श्री दसई सिंह, ग्राम जीतपुरा, बिहटा, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' जैसी अद्भुत और मानव-कल्याणकारी पुस्तकको प्रकाशित कर उसे निःशुल्क वितरित करनेके लिये आपको कोटि-कोटि धन्यवाद। ईश्वर आपको दीर्घायु करे।

१६७५—श्री रूपलालदास, ग्राम नवादा कण्डसार, हजारीबाग।

—आपने जो 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक लिखी है, उससे जनता अपरिमित लाभ उठा रही है। इस पुस्तकपर लोग ऐसे टूट पड़ते हैं, जैसे विभुक्षित भोजनके लिये। आपके इस उपकारके लिये जनता आजीवन आपकी आभारी रहेगी।

१६७६—श्री तुलसी सिंह, पो० हांसाडीह, पटना।

—इस पुस्तकको पढ़कर लोग बहुत फायदा उठा रहे हैं। 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक संसारकी निश्चित रूपसे एक श्रेष्ठ आध्यात्मिक पुस्तक है। वर्तमान युगको ऐसी पुस्तकोंकी नितान्त आवश्यकता है।

१६७७—श्री मिश्रीलाल, पो० डुमरांव, जिला पटना।

—अपने आचरणको शुद्ध बनानेके लिये आपकी 'गृहस्थ-धर्म' एक अत्यन्त उपयोगी पुस्तक है। इस पुस्तक द्वारा आपकी कीर्त्ति चारों ओर फैल गयी है।

१६७८—श्री भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव, पो० चनारी, जिला शाहाबाद।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक धर्म प्रचारमें बड़ी सहायक है। यह पुस्तक गीता आदि हिन्दुओंके पुनीत ग्रन्थोंका ...कर ... है। ऐसी उपयोगी पुस्तकको निःशुल्क वितरित कर आपने एक अनुपम उदाहरण उपस्थित किया है। भगवान ... दीर्घायु बनायें।

१६७६—श्री रामगोपाल लाखोटिया, मार्फत श्री भगवानदास एण्ड कम्पनी, कानपुर।

—मान्यवर श्रेष्ठ श्री मनसुखरायजी मोर, कलकत्ता।

आदरणीय महोदय !

'गृहस्थ-धर्म' में आपकी बतलाई हुई विधिके अनुसार स्थानीय "बनखण्डी महादेव" स्थानपर पितृ तर्पण करते समय 'गृहस्थ-धर्म' को 'बनखण्डी' अन्य सदस्योंने देखा और बहुत पसन्द किया। सब लोग उक्त स्थानपर प्रायः 'गृहस्थ-धर्म' देखा करते हैं और मुझसे कई बार मांग की कि हम सब लोगोंको एक-एक प्रति मंगाकर दें। अतः आपसे नम्र निवेदन है कि ' दर्जन प्रतियां 'गृहस्थ-धर्म' पोस्ट पार्सल द्वारा भेजनेकी कृपा करें। बनखण्डी महादेव एक अच्छा आश्रम है। श्री महादेवजीका मन्दिर है, वहां १०-१५ यहांके प्रतिष्ठित सज्जन प्रातः सायं एकत्रित होते हैं और नित्य-कर्म सन्ध्या इत्यादि करते हैं। उनमेंसे एक सज्जन यहांकी म्युनिसिपैलिटीके चेयरमैन हैं, उनका विशेष आग्रह है।

१६८०—श्री नन्दकुमार त्रिपाठी, देवरिया ।

—'गृहस्थ-धर्म' एक पावन-ग्रन्थ है, जिसका हर घरमें नित्य पाठ होना चाहिए ।

१६८१—श्री बलराम ठाकुर ताड़र, भागलपुर ।

—इस पुस्तकमें गृहस्थोंकी मुक्तिके मार्गके दर्शन होते हैं । गृहस्थोंके लिए ही क्यों, यह पुस्तक सभीके लिए पूजनीय है ।

१६८२—श्री श्रीलालजी, पो० अरवल, जिला पटना ।

—इस पुस्तकमें अच्छी-अच्छी ज्ञानकी बातें लिखी गयी हैं । इस पुस्तकसे मानव-जीवनको सफल बनानेमें बहुत सहायता प्राप्त हो सकती है ।

१६८३—श्री परशुराम, चित्तौड़गढ़, राजस्थान ।

—युवकोंके लिये यह पुस्तक बहुमूल्य है । इसका अध्ययन कर युवक पीढ़ी वास्तवमें चरित्रवान और सदाचारी बन सकती है ।

१६८४—श्री सरजू सिंह, पो० कतरासगढ़, मानभूम ।

—आपका 'गृहस्थ-धर्म' नामक ग्रंथ पढ़ा । वास्तवमें यह बहुत ही कल्याणकारी ग्रंथ है । रोज पठन-पाठन करनेके लिये बहुत ही सुन्दर ग्रंथ है ।

१६८५—श्री हरगोविन्द, पो० अंगारी, पटना ।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर मैं फूला नहीं समाया । मैं अपनेको इस योग्य नहीं पाता कि इसके गुणोंका वर्णन कर सकूं । इस कार्यके लिये भारतवासी सदैव आपके कृतज्ञ बने रहेंगे ।

१६८६—श्री सरजूप्रसाद सिंह, पो० पण्डितगञ्ज, जिला पटना ।

—'गृहस्थ-धर्म' इस बातका प्रतीक है कि आप मनुष्योंको ज्ञानवान और सदाचारी देखना चाहते हैं । यह पुस्तक वास्तवमें आपके सद्गुणोंका दर्पण है ।

१६८७—श्री भुवनेश्वरीप्रसाद सिंहा, मुरारपुर, गया ।

—'गृहस्थ-धर्म' द्वारा सर्वसाधारण जनताकी बहुत भलाई हो रही है, और जबतक यह पुस्तक विद्यमान रहेगी, तबतकी भलाई होती रहेगी । इस पुस्तकको छपाकर आप अमर हो गये हैं ।

१६८८—श्री प्यारेलाल, हजारीबाग।

—'गृहस्थ-धर्म' जैसी धार्मिक पुस्तकको निःशुल्क भेजकर आप जनताका बड़ा उपकार कर रहे हैं। इस पुस्तकको पढ़कर मैं अपने जीवनको सफल और सार्थक समझता हूँ।

१६८९—श्री जगदीशलाल, प्रधानाध्यापक, पो० पावापुरी, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' केवल हिन्दुओंके लिये नहीं, वरन् मानव-जातिके कल्याणके लिये एक अद्वितीय ग्रंथ है।

१६९०—श्री गुरुदयालप्रसाद, सब-इन्स्पेक्टर, आफ स्कूल पुरुलिया, आर्सा सदर, मानभूम।

—'गृहस्थ-धर्म' एक बहुप्रशंशित ग्रंथ है। ऐसे ग्रंथको प्रकाशित करनेके लिये धन्यवाद!

१६९१—श्री सन्तकुमार अग्रवाल, कतरासगढ़, मानभूम।

—कतरासगढ़में आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' की सर्वत्र चर्चा हो रही है। लोग इसके गुणोंसे अत्यधिक प्रभावित हो रहे हैं।

१६९२—श्री भारतभूषण पाण्डेय, लखीसराय।

—'गृहस्थ-धर्म' इस बातका प्रमाण है कि आप देशको उन्नतिके पथपर अग्रसर करना—चाहते हैं। आपने देशके अमीरोंके प्रति नहीं, वरन् देशके निर्धन किसानोंके ऊपर दया दर्शायो है। इसके लिये आप धन्य हैं।

१६९३—श्री बाल्मीकी शर्मा, एटा, उत्तर प्रदेश।

—इस सुन्दर पुस्तकसे मेरे जीवनमें बहुत सुधार हुआ है। मैं जीवन-पर्यन्त आपकी अत्यन्त कृतज्ञ बना रहूँगा। मनुष्योंके जीवनका सुधार करनेवाले आप श्रेष्ठ मानव हैं। मेरे लिये तो मनुष्य महधारी कोई अवतार ही हैं।

१६९४—श्री रामनारायण मिस्त्री, ताड़र, भागलपुर।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर आनन्दकी सीमा न रही। मेरी पत्नीने भी इस पुस्तकको बहुत पसन्द किया है।

१६९५—श्री मेवालाल, हिल्सा, जिला पटना।

—देश भरमें 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकने अपना डंका बजा दिया है। इस पुस्तकने यह स्पष्ट कर दिया है कि आपकी आत्मामें ईश्वर पूरी तरह विराजमान है। तभी तो आपको ऐसे सत्कर्म करनेकी प्रेरणा प्राप्त होती है।

१६९६—श्री ठाकुर प्रसाद, ग्राम-पोस्ट गोनावा।

—यह पुस्तक नहीं, अच्छी शिक्षाओंका खजाना है। हमारे देहातोंमें इस पुस्तकका जितना अधिक प्रचार होगा उतना ही हम लोगोंका कल्याण भी होगा।

१६९७—श्री महादेव प्रसाद, ग्राम मोहनचक, पो० विक्रम, पटना।

—आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर मानो मेरे शरीर में नये खूनका संचार हुआ है।

१६९८—श्रीमती उर्मिलादेवी, ग्राम बनसीडीहरी, आरा।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर स्त्री अपने पतिके प्रति अपने कर्त्तव्यको पहचानने लगती है। पति-पत्नीका पारस्परिक स्नेह-सम्बन्ध ही गार्हस्थ-जीवनकी सफलताका रहस्य है। आपकी इस पुस्तकसे गृहस्थोंका बड़ा उपकार होनेवाला है।

१६९९—श्री रामटपोर महतो हेडमास्टर, खानपुरा, पो० नगर नौहसा, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' जैसी श्रेष्ठ पुस्तकको निःशुल्क वितरण करनेके लिये मैं आपको सच्चे दिलसे धन्यवाद देता हूँ और ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि आपकी कीर्ति दिनोदिन बढ़ती रहे।

१७००—श्री भरत सिंह, हाई स्कूल मसौढ़ी, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर मनके विकार दूर होते हैं और सुबुद्धि आती है।

१७०१—श्री सूरज प्रसाद सिंह, ग्राम मियनबिगहा, पो० नीमी, जिला मुंगेर।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकका अध्ययनसे मुझे बहुत हर्ष प्राप्त हुआ। अब मैंने इसका नित्य पाठ करनेका नियम बना लिया है।

१७०२—श्री केदारनाथ, ग्राम सुमेरा, पो० मलाठी, जिला गया।

—'गृहस्थ-धर्म' को मैं नित्य अपनी स्त्रीको पढ़ा रहा हूँ। जबसे हमलोगोंने इसे पढ़ना प्रारम्भ किया है, हमें बहुत सुखकी प्राप्ति हुई है।

१७०३—श्री हरिनन्दन प्रसाद, साहिबनगर, पो० जटडुमरी।

—इस किताबको पढ़कर पतितसे पतित मनुष्य भी सुयोग्य मानव बन सकता है। आपने वास्तवमें भारतवासियोंका बड़ा उपकार किया है।

१७०४—श्री मथुरा प्रसाद, पो० लखीसराय, मुंगेर।

—इस पुस्तकके प्रति मेरा बड़ा आकर्षण हो गया है। इसके अध्ययनसे ज्ञानकी वृद्धि तो होती ही है, विशेष शांतिका भी अनुभव होता है।

१७०५—श्री गयादीन तिवारी, हाथरस, उत्तर प्रदेश।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर मुझे ऐसा लगा कि मानो मेरा सब अन्धकार दूर हो गया। मेरे सामने ज्ञानका प्रकाश दिखाई देने लगा।

सम्मतियाँ और उद्गार !

१७०६—श्री विष्णुलाऊ पाठक, का० सा० धर्मा आचार्य संस्कृत विद्यालय, बेलछी, पो० बाली बेलछी, पटना।

—आपके इस कार्यके लिये सर्वसाधारण तथा विद्यार्थी लोग हमेशा आपकी सुख और ऐश्वर्य्यकी वृद्धिके लिये ईश्वरसे सदा प्रार्थना करते रहेंगे।

१७०७—श्री ज्ञानार्जन महतो, पो० बगोदर, जिला हजारीबाग।

—अशिक्षित गृहस्थोंका सुधार करनेके लिये ही आपने 'गृहस्थ-धर्म' का निर्माण किया जान पड़ता है।

१७०८—श्री वासुदेव सिंह, छात्र विशनपुर स्कूल, पो० नवादाबाजार, भागलपुर।

—यह बहुत ही गुणकारक पुस्तक है। मेरे साथी इसे पढ़नेमें अपना पूरा समय देते हैं। हमलोगोंके साथ एक ही किताब रहनेसे पढ़नेमें असुविधा रहती है। इसकी कुछ प्रतियां भेजकर यशके भागी बनें। हम आजीवन आपके उपकारको भुला नहीं सकेंगे।

१७०९—श्री नरोत्तम शर्मा, पो० सिकरिया, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक भेजकर आप हजारों गृहस्थोंको कृतार्थ कर रहे हैं। इस पुस्तककी उपादेयता वर्णनके बाहरकी चीज है।

१७१०—आचार्य बालकृष्ण गोस्वामी, ग्यानवायी, बनारस सिटी।

—मैंने आपकी संकलित की हुई पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' पढ़ी है। संयोगवश वह पुस्तक मेरे हाथ लग गयी थी। पुस्तक पढ़कर अति आनन्द प्राप्त हुआ। अतएव आपसे निवेदन है कि 'गृहस्थ-धर्म की एक प्रति मेरे पते पर भेजनेकी कृपा करें। आशा है श्रीमान् इस कष्टको स्वीकार कर मुझे अनुगृहीत करेंगे।

१७११—श्री वामाचरन दास, इटौन-सर्किल, पो० मनानपुर, ई० आई० आर०, मुंगेर।

—आदरणीय महोदय। आपके लेखोंका संग्रह 'गृहस्थ-धर्म' को मैंने देखा। पुस्तक प्रत्येक गृहस्थके लिये उपयोगी प्रतीत हुई।

१७१२—श्री श्रीकृष्णबल्लभ पाठक, ग्राम जयनगर, पो० पतरातू, हजारीबाग।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर दिलमें नयी-नयी भावनाएँ उत्पन्न होती है। इस पुस्तकको बार-बार पढ़नेकी इच्छा होती है। इसमें नाना प्रकारकी बातें दी हुई हैं।

१७१३—श्री बिहारीराम हेड पण्डित, स्कूल पिण्डाराबाद, हजारीबाग।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर देखा। यह मुझे बहुत पसन्द आयी। गृहस्थोंके लिये अति उपयोगी और [illegible]कारी पुस्तक है।

१७१४—मंत्री श्री दीनबन्धु पुस्तकालय, शेखपुरा बाली-बेलछी, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' को लाखों की संख्या में निःशुल्क वितरित कर आप देश का महान कल्याण कर रहे है। आपकी पुस्तकको पढ़कर अन्धकारमें भटके हुए पथिकोंको प्रकाश पहुंच रहा है। इस कार्यके लिए हम आपके सदैव कृतज्ञ बने रहेंगे।

१७१५—श्री तांतीराम साव, शिक्षक सलखन।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको मैंने पढ़ा। यह बहुत अच्छी पुस्तक है। मैं इसका प्रचार करना चाहता है।

१७१६—श्री चमारी गोसाई, ग्राम मखदुमपुर, जिला गया।

—आपकी पुस्तककी ख्याति देश के कोने कोने में फैल चुकी है। इस पुस्तक को निःशुल्क जनता तक पहुंचा कर आप भारतवर्ष तथा भारत-वासियोंको बहुत भलाई कर रहे है।

१७१७—श्री देवनंदन शर्मा, ग्राम कोरावां, पो० हिल्सा, जिला पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' एक अपूर्व ग्रंथ है। इसमें जीवनोपयोगी सभी बातोंको सुन्दर ढंगसे दिया गया है।

१७१८—श्री वीरेन्द्र सिंह, नारायणपुर, पो० एकरंगसराय, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकसे यह बात स्पष्ट है कि आपने मनुष्योंको धर्माचारी बनानेका व्रत धारण किया है। धार्मिक भावनाओंसे प्रेरित होकर ही आपने यह अनुष्ठान किया है। किसी कविने ठीक ही कहा है—"धरमपर मरे, परम पद मिले।"

१७१९—श्री रामेश्वर प्रसाद सिंह, ग्राम सगुनी, पो० मसौढ़ी, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकका वितरण कर आप लोक तथा धर्मकी रक्षा कर रहे हैं। आप जैसे पुण्यात्माओंके बारबार जन्म लेनेसे ही आर्योंकी इस पुण्य-भूमिका उद्धार हो सकेगा। 'गृहस्थ-धर्म' द्वारा आपके भूले-भटके हुए लोगों को रास्ता दिखला रहे है।

१७२०—श्री शिवनन्दन साहु, हाई स्कूल तेल्हाड़ा, जिला पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक विख्यात हो रही है। इस पुस्तकका प्रचार कर आप देशकी उन्नतिमें सहायक बन रहे हैं।

१७२१—श्रीईश्वर प्रसाद, ग्राम मई, पो० हिल्सा, पटना।

'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकने सम्पूर्ण भारतवर्षमें हलचल मचा दी है। देहातों के लिए जहां शिक्षाकी कमी है, यह अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है।

१७२२—श्री रामरत्न ठाकुर, ग्राम कोना, पो० जाखीम, गया ।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकने काफी प्रसिद्धि और ख्याति प्राप्त कर ली है। इस पुस्तकको पढ़नेके लिए सभी उत्सुक रहते हैं।

१७२३—श्री कमला पाण्डेय, मिडिल स्कूल काजीसराय, गया ।

—यह एक सुन्दर एवं आदर्श पुस्तक है। इस पुस्तकसे भारतवासियोंका बहुत फायदा हो सकता है।

१७२४—श्री चन्द्रेश्वर प्रसाद 'चन्द्र' धर्म-विशारद, ग्राम गंगापुर पो० हुलासगंज, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ। आजकल हमारे देशसे गार्हस्थ धर्मका लोप होता जा रहा है। इस बातको सभी विवेकशील व्यक्ति स्वीकार करते हैं कि गार्हस्थ-जीवनकी सफलता-विफलता पर ही किसी राष्ट्रका भविष्य निर्भर करता है। वर्तमान शोचनीय अवस्थामें आपका यह प्रयास सर्वथा सराहनीय है। आशा है, आपको इस पुनीत कार्य में पूर्ण सफलता प्राप्त होगी।

१७२५—श्री मिश्री प्रसाद, ग्राम बाबूपुर पो० सदीसोपुर, जिला पटना ।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक गृहस्थों के लिये बहुत लाभदायक सिद्ध हुई है। सभी लोग इस पुस्तककी प्रशंसा कर रहे हैं। मेरा मन इस पुस्तकमें अटक गया है।

१७२६—श्री नारायण दास, एकाउण्ट्स क्लर्क, डी० एस० आफिस, आसंसोल ।

—आपको पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' मेरे हाथ लगी। मैंने इसे पढ़ा। इसका प्रभाव मेरे दिल में कितना जबर्दस्त पड़ा, इसे लिखनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ।

१७२७—श्री रामकिशन मिस्त्री, ग्राम भतहर, जिला पटना ।

—आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' का नाम दूर-दूर तक फैल गया है। इस पुनीत पुस्तकका अध्ययन कर मैं अपने जीवनको सार्थक समझ रहा हूँ।

१७२८—श्री जनेश्वर शर्मा, पो० शकूराबाद, गया ।

—'गृहस्थ-धर्म' अति उपकारक पुस्तक है। इसे पढ़नेमें मन जम जाता है। यह बहुत ही सरस है।

१७२९—डा० रामनारायण प्रसाद, वालीबेलछी, पटना ।

—'गृहस्थ-धर्म' चिकित्साकी दृष्टीसे भी एक उपयोगी प्रकाशन है। यह रोगियोंके अलावा चिकित्सकोंके लिये भी उपयोगी है।

१७३०—श्री शिवनारायण प्रसाद, नवादा ।

—'गृहस्थ-धर्म' आपके उदार हृदयका प्रतीक है। यह पुस्तक आपके गुणों और विचारोंका प्रतिनिधित्व

१७३१—श्री रामेश्वर प्रसाद, पो० रतनीबाजार, गया ।

—'गृहस्थ-धर्म' ने धूम मचा दी है। सर्वत्र इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा हो रही है। इसका अध्ययन अत्यन्त सुखद है।

१७३२—श्री रघुनन्दन सहाय वकील, बाड़मबाजार, हजारीबाग ।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक श्रेष्ठ पुस्तकको बिना मूल्य वितरित कर आप जनताका बड़ा उपकार कर रहे हैं ।

१७३३—श्री रामरक्षा प्रसाद, पो० टिकारी, गया ।

—यथार्थमें यह बहुत अच्छी पुस्तक है। इसे पढ़कर मन प्रफुल्लित हो जाता है। यह पुस्तक संग्रहणीय है।

१७३४—व्यवस्थापक, लोकनाथ पुस्तकालय, पो० कोसियावां, पटना ।

—इस पुस्तकको पढ़नेके लिये सभी सदस्य लालायित रहते हैं। सदस्योंका कहना है कि 'गृहस्थ-धर्म' इस पुस्तकालयमें संगृहित सर्वश्रेष्ठ पुस्तकोंमें है।

१७३५—श्री वंशीधर त्रिपाठी, बिलासपुर ।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर आत्माकी तृप्ति हुई। इस पुस्तकको प्रकाशित कर आपने एक अनुपम उदाहरण उपस्थित किया है।

१७३६—चरित्र-निर्माणमें सहायक ।

—इस समय हम भारतीय गृहस्थोंकी अवस्थामें आपने 'गृहस्थ-धर्म' जैसी पुस्तकको प्रकाशित कर देश और देशवासियोंका बड़ा ही उपकार किया है। हम आशा करते हैं कि यह पुस्तक चरित्र-निर्माण और लोक-कल्याणमें बहुत सहायक होगी।

—रूपनारायण प्रसाद सिंह, ग्राम भगवानपुर ।
महावीर प्रसाद सिंह, ग्राम भगवानपुर ।
मुरलीधर शर्मा, पोस्टमैन, पटना ।
रामप्रसाद राम, बेन जनकपुर, सिलाव ।

१७३७—श्री बाबूराम सिंह, ग्राम धनकौल, पो० मखदुमपुर, गया ।

—'गृहस्थ-धर्म' की ख्याति साहित्य संसारमें बढ़ती जा रही है। गृहस्थोंके लिये यह बहुत गुणकारी सिद्ध हुई है। सभी इसकी ओर आकृष्ट होते हैं।

१७३८—श्री रामधारी सिंह, पो० बेन, सिलाव ।

—'गृहस्थ-धर्म' की यदि कीमत रखी जाती, तो वह काफी ज्यादा होती। हम अभाव-ग्रस्त ग्रामीण इसे खरीद न सकते, वन्चित रह जाते। आपका यह महादान है, जिससे हम किसानोंका बड़ा ही उपकार हो रहा है।

१७३९—श्री रामस्वरूप साव, मो० सोहजना, पो० सिसवां (नवादा) गया।

—परमादरणीय महोदय ! आपकी भव्य कीर्ति घर-घरमें छा रही है। अल्पज्ञोंसे आपका गुणगान नहीं हो सकता है। आप धर्मार्थ जो 'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तक प्रदान कर रहे हैं, वह अत्यन्त प्रशंसनीय है।

१७४०—श्री परमेश्वर प्रसाद सिंह, पो० बीर, पटना।

—आप इस पुस्तकके द्वारा संसारके अन्धकारको दूर कर प्रकाशको फैला रहे हैं। इस पुस्तकको पढ़कर ज्ञान-चक्षु प्राप्त होते हैं।

१७४१—सुखदेव चौधरी, भागलपुर।

—'गृहस्थ-धर्म' से आत्मिक और नैतिक बल प्राप्त होता है। यह जीवनका सच्चा मार्ग-दर्शक और साथी है।

१७४२—श्री फकीरचन्द अग्रवाला, बलांगीर पटना, उड़ीसा।

—'गृहस्थ-धर्म' अन्धोंको ज्ञानकी ज्योति देनेवाली चमत्कारिक पुस्तक है। आप धन्य हैं, जो लोगोंका इतना उपकार कर रहे हैं।

१७४३—श्रीमती सावित्रीदेवी, जहानाबाद, गया।

—आपकी इस किताबको पढ़कर मन भक्ति-मार्गकी ओर लगता है। ऐसी अलभ्य पुस्तकका संग्रह कर और उसे निःशुल्क वितरित कर आपने धार्मिक जगतमें एक युगान्तर उपस्थित किया है।

१७४४—श्रीमती कौशल्यादेवी, भतहर पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर तबियत खुश हो गयी। इस पुस्तकको प्रकाशित कर आप संसारमें अपनी कीर्त्तिकी धवल-पताका फहरा रहे हैं।

१७४५—श्री ठण्डाराम अघरिया, जांजगीर, बिलासपुर।

—परम आदर्श-गृहस्थ, भगवान् मनसुखरायजी ! आपके इस परोपकारको मैं आजीवन न भुला सकूंगा। इस पुस्तकको पढ़कर मैं अब एक अच्छा गृहस्थ बनकर जीवन व्यतीत कर रहा हूँ।

१७४६—श्री लखेश्वरप्रसाद, ग्राम लखराम, पो० रतनपुर, बिलासपुर।

—यह अति सुन्दर और गृहस्थियोंके लिये अति उत्तम पुस्तक है। हम ग्रामीण आपको सच्चे दिलसे धन्यवाद देते हैं कि आप 'गृहस्थ-धर्म' जैसी श्रेष्ठ पुस्तकको छपाकर उसे बिना मूल्य वितरित कर मानव-जातिका कल्याण कर रहे हैं।

१७४७—श्री देवलखन सिंह, ग्राम कुकरीचीघा, पो० नबीनगर, पटना।

—आप महान शिक्षा-प्रचारक हैं। आपकी किताब 'गृहस्थ-धर्म' का बड़ी धूमधामसे प्रचार हो रहा है। लोगोंका कहना है कि आपकी बनायी हुई किताबमें ज्ञानकी बहुत अच्छी-अच्छी बातें हैं।

१७४८—श्री शिवनन्दनप्रसाद, सिलाव, जिला पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' के प्रति सब आदर-भावसे देखने लगे हैं। यह जीवनकी सफलताके लिये एक परम आवश्यक पुस्तक है।

१७४९—श्री केदारनाथप्रसाद, पटना।

—आपकी किताबसे मेरा बड़ा प्रेम हो गया है। मैं 'गृहस्थ-धर्म' का प्रचार करना चाहता हूँ। इसके लिये मुझे ज्यादा-से-ज्यादा प्रतियोंकी जरूरत है।

१७५०—श्री रामनारायणप्रसाद, पो० दाहाबिगहा, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' केवल गृहस्थोंके लिये ही नहीं, परन्तु सभी लोगोंके लिये उपयोगी वस्तु है। यह जीवनका सच्चा पथ-प्रदर्शक है। आपको कोटिशः धन्यवाद।

१७५१—श्री रामकृष्ण पुस्तकालय, पो० नूरसरायँ, पटना।

—आप 'गृहस्थ-धर्म' को सन्ध्या-विधि सहित बिना मूल्य वितरित कर रहे हैं। आप यह कार्य महान धार्मिक कार्य है। आप जैसे महानुभाव हमारे देशमें बिरले ही हैं।

१७५२—श्री सच्चिदानन्द सिंह, पो० हजरतसांई, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' से लोगोंको अपना नित्य-कर्म सुचारु-रूपके सम्पन्न कर ईश्वरकी ओर मन लगानेकी प्रेरणा प्राप्त होती है।

१७५३—श्री पृथीनारायणप्रसाद, सदीसोपुर, जिला पटना।

—'गृहस्थ-धर्म'को पढ़कर हृदय आनन्दसे भर गया। हमारा कर्त्तव्य और धर्म क्या है, इसका हमें इस किताबको पढ़कर ज्ञान प्राप्त होता है। इस किताबको प्रकाशित कर आप यशके भागी बने हैं।

१७५४—श्री महावीरप्रसाद, नया बाजार, कानपुर।

—आपकी दातव्य पुस्तकको पढ़कर बहुत आनन्दकी प्राप्ति हुई। इसमें लिखे गये मत और उपदेशोंको समझना गृहस्थोंका परम-कर्त्तव्य है।

१७५५—श्री सवितानन्द मिश्र, पो० उसास देऊरा, गया।

—इस पुस्तकमें लिखी हुई बातोंको पढ़कर सारे अन्धकारका नाश हो जाता है। यह पुस्तक वास्तवमें सदा पासमें रखने योग्य है।

१७५६—श्री तपसीलाल, पो० अतासराय, जिला पटना।

—यह किताब बहुत लाभदायक है। गीता, महाभारत, रामायण आदि धार्मिक ग्रंथोंकी ही तरह यह एक ग्रंथ है।

सम्मतियाँ और उद्गार !

१७५७—श्री इन्द्रदेव महाराज, सुल्तानपुर।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक ग्रंथका हमारे देहातोंमें अधिक प्रचार हो रहा है। इसे पढ़कर लोग बहुत लाभ उठा रहे हैं। गांवके लोग रातके समय इकट्ठा होकर इसका प्रवचन करते हैं। इसमें उन्हें बड़ा रस मिलता है।

१७५८—श्री रामलखन सिंह, रफीगंज, जिला गया।

—आप बड़े दयालु हैं। इतनी बड़ी किताबको निःशुल्क बांटना कोई साधारण काम नहीं है। आपने दान-यज्ञ प्रारम्भ किया है। इस कार्यमें आपका नाम अमर रहेगा।

१७५९—श्री चिन्तामणि पाण्डेय, पो० मसौढ़ी, पटना।

—आपने किसानोंकी उन्नतिके लिये यह पुस्तक बनायी है। हमारे इलाके के किसान आपको अपना उद्धारक समझते हैं। हमारी इस पुस्तकसे बहुत उन्नति हो रही है।

१७६०—श्री राजाराम प्रसाद, पाईबिगहा, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' मानव-जातिके कल्याणार्थ लिखी गयी है। जनता आपके प्रति कृतज्ञता प्रकट करती है।

१७६१—श्री महादेव सिंह, कासगंज, उत्तर प्रदेश।

—गुरुमण्डलका छठा पुष्प 'गृहस्थ-धर्म' सभी मनुष्योंका पथ-प्रदर्शक है। इस पुस्तकके लिये जनता आपकी सदैव आभारी बनी रहेगी।

१७६२—श्री रामेश्वर प्रसाद शाह, पो० ताड़र, भागलपुर।

—'गृहस्थ-धर्म' ने मेरे मनको मोह लिया। मैं अपनी और अपने बन्धु-बांधवोंकी ओरसे आपको इस परोपकार के लिये बधाईका संदेश भेजता हूँ।

१७६३—श्री रामेश्वर शर्मा, वारसलीगंज, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़नेमें मन खूब रम जाता है। इसे पढ़नेसे आत्माकी शुद्धि होती है।

१७६४—श्री सहदेव झा, भागलपुर।

—'गृहस्थ-धर्म' का प्रचार धर्मका प्रचार है। इससे लोगोंकी धार्मिक भावनाएँ बढ़ रही है, और वे तरह-तरहका लाभ उठा रहे हैं। आपका परिश्रम पूर्ण सफल हुआ है।

१७६५—श्री शंकर सिन्हा, मुरगांव, पटना।

—गृहस्थ-धर्म, ब्रह्मचर्य आदि विषयोंका आपने 'गृहस्थ-धर्म' में समावेश कर जनताकी बड़ी भलाई की है। किताबको आप बिना मूल्य दे रहे हैं, यह आपकी महानताका द्योतक है।

१७६६—श्री सीताराम, अतासराय, पटना।

—इस पुस्तकको पढ़नेसे ज्ञानकी अभिवृद्धि होती है। यह बहुत लाभदायक है। इसमें धार्मिक बातें हैं।

१७६७—श्री रामेश्वर प्रसाद, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' आधुनिक युगकी एक अद्वितीय पुस्तक है। यह सर्वथा नवीन और आकर्षक है। राष्ट्रोन्नतिके लिये यह परमोपयोगी है। इस पुस्तकको पढ़कर बहुत ज्ञानकी प्राप्ति होती है।

१७६८—श्री जगेश्वर शर्मा, गपालोको कलोनी, गया।

—इस पुस्तकको पढ़कर मनुष्य अपनी आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है। इस पुस्तक द्वारा धर्म और संस्कृतिकी ठोस सेवा हो रही है।

१७६९—श्री श्यामसुन्दर लाल, पटना।

—इस पुस्तकमें ज्ञानकी बहुत-सी बातें भरी हैं। ऐसी उपयोगी पुस्तकके प्रकाशनार्थ आपको सहस्त्रों बार धन्यवाद है।

१७७०—श्री बंगाली चौधरी, पो० अजयपुर, पटना।

—वास्तवमें इस पुस्तकने लोगोंका बहुत हित किया है। इस किताबको पढ़नेसे अनाचारी व्यक्ति भी कर्मनिष्ट और सदाचारी तथा नास्तिक व्यक्ति भी आस्तिक बन जाता है। इस पुस्तकने यह दिखा दिया है कि आप दयासिंधु हैं।

१७७१—श्री राजगिर प्रसाद, शंकरपुर इमामगंज, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' से मस्तिष्क विकसित होता है। घर-घर में इस पुस्तकका प्रचार होनेसे देशका नैतिक स्तर बहुत ऊँचा उठ जायेगा।

१७७२—श्री लछनमणि त्रिपाठी, पो० भागलपुर, जिला देवरिया, उत्तर प्रदेश।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर मैं विशेष रूपसे इसकी ओर आकृष्ट हुआ हूँ। यह संग्रह मुझे अति आनन्ददायक और लाभदायक प्रतीत हुआ।

१७७३—श्री रामशरण आर्य लछमनपुरी, मंसूरी पहाड़, देहरादून।

—वास्तवमें यह पुस्तक अमूल्य और वेदोंका निचोड़ है। चारों वेदोंका सार इसमें आ गया है। आपने गागरमें सागर भी दिया है। इस पुस्तकको प्रकाशित कर तथा निःशुल्क वितरित कर आपने भूली-भटकी आर्य-जातिका बहुत उपकार किया है।

१७७४—श्री विभूति शर्मा, ग्राम चैनपुरा, पो० शकूराबाद, गया।

—आपने इस पुस्तकको लिखकर मानव-समुदायकी जो सेवा की है, वह अवर्णनीय है। यह पुस्तक गृहस्थोंके ... पदर्श वस्तु है।

सम्मतियाँ और उद्गार !

१७७५—श्री रामसूरत दुबे, बम्बई ।

—आपका भेजा हुआ 'गृहस्थ-धर्म' मिला । मैं आपको कोटिशः धन्यवाद देता हूँ । भगवान आपको सदैव कुशल-मङ्गल रखें, जिससे आप ऐसा ही परोपकार करते रहें । भगवान आपको धन-बल और विद्यासे भरपूर करें । 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक बहुत ही अच्छी है । इससे मेरा बहुत ही फायदा हुआ है । इस पुस्तकसे दुनियाका बहुत ही फायदा होगा । भगवान आपका भला करें ।

१७७६—श्री बलदेव प्रसाद, पीताम्बर लाल, शर्मागंज रातसागर, रायपुर, मध्य-प्रदेश ।

—गृहस्थ-धर्म के पवित्र आदेश निकालकर आपने महान उपकार किया है । यहां पर स्त्री-सत्संग मण्डली कायम हुई है । कृपा कर इस मण्डलीमें 'गृहस्थ-धर्म' की कुछ प्रतियाँ भेजकर कृतार्थ करें ।

१७७७—श्री मोहनलाल साव, हेड मास्टर प्रायमरी स्कूल, डोंगरी, पो० बलौदा जिला बिलासपुर ।

—गुरुमण्डलके छठे पुष्प 'गृहस्थ-धर्म' को देख कर परमानन्द प्राप्त हुआ । यह तो गृहस्थोंके लिये स्वर्ग की रोशनी है ।

१७७८—श्री शीतलप्रसाद वर्मा, पटना ।

—'गृहस्थ-धर्म' हम लोगोंको बहुत अच्छी मालूम पड़ी । इससे हम लोगोंको नयाजीवन मिल रहा है । दूर-देहातोंमें भी इसकी धूम मची हुई है । ऐसी सुन्दर पुस्तकके लिये हम आपके बहुत कृतज्ञ हैं ।

१७७९—श्री मदनलाल कुँवरलाल व्यास, ग्राम कोठड़ा, मध्यभारत ।

—इस पुस्तकसे गृहस्थोंको नयी रोशनी मिलती है । आपको कोटिशः धन्यवाद है । भगवान आपके सभी मनोरथ पूरे करे ।

१७८०—श्री रामकृष्ण मिश्र वैद्य, इनचार्ज डिस्पेन्सरी, कोरौना, जिला सीतापुर ।

—'गृहस्थ-धर्म' अत्युत्तम एवं हृदयङ्गम् करने योग्य है । इस पुस्तकसे ज्ञानकी ज्योति प्राप्त होती है ।

१७८१—श्री रघुनन्दन सिंह, पो० हंसपुरा, जिला गया ।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक यहां बहुत प्रचलित हो गयी है । इस पुस्तकसे बहुत लोगोंने अपने आचरणको बनाया है । वास्तवमें आपने इस पुस्तक द्वारा जनताका बहुत उपकार किया है ।

१७८२—श्री हनुमानदास, महेन्द्रू, पटना ।

—वास्तवमें वर्तमान समयमें 'गृहस्थ-धर्म' जैसी पुस्तकोंकी ही आवश्यकता है । 'गृहस्थ-धर्म' को भारतीयको अवश्य पढ़ना और दूसरोंको पढ़ाना चाहिये ।

१७८३—पं० रामभजन गौत्तम, दैनिक 'सन्मार्ग' प्रेस, टाउन हाल, बनारस।

—सविनय निवेदन है कि मैं आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' को प्राप्त कर अपने जीवन-क्षेत्रका सुधार करना परमावश्यक समझता हूँ।

१७८४—श्री चण्डीशङ्करप्रसाद, ग्राम पो० तेल्हड़ा, जिला पटना।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको पढ़ा। पढ़कर तबियत बहुत खुश हुई। ऐसा अमूल्य रत्न हरेक गृहस्थके पास रहना जरूरी है।

१७८५—श्री राधिकाप्रसाद, एस० एस० एकेडेमी, एकङ्गरसराय, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' शिक्षा और ज्ञानमें एक अद्वितीय पुस्तक है। मैं इस पुस्तकके उपदेशोंपर चलकर काम करना चाहता हूँ।

१७८६—श्री केशवनाथ ठाकुर, नादिया हिन्दू हाई स्कूल, लोहरडागा, रांची।

—मैंने 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़ा। यह एक धार्मिक पुस्तक है। इसमें बहुत गुण भरे हुए हैं।

१७८७—श्री टी० पी० सिंह, भागलपुर।

—आपकी किताबको बार-बार पढ़नेकी इच्छा होती है। यह बात प्रसिद्ध हो चुकी है कि आप बहुत ही धर्मानुरागी सज्जन हैं और सदैव धर्मकी रक्षाके हेतु कार्य करते रहते हैं।

१७८८—श्री गुरुशरणप्रसाद, ग्राम राजाकुँआं, बिहारशरीफ।

—देशके लिये परम सौभाग्यका विषय है कि आप 'गृहस्थ-धर्म' को देशकी भलाईके लिये निःशुल्क वितरित करते हैं। यदि आपकी तरह कुछ और व्यक्ति देश और जातिकी चिन्तन करें, तो इस देशकी तकदीर ही चमक उठे। आपको सहस्रों बार धन्यवाद है।

१७८९—श्री दरोगालाल, ग्राम गोविन्दपुर कुर्था, पो० फतवा, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' गार्हस्थ-जीवनको उच्च बनानेका अच्छा उपाय है। आपने इस पुस्तकको प्रकाशित कर गार्हस्थ-जीवनका एक सच्चा मार्ग बताया है। आप इस पुस्तकको प्रकाशित कर अमर हो चुके हैं।

१७९०—श्री राजेन्द्रप्रसाद वर्मा, ग्राम इसलामपुर, पो० अतासराय, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़नेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसको पढ़कर मैं चकित रह गया। बहुत ही उत्तम पुस्तक है। इस पुस्तकसे हरएक मनुष्य अपनी प्राचीन संस्कृति एवं सभ्यताकी रक्षा अच्छी तरह कर सकता है।

१७९१—श्री मधुसूदन राम, ब्रह्मदेवराम, इसलामपुर, पो० अतासराय, जिला पटना।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक बहुत ही उपयोगी है। इसकी प्रशंसा जितनी भी की जाय, थोड़ी है। साथ ही उदारता और महानताकी प्रशंसा भी कम नहीं है।

१७६२—श्री गुगल उरांव, ग्राम रामपुर,
पो० लोहरडागा, रांची।

आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' कृषकोंके लिये अत्यन्त ही शिक्षा-प्रद है। मेरा विश्वास है कि इस पुस्तकके नित्य पाठसे मैं अपना तथा अपने परिवारका उद्धार कर सकूंगा। आपके रहते मैं अपनेको धन्य मानता हूँ। दुनियामें कितने ही बड़े-बड़े महापुरुष, कवि और लेखक हो गये हैं, लेकिन किसीने भी यह नहीं बताया कि गृहस्थाश्रम में रहकर क्या और कैसे तथा किसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये। देहात के पुस्तकालयोंमें इस तरह की कोई पुस्तक नहीं थी। आपने नयी दिशा दिखलायी है।

सम्मतियाँ और उद्गार !

१७६३—श्री महादेव मण्डल, ग्राम शाहपुर, जिला भागलपुर ।

—'गृहस्थ-धर्म' जैसी धार्मिक पुस्तकका प्रचार कर आप संसारके कल्याणको अग्रसर हुए हैं । इस पुस्तकसे संसारका कल्याण अवश्य होगा । आपको भगवान चिरायु रखें ।

१७६४—श्री फणिभूषण झा, शिक्षक, पो० रहैठा, मुंगेर ।

—'गृहस्थ-धर्म' सचमुच अद्वितीय ग्रन्थ है । यह हरेक गृहस्थके घरमें रहना चाहिये ।

१७६५—श्री रामस्वरूप प्रकाश यादव, पो० अतरी टेंटुआ, जिला गया ।

—इस पुस्तक द्वारा आपकी कीर्त्ति फैल रही है । वास्तवमें जिस व्यक्तिकी कीर्त्ति है, उसीका जीवन सफल है । आपकी पुस्तकको पढ़कर मुझे अति प्रसन्नता प्राप्त हुई ।

१७६६—श्री परशुराम शर्मा, पो० बेलागञ्ज, गया ।

—'गृहस्थ-धर्म' का समुचित अध्ययन और मनन कर लोग बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं । यह किताब बहुत सरस है । आपको अन्तःकरणसे धन्यवाद है ।

१७६७—श्री कमलदेव शर्मा, मंत्री जय हिन्द पुस्तकालय कुर्रे, पो० साहोबिगहा ।

—'गृहस्थ-धर्म' को देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ । हम विद्यार्थियोंके लिये यह पथ-प्रदर्शक ही है । यह किताब जनताके अन्धकारमय भविष्यको उज्ज्वल बनानेमें बड़ी सहायक है ।

१७६८—श्री केजाराम हेड मास्टर, फास्टरपुर, जिला बिलासपुर ।

—'गृहस्थ-धर्म' को देखकर अतीव आनन्द हुआ । इस पुस्तकको बिना मूल्य देकर आप पुण्यका संचय कर रहे हैं । इस पुण्य कार्यके लिये आपको हार्दिक धन्यवाद है ।

१७६९—श्री कान्तप्रसाद पाठक, अतासराय, पटना ।

—सचमुच यह बहुत अच्छी पुस्तक है । विशेष बात तो यह है कि ऐसी बहुमूल्य पुस्तकको आप बिना मूल्य वितरित करते हैं ।

१८००—श्री ईश्वरदयाल, युवक परिषद पुस्तकालय, मिरचायगञ्ज, पटना ।

—यह पुस्तक गृहस्थ-धर्मोपयोगी तो है ही, पर इसके सेवनसे और भी अनेकानेक सदुपदेश तथा नित्य-कर्म करनेका ज्ञान प्राप्त हो जाना अनिवार्य है ।

१८०१—श्री सरयूप्रसाद वर्मा, मुकाम राली, पो० बोध गया ।

—मुझे आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर कितनी ही बातोंकी जानकारी प्राप्त हुई । मैं अपढ़ आदमी होकर क्या धन्यवाद दे सकता हूँ ? इस पुस्तककी सुन्दरताका वर्णन करना भी मेरे जैसे व्यक्तिके लिये सम्भव है ।

सम्मतियाँ और उद्गार !

१८०२—श्री गणेशराम टेलर मास्टर, मालखरौदा, बिलासपुर ।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर बहुत आनन्द प्राप्त हुआ । इससे हमें कई प्रकारकी शिक्षा मिली । इसमें लिखी गयी बातोंको सुनकर कई भाइयोंने आनन्द प्राप्त किया ।

१८०३—श्री लक्ष्मण पाण्डेय, पो० मिरचायगञ्ज, पटना ।

—आपकी पुस्तकको पढ़कर मैं अत्यन्त ही आनन्दित हुआ । आपकी इस कृपासे कितने ही लोग अपने चरित्रका निर्माण कर रहे हैं ।

१८०४—श्री राजेन्द्रप्रसाद सिंह, पो० जटडुमरी, पटना ।

—'गृहस्थ-धर्म' का नाम हमारे इलाकेमें फैल गया है । इस किताबको पढ़कर बहुत कामयाबी और आनन्दकी प्राप्ति हुई ।

१८०५—श्री यदुनन्दनप्रसाद सिंह, गोनावन, जिला पटना ।

—आपकी पुस्तककी ख्याति चारों ओर गूंज रही है । पुस्तककी ख्यातिके साथ-साथ आपकी ख्याति भी गूंज रही है ।

१८०६—श्री जनक सिंह, ग्राम डेढ़घरा, पो० बिहार, जिला पटना ।

—धर्म-प्रचार तथा गृहस्थोंके जीवनको उच्च बनानेके लिये आपने ऐसी पुस्तककी रचना की है । आप हमारे जीवनको ऊंचा तथा पवित्र बनानेके लिये जो कष्ट कर रहे हैं, उसके लिये अनेकानेक धन्यवाद ।

१८०७—श्री दीपनारायण मण्डल, ग्राम गोपालपुर, (शोभनाथपुर), पो० कहलगांव, जिला भागलपुर ।

—मैं इस ग्रामका मुखिया हूँ । मुझे वह किताब गांवके लिये अत्यन्त ही हितकर मालूम होती है । इससे जनताकी भलाई होगी ।

१८०८—श्री भगवानप्रसाद दास, पो० बरारी, जिला भागलपुर ।

—'गृहस्थ-धर्म' नामकी किताबको पढ़ा । पढ़कर मुझे अत्यन्त आनन्द हुआ । मुझे इस किताबको बार-बार पढ़नेकी इच्छा होती है ।

१८०९—पं० बलभद्र शर्मा, मु० भोरी, पो० टिकारी, जिला गया ।

—श्रीमन्तन्तत्रभवन्तं श्री मनसुखमोरजीवं विवेदयामोवयम् । श्री मद्धस्तलिखित पुस्तक गृहस्थ नामकं पठित-वन्तोवयम् । अति सुन्दरं प्रतिभाति अतएव अस्मभ्यमेव प्रचारकार्यार्थं पड्पुस्तकप्रेषणाय कृपां कुर्याः । नूनंकृपा [illegible] कर्तव्यं श्रुतिचोदनात् ।

सम्मतियाँ और उद्गार !

१८१०—श्री रामसागरप्रसाद सिंह विद्यार्थी, ग्राम भार्थू, पो० भार्थू, जिला गया।

—आप 'गृहस्थ-धर्म' बहुत दिनोंसे वितरण कर रहे हैं। मैं यह जानकारी कराना चाहता हूँ कि आपका उद्देश्य क्या है ? जो इतनी मोटी पुस्तक मुफ्त बांट रहे हैं। कृपया इसका उत्तर भेजनेकी कृपा करें।

१८११—श्री लक्ष्मीनारायण शर्मा, मास्टर शाजापुर, सोमवारिया बाजार, (मध्यभारत)।

—मैंने बड़ागांव जाकर प्रधानाध्यापकके पास आपकी बनाई हुई 'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तक देखी। मुझको यह बहुत ही पसन्द आयी। प्रत्येक गृहस्थके लिये बहुत ही उपयोगी है। कृपया ५ प्रतियां भेज सकें, तो मैं अपने कुछ मित्रोंके पास, जो देहातमें रहते हैं, भेज दूंगा।

१८१२—श्री माधो साव शिवनन्दनप्रसाद, पो० भखल, मो० बैदराबाद, जिला गया।

—'गृहस्थ-धर्म' इतना अच्छा है कि पढ़ते ही दिल आनन्दित हो जाता है। यहांकी जनता इसे पढ़कर बहुत शिक्षा ग्रहण कर रही है।

१८१३—श्री राम इतर सिंह, ग्राम द्वारका बीघा, पो० चिरजु मिलकी, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक दान-स्वरूप भेजकर जनताकी आपने जो भलाई की है, उसके लिये जनता आपकी मुक्त-कण्ठसे प्रशंसा करती है। हमारे ग्रामीण भाई उससे लाभ उठा रहे हैं।

१८१४—श्री बालकेश्वर शर्मा, बन्धुगञ्ज हाई स्कूल, पो० जुल्फीपुर मोहनगञ्ज, जिला गया।

—अयि महानुभाव ! भवान् धन्यवादार्ह येताहि स्वकीय सत्यसनातनधर्म रक्षणाय हिन्दू संस्कृतेः संस्थापनार्थाय च महपरिश्रमेण महताव्ययेन चैतत् 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकें मुद्रणं विधाय निःशुल्कमनेकेभ्यः जनेभ्यः प्रत्यहं वितरित। यत् पुस्तकं दृष्ट्वैव विस्मृत प्राचीन संस्कृतेःपुनर्जागरणंभवति। अतोऽहमपि एकं पुस्तकम् 'गृहस्थ-धर्म' नामकम् प्राप्तु-मिच्छामि। कृपया मदर्थेऽवश्यमेक पुस्तकम् प्रेषणीयम्।

१८१५—श्री रामप्रसाद चौधरी, हाटी, पो० हाटी; जहानाबाद, जिला गया।

—हे वन्दनीय महानुभाव ! मैं आपकी दानशीलता एवं परोपकार प्रियतासे अत्यधिक प्रभावित होकर ही आपकी सेवामें यह पत्र प्रेषित कर रहा हूँ। धन्य है आपकी सौजन्य ! आज आपके 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर जनता कृतकृत्य है। वास्तवमें 'गृहस्थ-धर्म' का अनुपात मानव-मात्रको देवत्व तक पहुँचानेका सरल सोपान है। आपने यह पुण्य [illegible]कर समस्त भारतीय जनताका महान कल्याण किया है। मैं भी उस ग्रंथसे अपने परिवारको लाभान्वित करना चाहता हूँ। भगवान आपके यश सौरभको दिन दूनी, रात चौगुनी वृद्धि करें। आप स्वस्थ्य, सकुशल रहें यही शुभ [illegible]।

१८१६—श्री कृष्णानन्दन सहाय, सदीसोपुर, पटना।

—प्रसन्नताका विषय है कि आप 'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तक मुफ्त बांट रहे हैं। हमें पूर्ण विश्वास है आप ही जैसे समाजके शुभ हितचिन्तकोंसे हिन्दू समाज लाभान्वित होगा तथा उन्नत होगा।

१८१७—श्री श्रीधर सिंह, गाँव रेहटी नेवादा, पो० नेवादा (जलालपुर), जिला जौनपुर, यू० पी०।

—यह पुस्तक बड़ी अच्छी लगी और मैं इससे कितना प्रभावित हुआ, यह वाणी द्वारा व्यक्त नहीं कर सकता। वास्तवमें ऐसी ही पुस्तकोंसे प्रचारसे हमारा धर्म, हमारा समाज विकासोन्मुख हो सकता है। आपके ऐसे महत् सद्कार्यके लिये धन्यवाद देना मेरे लिये छोटा मुंह बड़ी बात होगी। मैंने आपके उद्योगको सफलीभूत बनानेका दृढ़ संकल्प कर लिया है। और यथाशक्ति इसमें योग दूँगा। कृपया अपने मित्रोंमें इसका प्रचार कर उनकी भी विचारधारा को बदलने के लिये मुझे इस पुस्तककी कुछ प्रतियां जल्द भेजनेका कष्ट कीजिये। इस कार्यके लिये मैं आपका अनुग्रहित रहूँगा।

१८१८—श्री बृजनन्दन प्रसाद, मु० खैराफिरोज, पो० कासमा, जिला गया।

—कम बुद्धि वाला मनुष्य भी इस 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको पढ़कर अच्छे मार्गको पकड़ सकता है। और दीर्घ-जीवी भी हो सकता है। हमलोग सहस्त्र धन्यवाद इस पुस्तकके रचयिताको देते हैं कि इस पुस्तकके द्वारा गृहस्थ अपने कर्त्तव्यको स्पष्ट रूपसे समझ सकता है।

१८१९—श्री रामलखन त्रिपाठी पुजारी, मु० करंजा ठाकुरवारी, पो० जैतीपुर, पटना।

—यह पुस्तक सार्वजनिक दृष्टिकोणसे लाभदायक प्रतीत होती है। इससे हमारे जीवनमें सुधार होता है।

१८२०—श्री शालिग्राम पाठक 'वैद्यरत्न', जैन मन्दिर, दातव्य औषधालय रमता, महादेवघाट, गया।

—कल्याण कोटि-भाजन परम श्रद्धेय, श्री मनसुखराय मोर जी! आप 'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तक छपवाकर निःशुल्क धर्मानुरागियोंको सादर-समर्पण करते हैं। इसमें साक्षात् ईश्वर ही की कृपासर्वाङ्गतः दीख पड़ती है। आज विकराल कलिकालमें सभी जगह धर्म ही पर कुठाराघात हो रहा है। आपकी 'गृहस्थ-धर्म' बड़ी ही सारगर्भित तथा सरल है।

१८२१—श्री शिवभगवान मोर, श्रीनिवास काटन मिल्स लि०, डिलाइल रोड, बम्बई।

—आपने ऐसी उत्तम पुस्तक निकालकर जगतका बड़ा उपकार किया है। पुस्तकमें करीब-करीब सभी विषयों पर प्रकाश डाला गया है और इसकी शैली अत्यन्त सुन्दर है। पुस्तकको देखनेसे उत्कठ इच्छा हुई कि इसके अ[illegible] जरूर जीवनमें फायदा उठा सकूँगा। ऐसी पुस्तकके लिये आपको हार्दिक धन्यवाद है।

१८२१—कविराज श्री प्रमथनाथ गुप्ता, पो० इचाक, हजारीबाग ।

—मैंने आपकी बनायी हुई किताब 'गृहस्थ-धर्म' को एक बन्धुके पाससे पढ़ा। पुस्तककी जितनी भी प्रशंसा की जाय बहुत थोड़ी है। आपने इस किताबको बनाकर मानव समाजका कितना उपकार किया है, इसका वर्णन नहीं हो सकता।

१८२३—श्री रामलषणप्रसाद सिंह, ग्राम कीशुन्देवीगहा, पो० इसलामपुर, जिला पटना ।

—बड़े हर्षकी बात है कि आपने हमारे खोये हुए गृहस्थ-धर्मका पुनः संगठन करनेका निश्चय किया है। जो धर्म आज न जाने कितने वर्षोंसे लुप्त हो गया है, वह आपके प्रयासमें विकसित हो रहा है। यह आपके असीम उच्च विचारोंका प्रतीक है। हे भगवन्! इन महानुभाव के विचार सफलीभूत हों। आपकी विचार-धारा से मालूम होता है कि इस उच्च विचारसे देशकी भलाई तथा कृषकों का अत्यन्त लाभ होगा।

इस पुस्तकके अध्ययनसे कृषक लौकिक तथा परलौकिकमें भी सफल हो सकता है। मैंने इस पुस्तकको पढ़ा है। इसमें ऐसे-ऐसे गुण भरे हैं कि पढ़नेसे मन आनन्दित हो जाता है।

सम्मतियाँ और उद्गार !

१८२४—श्री रघुवर प्रसाद, ग्राम-पोस्ट बिरकोना, बिलासपुर।

—आप 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकका बिना मूल्य वितरण धर्मार्थ और लोक-परलोक सुधारार्थ कर रहे हैं। विशेष धन्यवाद !

१८२५—श्री जगदीश प्रसाद सोनार, मु० भदाय, पो० गिरीचक, पटना।

—आप हिन्दुओंके सदोपदेशके लिये 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकका प्रकाशन कर यशके भागी बने हैं। अतः आपको ईश्वर की ओरसे धन्यवाद है।

१८२६—श्रीमती भुनेश्वरी देवी, मिडिल स्कूल पैठना, पो० मोरातलाव, पटना।

—आपका 'गृहस्थ-धर्म' प्रकाशन देख मुझे अपार खुशी हुई। अतः आपसे कर-बद्ध अनुरोध करती हूँ कि मुझे एक प्रति 'गृहस्थ-धर्म' प्रदान कर यशस्वी बनें।

१८२७—श्री उपेन्द्रनाथ घोष, ग्राम अस्सीहाट, घोघा, पो० वटसार, भागलपुर।

—मैं ही नहीं, बल्कि दुनिया आपके इस उपकारको नहीं भुला सकती है। यदि कृपाकर 'गृहस्थ-धर्म' की एक पुस्तक इस दीनको भी भेजनेकी कृपा करें तो मैं भी अन्य व्यक्तियोंकी तरह कृतार्थ होनेमें समर्थ हो सकूं। आशा है, मेरी इच्छाकी पूर्ति आप अवश्य करेंगे।

१८२८—श्रीमती विद्यावतीदेवी आर्य्या, मो०-पो० नगरनौसा, पटना।

—आपका 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक मुझे थोड़ी देर पढ़नेका सौभाग्य हुआ। पुस्तक दैनिक पाठ करनेके योग्य है। तथा हरएक परिवारमें तथा घर-घरमें आपकी पुस्तक रखने योग्य है। मुझे यह जानकर और भी प्रसन्नता हुई कि 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक निःशुल्क बांटकर आप परमार्थका कार्य कर रहे हैं। मैं आपके कार्यकी हृदयसे सराहना करती हूँ, तथा प्रभुसे आपके कार्योंकी सफलताकी कामना प्रगट करती हूँ।

१८२९—श्री गिरिधारी प्रसाद शुक्ल, मुकाम तुलसी, पो० केरा, बिलासपुर।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक मैंने देखी। बहुत ही कामकी है और बहुत उपयोगी है।

१८३०—श्री चन्द्रिका प्रसाद सिंह, ग्राम कैथ्यार पत्रालय अलीगंज, मुंगेर।

—ट्रेन यात्रामें मुझे आपकी पुस्तक देखनेको मिली, जो गृहस्थ-जीवनके लिये परम-आवश्यक चीज है।

१८३१—श्री रामलखन सिंह, ग्राम करनौटी, पो० बख्तियारपुर, पटना।

—आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' किसी दूसरे व्यक्तिके पाससे पढ़नेका अवसर प्राप्त हुआ है। थोड़ी ही देर मैंने जो कुछ पढ़ा उसकी प्रशंसा मैं किस तरह करूँ, मेरी समझमें नहीं आता। इस पुस्तककी जितनी भी प्रशंसा की जा[illegible] थोड़ी ही समझी जायगी।

सम्मतियाँ और उद्गार !

१८३२—श्री कामता प्रसाद पाण्डेय, ग्राम पकरीकापुरा, पो० पहाड़ा, मिर्जापुर ।

—'गृहस्थ-धर्म' अवलोकन करनेकी सुविधा थोड़े समयके लिये मुझे डाक्टर जी०पी० शर्माके चिकित्सालयमें मिली। कुछ समय तक इसे पढ़ा। तबियत बड़ी प्रसन्न हुई। जी यही चाहता है कि आद्योपांत पढ़ता। परन्तु ऐसे कार्यके लिये लगभग तीन-चार दिनका समय लगेगा। मैं एक गांवमें रहता हूँ, जो शहर मिर्जापुरसे लगभग दस मील दूर है।

१८३३—श्री खेदूप्रसाद गुप्ता, घुटकू, पो० घुटकू, जिला बिलासपुर ।

—धर्ममूर्त्ति, दानवीर सेठ मनसुखरायजी मोर ! कोटिशः धन्यवाद। आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक किसी दूसरे सज्जनसे देखी। अत्यन्त प्रसन्नता हुई। धन्य है, आपके इस परोपकारको। आप जैसे धर्मवान पुरुष संसारमें बहुत कम होते हैं।

१८३४—श्री बदरीनारायण पाण्डेय, आर्यायुर्वेदिक कार्यालय, पो० अतासराय, पटना ।

—आपने जो 'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तक प्रकाशित की है, वह गृहस्थ-धर्मियोंके लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है।

१८३५—श्री चन्द्रभूषण शर्मा शास्त्री, मु० पोखरा, पो० कुदरा, जिला आरा ।

—श्रीयुक्त धर्मपालक गो-ब्राह्मण-रक्षक धर्मावतार श्रीमान् मनसुखरायजी ! असंख्य धन्यवाद !

श्रीमान् जो प्रत्येक व्यक्तियोंको एक-एक प्रति 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक प्रदान करनेकी कृपाकर धर्म कार्यमें लीन हैं, इसके लिये ईश्वरसे धन्यवाद है।

१८३६—पं० कपिलनाथ कर्मकाण्डी, मु० पो० खम्हरिया, बिलासपुर सी० पी० ।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको मैंने कुछ समयके लिये अवलोकन किया। पढ़कर इतना आनन्द हुआ कि हृदय यही चाहा कि मैं बार-बार पढ़ता रहूँ और इसे पढ़कर स्वर्गका रास्ता बनाऊँ। यह पुस्तक क्या है, गृहस्थोंके लिये आवागमन मिटानेका एक महामन्त्र है। इसके लिये टिकट भेजा जाता है या मनिआर्डर सो, जिस रूपमें देते होंगे, भेजें। हम वी०पी० भी छुड़ानेको तत्पर हैं।

१८३७—श्री सोहराईप्रसाद शर्मा, बोएना, पो० हरनौत, पटना ।

—आप 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक मुफ्तमें प्रचार कर रहे हैं, जिससे लाखों भाई फायदा उठा रहे हैं।

१८३८—श्री चन्द्रप्रकाश पाण्डेय, १४६, मुट्ठीगञ्ज, इलाहाबाद ।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको पढ़नेका सौभाग्य मुझे हुआ। पुस्तक अत्यन्त ही रोचक तथा दैनिक जीवनको सुखमय बनानेकी दृष्टिसे आदर्श रूपमें है। कदाचित ऐसी कोई और पुस्तक अभीतक गृहस्थ-धर्मके विषयमें नहीं पढ़कर रखी गयी। कितने ही परिवारोंमें सुख तथा शान्ति लानेका महान् कार्य आपके द्वारा हुआ। इस पुस्तककी एक प्रति [illegible] चाहता हूँ।

१८३९—श्री प्रभुदयाल पंडित, मो० सेन्हा, पो० लोहरडागा, रांची।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक मैंने किसी दूसरे आदमीके पाससे पढ़ी, जिसमें मेरा दिल बिल्कुल गड़ गया। इसके बिना मुझे चैन नहीं आ रहा है।

१८४०—श्री रामशरण प्रसाद, नौरंगा, पो० बुनियादगञ्ज, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' भारतके कोने-कोनेमें विख्यात है, जिसे पढ़कर लोग लाभ उठा रहे हैं।

१८४१—श्री नन्दबिहारी लाल, मो० बैना, पो० कुंडसर, जिला शाहाबाद।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक एक जगह देखी। मुझे अत्यन्त ही पसन्द आयी। यह पुस्तक हम विद्यार्थियोंके वास्ते बहुत ही कामकी चीज है।

१८४२—श्री दुधेश्वरप्रसाद पाठक, ग्राम बरसीमा, पो० पाई बिगहा, जिला गया।

—मैं आपका यह धर्म-कार्य सुनकर प्रफुल्लित हो गया। 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकमें धर्मकी बातें हैं। इसके अध्ययनसे मनुष्य अपने जीवनको सफल बना सकता है।

१८४३—श्री वेदराम हेड मास्टर, प्रायमरी-स्कूल, हालाहुली, पो० झाराडीह, जिला रायगढ़।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक देखनेसे दिल अत्यन्त आनन्दकी लहरोंमें गोता लगा रहा है।

१८४४—श्रीकान्त शर्मा, हे० पं० गांधी मेमोरियल हाई स्कूल कूरू, पो० मो० कूरू, जिला रांची।

—मैंने आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको किसी सज्जनके पास देखा और आद्योपान्त अध्ययन किया। चित्त आनन्दित हो उठा।

१८४५—श्री रामअवतार मेगोतिया, पो० जुगसलाई, टाटानगर।

—मैंने अपने एक मित्रके यहां कलकत्तेमें आपकी संग्रह की हुई 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको पढ़ा। आपके संग्रह मुझे बहुत प्रिय लगे।

१८४६—श्री बिसाहूलाल, समदरिया मालगुजार, अकलतरी, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़।

—आपको कोटिशः धन्यवाद है कि आप इतना भारी खर्चका सामना करते हुए 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक कर संसारके गृहस्थोंके उपकार करनेके लिये इसे मुफ्तमें वितरण कर रहे हैं।

१८४७—पं० सिंहेश्वर झा, ग्राम महियामा, पो० सन्होला, जिला भागलपुर।

—परमादरणीय ! आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक एक सज्जनके पास देखी। हृदयमें बड़ी प्रसन्नता हुई। यह पुस्तक प्रकाशित कर आपने गृहस्थोंका जो उपकार किया है, वह अवर्णनीय है। पुस्तकानुसार नियम पालनसे, गृहस्थ मानव से देव हो सकता है।

१८४८—श्री शत्रुघ्नलाल, मुहल्ला गडेरियाखंड, पो० जहानाबाद, जिला गया।

—सप्रेम अभिवादन ! सर्व-साधारणके परोपकारके निमित्त आपके द्वारा 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक प्रदान की जाती है। मैंने भी उसके कुछ पन्ने अवलोकन करके गीतादि शास्त्रोंके अमृतमय उपदेश हृदय-पट पर अंकित कर लिए हैं। अनेक सद्‌ग्रंथोंके सार-संग्रह द्वारा जनता जनार्दनके लिए निष्काम भावसे जो सेवा की जा रही है, उसके लिए जीवन-पर्यन्त आपके आभारी बने रहेंगे।

१८४९—श्री चन्द्रकान्त मिश्र, ग्राम बासाटांड़, पो० शहरतेलपा, जिला गया।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक एक मित्रके पाससे देखकर अत्यन्त खुशी हुई। पर उसे अच्छी तरह देखनेका अवसर नहीं मिला। पर उसका पता साथ लेता आया। घर पहुँचकर अपनी पूजनीया माताजी और स्नेहमयी बहनसे उस पुस्तकके विषयमें कहा, और उन दोनोंके बार-बार कहने पर आपके पास पत्र लिखकर एक प्रतिकी मांग कर रहा हूँ। कृपया भेजनेकी कृपा करें। यदि पार्सलसे भी भेज देंगे तो मुझे छुड़ा लेनेमें कोई आपत्ति न होगी।

१८५०—श्री रामचरित्र सिंह, मोकाम भटविगहा, पो० लारी, जिला गया।

—बड़े हर्षकी बात है कि आप अच्छी, उपयोगी एवं धार्मिक पुस्तकोंका प्रचार कर समाज तथा देशकी बड़ीसे बड़ी सेवा कर रहे हैं। मुझ जसा व्यक्ति आपकी क्या प्रशंसा कर सकता है ? 'गृहस्थ-धर्म' के प्रति श्रद्धा होनेके कारण उसे पढ़नेकी इच्छा बनी रहती है। आपके द्वारा रचित यह पुस्तक आज समाजकी सेवामें अग्रसर हो रही है।

१८५१—श्री सीतासाहू सीवसाहू, पो०-मो० बरबीघा, जिला मुंगेर।

—मैंने अभी हालमें ही गार्हस्थ्य-जीवनमें प्रवेश किया है। अतः आपसे निवेदन है कि आप हमारे जीवनके सुन्दर और सुखमय बनानेके लिये सिर्फ एक प्रति 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक भेजनेकी कृपा करेंगे।

१८५२—श्री वंशनारायण मौर्य, ग्राम मनहन, पो० जलालपुर, जिला जौनपुर।

—सचमुच इस कलिकालमें अगर कोई वस्तु हिन्दू संस्कृतिके उत्थान और इस प्रचलित धर्मके अन्ध-विश्वासको दूर करनेवाली है, तो वह केवल 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक मात्र ही है।

सम्मतियाँ और उद्गार !

१८५३—श्री रामजतन शर्मा, प्रधानाध्यापक, सिनियर बेसिक स्कूल, नौबतपुर, पटना।

—कृपया 'गृहस्थ-धर्म' की एक प्रति मेरे पतेसे भेजनेका कष्ट करें। पुस्तक बहुत ही लाभदायक मालूम पड़ती है और इससे मैं दैनिक जीवनमें काफी लाभ उठा सकूंगा।

१८५४—श्री रामवृक्ष सिंह, ग्राम खजुरी, पो० कोंच, टिकारी, गया।

—यद्यपि मैं एक ग्रामीण हूँ, लेकिन फिर भी सभ्यता और संस्कृतिसे मेरा अगाध प्रेम है। आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको पढ़कर दिल उछल पड़ा। सचमुचमें आपकी पुस्तक भारतीय संस्कृतिका प्रतिबिम्ब है, जिसमें उसकी झलक हम पाते हैं।

१८५५—श्रीमती देवी, ग्रा० पो० उसासदेवरा, जिला गया।

—आपकी धर्ममें सच्ची लगन देखकर मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ है। आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' हरेक जनके हृदय पर धर्मकी एक ज्योति बिखरा रही है।

१८५६—श्री कैलाशकान्त शर्मा, पो० औङ्गारीधाम, जिला पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक आज भारतके कोने-कोनेमें जगमगा रही है और उसे प्राप्त कर लोगोंने जीवनके सुधार का रास्ता बना लिया है। आपके लिखे हुए शब्दोंको पढ़नेसे हृदयमें आनन्दकी धाराएँ बहने लगती हैं।

१८५७—श्री कृष्णबल्लभ सिंह, बुढ़ूचक, पो० फतुहा, जिला पटना।

—दयानिधे ! मैं एक साधारण किसान हूँ। मेरी बहुत दिनोंसे प्रबल इच्छा थी कि गृहस्थोंके लिये कोई ऐसी पुस्तक निकले जिससे गृहस्थोंका उपकार हो। गृहस्थोंके उपकारके लिये आपने 'गृहस्थ-धर्म नामक पुस्तक प्रकाशित कर यह कमी दूर की है।

१८५८—श्री राजेन्द्रप्रसाद स्टूडेण्ट स्टोर्स, जेनरल मर्चेण्ट्स, नं० २७ पटना मार्केट।

—देहातमें अपने साथियोंके पास आपकी लिखी हुई 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक देखी। मुझे आपकी यह पुस्तक अत्यन्त पसन्द आयी। आपने इस किताबको लिखकर लोगोंका बहुत बड़ा कल्याण किया है, जिसके लिये हिन्दू-जनता सदा आपकी कृतज्ञताके भारसे दबी रहेगी।

१८५९—श्री गोबिन्दप्रसाद छापड़िया, 'श्याम' पुरानी बाजार, पो० मोकामा, पटना।

—आपके द्वारा प्रकाशित तथा वितरित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' एक सज्जनके पास देखी। पुस्तक मुझे बड़ी पसन्द आयी। इसमें शास्त्रोक्त विधि द्वारा गृहस्थ-धर्म पालन करनेकी रूप-रेखा सुझाई गयी है। मैं पूर्ण आशा करता हूँ [कि] आप इस तरहकी और भी पुस्तकें प्रकाशित तथा वितरित करेंगे।

१८६०—श्री श्यामसुन्दर लाल, ग्राम मैनासीसरैया, मसमूले करियामऊ, सीतापुर।

—आपने कृपा करके हिन्दू-धर्मके प्रचार और उसकी रक्षाके लिये 'गृहस्थ-धर्म' नामक सुन्दर ग्रंथ छपवाकर उसे बिना मूल्य वितरणका भार उठाया है। विश्वमें परमार्थसे बढ़कर तथा अपने धर्मकी रक्षासे अधिक और धर्म हो ही क्या सकता है ?

१८६१—श्री गोवर्द्धन सिंह भानुप्रसाद, पो० खुशरूपुर, जिला पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' बहुत उत्तम किताब है। इस पुस्तकको पढ़नेके लिये लोग ऐसे लालायित रहते हैं, जिस प्रकार चन्द्रमाके लिये चकोर पक्षी। श्रीमान्‌का यश चारों ओर फैल गया है।

१८६२—श्री गनौरी महतो, ग्राम भदेगी, पो० बुनियादगञ्ज, गया।

—यह एक अत्यन्त लाभदायक पुस्तक है। प्रथम दर्शनमें ही इसे पढ़नेके लिये मेरे मुंहमें पानी भर आया। इसकी ख्याति सर्वत्र फैल चुकी है। इसके पठन-पाठनसे लोग बहुत लाभ उठा रहे हैं।

१८६३—श्री रामलषण सिंह, 'ग्राम-सेवक' ग्राम पञ्चायत वलिदाद,
पो० मखदुमाबाद, जिला गया।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपका प्रयास अत्यन्त सराहनीय और प्रशंसनीय है। इस पुस्तकसे चरित्र-निर्माणमें बड़ी सहायता प्राप्त होती है।

१८६४—श्री इन्द्रजीतप्रसाद, ग्रामखोप, पो० मोहिउद्दीनपुर, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' से जनताकी बहुत भलाई हो रही है। इस किताबको पढ़कर हृदयमें धर्मकी लहर दौड़ पड़ती है।

१८६५—श्री रामनिहोराराम, ग्राम धरनई, पो० मखदुमपुर, जिला गया।

—इस पुस्तकमें ज्ञानकी बातें भरी हुई हैं। इसमें लिखे नियमोंका पालन करनेसे मनुष्योंका जीवन सुधर सकता है।

१८६६—श्री शत्रुघ्न साह भरतशाह, ग्राम गोपालपुर, पो० घोघा, जिला भागलपुर।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक गांव-गांवमें प्रचलित हो चुकी है। इस पुस्तकमें सन्ध्या, पूजा-पाठ तथा नित्य-कर्ममें भी बड़ी सहायता मिलती है।

१८६७—श्री ब्रह्मदेव शर्मा, हाई स्कूल घोसी, जिला गया।

—इस ग्रन्थके अध्ययनसे मानवोंके मानसको शान्ति प्राप्त होती है।

१८६८—श्री रामलखन पाठक, पीरमुहावी, कदमकुआं, पटना।

—गृहस्थोंके लिये ही नहीं, अपितु यह पुस्तक सभीके लिये बहुत उपयोगी है। इस पुस्तकके द्वारा आपने [illegible] तो बड़ा ही कल्याण किया है।

जीव- [illegible] भी ग [illegible] च [illegible]

१८६९—श्री देवताचरण शर्मा, ग्राम सोनवां, पो० मलाठी।

—'गृहस्थ-धर्म' पण्डितोंको भी ज्ञान देनेवाला रत्न-ग्रंथ है। बड़े-बड़े आचार्य और विद्वान लोग भी इसकी मुक्त-कण्ठसे प्रशंसा करते हैं। इसमें जीवनके लिये परमोपयोगी सिद्धान्तोंपर गम्भीरतापूर्वक गवेषणा की गयी है।

१८७०—श्री रामविलास विश्वकर्मा, मु० पो० शाहोबिघा, जिला गया।

—आपको 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकने बहुत ही प्रसिद्धि प्राप्त कर ली है। जिन्होंने इसे पढ़ा है, वे सभी इसकी बहुत प्रशंसा करते हैं। मूढ़-से-मूढ़ व्यक्ति भी इससे ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं।

१८७१—श्री सुगतानन्दप्रसाद सिंह, लोको क्वार्टर नं० ३६४ बी०, गया।

—गृहस्थोंके लिये यह बड़े कामकी चीज है। इससे गृहस्थ-जीवन सुखी बन सकता है।

१८७२—श्रीमती शर्मिष्ठादेवी, ग्राम-पोस्ट उलास, जिला गया।

—आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' ने इस इलाकेमें तहलका मचा दिया है। सब लोग इसकी प्रशंसा कर रहे हैं। इसका अध्ययन करनेके लिये बहुत से लोग लालायित रहते हैं। धर्मके प्रति आपकी जो निष्ठा है, उसे देख हृदय प्रफुल्लित हो उठता है। भगवान आपका हर तरह भला करें।

१८७३—श्री रामचन्द्र प्रसाद साह, ग्राम रमासी, पो० सुनहला, भागलपुर।

—धार्मिक पुस्तकोंके लिये अबतक गीता-प्रेस की ही धाक जमी थी। लेकिन 'गृहस्थ-धर्म' को प्रकाशित कर आपने वास्तवमें गीता-प्रेसको भी मात दे दी है।

१८७४—श्री सियाराम सिंह, मिडिल स्कूल खिजरसराय, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' में ज्ञानकी बहुत-सी बातें भरी हुई हैं। इस पुस्तकके गुणोंकी सभी जगह चर्चा हो रही है।

१८७५—श्री शिवरतन प्रसाद सिंह, ग्राम-पोस्ट ओला, पटना।

—आपके परोपकारकी सर्वत्र:चर्चा हो रही है। आपकी अनुपम पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' बड़े ही ज्ञानकी चीज है। ऐसी अलभ्य पुस्तक को प्रकाशित कर आपने समाजका बड़ा कल्याण किया है।

१८७६—श्री महादेव प्रसाद, ग्राम-पोस्ट रफीगञ्ज, गया।

—गृहस्थ-जीवनको सुखमय बनानेके लिये आपने 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकका वितरण किया है। इस कार्यसे आपका यश चारों ओर फैल गया है। मोहल्ले-मोहल्लेमें आपकी कीर्तिका गुण-गान हो रहा है। हमें अपने मोहल्लेके लिये इसकी पचास प्रतियोंकी और आवश्यकता है।

१८७७—श्री राजेन्द्र प्रसाद सिन्हा, हाई स्कूल हरनौत, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक सदुपदेशोंसे भरी हुई है। इस पुस्तकको पढ़कर जनता बहुत फायदा उठा रही है।

-४६-

१८७८—श्री गणेशलाल, ग्राम अहियापुर, गया।

—मेरे परिवारके लोगोंको आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकसे बहुत लाभ पहुंचा है। इस पुस्तकसे हमारे घरमें शांति और सुख लौट आया है। इसके लिए आपको कोटिशः धन्यवाद है।

१८७९—श्री वाल्मिकी प्रसाद, ग्राम खैरखुरा, पो० सदर गया, जिला गया।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक बहुत प्रसिद्ध हो चुकी है। घर-घरमें इसकी चर्चा है। इस पुस्तकका पाठकर लोग कुमार्गसे हटकर सुमार्ग पर आ रहे हैं। सब लोग पुस्तकके साथ-साथ आपकी भी भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे हैं।

१८८०—श्री महावीरलाल, पण्डई, जिला गया।

—बिहार भरमें आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' की आवाज फैल गयी है। आप वास्तवमें धन्य हैं, जो ऐसी उपयोगी किताब प्रकाशित की है।

१८८१—श्री गुप्तेश्वर प्रसाद सिंह, पो० जहानाबाद, गया।

—आपकी पुस्तकको पढ़कर उत्तमोत्तम शिक्षा प्राप्त होती है। यह वास्तवमें ज्ञानकी निधि है।

१८८२—श्री बाबू अर्जुन सिंह, ग्राम ईशोपुर, पो० फुलवारी, पटना।

—बार-बार आपकी इस किताबको पढ़नेकी इच्छा होती है। 'गृहस्थ-धर्म' एक बेजोड़ पुस्तक प्रकाशित हुई है।

१८८३—श्री प्रभातगिरि, प्रधान पाठक, ग्राम सोन, पो० लोहरसी, बिलासपुर।

—'गृहस्थ-धर्म' को प्रकाशित कर आपने हमारे प्राचीन धर्मको पुनर्जीवित करनेका प्रशंसनीय कार्य किया है।

१८८४—डा० देवदत्त पाण्डेय एम० बी०, ग्राम नेयामतपुर, पो० मसौढ़ी, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' की चारों ओर बड़ी प्रशंसा हो रही है। इस पुस्तकके प्रति मेरी बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हो गयी है।

१८८५—श्री रामस्वरूप सिंह, पो० पभेड़ा, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' से समाजको उन्नतिके पथ पर अग्रसर करानेमें बड़ी मदद मिलती है। इस किताबको पढ़कर बहुत-सी नयी बातें मालूम होती हैं।

१८८६—श्री व्यासप्रसाद सिंह, पो० बहुपुरा, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' को प्रकाशित आप असीम यशका लाभ कर रहे हैं। इस पुस्तकसे आपकी कीर्ति बिहार प्रान्तमें जीवन फैल गयी है।

१८८७—श्री रामखेलावन राम, जिला भागलपुर।

—यह पुस्तक नहीं, अपितु धर्म-शास्त्र है। यह मानव-मात्रके लिये परमोपयोगी है।

सम्मतियाँ और उद्गार !

१८८८—श्री गिरिजानन्दन शर्मा, गया।

—'हिन्दू-धर्म' की रक्षा करनेवाली यह अद्भुत पुस्तक है। ऐसी अनुपम पुस्तकको प्रकाशित कर आप अमर हो गये हैं।

१८८९—श्री रामेश्वर प्रसाद, विहारशरीफ।

—'गृहस्थ-धर्म' जैसी महान धार्मिक पुस्तक प्रकाशित करनेके लिए आपको असंख्य बार प्रणाम है।

१८९०—श्री दयालशरण शर्मा, जहानावाद, गया।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको पढ़कर बहुत लोग अपना हित करनेमें समर्थ हो रहे हैं। आपके इस परोपकारको आजीवन भुलाया न जा सकेगा।

१८९१—श्री मेवा मिस्त्री, पटना।

—यह ऊँचे दर्जेकी पुस्तक है। इसकी सभी लोग प्रशंसा करते हैं। निःशुल्क वितरित करनेका आपका यह कार्य सर्वथा अनुकरणीय और प्रशंसनीय है।

१८९२—श्री युगेश्वर प्रसाद शर्मा, शिक्षक, पो० बटहरा, मुंगेर।

—यह पुस्तक वास्तवमें प्रत्येक गृहस्थके घरमें रखने लायक है। घरके सभी व्यक्तियोंके लिए यह उपदेश-प्रद है। हम सबोंने इस पुस्तकसे काफी लाभ उठाया है। ईश्वरसे प्रार्थना है कि गरीबोंके प्रति आपकी सदैव इसी तरह दया बनी रहे।

१८९३—श्री नेमचन्द्र राम, हजारीबाग।

—'गृहस्थ-धर्म' का अध्ययन कर मनमें मधुर आनन्दकी प्राप्ति हुई। यह पुस्तक वास्तवमें संसारकी श्रेष्ठ पुस्तकों में अग्र-गण्य है।

१८९४—श्री बालमुकुन्द प्रसाद, हजारीबाग।

—यह पुस्तक बहुत ही उत्तम है। ऐसी पुस्तकोंका ग्राम्य-पुस्तकालयोंमें रहना बहुत ही आवश्यक है। आपने इसे निःशुल्क वितरण कर महान त्याग किया है।

१८९५—श्री हरिहर शर्मा, बुद्ध-गया।

—'गृहस्थ-धर्म' से लोगोंका बड़ा उपकार हो रहा है। इतने बड़े उपकारीका उपकार कैसे भुलाया जा सकता है ? इस उपकारके बदले हम ग्रामीण आपकी क्या सेवा कर सकते हैं ?

१८९६—श्री राजेश्वरप्रसाद सिंह, शकूराबाद, गया।

—कठिन परिश्रमके साथ तैयार की गयी आपकी पुस्तक गृहस्थ-धर्म' जीवनको सुन्दर और सुखमय [illegible] लाभदायक सिद्ध हो सकती है। आपकी इस पुस्तकको पढ़कर बहुतसे लोगोंका जीवन वास्तवमें सुखी हो [illegible]

१८९७—श्री जुगलकिशोर शर्मा, ग्राम लोदीपुरा, गया।

—आपको इस पुस्तकमें गृहस्थ-धर्मके बारेमें काफी विश्लेषण किया गया है। यह पुस्तक प्रत्येक हिन्दू घरमें अवश्य रहनी चाहिये।

१८९८—श्री जगेश्वरप्रसाद, पो० चण्डी, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' हमारे देहातोंमें बहुत प्रचलित हो गयी है। यह एक बहुत ही अनुपम पुस्तक है। इससे लोगोंका बड़ा उपकार हो रहा है।

१८९९—श्री देवशरणप्रसाद, फतुहा, पटना।

—आपके उपकारको कभी भी नहीं भुलाया जा सकेगा। लोगोंकी भलाईका आपके दिलमें इतना बड़ा ख्याल है। ईश्वर ही आपको इस उपकारका बदला चुका सकते हैं।

१९००—श्री हरि साहू, रांची।

—संयोगवश मुझे आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह पुस्तक बड़े कामकी है। मैंने इसमें पूर्व इतनी उपयोगी पुस्तक नहीं पढ़ी थी।

१९०१—श्री ब्रजकिशोरलाल, शिक्षक, गया।

—आप दीन दयालु हैं। हजारोंकी संख्यामें इतनी बड़ी और उपयोगी किताब निःशुल्क देते हैं। इससे बड़ा उपकार और हो ही क्या सकता है? आपको लाखों बार प्रणाम है।

१९०२—श्री गणेशराम, कहलगांव, भागलपुर।

—'गृहस्थ-धर्म' का अध्ययन कर आत्माकी शुद्धि होती है। आपने ग्रामीण जनताका बहुत उपकार किया है ईश्वर आपको दीर्घायु रखे। संसारको आप जैसे पुरुषोंकी बड़ी आवश्यकता है।

१९०३—श्री गिरजाशङ्कर तिवारी, हिण्डली रोड, गया।

—आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर नियमानुकूल जीवन व्यतीत करनेकी प्रेरणा प्राप्त होती है। यह पुस्तक मनुष्योंको नया जीवन प्रदान करती है।

१९०४—श्री महादेवचरण आचार्य, कहलगांव, भागलपुर।

—इस पुस्तकको पढ़कर मनुष्य अपनी मानसिक उन्नति कर सकता है। इस पुस्तकसे धर्म-रक्षकोंकी श्रेणीमें आपका नाम प्रथम पंक्तिमें गिना जायेगा।

जीवन करें १९०५—श्री बीक्रू जमादार, भतहर, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' बहुत ही अच्छी पुस्तक है। इसे पढ़कर दिलमें तरह-तरहकी उमंगें उत्पन्न होती हैं।

१६०६—श्री यशवन्त नारायण, गुलजारबाग, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' से आप लोगोंको शिक्षा-दान दे रहे हैं। इस तरहकी पुस्तक प्रकाशित कर आपने देश और जातिका बहुत उपकार किया है।

१६०७—श्री सचितानन्द मिश्र, हाथरस, यू० पी०।

—'गृहस्थ-धर्म' में लिखी हुई बातोंको पढ़कर मेरे मनमें बड़ा ही उत्साह आया। मैं अपने जीवनसे निराश हो चुका था। इस पुस्तकने वास्तवमें मेरे शरीरमें नये प्राणोंका संचार किया है। आपको लाखों बार प्रणाम है।

१६०८—श्री महावीर पाण्डेय, मधुबनी।

—'गृहस्थ-धर्म' एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसके गुणोंका वर्णन करना मेरे जैसे साधारण विद्यावाले व्यक्तिके लिए सम्भव नहीं है। इसकी गुणा-ग्राहिकताका वर्णन तो बड़े-बड़े पण्डित और आचार्य ही कर सकेंगे।

१६०९—श्री रामचन्द्र प्रसाद, हिल्सा, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' की पुनरावृत्ति करवा कर जनहितके लिये आप जो अथक परिश्रम कर रहे हैं, वह सर्वथा स्तुत्य है। भारतको इस समय आप ही जैसे महानुभावोंकी आवश्यकता है।

१६१०—श्री शिवपूजन सहाय, हुलासगञ्ज, गया।

—जनता आपकी चिर ऋणी रहेगी। आपने निःशुल्क पुस्तकोंके वितरणका ऐसा शुभकार्य प्रारम्भ किया है कि मन आपके चरणोंमें सिर नवानेकी इच्छा करता है।

१६११—श्री जैलाल हरलाल, पो० जुनागढ़, कालाखण्डी स्टेट।

—'गृहस्थ-धर्म' परमोपयोगी पुस्तक है। इससे मनुष्यका बड़ा उपकार हुआ है।

१६१२—श्री प्रमोदकृष्ण झा, पूर्णिया।

—आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' की उपयोगिताके प्रभावित होकर मैं इसका नित्य पाठ कर रहा हूँ। मुझे इसे पढ़नेमें बड़ा आनन्द प्राप्त होता है।

१६१३—सीतारामप्रसाद, गुरारू, जिला गया।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकका प्रचार कर आप देशवासियोंका महान हित-साधन कर रहे हैं। 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकोंमें रत्न है, तो आप मनुष्योंमें रत्न हैं।

१६१४—श्रीमती मनोरमादेवी, भागलपुर।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़नेके लिये मैं रोज प्रातःकाल उठती हूँ। मेरी माताजी और बहिन भी इसे मन सुनती हैं।

१९१५—श्री दीपचन्द सिंह, पो० अजैपुर, पटना।

—अज्ञानी गृहस्थ आपकी इस पुस्तकको पढ़कर ज्ञानकी राशि बटोर रहे हैं। जनताकी जीवन को सुखी बनानेके लिये आपका त्याग अद्वितीय है।

१९१६—श्री यदुनन्दनप्रसाद, पो० मसौढ़ी, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' इस बातका प्रमाण है कि आप राष्ट्रकी सेवा नये ढंगसे कर रहे हैं। यह अति सुन्दर और सर्वथा पठनीय पुस्तक है।

१९१७—श्री देवीदयाल सिंह, हांसाडीह, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकके द्वारा आप देश, धर्म और जातिकी ठोस सेवा कर रहे हैं। इस पुस्तकको पढ़कर मन प्रफुल्लित हो जाता है और एक नयी उमंग उत्पन्न होती है।

१९१८—श्री मन्त्री, जलधर पुस्तकालय, सुरही, पो० लारी, पटना।

—जनता-जनार्दनके कल्याणके हेतु आप 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक वितरण कर रहे हैं। इस पुस्तकसे मानव-जीवनके उत्थानमें सहायता मिलती है।

१६१६—श्री कामेश्वरलाल, पो० भार्थू, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' बहुत ही अच्छी पुस्तक है। इसमें जीवनको उत्थानके रास्तेपर ले जानेवाली ही बात दी गयी हैं।

१६२०—श्री आनन्दविहारी पाठक, शिक्षक, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' के द्वारा आप मनुष्यके जीवनकी सफलताका मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। आपको हार्दिक धन्यवाद है।

१६२१—श्री सच्चिदानन्द त्रिपाठी, साहित्याचार्य, बिलासपुर।

—आपके इस कार्यकी जितनी भी प्रशंसा की जाय, बहुत थोड़ी होगी। धार्मिक जगत्में 'गृहस्थ-धर्म' ने एक युगान्तर उपस्थित कर दिया है। आपकी कीर्त्ति-पताका सर्वत्र फहरा रही है।

१६२२—पं० अनन्तप्रसाद शर्मा, जमालपुर।

—धर्मावतार! आपके इस धार्मिक कार्यकी जितनी भी प्रशंसा की जाय, वह बहुत थोड़ी होगी। 'गृहस्थ-धर्म' गृहस्थोंके लिये ज्ञानका भण्डार है।

१६२३—प्रधानाध्यापक, टाउन-स्कूल, टिकारी।

—'गृहस्थ-धर्म' स्कूलोंके छात्रों और शिक्षकोंके लिये समान रूपसे उपयोगी सिद्ध हुई है। ऐसी सुन्दर पुस्तक का संग्रह करनेके लिये आपको सहस्रों बार धन्यवाद है।

१६२४—श्री रामनगीना सिंह, शकूराबाद, गया।

—गृहस्थोंके लिये 'गृहस्थ-धर्म' आदर्श है। इस पुस्तकको पढ़कर बहुत ज्ञान मिलता है और अच्छी राहपर चलनेकी इच्छा होती है।

१६२५—श्री शिवराम सिंह, प्रधानाध्यापक चैनपुरा, गया।

—मैंने 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़ा। गृहस्थोंके लिये यह बहुत फायदेकी चीज है। इस पुस्तकके सहारे बहुतसे लोग अपने जीवनका नये सिरेसे सुधार कर रहे हैं।

१६२६—प्रधान-शिक्षक उच्च प्राथमिक शिक्षालय, असियांवा, पो० पिजौरा, जिला गया।

—'गृहस्थ-धर्म' नामकी सुन्दर पुस्तकके वितरणके लिये अनेकानेक धन्यवाद। स्कूलके शिक्षकों, छात्रों तथा पुस्तकालयोंके लिये यह एक अत्यन्त उपयोगी पुस्तक है।

१६२७—श्री विट्ठलराव, एम० ए० रायगढ़, सी० पी०।

—इस पुस्तकके उपदेश सर्वथा ग्रहणीय हैं। 'गृहस्थ-धर्म' अपने ढङ्गकी निराली धार्मिक पुस्तक है।

सम्मतियाँ और उद्गार !

श्री सहदेवनारायण सिंह, पो० खुसरूपुर पटना।

—यह पुस्तक वास्तवमें बहुत मधुर और गुणोंसे परिपूर्ण है। ऐसी सुन्दर पुस्तकके लिये आपको अनेकानेक धन्यवाद है।

१९२९—श्री गौरीरामप्रसाद सिंह, औरंगाबाद, गया।

—आपके इस शुभ कार्यसे धर्मका पुनरुत्थान ही नहीं होगा, अपितु मनुष्योंको जीवन-ज्योति प्राप्त होगी।

१९३०—श्री जगदीश सिंह, पो० तेयार, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' मानव-गुणोंसे परिपूर्ण है। इसके समुचित अध्ययनसे मनुष्योंका बहुत बड़ा उपकार हो सकता है।

१९३१—आर्य-प्रतिनिधि सभा, बांकीपुर, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' में बहुमूल्य शिक्षाओंका संग्रह है। आर्य-जातिका गौरव इस पुस्तकसे बढ़ेगा।

१९३२—श्री रामशंकर राठौर, चांपा, विलासपुर।

—मुझे आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक बहुत पसन्द आयी। आपने धर्मार्थ इस पुस्तकको छपाया और वितरित किया है। जनता आपके इस उपकारके लिये सदैव ऋणी बनी रहेगी।

१९३३—श्री कैलाशप्रसाद मिश्र, भूतपूर्व सुपरिण्टेण्डेण्ट, पो० भीखनपुर, भागलपुर।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकको आप निःशुल्क वितरण करते हैं। आप यह बड़ा हो मङ्गल कार्य कर रहे हैं। परमात्मा आपकी हर तरह सहायता करे, यही मेरी अन्तःकरणसे प्रार्थना है।

१९३४—श्री रामेश्वरप्रसाद, पो० पालीगंज, जिला पटना।

—इस पुस्तकको पढ़कर मैंने अपनेको कृतार्थ समझा। मैंने धरहारा पुस्तकालयमें यह पुस्तक पढ़ी। तबसे इसे प्राप्त करनेके लिये मेरे मनमें बड़ी बेचैनी छायी हुई है।

१९३५—श्री सीताराम साह, पो० सेनोला, भागलपुर।

—आपने न जाने कितने उजड़े घरोंको आबाद कर दिया है। 'गृहस्थ-धर्म' ऐसी ही अनमोल पुस्तक है, जिसे पढ़कर मनुष्य जीवनकी सच्ची राहपर चलने लगते हैं और अपने जीवनको सफल बनाते हैं।

१९३६—श्री बृजनन्दनप्रसाद शर्मा, पो० सलीमपुर, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर मेरा मन अपार आनन्दका अनुभव करने लगा। मानो मुझे कोई बड़ी धन-राशि गयी हो। इस पुस्तकसे मेरे हृदयको बड़ी शान्ति मिली है।

१६३७—श्री श्यामगोपाल, मुख्त्यार, शिकोहाबाद, उप-प्रधान आर्य-समाज, शिकोहाबाद तथा उप-प्रधान जिला उप-प्रतिनिधि सभा, मैनपुरी।

मान्यवर महोदय ! नमस्ते ! मैंने आपसे दो प्रतियां 'गृहस्थ-धर्म' की वी० पी० पी० द्वारा भेजनेकी प्रार्थना की थी। आपने निःशुल्क बुकपोस्ट द्वारा भेज दीं। किस प्रकार धन्यवाद दूं ? धर्मार्थ आपकी सेवा सराहनीय है। दूसरी प्रति श्री सत्य-पालजी स्नातक गुरुकुल, गोरी विदनूर, मैसूर रेलवेज (दक्षिणी भारत) के के लिये मंगवाई थी। वे उन दिनों यहां पर थे। अब मैसूर चले गये।

पुस्तक अत्यन्त सुन्दर तथा शिक्षा-प्रद है। इस पुस्तक द्वारा हमारे देशका ही नहीं, अपितु समस्त मनुष्य जाति का कल्याण हो सकता है।

अन्तमें एक बार फिर धन्यवादके साथ...

सम्मतियाँ और उद्गार !

शिक्षक-प्रतिनिधि श्री मथुराप्रसाद सिंह, 'साहित्य-रत्न' श्री गांधी स्मारक गवर्नमेण्ट बेसिक स्कूल, अजनौरा पो० अजयपुर, जिला पटना।

श्रद्धेय धर्मानुरागी पूज्यपाद् श्री सेठ मनसुखरायजीके चरण कमलोंमें नीचे लिखे स्वतन्त्र भारतके धर्मपरायण छात्र-छात्राओं एवं धार्मिक मतावलम्बी जनता-जनार्दनकी ओरसे प्रति दिनका सप्रेम सादर यथोचित स्वीकार हो।

आज तिथि श्रावण शुक्ल सप्तमीको श्री गाँधी स्मारक गवर्नमेण्ट बेसिक स्कूलके 'गांधी-भवन' में छात्र, छात्राओं, उद्भट विद्वानों एवं जनता-जनार्दनकी एक महती सभा 'तुलसी जयन्ती'-के उपलक्षमें बड़े समारोहके साथ सम्पन्न हुई। सभामें श्रीमान्‌के कर कमलों द्वारा वितरित 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तककी चर्चा हुई और इसके प्रचारका संकल्प किया गया। सर्व-सम्मतिसे यह तैय हुआकि अलग-अलग प्रार्थना-पत्र न लिखकर एक ही साथ पत्र व्यवहार कर प्रयाप्त मात्रामें पुस्तकें मंगा ली जायँ तथा ग्राम-ग्राम और नगर-नगरमें इस महत्वपूर्ण पुस्तकको प्रचार किया जाय। आजकी आम सभामें जिन-जिन लोगोंने 'गृहस्थ-धर्म' के प्रचारमें सक्रिय भाग लेनेका संकल्प किया है, उनके नाम निम्न प्रकार हैं :—

१—श्री मथुराप्रसाद सिंह 'सा० रत्न' श्री गांधी स्मारक गवर्नमेंट बेसिक स्कूल अजनौरा, पो० अजयपुर, (पटना)।
२—श्री ज्ञान पण्डित ,, ,, ,,
३—श्री बलदेव नारायण ,, ,, ,,
४—श्री रामदेव मालाकार ,, ,, ,,
५—श्री महाबीर साहु ,, ,, ,,
६—श्री दिवाकर दत्त शर्मा ,, ,, ,,
७—श्री महाबीर प्रसाद ,, ,, ,,
८—श्री बिहारीशरण सिंह ,, ,, ,,
९—श्री शङ्करलाल बी० ए० इन्सट्रक्टर बे० ट्रे० स्कूल, पो० महेद्दू, पटना ,, ,, ,,
१०—श्री हरिहरप्रसाद बी० ए० शिक्षक आई० ई० स्कूल नूरसराय पटना।
११—श्री सीताशरण सिंह बी०ए० ग्राम गौरवनगर पो० परवलपुर, पटना।
१२—श्री मुरलीधर नारायणप्र० एम० ए० इन्सट्रक्टर बे० ट्रे० स्कूल, हँसडीहा, जिला संथाल प्रगना।
१३—श्री ब्रह्मानन्द शर्मा, शास्त्री, ग्राम धनावाँ, पो० परवलपुर, पटना।
१४—श्री सूर्यनारायण सिंह शिक्षक ,, ,, ,, ,,
१५—श्री रामेश्वर शर्मा कम्पौंडर ,, ,, ,, ,,
१६—श्री जगनारायण प्र० डाक्टर ,, ,, ,, ,,
—श्रीमती रामादेवी शिक्षिका, बालिका विद्यालय, धनांव, पो० परवलपुर, (पटना)।
—श्रीमती यशोदादेवी, शिक्षिका, बालिका विद्यालय, धनांव, पो० परवलपुर, (पटना)।

सम्मतियाँ और उद्गार !

१९—श्रीमती कौशल्यादेवी, शिक्षिका, बालिका विद्यालय, धनांव, पो०परवलपुर, (पटना)।
२०—श्रीमती रुक्मिणदेवी 'आर्या' ग्राम गौरवनगर, पो० परवलपुर (पटना)।
२१—श्रीमती सहोद्रादेवी, „ „ „ „ „
२२—श्रीमती चमेलीदेवी, 'विमल' „ „ „ „
२३—श्री बालगोविन्दप्रसाद, 'शिक्षा-मंत्री' छात्र सरकार, श्री गांधी स्मारक गवर्नमेण्ट बेसिक स्कूल, अजनौरा,
२४—श्री महेश्वरीप्रसाद 'विकास मन्त्री' पो० अजयपुर, (पटना)।
२५—श्री बृजनन्दनप्रसाद 'गृह-मंत्री' „ „ „
२६—श्री सीताराम प्रसाद 'कृषि-मंत्री' „ „ „
२७—श्री सिद्धेश्वरप्रसाद 'उद्योग-मंत्री' „ „ „
२८—श्री बृजनन्दन साहु 'अर्थ-मन्त्री' „ „ „
२९—श्री शिवनन्दनप्रसाद 'स्वास्थ्य-मन्त्री „ „ „
३०—श्री केशवप्रसाद 'रक्षा-मत्री' „ „ „
३१—श्री निशाकर दत्त शर्मा 'प्रचार-मन्त्री' „ „ „
३२—श्री रामचन्द्र प्रसाद 'अध्यक्ष' „ „ „
३३—श्री कैलाश पतिजी 'प्रधान-मन्त्री' „ „ „
३४—श्रीमती जानकीदेवी 'महिला-प्रतिनिधि' „ „ „
३५—श्री चन्द्रशेखर शर्मा 'कताई-मन्त्री' „ „ „
३६—श्री रामप्रसाद सिंह 'छात्र-प्रतिनिधि' „ „ „
३७—श्री दामोदरप्रसाद 'संगीत-मन्त्री „ „ „
३८—श्रीमती विन्दाकुमारी छात्रा „ „ „
३९—मन्त्री श्री सरस्वती पुस्तकालय, ग्राम अजनौरा, पो० अजयपुर, (पटना)।
४०—मन्त्री श्री मगध हिन्दी पुस्तकालय, गौरवनगर, पो० परवलपुर, (पटना)।
४१—मन्त्री श्री शान्ति निकेतन, गौरवनगर, पो० परवलपुर, (पटना)।
४२—मन्त्री श्री शिवधारी हिन्दी पुस्तकालय, गौरवनगर, पो० परवलपुर, (पटना)।
४३—मन्त्री श्री बीरचन्द पटेल, माध्यमिक विद्यालय, आटकला, पो० अजयपुर, (पटना)।
४४—डाक्टर बोधनारायण शर्मा, एच० एम० डी० आरोग्य औषधालय, अजनौरा, पो० अजयपुर, (पटना)।
४५—डाक्टर रामप्यारेलाल गुप्ता, एच० पी० डिस्पेन्सरी, रसलपुर पो० अजयपुर, (पटना)।
४६—श्री मिठू सिंह यादव, सरपञ्च, ग्राम लाला बिगहा, पो० अजयपुर, (पटना)।

सम्मतियाँ और उद्गार !

...न्द सिंह, अध्यक्ष, ग्राम पञ्चायत सुन्दरपुर, पो० अजयपुर, (पटना)।

४८—श्री द्वारिकाप्रसाद चौधरी, ग्राम पञ्चायत करण बिगहा पो० अजयपुर, (पटना)।

४९—श्री फकलाल दास यादव, ग्राम पञ्चायत, रसलपुर, पो० अजयपुर, (पटना)।

५०—श्री भोलीप्रसाद सिंह, ग्राम पञ्चायत, बासीखन्धा, पो० अजयपुर, (पटना)।

५१—श्री बचनप्रसाद होमगार्डी, ग्राम पञ्चायत, रसुल्ला, पो० अजयपुर, (पटना)।

५२—श्री जानकीशरण सिंह, ग्राम पञ्चायत, गौरवनगर, पो० परवलपुर, (पटना)।

५३ —श्री बद्रीनारायण सिंह, ग्राम पञ्चायत, रंगपुर, पो० परवलपुर, (पटना)।

५४—श्री तेजनारायण सिंह, ग्राम पञ्चायत, मिर्जापुर, पोठ परवलपुर, (पटना)।

५५—श्री यदुवीरप्रसाद सिंह, ग्राम पञ्चायत, कटहरी बिगहा, पो० परवलपुर, (पटना)।

५६—श्री नथुनी दत्त शर्मा, ग्राम पञ्चायत, अजनौरा, पो० अजयपुर, (पटना)।

५७—श्री किशुन ठाकुर, ग्राम पञ्चायत, आटकला, पोगे अजयपुर, (पटना)।

५८—श्री श्रीचन्द्रप्रसाद, ग्राम पञ्चायत, कठनपुरा, पो० अजयपुर, (पटना)!

५९—श्री बच्चूलाल, ग्राम पञ्चायत, परवलपुर, पो० परवलपुर, (पटना)।

६०—श्री शङ्करदयाल, ग्राम पञ्चायत, भई, पो० परवलपुर, (पटना)।

६१—श्री रामसागर सिंह, ग्राम पञ्चायत, गागो बिगहा, पो० परवलपुर, (पटना)।

श्रीमान् !

उक्त लिखित सज्जनोंके अतिरिक्त बैठकमें बहुतसे धर्मानुरागी व्यक्ति आये हुए थे। पर जिन-जिन लोगोंने सक्रिय भाग लेनेकी सपथ ली, उन्हीं लोगोंका नाम श्रीमान्‌के सम्मुख प्रेषित कर रहा हूँ। अन्तमें सभी लोगोंका यह विचार हुआ कि पुस्तक एक ही साथ एक रेलवे पार्सलसे मँगाकर सेवा की जाय। ऐसा करनेसे श्रीमान्‌को भी सुविधा होगी तथा हम लोगोंको भी किताबें शीघ्र और अवश्य मिल जायेंगी। अलग-अलग भेजनेसे खर्च भी ज्यादा लगेगा और डाकघरसे मिलनेमें भी देरी और असुविधा होगी।

अतः श्रीमान्‌से हमसभी लोगोंकी करबद्ध प्रार्थना है कि नीचे लिखे पतेसे शीघ्राति-शीघ्र भेजकर हम लोगोंके प्रोग्राममें सहायक हों तथा पुण्यके भाग बनें।

आपकी उचित सेवाके लिये हम बराबर तैयार हैं।

हमें आशा ही नहीं, वरना पूर्ण विश्वास है कि श्रीमान् हम लोगोंके सम्मिलित प्रार्थना-पत्रपर काफी विचार करेंगे तथा 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तककी ७५ प्रतियाँ रेलवे द्वारा शीघ्र भेजेंगे।

नं...
२०५
गृहस्... -८-५०

सम्मतियाँ और उद्गार !

१६४०—श्री रामजतन राज शर्मा, 'टीचर' एल० पी० स्कूल, पो०

जिला हजारीवाग ।

—मुझे आपके यहां की अत्यन्त सुखप्रद पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म', जिसे आप बिना मूल्यके वितरण कर संसारमें यशके भागी बन रहे हैं, देखनेका सुअवसर प्राप्त हुआ । धन्य है आपका सुन्दर विचार, जो संसारमें अमर बननेका सुमार्ग पकड़ा है । सम्पति रहनेकी शोभा यही है कि सु-मार्गमें अपने धनको व्यय करे । ईश्वर आपकी विमल बुद्धि दिन दुगनी रात चौगुनी सम्पतिके साथ करें, यही हमारी प्रार्थना उस दीन-बन्धुसे है ।

मैं हैहर ग्रामके, लो० प्रा० स्कूलका एक शिक्षक हूँ, और इसी ग्रामका वासिन्दा भी हूँ । अतः हमारी भी प्रबल इच्छा है कि आपके यहांकी यह सुखप्रद पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को प्राप्त कर अपने तथा पड़ोसी घरोंकी उन्नति करानेमें कुछ हाथ बटा सकूँ । उन्हें प्रेरित कर सकूं अर्थात उनके दिलमें उचित बातोंकी भावना पैदा कर सकूँ ।

१६४१—श्री रामआधार सिंह, हरिदास सेमिनरी, गया ।

—मैं अत्यन्त हर्षके साथ यह पत्र लिख रहा हूँ तथा मैं आपके इस नियमसे बहुत ही प्रसन्न हूँ, क्यों कि आपने दूसरोंकी भलाईके लिये अपने रुपयों को पैरों तले कुचल डाला । आपमें स्वार्थका दाग तक नहीं है तथा आपके इस कार्य से आपके परमार्थकी एक झलक दिखाई पड़ी है । मैं एक हिन्दू हूँ, तथा आपकी 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर बहुत ही खुश हुआ । मैं इस पुस्तकके प्रातः स्मरण मन्त्रोंको पढ़कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ । मुझे मालूम पड़ता है कि ये मंत्र एक चुम्बक है । तथा वह चुम्बक मेरे लौह दिलको अपनी ओर आकर्षित कर रहा है ।

१६४२—श्री रामभन मास्टर, सिपारा, पो० हिल्सा, पटना ।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक वर्तमान समयमें हर जगह प्रचलित हो चुकी है । इसलिये महानुभावकी :सेवामें सविनय निवेदन है कि कृपा कर एक पुस्तक द्वितीय संस्करण अथवा जो भी कार्यालयमें छपी होगी, अवश्य भेजनेका कष्ट उठावेंगे ? जिससे हम गृहस्थ-जीवनमें दैनिक होनेवाले कार्योंको उचित रूपसे संचालन कर सकें ? और ज्ञान प्राप्त कर जीवन सुखमय बना सकें ।

१६४३—श्री बालेश्वर प्रसाद शर्मा, बीर, पोस्ट बीर, पटना ।

—आपकी किताब मैंने अपने इलाकेमें देखी । उस किताबको पढ़नेसे मेरा दिल खुश हो गया सो उस 'गृहस्थ-धर्म' किताबको पढ़नेको मेरी हार्दिक इच्छा है । आपकी किताबके यशकी बड़ी बड़ाई हो रही है । तथा आपकी कीर्ति और दयालुता अपूर्व है । आपने लाखों किताब बांटकर गृहस्थ-धर्मकी शिक्षाका प्रचार किया । आप धन्य हैं ।

१६४४—श्री बिहारी पाठक, पुरानी पुलीस लाईन, बांकीपुर, पटना ।

—गृहस्थ-धर्म, एक बड़ी ही सुन्दर और शिक्षाप्रद पुस्तक है । आपके इस कष्ट और कृपा कार्यके लिये मैं [illegible] ईश्वरसे प्रार्थी रहूँगा । 'गृहस्थ-धर्म' की एक प्रति शीघ्रताशीघ्र भेजकर मुझे कृतार्थ करें ।

सम्मतियाँ और उद्गार !

श्रीमती कमलाबाई, पुत्री गौरीशंकर जी औदीच्य ब्राह्मण, बेरछा, पोस्ट बेरछा टाउन, (उज्जैन, भोपाल ब्राञ्च)।

—आपने 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक बिना मूल्य वितरण कर जगतका बड़ा उपकार किया है। आप धन्य हैं। ईश्वर आपके यश और सम्पतिमें वृद्धि करे। आप मुझ बालिकाको एक प्रति 'गृहस्थ-धर्म' की भेजनेकी कृपा करें।

१९४६—श्री वालेश्वर प्रसाद, इम्पीरियल बैंक आफ इण्डिया, आरा शाहाबाद।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक पढ़कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और इसे आद्योपान्त पढ़कर इसके तत्वको समझाने अथवा हमलोगोंके सनातन धर्मके वास्तविकताको लेकर संकल्प विकल्पकी भावनाको दूर करनेकी उत्कठ अभिलाषा हुई।

१९४७—श्री भगवान सिंह बी० ए०, सी० एम० कालेज, १७ न्यू होस्टल, दरभंगा।

—मैंने आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक अपने एक मित्रके पास देखी। इसे पढ़नेकी बड़ी रुची हुई। अतः आपसे प्रार्थना है—इस पुस्तक-दानकी एक प्रति मुझे भी भेजेगें। मैं आपके इस सद्कार्य एवं लोक कल्याणकी भावनाके अथक प्रयासके लिये हृदयसे अभारी हूँ। आशा है, आपको इसमें सद्प्रेरणा हमेशा मिलती रहेगी।

१९४८—श्री नागेश्वर राम, अ० प्रा० स्कूल रामपुर, पो० बेलागंज, जिला गया।

—आपके कार्यालयसे 'गृहस्थ-धर्म' नामक निःशुल्क किताब निकल कर देशकी सेवा कर रही है। इस किताबसे देशका महान लाभ हो सका है और होनेकी आशा है। विद्यार्थियोंके लिये यह मृत-संजीवनी तुल्य है।

१९४९—श्री फूलचन्द साव, तम्बाकू मर्चेण्ट, पो० झरिया, जिला मानभूम।

—मैंने गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक पढ़ी। पढ़कर मेरा दिल आनन्दित हो उठा। मैं व्याकुल हो उठा कि किस तरह वह पुस्तक पाऊँ और अपने दिलको शान्त करूँ। अगर आपके पास पुस्तक हो तो भी० पी० के द्वारा कृपाकर भेज दें।

१९५०—श्री सिद्धेश्वर राम, मोकाम गया वैदिक विद्यालय, गौरक्षणी, पो० बुनियादगंज, जिला गया।

—आपकी प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' भारतके कोने-कोने में प्रसिद्ध है और उसे पढ़कर लोग अत्यन्त लाभ उठा रहे हैं। जब मैंने इस किताबको पढ़ा, तो मेरा हृदय गद्-गद् हो गया।

१९५१—श्री रामदयाल वर्मा, मु०-पोस्ट दतियाना, जिला पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक बहुत अच्छी पुस्तक है। वह पुस्तक गृहस्थोंको अत्यन्त लाभकर है। इस पुस्तक हमलोग अत्यन्त लाभ उठा सकते हैं।

सम्मतियाँ और उद्गार !

१६५२—श्रीमती उरेहन देवी, ग्राम छतिआना, पोस्ट बेलागञ्ज, जिला-

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तक बालक-बालिकाओंके लिये अत्यन्त हितकर सिद्ध हुई है। इसके लिये आपको कोटिशः धन्यवाद है।

१६५३—श्री ब्रह्मदेव राम, मोकाम-पोस्ट मथुरापुर, जिला भागलपुर।

—आपकी भेजी हुई एक पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' मिली, जिसके लिये आपको अनेक धन्यवाद है। आपने बड़ी कृपा की और उम्मीद करता हूँ कि ऐसो ही कृपा भविष्यमें करते रहेंगे। आप सरीखे मनुष्यों द्वारा ही दुनियाका कल्याण होता है और होगा। आपने अपने जीवन कालमें जो व्रत धारण किया है, वह अवश्य प्रशंसनीय है, यह मेरी अन्तरात्मा कह रही है, और इसीसे प्रेरित होकर यह लिखे बिना नहीं रहा गया है।

१६५४—श्री श्रीकृष्ण प्रसाद सिंह, ग्राम डिल्लू बिगहा, पो० मधौर, जिला पटना।

—सादर अभिवादन ! आपकी प्रसिद्ध पुस्तक, अज्ञानताको हटाकर ज्ञानकी ज्योति पैदा करनेवाली पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' की केवल भूमिका पढ़नेसे ही मेरे हृदयमें एक तरहका आनन्द स्फूरित हुआ, एवं ज्ञानके प्रकाशका प्रथम किरण मुझे मिला। आशा करता हूँ कि एक गरीब विद्यार्थी की 'गृहस्थ-धर्म' पढ़नेकी आकांक्षा की पूर्ति करेंगे एवं ज्ञानसे इस गरीब की जीवनकी नौका पार लगायेंगे। आशा है कि इस गरीब विद्यार्थी को 'गृहस्थ-धर्म' प्रदान कर उसके कल्याणमें सहायक होंगे।

१६५५—श्री आर० एन० दूबे, एग्रीकल्चर आफिस, बीना।

—आपका भेजा हुआ 'गुरुमण्डल का छठा पुष्प' 'गृहस्थ-धर्म' प्राप्त हुआ। उक्त प्रति भेजने के लिये आप कृपालु श्रीमानको कोटिशः धन्यवाद। कालके प्रभावसे आर्य जातिमें से धर्म-शिक्षा उठी जा रही है। ऐसी अवस्थामें आर्य जाति को इस विपत्तिसे बचानेके लिये जो 'गृहस्थ-धर्म' लिखा है और धर्म-निष्ठ प्रेमी भक्तोंके लिये अमूल्य वितरण कर रहे हैं; यह आपकी महान उदारताका परिचय है।

श्रीमान् जी ! यदि इस प्रकारकी अन्य पुस्तकें आपके यहांसे प्रकाशित हुई हों या आपके स्टाकमें हों तो कृपाकर वी० पी० (मूल्य द्वारा) से भेजनेकी कृपा करेंगे।

१६५६—श्री देवनन्दन सिंह, सहायक शिक्षक, मि० इ० स्कूल, पो० खिजरसराय, गया।

—मेरा ध्यान आपके द्वारा प्रचारित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' की ओर आकृष्ट हुआ है। वह किताब बहुत ही अच्छी एवं शिक्षाप्रद है। साथ ही साथ हम गृहस्थोंके लिये लाभदायक है। अतः आपसे सादर अनुरोध है कि उक्त पुस्तक एक प्रति भेजकर कृतार्थ करें। मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि अवश्य भेजेंगे।

श्रीमः   सम्मतियाँ और उद्गार !

टाश्री वैदेही शर्मा, ग्राम केसपा, पो० मऊ, गया।

—भारतीय किसानकी बिगड़ी दशाको सुधारनेके लिये यह 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकका आप प्रसार कर रहे हैं। ऐसी स्थितिमें जबकि भारतीय किसान अपनी संस्कृतिको भूल गये हैं तथा दुराचारकी ओर बढ़ रहे हैं, उनमें जो-जो बुरी भावनायें आयी हैं, उनको दृढ़तापूर्वक हटानेकी कोशिश कर रहे हैं। इसीलिये मैं अपने ग्रामके पुस्तकालयमें इस पुस्तकको मँगाकर ग्रामीणोंकी बिगड़ी हुई दशाको सुधारनेकी कोशिश करूँ। अतः आपसे मेरा अनुरोध है कि कृपया इस पुस्तकको भेजकर हम लोगों की इच्छाकी पूर्ति करें। आज हमारे ग्रामके सभी किसान इसके लिये लालायित हैं।

१६५८—श्री ब्रह्मदेव सिन्हा, ग्राम-पोस्ट मोकामा, क्लोथ मर्चेण्ट, चौकबाजार, पटना।

—आप जल्द वी० पी० द्वारा 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक भेज दें। क्योंकि उस पुस्तककी मुझे सख्त आवश्यकता है। आपने जिस नीतिको अपनाया है, निस्सन्देह उससे हिन्दी जगत्‌की बहुत बड़ी सेवा होगी। और मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपकी इस सेवाको हिन्दी संसार कभी भूल नहीं सकता।

१६५६—श्री महावीर प्रसाद सिंह, ग्राम प्रसडीहा, पो० नगनौशा, जिला पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' गृहस्थोंके लिये बहुत ही उपयोगी है तथा इस किताबका प्रत्येक घरमें रहना अति आवश्यक है।

१६६०—श्री सत्यदेव पाण्डेय, ग्राम रानीसराय, पो० बख्तियारपुर, पटना।

—इस पुस्तकको मुझे पढ़नेकी बहुत ही प्रबल इच्छा है। यह पुस्तक हिन्दी संसारमें उथल-पुथल मचा रही है।

१६६१—श्री रामलखनराम, थि० ह० ई० स्कूल महेन्द्रू, पटना।

—आपने अपने स्वतन्त्र देशको उन्नतिशील तथा सुखमय बनानेके उद्देश्यसे लोगोंकी सेवामें 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक मुफ्त वितरण करनेकी अपार कृपा की है। इस हेतु मैं भी उस किताबके अध्ययन कर अपने जीवनको सुखमय तथा सरस बनाना चाहता हूँ।

१६६२—श्री मुन्द्रिका सिंह, सुरहुरिया, दावथ, शाहाबाद, (आरा)।

—आप 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक मुफ्त भेजते हैं। यह आपके विशाल-हृदयकी उदारता है। मैं भी गृहस्थ की टूटी-फूटी झोंपड़ियोंका टिमटिमाता हुआ दीपक हूँ। मुझे बिजलीकी चकाचौंधकी जरूरत भी नहीं। कृपया मुझे भी एक 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक भेजनेकी कृपा कीजियेगा। मैं आपका कृतज्ञ रहूँगा। विशेष धन्यवाद !

१६६३—श्री राजदेव पाण्डेय, मु० सिंघरा, पो० उसास-देवरा, जिला गया।

हमले —मैं आपकी गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको देखकर हर्षसे अत्यन्त ओत-प्रोत हुआ। यह पुस्तक अत्यन्त ही १ है। जिन लोगोंने इस पुस्तकको प्राप्त कर अपने जीवनको सुधारा है, वे आपके सदा ऋणी रहेंगे।

१९६४—श्री यदुनन्दन आचार्य, चिमसी, पो० चिकसी, पालीगञ्ज, जिला पटना।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक पढ़कर हृदय प्रफुल्लित हो गया। इस समय ऐसी ही महान पुस्तकोंकी आवश्यकता है। इसकी एक-एक लाईन, एक-एक शब्दका आचरण कर मनुष्य-जीवन पर्यन्त सुखी रहकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर सकता है। भारतवर्ष दिन-प्रति-दिन अधोगतिकी ओर अग्रसर हो रहा है। आशा है, इस पुस्तक को पढ़कर मानव-समाज कुछ सुधर जायगा। मैंने आपकी पुस्तकको बहुत ज्यादा पसन्द किया और प्रबल इच्छा है, मैं इसकी एक प्रति अपने पास रखकर अपने जीवनको सफल बना सकूं। आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास भी है कि आप कृपाकर अवश्य एक प्रति भेजेंगे। सुननेमें आया है, शायद मानव-समाज की डूबती हुई नैयाको बचानेके लिये आप एक-एक प्रति मुफ्त बांटते हैं। अगर ऐसी बात है, तो कृपया एक प्रति भेजने का कष्ट करेंगे।

१९६५—श्री सवितानन्द मिश्र, मु० सिन्दुआरी, पो० उसास-देउरा, जिला गया।

—मैंने 'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तक पढ़ी। इसमें लिखी हुई बातें पढ़कर मुझे इस पुस्तकको सदैव अपने पास रखनेकी प्रबल इच्छा है।

१६६६—श्री रामचरित्र सिंह, ग्राम मूसी, पो० अर्क-देवरियां, जिला गया।

—मैं एक अपरिचित व्यक्ति आज आपसे पत्र द्वारा सम्बन्ध स्थापित कर रहा हूँ। मेरा यह कैसा दुस्साहस ? कैसी धृष्टता ? खैर, आप मुझसे अपरिचित अवश्य हैं, लेकिन मैं आपसे खूब परिचित हूँ। परिचितका अभिप्राय सिर्फ नाम, गांव जानना नहीं ; अपितु उसके गुणोंसे पूर्ण परिचित होना है। अतः मैं देखता हूँ, आपके गुण आज सारे भारतवर्षमें गूंज रहे हैं। सिर्फ गुण ही नहीं, बल्कि त्याग भी। कितना बड़ा त्याग है, आपका जो लाखों लाख खर्च करके आप 'गृहस्थ-धर्म' का प्रसार कर रहे हैं। सचमुचमें 'गृहस्थ-धर्म' के द्वारा भारत अपनी खोयी हुई सभ्यता तथा संस्कृति को पुनः जागृत कर सकता है।



हमला
८-५

१६६७—श्री आर० डी० राय, सर्वेयर, ग्राम रजावां, पो० अस्थावां मण्डल, पटना ।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको एक आदमीके यहां देखकर और करीब तीस मिनट तक पढ़कर बड़ी खुशी हुई। बार-बार हृदय चाहता है कि उस पुस्तकको ही पढ़ता रहूँ। आपने इस पुस्तकको लिखनेमें जितना परिश्रम तथा समय लगाया होगा इसके लिये मैं भगवानसे प्रार्थी हूँ कि आपका परिश्रम सार्थक हो। इतनी मेहनत तथा बहुमूल्य समय लगाने पर भी आपने इस पुस्तकका कोई मूल्य नहीं रखा है। इसके लिये हार्दिक धन्यवाद है। विशेष मैं आपके परिश्रमके लिये भगवानसे सदैव प्रार्थी हूँ कि भगवान आपके परिश्रमको सार्थक बनावें, और अन्धकारमय दुनियाको उजियाला करें।

१६६८—श्री बुद्धिनाथ महत, मु० हरली, पो० बड़का गांव, हजारीबाग ।

—आप धर्म-संचालनके लिये अत्यन्त जोर-शोर से काफी धन त्याग कर रहे हैं। आपकी कीर्ति सर्वत्र गूँज रही है। परमपिता परमेश्वर ऐसे ही सुकर्तव्य करनेवालोंको धन दें। आप लोगोंको धर्म-मार्गमें चलनेके लिये अनेकानेक उपदेश, कविता, पद, अपनी पुस्तकमें अङ्कित किये हैं। इसलिये श्रीमान्से अनुरोध करता हूँ कि 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक भेजनेकी कृपा करें। मैं सर्वदाके लिये आपका ऋणी रहूँगा। क्योंकि बिना मूल्यका पुस्तक भेजा करते हैं। जितना आदमी आपके उपदेशसे चलेंगे, या अध्ययन करेंगे, वे सभी ऋणी होवेंगे। मुझसे अनेक लोग इस पुस्तक को मंगानेके लिये आग्रह कर रहे हैं।

१६६९—श्री गनौरी प्रसाद, ग्राम खभरा, पो० मऊ, जिला गया ।

—यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि आपके यहांसे 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तिका प्रकाशित हुई है और आपने इस कलिकालमें जनताके कल्याणार्थ इसका निःशुल्क वितरण प्रारम्भ किया है। इससे बढ़कर तो जन-कल्याणकी भावना और कुछ नहीं है। जहां हमारे इस विज्ञानके युगमें सनातन धर्मका लुप्तप्रायः-सा हो चुका है, वहांपर आप ऐसे कुछ महानुभावों की दया दृष्टिसे ही धर्मकी ध्वजा फहरा रही है, वरना इसकी पता आज इस युगमें नहीं रहती। हो सकता था कि यह भारत गारत होकर पापके महान गर्तमें गिरकर कराहता रहता। अस्तु, मुझे तो इस बातका पीछे पता चला कि आपके [illegible] से यह पुस्तक प्रेषित की जा रही है। मैंने तो समझा और समझ रहा हूँ कि हम इस पुण्यको लूट नहीं सके। यदि हो सके तो हमें भी इस पुस्तकके अवलोकनसे वंचित न करायेंगे।

ग्राम टा॰ श्री रामदास मेहता, ग्राम रायकरण बिगहा, पो॰ औंगारी, पटना।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकका महत्व बहुत अधिक है। इस पुस्तकमें दी हुई बातोंको लोग बहुत मानते और मान करते हैं। इससे लोगोंको अच्छी शिक्षा मिलती है। इसे पढ़ने और मनन करनेसे तथा अनपढ़ लोगोंको उपदेश देने से लोगोंमें सहयोगिता पायी जा रही है। मैं आशा करता हूँ कि आगे बहुत तरक्की होगी।

१९७१—श्री कामता प्रसाद, मो॰ सुरही, पो॰ लारी, जिला गया।

—आप जनता जनार्दनके कल्याणके हेतु 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक वितरण कर रहे हैं। आपके इस कार्यसे मानव जीवनके उत्थानमें सफलता मिल रही है। अलखनिरञ्जन प्रभुसे विनय है कि वे सेठ मनसुखराय मोर की धार्मिक प्रवृत्ति तथा परोपकारी भावना और मानव-जीवनके उत्थानको इच्छाको अचल रखें, जिससे मानवका कल्याण हो।

१९७२—श्री कुशलधर बड़गैयां, भाइस प्रेसीडेण्ट, म्यूनिसिपल कमेटी, सारंगढ़।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक जन-हितार्थ सनातनधर्मके प्रचारके लिये आप बिना मूल्य वितरण कर रहे हैं। अतः यहां सारंगढ़, खारु और अतराफ के ग्रामोंमें इसका प्रचारके लिये कुछ पुस्तकोंकी जरूरत है। क्या आप लोक-हितार्थ और धर्म प्रचारार्थ इस पुस्तककी कुछ प्रतियां भेजने की कृपा करेंगे, ताकि सनातन-धर्म का प्रचार इस शहरके निकटवर्ती ग्रामों में हो सकें।

१९७३—श्री सांवलराम चैनराम नसवाले, मु॰-पो॰ टिवरखेड़ (रूपराव), अकोला।

—मैं आपको धन्यवाद देता हूँ कि भगवानने आपको दूसरोंकी सेवाके लिये बुद्धि, बल और धन दिया है। जिस दिन मैंने आपकी किताब प्राप्त कर उसके सार लेनेकी कोशिश की उसी दिनसे मुझे यह ज्ञान हुआ कि विश्वमें आप ऐसे लोग बहुत कम पाये जाते हैं कि बिना मूल्य जो किताब बगैर खर्चसे अथवा जिसमें पोस्ट खर्च भी नहीं लगाया जाता है और दूसरोंके कल्याणके लिये दान देते हैं। आपकी इस सेवासे मैं आपको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। मुफ्तमें लोगोंकी सेवा करनेके लिये भगवान आपको सबुद्धि दें और सुयश दें। आपका यह परोपकारी कार्य सुनकर हमें बड़ी खुशी हो रही है। अतः भगवानसे हमारी यही प्रार्थना है कि वे दिनों दिन आपको ऐसे कामोंके लिये उत्तीर्ण करें।

१९७४—श्री रामचन्द्र तिवारी, कानपुर इलेक्ट्रीक सिटी सप्लाई, एडमिनिस्ट्रेशन, (उत्तर प्रदेशीय सरकार), कानपुर।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक मैंने पढ़ी। पुस्तक बड़ी सुन्दर, गृहस्थोपयोगी तथा कल्याणकारी है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि इसकी एक प्रति मैं अपने घरमें रखूँ, जिससे घरके अन्य लोग भी गृह-कार्यसे अवकाश पाने पर इसे पढ़ें हमसे लाभ प्राप्त करें। अतः आपसे सानुरोध प्रार्थना है कि इस पुस्तककी एक प्रति मुझे भेजनेका कष्ट करें। मैं आभारी वी॰ पी॰ द्वारा पुस्तक भेजने पर जो व्यय होगा, सब मैं दूँगा।

८-५

१६७५—श्री पं० गदाधर शर्मा शास्त्री, मुमाम सं० विद्यालय गम्हारी, जिला गया। (बिहार)

—आपने कलिकालकी ज्वालामें सनातनधर्मको किस प्रकार सहयोग दिया है, यह मैं कहां तक लिख सकता हूँ ? 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको कुमार्ग-गामी भी अध्ययन कर धर्मावलम्बी हो रहे हैं। मैं तो मनछखराय मोर जी को ईश्वर की ओरसे धन्यवाद देता हूँ कि जब तक चन्द्र, सूर्य, गङ्गा-जमुना हैं, तब तक संसारमें ये भी अमर हों।

१६७६—श्री श्रीधरनारायण सिंह 'नलिन', ग्राम कटारी, पो० मुख्तारगञ्ज, पटना।

—धर्मावतार, श्री मनछखराय मोर जी, सादर-सप्रेम-प्रणाम ! आप सनातन-धर्मके रक्षार्थ 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक सभी हिन्दू भाइयोंको दान करते हैं। अतः मेरी प्रवल इच्छा है कि मैं भी आपके कर-कमलों द्वारा रचित 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर धर्मका कुछ मर्म जान सकूँ। आशा ही नहीं—पूर्ण विश्वास है कि आप मेरी इस उत्कंठाको दबानेका कष्ट न करेंगे, अपितु सप्रेम एवं सआशीर्वाद आप इस पुस्तकको मेरे लिये भेजकर मुझे कृत-कृत कर देंगे।

१६७७—श्री सिंगेश्वर सिंह, ग्राम सरथा, पो० हरनौत, जिला पटना।

—कृपा-सिन्धु ! आजकल जनता अशिक्षित है। उसे आप शिक्षित बनाना चाहते हैं। आप 'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तक वितरण कर बहुत कुछ जनताको शिक्षित बनाना चाहते हैं। उसके लिये देश आपका कृतज्ञ बना रहेगा। देशकी उन्नति आपकी कृपा पर है। आप ऐसे महान व्यक्तिकी कृपा होगी तो लाखों, करोड़ों व्यक्ति किसी तरहसे थोड़ा बहुत शिक्षित बनानेमें समर्थ हो सकते हैं।

१६७८—पुरोहित चिन्ताराम मिश्र, ग्राम तोतम्बी, पो० ईटकी, रांची।

—यह पुस्तक बहुत ही अच्छी है। इसे मैंने अपने एक मित्रके यहां देखा। थोड़ा ही पढ़नेसे मालूम हुआ कि यह पुस्तक प्रत्येक मनुष्यको अपने पास रखकर लाभ उठाना चाहिये।

१६७९—श्री रामचन्द्रप्रसाद, ग्राम चारबीघा, पो० मिरचाईगञ्ज, पटना।

—महामान्यवर ! मुझे अपने इष्ट-मित्रों द्वारा ज्ञात हुआ है कि आप गृहस्थोपयोगी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक निःशुल्क वितरण कर रहे हैं। आपकी इस पुस्तककी सर्वत्र बड़ी प्रशंसा हो रही है। मैं भी इसे पढ़नेके लिये लालायित हूँ।

१६८०—श्री बिशुनदयाल साहु, ग्राम मछडिआवा, पो० मोहीउद्दीनपुर, पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' से आपके नामकी ख्याति हो रही है और आपके लिखे उपदेशोंसे जनताका बहुत [illegible] रहा है।

सम्मतियाँ और उद्गार !

डा० वी० पी० शर्मा, एम० बी०, बीएस० मेडिकल आफिस, वरसलीगञ्ज, जिला गया।

—मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता है कि आप मानव-कल्याणार्थ 'गृहस्थ-धर्म' छपवाकर निःशुल्क वितरण कर रहे हैं। क्या मैं भी आशा करूं कि आप 'गृहस्थ-धर्म' के बृहद्-संस्करणकी एक प्रति मेरे लिये भी भेजनेकी कृपा करेंगे।

१९८२—श्री जैरामप्रसाद सिंह, एच० ई० स्कूल अर्क-देवरिया, पो० अर्क-देवरिया, गया।

—परम हर्षका विषय है कि आप जनताकी भलाईके लिये 'गृहस्थ-धर्म' को मुफ्त अर्पण करते हैं। आपका यह कार्य सर्वथा सराहनीय है।

१९८३—श्री रामजीलाल मिश्र, छोटेमोथपाड़ा, सारंगढ़ जिला रायगढ़।

—आप गृहस्थोंके लिये 'गृहस्थ-धर्म' को धर्मार्थमें दे रहे हैं। गृहस्थोंपर यह आपकी बड़ी कृपा है। 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक भेजकर आप यशके भागी बने हैं।

१९८४—श्री गणेशप्रसाद, मो० पो० कपसिया (बाजार), जिला गया।

—'गृहस्थ-धर्म' को मुफ्त वितरण कर आप गार्हस्थ-जीवनको उच्च बनानेमें बड़ा सहायक हो रहे हैं।

१९८५—श्री रामलखनप्रसाद, ग्राम कटारी, पो० मुखतारगञ्ज, पटना।

—आप 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक सबोंको दान करते हैं, यह आपकी बड़ी दया है। मैं अभागा भी आपके रचे हुए ग्रन्थको पढ़कर गृहस्थ-धर्मसे सुपरिचित होनेके लिये लालायित हूँ। मुझे पूरा विश्वास है कि आप मेरी इस अभिलाषा को पूरा करेंगे ही।

१९८६—श्री कैलाशप्रसाद सिंह, बेसिक स्कूल बिरनावां, पो० हरनौत, पटना।

—हमें यह लिखते अपार हर्ष हो रहा है कि 'गृहस्थ-धर्म' भारतके कोने-कोनेमें सूर्यकी नाईं चमक रही है। देशको आपने अपनी ज्ञान-रूपी आभासे देदीप्यमान कर दिया है।

१९८७—श्री रामजीप्रसाद, विद्यालय छात्रावास, करापपरसराम, हाई ई० स्कूल, पो० करापपरसराय, जिला पटना।

—अपने साथियोंसे सुननेमें आया है कि आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' बड़े कामकी चीज है। साथियोंका कहना र विद्यार्थियोंके लिये तो यह बहुमूल्य किताब है।

सम्मतियां और उद्‌गार !

१६८८—श्री शिवशरण मिश्र, पो० धनौली, जिला बाराबंकी।

—'गृहस्थ-धर्म' को देखकर मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि मैं गृहस्थ-धर्मका प्रचार करूं। ऐसी अनुपम पुस्तकी रचनाके लिये आपको कोटिशः धन्यवाद है।

१६८६—श्री रामनरेश पाण्डेय, ग्राम-सेवक, ग्राम-पञ्चायत, गिझो ठाकुरगांव, पो० बुरमू, जिला रांची।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको देखा! मेरी इच्छा हुई कि ऐसी अलभ्य पुस्तक लाइब्रेरीमें रहनी परमावश्यक है। अतः आपसे अनुरोध है कि इस पुस्तककी एक प्रति हम लोगोंकी ग्राम-पञ्चायत लाइब्रेरीके वास्ते भेजनेकी कृपा करेंगे।

१६६०—सेठ जयलाल हरलाल, मु० पो० केसिंगा, बी० एन० आर०।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तक गृहस्थोंके लिये परमोपयोगी है। इसे आप लोकोपकारार्थ बिना मूल्य वितरित कर रहे हैं। यह आपकी बहुत बड़ी कृपा है।

१६६१—श्री रामावतार प्रसाद, पो० टिकारी, जिला गया।

—मैं आपका पता पाकर अति हर्षित हुआ। मैं चाहता हूँ कि आपकी आदर्श पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर अपनी संस्कृति तथा धर्मका कुछ ज्ञान प्राप्त कर लाभ उठाऊं।

१६६२—श्री श्यामनारायण सिंह, प्रधानाध्यापक, प्र० शि० उच्च प्राथमिक शिक्षालय, असियावाँ, जिला गया।

—आप 'गृहस्थ-धर्म' नामकी सुन्दर पुस्तक बांट रहे हैं। इसके लिये आपको अनेकानेक धन्यवाद! आशा है मेरे स्कूलके पुस्तकालयके लिये भी एक प्रति भेज अनुगृहीत करेंगे।

१६६३—श्री मथेश्वरप्रसाद, मुरारपुर, गया।

—'गृहस्थ-धर्म' को धर्मार्थ प्रदान कर आप पुण्यके भागी हो रहे हैं। इसके लिये जनता आपकी सदैव कृतज्ञ बनी रहेगी।

१६६४—श्री सूर्य्यानन्द शर्मा, प्रधानाध्यापक, माध्यमिक शिक्षालय डुमरिया, तथा सभापति थाना शिक्षक संघ डुमरिया, पो० डुमरिया, जिला गया।

—आपका 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकी प्रतीक्षा इतने दिनों तक कर लेनेके पश्चात् पुनः स्मरणार्थ पत्र भेज रहा। कृपा कर दस प्रतियां शीघ्र भेजें, जिससे सदस्यों तथा लालायित व्यक्तियोंकी लालसा पूर्ण कर सकूँ।

श्री
—आपकी 'गृह डा०

सम्मतियाँ और उद्गार!

बा॰ राजेन्द्र प्रसाद, क्लर्क अथवा पेसकार, एस० डी० ओ० औफिस, जहानाबाद, जिला गया।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक एक मित्रसे थोड़ी अवधिके लिये लब्ध हुई। पढ़कर चितको बहुत प्रसन्नता हुई और यह जानकर कि लोकार्थ आपने यह पुस्तक अमूल्य वितरण करनेकी कृपा की है, और भी आनन्द हुआ।

१९९६—श्री महवीर प्रसाद, बरनी, पो० मसौढ़ी, जिला पटना।

—श्रीमान् मनछखराय जी! आपको कोटिशः धन्यवाद है। आपकी दातव्य-पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' का प्रचार बहुत जोरोंके साथ हो रहा है इसका महत्व आपको बहुत धर्मार्थ प्राप्त करा रहा है। आपकी दातव्य पुस्तक देखकर मुझे बहुत आनन्द हुआ। इसमें प्रतिपादित मत-मतान्तरको समझना गृहस्थोंका परम कर्त्तव्य है।

१९९७—श्री शिवराम सिंह, लो० प्रा० स्कूल, चैनपूरा, पो० शकूराबाद, गया।

—मैंने आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक किताबको देखा, यह गृहस्थोंके लिये बहुत फायदे की चीज है। इस पुस्तक द्वारा आप देशकी बहुत बड़ी सेवा कर रहे हैं।

१९९८—श्री विष्णुदेवप्रसाद सिंह शिक्षक, मौजा मेधी, पो० दीपनगर, पटना।

—आपका संग्रह किया हुआ ग्रन्थ 'गृहस्थ-धर्म' को प्रशंसा सुनकर दृष्टिगोचर की भावना हुई। अतएव मैंने धमौली-निवासी बाबू रामप्रसाद सिंहसे स्वयं भेंट की और 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकका अवलोकन किया। मुझे अपार आनन्द प्राप्त हुआ कि जैसी हमने इसकी प्रशंसा सुनी थी, वैसा ही इसे पाया। अतः आप महानुभावसे सानुरोध निवेदन है कि एक प्रति इस दीन को भी भेजनेकी कृपा करेंगे।

१९९९—श्री रामचन्द्रप्रसादलाल, अग्रवाल हाई ई० स्कूल बेलागञ्ज, जिला गया।

—आपके यहां प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को मैंने अपने साथियोंके पास देखा। पढ़नेपर मुझे ज्ञात हुआ कि यह पुस्तक बहुत ही रोचक और नये ढङ्ग पर प्रकाशित हुई है। साथ-ही-साथ यह पुस्तक शिक्षाका मार्ग है। इसे पढ़कर हरेक मनुष्य ज्ञान प्राप्त कर सकता है। मुझे भी उस पुस्तकको पढ़नेका बड़ा शौक है।

२०००—प्रभुकी साक्षात् कृपा ।

पूज्यवर ! हरिस्मरण ! आपका दर्शन पाकर मुझे जो तृप्ति हुई, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । इस भयङ्कर जमानेमें आप जैसे महापुरुष विरले ही मिलते हैं । इतनी बड़ी विकट मायाके प्रपञ्चमें रहते हुए भी इससे अलग रहना साधारण बात नहीं है । मछली रात-दिन कीचड़में रहती है, पर जब बाहर निकलती है, तब बिलकुल स्वच्छ ही दिखलायी पड़ती है । सब कुछ त्याग कर जंगलमें बैठ जाना तो एक छलाँगकी बात है । पर इस विकट मायाके प्रपञ्चमें रहते हुए इससे अलग रहना बड़ी कठिन बात है । आपके ऊपर प्रभुकी साक्षात कृपा है । गो-माताके दूधके विषयमें जो आपका भाव है, वह तो हद कर दिया है ।

यह जानकर कि दुध या इससे बने पदार्थों तक का सेवन आप नहीं करते, आपके प्रति मेरी बहुत ही बड़ी श्रद्धा हो गयी है ।

भगवान किस बहाने क्या कराते हैं, जानना कठिन है । मेरी अभिलाषा है कि अपनी जमीनसे पैदा हुए पदार्थोंको खिलाता रहूँ । हालां कि आपको जमीनसे पैदा हुए तरह-तरहके पदार्थ मिलते ही होंगे । उनके सामने इसका क्या महत्व होगा ? पर फिर भी इसमें मेरा प्रेम रहेगा । शायद इसकी मिठास बढ़ जाये !

—देवनाथप्रसाद सिन्हा, छत्रधारी बाजार, छपरा ।

श्री
—आपकी 'गृह डा०

सम्मतियाँ और उद्गार

बृजकिशोर सिंह, ग्राम चैता, पो० मऊ, जिला गया।

—मैं आपके यहांके प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर ज्ञानी बनना चाहता हूँ।

'आते हैं जिस भावसे, भक्तों में भगवान।
उसी भाव अरु प्रेमसे, दर्शन दे मनसुखराय ॥'

इसलिये कृपाकर 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक भेजकर कृतार्थ करेंगे। इसके लिये मैं जीवन भर आपका आभारी बना रहूँगा।

२००२—पण्डित कामता पाठक, ग्राम पारुप्रौना, पो० सोहसराय, जिला पटना।

—आपने जो 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक निकाल कर देशकी सेवा की है, उसके लिये देश सर्वदा आपका ऋणी बना रहेगा।

२००३—श्री त्रिपुरारिप्रसाद स्टोनो, सोदपुर ग्लास वर्क्स लि०, पो० भूरकुण्डा, जिला हजारीबाग।

कृपानिधान ! आपकी पुस्तकके अध्ययनसे मुझे बड़ा आनन्द तथा उल्लास हुआ और मेरी चित्त-वृत्ति आपकी कुछ उक्तियोंको साधन करनेकी ओर आकृष्ट हुई। इसलिये मैं आपसे अनुरोध करूंगा कि मेरी पूर्व निश्चित साधनाकी पूर्त्तिके लिये 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक भेजकर कृतार्थ करें।

२००४—श्री कृष्ण पुस्तकालय, मु० पो० तेयार, ज़िला गया।

—श्रीकृष्णार्पण मस्तु ! श्री श्री १०८ श्रीमान्‌मनसुखराय मोरजीको सदस्यों द्वारा हरि स्मरणम्। कृपया इस पुस्तकालयको भी 'गृहस्थ-धर्म' देकर कृतार्थ करनेका कष्ट अवश्य करेंगे।

२००५—श्री बुलकनप्रसाद सिंह, मो० चौरासी, पो० दामोदरपुर, चलछा, जिला पटना।

—मैं आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तक देखा और उसके कुछ अंशोंको पढ़ा। उसकी मनोहर शिक्षा और कथाएँ बड़ी प्रशंसनीय हैं तथा गृहस्थोंके बड़ी कामकी है। अतः श्रीमानसे करबद्ध प्रार्थना है कि दो प्रतियां 'गृहस्थ-धर्म' भेजकर कृतार्थ करें।

२००६—श्री कृष्णावतारप्रसाद, मो० बहोराबिघा, पो० बुनियादगञ्ज, जिला गया।

—आपने 'गृहस्थ-धर्म' नामक जो पुस्तक प्रकाशित किया है, वह गार्हस्थ-आश्रमको उच्च स्तरपर ले जानेका एक ...त्तम साधन है।

२००७—श्री राजेन्द्रप्रसाद सिंह हरिसिंह, ग्राम सियाडीह, पो० अहियापुर, जिला गया।

'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक बहुत ही अच्छा और सर्व-साधारणके लिये अत्यन्त ही आवश्यक पुस्तक है।

सम्मतियाँ और उद्‌गार !

२००८—श्री सच्चिदानन्दप्रसाद, जी० वी० प्रभातनगर, पो० भेख, जि

आपने जो अपनी पुस्तक वितरण कर लाखों-लाख लोगोंकी सेवा कर धर्मको सुदृढ़ एवं सम्पन्न बना रहे हैं, उसके लिये मैं आपको हार्दिक दिलसे धन्यवाद देता हूँ।

२००९—श्री लक्ष्मणलाल अग्रवाल, अग्रवाला हाई ई० स्कूल, पो० बेलागञ्ज, गया।

—मुझे एक प्रति 'गृहस्थ-धर्म' की अनिवार्यतः आवश्यकता है। मैं आठवें वर्गका विद्यार्थी हूँ और यह किताब हम लोगोंको पढ़ाई जा रही है।

२०१०—श्री जगन्नाथ मिश्र, प्रेस सुपरिण्टेण्डेण्ट, डुमरांवराज प्रेस, मो० पो० डुमरांव, जिला शाहाबाद।

—मैंने आपके द्वारा संग्रहीत 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकका अध्ययन किया है। यह सत्य है कि ऐसे ही धार्मिक पुस्तकोंकी रचनासे धर्मकी रक्षा और प्रचार होगा।

२०११—श्री शिवनन्दन ठाकुर, मु० एकङ्गरडीह, पो० एकङ्गरसराय, जिला पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक पढ़नेसे मनुष्यका जीवन सुधर सकता है। मनुष्य अपनी बुराइयोंको छोड़कर अच्छे मार्गपर चल सकते हैं।

२०१२—श्री आचार्य विभूतिभूषण द्विवेदी, अध्यापक लक्ष्मी संस्कृत विद्यालय, मु० पो० जहानाबाद जिला गया।

—आपके स्तुत्य प्रयत्नसे मैं अत्यन्त आकृष्ट हो, ईश्वरको धन्यवाद देता हूँ कि आपके सदृश धर्म-प्रेमी रत्न देशमें हों, जिससे धर्मकी रक्षा और कुप्रवृत्तियोंका नाश हो।

२०१३—श्री हरिप्रसाद, मु० पो० सिलाव, जिला पटना।

—आप 'गृहस्थ-धर्म' के द्वारा लोकका कल्याण कर रहे हैं। इस पुण्य-कार्यके लिये आपको हार्दिक धन्यवाद है।

२०१४—सहायक अध्यापक भगवानदास, मिडिल स्कूल फलासिया, राजस्थान।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकके लिये आपको हार्दिक धन्यवाद है। यह पुस्तक हमें अपने धर्मपर चलनेकी नेक राह बतलाती है।

२०१५—श्री गजाधरप्रसाद सिंह, नायक-सामाजिक शिक्षा-केन्द्र, मु० रजबीघा, पो० जेठियन, जिला गया।

—'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तककी एक प्रति मेरे पास भेज दें। यह पुस्तक हमारे लिये बहुत ही उपयो

श्री
—आपकी 'गृह डा०

सम्मतियाँ और उद्गार !

...ी रामजीप्रसाद सिंह, मार्फत गोविन्दप्रसाद सिंह, (चेयरमैन लोकल-बोर्ड, विहार) महल्ला भैंसासुर, पो० बिहारशरीफ, पटना ।

—'गृहस्थ-धर्म' की किताब एक सज्जनसे लेकर थोड़ी देरतक पढ़ी। हृदय गद्गद् हो गया ; परन्तु अतृप्त ही रहा, जो हालत एक प्यासेकी थोड़ा पानी पिला देनेके बाद होती है, वही मेरी भी है ।

२०१७—श्री सियाराम सिंह, ग्राम लखीपुर कोली, पो० फतेहपुर, जिला पटना ।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकने उधर तहलका मचा दिया। इस पुस्तकका प्रचार इधर धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा है। इधरकी जनता इस पुस्तकको पढ़कर लाभ उठा रही हैं ।

२०१८—श्री अभिराम सिंह, अग्रवाल हाई ई० स्कूल बेलागञ्ज, जिला गया ।

—आपके कार्यालयसे जो 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक निकली है, वह हम गृहस्थोंके लिये अत्यन्त लाभदायक पुस्तक सिद्ध हुई है। इस पुस्तकमें गृहस्थोंके हृदयमें तहलका मचा दिया है ।

२०१९—श्री कीर्त्तिनारायण सिंह, सब-इन्स्पेक्टर, आफ स्कूल्स, मार्फत युवक पुस्तकालय, फुदकीचक, पो० मुशकीपुर, जिला मुंगेर ।

—ट्रेनमें जाते समय मुझे 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक देखनेको मिली। धार्मिक पुस्तकोंमें तथा गार्हस्थ-जीवनके लिये यह अत्यन्त उपयोगी पुस्तक है। मेरे यहां एक पुस्तकालय है। यदि आप कृपापूर्वक ४-६ प्रतियां भेज दें, तो यहांके लोगोंके लिये यह अलभ्य उपकार हो सकेगा ।

२०२०—पं० बचन मिश्रा, मो० जैतिया, पो० अहियापुर, जिला गया ।

—'गृहस्थ-धर्म' आधुनिक समयमें देशके लिये बड़ी भारी कल्याणकारी सिद्ध हो रही है। इस पुस्तकको अध्ययन कर शिक्षक-शिष्य एवं जनता बड़ा ही लाभ उठा रही है ।

२०२१—श्री सच्चिदानन्दप्रसाद सिंह, राजेन्द्र विद्यालय, गया ।

आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' का मैंने अवलोकन किया। पुस्तक बड़ी ही रोचक और सरस है। यह नहीं, बल्कि ज्ञानोपार्जनका भी एक सर्वोत्तम मार्ग है। मैं भी इस पुस्तकका सेवन कर अपनेको धन्य बननेकी इच्छा करता हूँ ।

२०२२—श्री जानकीप्रसाद, हेड मास्टर, गुलजारबाग, पटना ।

—आपने कृपा करके हिन्दू-धर्मके प्रचार और उसकी रक्षाके लिये 'गृहस्थ-धर्म' नामक सुन्दर ग्रंथ छपवाकर उसे ...ल्य वितरणका भार उठाया है। विश्वमें परमार्थसे बढ़कर तथा अपने धर्मकी रक्षासे अधिक और धर्म हो ही क्या

२०२३—धार्मिक नेताओंके लिये आवश्यक ।

—आपने जो 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक धर्म प्रचारके हेतु बनाया है, वह भारतीय हिन्दू [illegible]तक [illegible]पयोगी है और इस युगमें ऐसी पुस्तकोंकी अत्यधिक आवश्यकता है, क्योंकि धर्म ऋषि महात्माओंके निर्नीत होते थे, वे आज राजकीय नियमों द्वारा उल्लंघन किया जा रहा है। अतएव सनातन-धर्मी जनताके सामने इसका प्रकाश पहुँचाना आवश्यक है। अतः सनातन-धर्मी नेताओंके पास इसकी एक प्रति रहना आवश्यक है।

—रामदत्त द्विवेदी, साहित्य-शास्त्री, श्री जयदेव वैष्णव, संस्कृत कालेज कर्बी, जिला बदायूं ।

२०२४—श्री रामजतनप्रसाद, ग्राम बहेरा, पो० गुरारू, जिला गया ।

—आप अपनी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको मुफ्त भेजकर अत्यन्त ही उपकार लोगोंका कर रहे हैं। इतना ही नहीं, बल्कि आपने अज्ञानियोंके हृदयको, जो बिल्कुल अन्धकारपूर्ण था, अपनी इस अद्‌भुत देनसे प्रकाशित कर ज्ञानकी वृद्धि करनेमें अथक परिश्रम किया है तथा अपनी सम्पत्तिका व्यय किया है।

२०२५—श्री दुलीचन्द अग्रवाल, श्री बजरङ्ग स्टोर्स, मानभूम बाजार, बरहमपुर, गंजम ।

—आदरणीय सेठजी, आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक कलकत्तेमें मुझे एक सज्जनने दी थी। उसका यहां आकर अध्ययन किया और लाभ उठाया। प्रति दिन नियमित रूपसे स्वाध्याय करता हूँ। पुस्तककी उत्तमता देखकर मेरी इच्छा है कि यहांके १०-१२ गृहस्थोंमें इसका वितरण हो। मैं आशा करता हूँ कि लोक-कल्याणकी भावना रखनेवाले आप महानुभाव पोस्ट-पार्सल से १० प्रतियां कम-से-कम भिजवा देंगे। मैं उन दस भाइयों तथा अपनी ओरसे आपका अनुग्रहीत रहूँगा।

...ी रामज

बिहार ... एस० देवी, ग्राम लोदीपुर, पो० कुर्था, जिला गया।

—आज डूबते हुए धर्मकी नौकाकी आप पतवार स्वरूप खड़े हुए हैं। मुझे इसके लिये बहुत हर्ष है। मैं भगवानसे प्रार्थना करती हूँ, इसी तरह धार्मिक लोग हमारे भारतमें जन्म लेकर हमारे भारतकी पुरानी स्मृतिको सामने रखकर नव-निर्माणके ढाँचेमें ढाल दें।

२०२७—श्री नन्दकुमार पाठक 'मधुप' साहित्य-शास्त्री, ग्राम मलहद, पो० गोह, जिला गया।

—आपकी ओरसे जनतामें वितरित 'गृहस्थ-धर्म' नामकी जो पुस्तक है, उसे पढ़कर मेरा दिल हर्षोत्फुल्लित हो गया कि अभी भी इस घोर कलियुगमें आपके सदृश व्यक्ति अगर वर्त्तमान न रहते, तो शायद यह सनातन-धर्म अबतक जिस खाईमें गिरा रहता, जिसका कोई पता नहीं है। आपने इस युगमें यह पुस्तक प्रकाशित कर जो यश प्राप्त किया है तथा सनातन सेवियोंके सामने अर्पित कर पुण्य प्राप्त किया है, वह अत्यधिक महान है।

२०२८—श्री ज्योतिप्रसाद सिंह, खाजोकत्ता सबौर, भागलपुर।

—मुझे आपको 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक अपने साथियोंसे कुछ क्षणोंके लिए पढ़नेको मिली। इतने चन्द समयमें इन किताबने हमारे दिलपर जो असर डाला, वह अकथनीय है।

२०२९—पंडित सीताराम शर्मा अध्यापक, संस्कृत पाठशाला गोरखारी, पो० बिक्रम, जिला पटना।

—श्रद्धेय मनसुखरायजी, बहुत हर्षकी बात है कि आपने अपने कर-कमलोंसे 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक निःशुल्क वितरण करनेके हेतु निकाली है। आजका समाज बहुत पीछे पड़ा है। यह जानकर कि अपने समाजके उत्थानके लिये यह जो 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक निकाली है, इसको देखकर तथा पढ़कर हृदय गद्गद् हो उठा है। अतएव आप मेरी संस्कृत पाठशालामें एक कापी बालकोंकी शिक्षाके हेतु जल्द-से-जल्द भेज देनेकी दया करेंगे। मैं आपका सदैव ऋणी रहूँगा।

२०३०—श्री तीनकौड़ी शाह बलदेव साह, मो० घोसीटोला, पो० नाथनगर, जिला भागलपुर।

—मैंने अपने एक साथीसे लेकर आपके द्वारा संग्रहित 'गृहस्थ-धर्म' की कुछ ज्ञान-वर्द्धक पंक्तियोंको पढ़ा। पढ़कर मैंने अनुभव किया कि यह चीज आधुनिक गिरे हुए समाज और भ्रममें पड़े, कुपथपर चलनेवाले स्त्री, पुरुषके लिये बहुत फायदेमन्द सिद्ध हो सकती है। अतः मेरी यह इच्छा है कि मैं अपनी पत्नीको तथा और अपने मित्रोंकी पत्नियोंको यह ...र पढ़ाऊँ, जिसे पढ़कर वे अपने सच्चे धर्मको समझ सकें और इस किताबमें बताये आदर्श और नियमोंका पालन कर ...नको सुखमय और सार्थक बना सकें।

२०३१—श्री रामचन्द्र सिंह, ग्राम अलावलपुर, पोस्ट पुनपुन,

—आपके यहांसे प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक मैंने पढ़ी। मेरे विचारमें आप ... सुधारका सब आदर्श उपस्थित है। सचमुच समाज संगठनके दृष्टि-कोणसे ऐसी पुस्तकोंका प्रकाशन होने लगे, तो हमारा हिन्दू-समाज सुदृढ़ एवं सुसंगठित हो जाये। इसकी शैली इतनी परिमार्जित है कि मानव हृदय उसे सहज ही ग्रहण लेता है।

२०३२—श्री राजेन्द्र झा, बेसिक शिक्षक, पो० चीरी, जिला रांची।

—माननीय मनसुखरायजी! मुझे आपको धन्यवाद देते हुए बड़ी खुशी हो रही है कि आपने जो 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक प्रकाशित की है, वह मानवीय गुणोंसे परिपूर्ण है। एक पूर्ण व्यक्तिमें जो-जो गुण होने चाहिये, इस पुस्तकमें प्राचीन भारतीय संस्कृतिको ध्यानमें रखते हुए उनकी व्याख्या की गयी है। मुझे इस पुस्तकके अध्ययनसे यह अनुभव हुआ है कि 'बापूकी पूर्ण विचार-धारा' इसमें काम कर रही है।

२०३३—श्री लक्ष्मण महतो, ग्राम भांगवलबिघा, पा० दरूआरा, जिला पटना।

—आपने अन्धकारमें भटकनेवाले गृहस्थोंका मार्ग-प्रदर्शन करनेके लिये एवं उनके जीवनको पूर्ण आनन्दमय बनानेके लिये 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक देनेकी महान कृपा की है। हम भी ऐसे ही एक ग्रामके निवासी हैं, जहांके निवासी दुखमय एवं नीरस जीवन व्यतीत करते हैं। कृपया उपर्युक्त पुस्तक ेज दें, जिसमें हम लोगोंका उपकार हो और इसके अतिरिक्त हमलोग इस सुकार्यको अपने इलाकेमें जहांके अधिकांश व्यक्ति अज्ञानी हैं, प्रचार करनेका भरसक प्रयत्न करें।

२०३४—श्री भुवनेश्वरप्रसाद, पो० मोकाम बगोदर, जिला हजारीबाग।

—आपके कार्यालयसे 'गृहस्थ-धर्म' किताब मुफ्तमें भेजा जाता है। धन्यवाद! आपको पुस्तक सचमुच वर्तमान भारतके सफलीभूत बनानेमें समर्थ होगी और यह नवीन समाजको एक आदर्श समाज बनायेगी।

२०३५—श्री हनुमानप्रसाद यादव, मोहल्ला नन्दगोला घाट, पो० माधो मिल्स, पटना।

—बड़े हर्षकी बात है कि आप इस कलिकालमें 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक बांट रहे हैं। इससे जनताको बहुत ही लाभ है। इससे बढ़कर और कोई दूसरा उपकार हमारी समझमें नहीं है। मैं आपके इस दानसे बहुत प्रसन्न हूँ और इसके लिये आपको कोटिशः धन्यवाद भेजता हूँ। इसे सहर्ष स्वीकार कीजियेगा।

२०३६—पं० शारदाप्रसाद त्रिपाठी, पो० नीभापुर, बड़ागांव, जौनपुर।

—आपके समान विश्वमें कोई दूसरा नहीं है कि आप परोपकारार्थ धर्मार्थ पुस्तक वितरित कर रहे हैं। इस पुण्य कार्यके लिये मनुष्य सर्वदाके लिये आपका ऋणी रहेगा।

२०३७—श्री रामचरित्रप्रसाद, ग्राम सिकहर, पोस्ट बुनियादगञ्ज, जिला गया।

—'गृहस्थ-धर्म' काफी प्रसिद्ध हो चुकी है। असलमें यह पुस्तक मनुष्यको सुमार्गपर अग्रसर करनेवा

...ी रामजं

विहार) ... सम्मतियां और उद्गार !

—आज डूबते हुए धर्मकी ...म सिंह, हाई ई० स्कूल फतुहा, पोस्ट फतुहा, जिला पटना।

प्रार्थना करती हूँ, इसी तरह ... नामक पुस्तक हरएक मानवको अपने कर्तव्यको पालन करना बतलाती है।

... हांने ...

२०३९—श्री रामलोचनशरण, मुकाम-पोस्ट लारी, जिला गया।

—आपने 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकका प्रचार कर मुल्ककी बहुत ही भलाई की है। इसके लिये मैं आपको क्या धन्यवाद दूं? ईश्वर हमेशा आपको अनुग्रहसे भलाई करे।

२०४०—श्री परमेश्वरलाल, ग्राम भैंसमारा, पोस्ट दिबरिया, जिला गया।

—आपने 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको वितरण कर सचमुच गृहस्थोंको गृहस्थ बनाया है तथा सनातन-धर्मका प्रचार कर अमर कीर्ति प्राप्त की है। इसके लिये हार्दिक धन्यवाद !

२०४१—श्री महादेवराम, नयी गोदाम, गया।

—मैंने आपकी संग्रह की हुई 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक ट्रेनमें एक व्यक्तिके पास देखी। उस पुस्तकका अवलोकन किया। देखकर हृदयमें कौतूहल उत्पन्न हुआ। आपने गागरमें सागर भर दिया है।

२०४२—श्री फौदारराम, ग्राम पारपरैयागढ़, पोस्ट परैया, जिला गया।

—मैं सर्वशक्तिमान, करुणानिधान, घट-घट व्यापी जगदीश्वरको कोटानुकोटि धन्यवाद देता हूँ कि जिनकी अनिर्वाचनीय कृपा और दयासे मुझे 'गृहस्थ-धर्म' नामक नूतन पुस्तक प्राप्त हुई है।

२०४३—श्री राजेन्द्रदत्त पाठक, हाई इङ्गलिश स्कूल गांधीपुर, पोस्ट गुरारू, जिला गया।

—श्रद्धेय धर्म-विजेता ! आपकी सुकृति देखकर सभी सज्जन पुरुष बड़े हर्षमें हैं। आपने इस पापमय कलियुगमें भी हरेक मनुष्योंके हृदयमें धर्मकी सद्भावना जागृत होनेके लिये धर्मावतार होकर अमूल्य पुस्तक प्रदान करनेकी कृपा की। भारत गृहस्थोंका देश है, अतः गृहस्थ-धर्म अपनानेके लिये कोई भी पुस्तक इसके सिवा नहीं है।

२०४४—श्री लक्ष्मेश्वर सिंह, हेड-मास्टर, लो० प्रा० स्कूल रवाईच, पोस्ट बख्तियारपुर, पटना।

—मुझे आपके द्वारा वितरित पुस्तक गृहस्थ-धर्म' का प्राक्कथन और भूमिका पढ़नेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। किन्तु शुरूसे अन्ततक पढ़नेका सुअवसर नहीं मिला। कारण कि मैंने वह पुस्तक गाड़ीमें एक मुसाफिरसे ली। पुस्तक तो बहुत ही लाभदायक और सन्तोष-जनक प्रतीत हुई। मैं उसे आदिसे अन्ततक पढ़ना चाहता हूँ। मैं एक लो० प्रा० स्कूलके हेडमास्टरकी हैसियतसे लोक-प्रिय बनानेमें यथाशक्ति प्रयत्न करनेका आश्वासन आपको देता हूँ। मुझे आशा है, ...'गृहस्थ-धर्म' मुझे भेजकर पुण्यके भागी बनेंगे और जन-गणकी अज्ञानताको दूर करनेमें सहायक होंगे। इस प्रश्नका ...प सप्रमाण अवश्य देंगे। प्रश्न—क्या आप सिद्ध कर सकते हैं कि पुनर्जन्म' होता है?

सम्मतियां और उद्‌गार !

२०४५—श्री नित्यानन्द सिन्हा, यू. डी. सी. एम्युनिशन डिपो, पोस्ट मुरारीपुर, जिला वर्द्‌वान ।

—ईश्वरकी प्रेरणासे आपके द्वारा संग्रह किया हुआ 'गुरु-मण्डल' का छठा पुष्प 'गृहस्थ-धर्म' के दर्शन प्राप्त हुए। दो-तीन पन्ने पढ़नेका अवसर मिला और जिसको पांच-सात वर्षसे खोजते थे, वह अचानक मिला। याने आप ऐसे महान व्यक्तिका नाम। मेरी अभिलाषाओंको पानी मिला और आपका दर्शन करनेकी इच्छा प्रकट हुई। मैं यदि आपसे कुछ बातचीत कर सकूं और अपनी बातें सामने रखूं तो आशा है कि आपसे सहायता मिल सकेगी। मैं यह चाहता हूँ कि जबतक आपके पास छापाखाना न हो सकेगा, तबतक प्रकाशन करनेमें असुविधा बराबर बनी रहेगी और काफी अड़चनें आयेंगी। मैं सरकारी नौकरी में एक बहुत अच्छे पदपर हूँ और वैष्णव-धर्मको मानता हूँ। बिहार प्रान्तमें शाहाबाद (आरा) जिलाका निवासी हूँ और कई एक छोटे-मोटे काम किये हैं। पर अब यही इच्छा है, जो आपकी इच्छा। याने इस मानव-समाजको आत्म-कल्याण के पथपर ले चलना।



२०४६—श्री राधाकान्त मिश्र, पो० खुसरूपुर, पटना।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तकका महत्व बहुत अधिक है। इस पुस्तक में दी हुई बातोंको लोग बहुत मानते और मान करते हैं। इससे लोगोंको अच्छी शिक्षा मिलती है। इसे पढ़ने और मनन करनेसे तथा अनपढ़ लोगोंको उपदेश देनेसे लोगोंमें सहयोगिता पायी जा रही है। मैं आशा करता हूँ कि आगे बहुत तरक्की होगी।

…७—श्री रामानन्द तिवारी, दुखरनी गेट, गया।

—मुझे आपके यहां की अत्यन्त सुखप्रद पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म', जिसे आप बिना मूल्यके वितरण कर संसारमें यशके भागी बन रहे हैं, देखनेका सुअवसर प्राप्त हुआ। धन्य है आपका सुन्दर विचार, जो संसारमें अमर बननेका सुमार्ग पकड़ा है। सम्पति रहनेकी शोभा यही है कि सु-मार्गमें अपने धनको व्यय करे। ईश्वर आपकी विमल बुद्धि दिन दुगनी रात चौगुनी सम्पति के साथ करें, यही हमारी प्रार्थना उस दीन-बन्धु से है।

२०४८—श्री रामप्रसाद सिंह, मखदुमपुर, गया।

—यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि आपके यहांसे 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तिका प्रकाशित हुई है और आपने इस कलिकालमें जनताके कल्याणार्थ इसका निःशुल्क वितरण प्रारम्भ किया है। इससे बढ़कर तो जन-कल्याणकी भावना और कुछ नहीं है। जहां हमारे इस विज्ञानके युगमें सनातन धर्मका लुप्तप्राय हो चुका है, वहांपर आप ऐसे कुछ महानुभावोंकी दया दृष्टिसे ही धर्मकी ध्वजा फहरा रही है, वरना इसकी पता आज इस युगमें नहीं रहती। हो सकता था कि यह भारत गारत होकर पापके महान गर्तमें गिरकर कराहता रहता। अस्तु, मुझे तो इस बात का पीछे पता चला कि आपके यहांसे यह पुस्तक प्रेषित की जा रही है। मैंने तो समझा और समझ रहा हूँ कि हम इस पुण्यको लूट नहीं सके।

सम्मतियाँ और उद्गार !

२०४९—श्री सी० पी० थारु पिलाई अध्यक्ष, सनातन धर्म प्रचार त्रावणकोर।

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' हर हिन्दू मात्रके घरमें सम्मानके साथ रखने लायक हैं। मैं इस पुस्तक को पाकर इतना हर्षित हूँ कि मानो मुझे खजाना मिल गया है। नित्य नैमित्तिक सनातन धर्मके अनुष्ठानोंका अध्ययन करनेके लिए एक मात्र पुस्तक है। आपकी सेवामें दूसरी प्रार्थना है कि मैंने अपने जीवनका उद्देश्य सनातन धर्मका प्रचार बना लिया है। इस समय मैने १५ नवजवानोंको जो हिन्दू धर्मके लिए मर मिटनेके लिए हर घड़ी तैयार रहते हैं, एक संगठन बना लिया है। उक्त संगठनका नाम श्री सनातन धर्म प्रचारक मण्डल रखा रखा गया है। सप्ताहमें तीन दिन उन्हें मैं एक सुयोग्य संस्कृत तथा हिन्दी भाषा जाननेवाले सज्जनसे शिक्षा दिला रहा हूँ। इस समय वे हिन्दू धर्म प्रवेशिका, तुलसी रामायण संग्रह, गीता सार, प्रार्थना, भजन आदिका बड़ी रुचिके साथ अध्ययन कर रहे हैं। मेरी प्रबल इच्छा है कि उन नवजवानोंको आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' को पूरे विस्तारके साथ बढ़ा दिया जाय, ताकि वे सुयोग्य गृहस्थ तथा धर्म पालक बन सकें। कृपया यदि आप १५ प्रतियां बी० पी० द्वारा भेज सकें तो बड़ा ही अनुग्रह रहेगा। मैं पूरा वचन देता हूँ कि आपकी पुस्तकोंका उपयोग सम्पूर्ण रूपसे होगा।

२०५०—श्री साधुप्रसाद साह, मो० कुलकुलिया, पोस्ट घोघा, जिला भागलपुर।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक एक रमणिक पुस्तक है। जिसके पढ़नेसे अत्यन्त ही लाभ है। आप इस किताबको बिना मूल्यका ही भेजते हैं।

२०५१—श्री मनकामनाप्रसाद मिश्र, ग्राम व पो० भारतनगर, जिला इलाहाबाद।

—आपकी लिखी हुई 'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तक अपने एक मित्रसे देखी। उसमें बहुत विषयोंका वर्णन है, जिसे अवलोकन करनेकी इच्छा हुई। यह पुस्तक बहुत लोकोपकारी है। हम गृहस्थोंके लिये पथ-प्रदर्शक है।

२०५२—श्री शिवरामदास शास्त्री, श्री जयदेव वैष्णव कालेज, पो० करवी, जिला बींद।

—आपने जो संग्रह करके 'गृहस्थ-धर्म' नामकी पुस्तक प्रकाशित करवाया है, वह अधिक अच्छी है। मैं इसे देख कर प्रसन्न हुआ और मुझे इसकी आवश्यकता भी है।

२०५३—श्री जगदीशप्रसाद सिंह, ग्राम रवाईच, पो० बख्तियारपुर, जिला पटना।

—आप 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक दान करते हैं। इससे कितने किसानोंका फायदा हुआ है।

२०५४—पंडित देवचरण पाण्डेय, सा० नौगोई पो० बिरकोना, बिलासपुर।

—श्रीमान् सेठ मनसुखराय मोरजी! आपकी प्रचार की हुई 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक एक प्रमाणित पुस्तक है और गृहस्थोंके लिये विशेष लाभदायक है।

ी रामज

विहार) :

सम्मतियाँ और उद्गार !

—आज डूबते हुए धर्मकी रामचन्द्रप्रसाद सिंह, ग्राम रघुनाथपुर, पो० दामोदरपुर,
रती हैं सी त जिला पटना।

— आपके कार्यालयके धर्म पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को लोगोंको विना मूल्यके पाते देख, हमें भी यही आकांक्षा हुई। और मैं यह भी जाना कि हमारे देशमें आज भी ऐसे लोग हैं, जो अपने भाइयोंके लिये धर्म पुस्तकको बिना मूल्यके प्रवास तक आसानीसे पहुँचा देते हैं।

२०५६—श्री जंगली पटवा, मो० मानपुर, पो० बुनियादगञ्ज, जिला गया।

—आपने 'गृहस्थ-धर्म' नामक जो पुस्तक प्रकाशित किया, वह गृहस्थ-धर्म आश्रमको उच्च स्तरपर ले जानेका एक मात्र साधन है।

२०५७—श्री कारू महतो, ग्राम मुजफ्फरपुर, पो० नूरसराय, पटना।

—मुझे यह सुनकर अति हर्ष हुआ कि आप गृहस्थोंके उपकारार्थ 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक निःशुल्क वितरण करनेका कठिन व्रत धारण कर भारतवर्षको धार्मोन्नत करनेमें प्रमुख हैं। अतः आप कृपाकर मुझे भी एक प्रति भेजकर यशका भागी बनें।

२०५८—श्री घुराऊप्रसाद पाण्डेय, ट्रेजरी आफिस, रायगढ़, जिला रायगढ़।

—आपके यहां एक ऐसी पुस्तक मिलती है, जिनको सुनकर गृहस्थोंका हृदय आनन्द-सागरमें गोता लगाता है। खेद है कि वह पुस्तक हमारे पास नहीं है।

२०५९—पं० अवधकिशोर पाण्डेय, मो० गगरी, पो० हसौरी, जिला मुंगेर।

—इस किताबके अन्दर इतनी अच्छी-अच्छी चीजें हैं, उनको समझ-बूझकर यदि मनुष्य पढ़े, तो ज्ञानवान हो सकता है। इस किताबको आप दान स्वरूप दे रहे हैं।

२०६०—श्री छट्टूप्रसाद, टी. एच. आई. स्कूल, महेन्द्रू, पटना।

—मैं आपके द्वारा 'गृहस्थ-धर्म' नामक ग्रन्थ अपने स्वतन्त्र देशके भाइयोंको आदर्श बनाने तथा देशको उन्नति बनानेके लिये आप दान-स्वरूप भेंट देते हैं। इस किताबको मैं भी अध्ययन कर लाभ उठाना चाहता हूँ।

२०६१—प्रधानाध्यापक पं० रामेश्वर शास्त्री, आयुर्वेद हिन्दी 'विशारद' श्री सनातनधर्म संस्कृत विद्यालय, पो० खाटूबड़ी (मारवाड़)।

— स्वधर्म-परायण श्रेष्ठिकुल भूषण श्री मनसुख रायजी सादर हरिस्मरण ! आपकी किताब बहुत ज्यादा सदुपयोग हम लोगोंके लिये। किसीके पास धर्म-शिक्षा पढ़नेसे मुझे यह पुस्तक अतीव उपयोगी मालूम हुई, में अध्यापक एवं उपदेशक हूँ।

२०६२—श्रीमती श्यामसुन्दरी देवी, मो० पो० लाखावर, जिला ग.

—आप अपनी संस्थासे 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक वितरण कर रहे हैं। यह किताब अच्छी है। अतः कृपाकर उसकी एक प्रति मेरे लिये भी भेजनेका कष्ट करेंगे।

२०६३—श्री अक्कल मिश्र, मो० पो० पलबैया, जिला मुजफ्फरपुर।

—यह सुनकर मुझे अत्यधिक खुशी हुई कि आपने 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तिका मुफ्त देशभरमें बांटनेका निश्चय किया है। इसके लिये आपको कोटिशः धन्यवाद है।

२०६४—हेड मास्टर मिड्ल स्कूल, मोकर पो० नादौल, जिला गया।

—आपके द्वारा संग्रहित 'गृहस्थ-धर्म' अत्यन्त ही उपयोगी पुस्तक है। मैंने इस पुस्तकको मटौढ़ा नामक एक ग्राम में देखा। पढ़नेसे मन प्रसन्न हो गया। मुझे यह पढ़कर अपार आनन्द हुआ कि आप बराबर इस तरहकी पुस्तकें 'गृहस्थ-धर्म' के प्रचारार्थ विना मूल्य वितरण करते हैं। आपको इसके लिए कोटिशः धन्यवाद है। मैं भी अपने स्कूलकी लायब्रेरीके वास्ते इस पुस्तकको बहुत उपयोगी समझता हूँ।

२०६५—जैकिशुन प्रसाद गुप्त, पाटलिपुत्र स्टोर, कदम कुआ राशनकी दुकान (एच० एन० ५) पटना।

—'गृहस्थ-धर्म' का मुफ्त वितरण, आप देशमें अपना अमरत्व तथा संसारके हितके लिए करते हैं। हमें कुछ समयोंके लिए एक गाड़ीके डब्बेमें उस किताबको पढ़नेका मौका मिला और मेरा दिल फिर खरीदनेके लिए चञ्चल हो पड़ा।

२०६६—मोहनलाल साव, हेड मास्टर प्रा० स्कूल डोंगरी, पो० बलौदा, जिला बिलासपुर, (सी० पी०)।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक देखकर मेरी आत्माको परमानन्दको प्राप्त हुआ। यह तो गृहस्थ लोगोंके लिए स्वर्गकी निशानी है!

२०६७—श्री देवनन्दन शर्मा, मु० कोरावां पो० हिलसा, जिला पटना।

—मैंने आपकी उदरताका प्रत्यक्ष प्रमाण, सर्व श्रेष्ठ शिक्षा-प्रद तथा लोकोपकारक 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकके पृष्ठोंको देखा। मेरे हृदयमें गृहस्थ-धर्म' का गहरा अध्ययन करनेका अभिलाषा जागृत हुई। अतः उक्त प्रेरणाओंसे प्रेरित होकर अपनी हृदयके अभिलाषाओंको आपके चरणोंमें समर्पित कर रहा हूँ कि असीम शिक्षा-प्रद 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक भेजनेका असीम अनुकम्पा प्रदर्शन करें। आशा है कि हम विद्यार्थियोंके भविष्य उज्ज्वल बनानेके लिए शीघ्र 'गृहस्थ-धर्म' भेजकर महान यशके भागी बनेंगे।

ी रामज
बिहार)
—आज कूचत ... मंगल पण्डित, मो० लंगरटोली, पो० बांकीपुर (पटना)।

सम्मतियाँ और उद्‌गार !

।इसी ... की भावना और ख्याति पा मैं दीन भी आपका कृपा-भाजन बनना चाहता हूँ। 'गृहस्थ-धर्म' को हम लोग आपके ... ण तथा धर्म प्रचारके हेतुसे वितरण कर रहे हैं। मैं भी इसका इच्छुक हूँ।

२०६९—श्री विन्देश्वरी प्रसाद, मो० कूवारी, पोस्ट कूरथा, जिला गया।

आप 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तकको मुफ्तमें ही भारतवासियोंके बीच बांट रहे हैं। ऐसी बात सुनकर मुझे इतनी खुशी हुई कि आज भी ऐसे-ऐसे महारथी भारतकी भूमि पर पैदा लेकर अपना नाम अमर करने जा रहे हैं।

२०७०—पं० रामचरित्र पाण्डेय, मौजा-पोस्ट लखावर, जिला गया।

—आपका भेजा हुआ 'गृहस्थ-धर्म' हमारे बहुतसे साथियोंको आया। पढ़नेसे मेरे दिलमें जो आनन्द हुआ उसका मैं क्या वर्णन करूँ ?

२०७१—श्री भुखनलाल गौड़, साकिन नवगवां, पोस्ट बलौदा, बिलासपुर।

—आपके यहांसे जो 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक निकली है, उसे पढ़कर अति हर्षित हुआ क्योंकि इस पुस्तकमें ज्ञान, बात धार्मिक भरी हुई है जिसे लोग पढ़कर अपनी जिन्दगी सुधारते हैं।

२०७२—श्री पण्डित गङ्गाशुक्ल, मो० मका, पोस्ट लातेहार, जिला पलामूं।

—आपकी 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक अपने मित्रों द्वारा पाकर पढ़ी। विशेष तो पढ़नेका मौका न मिला, परन्तु जो भी पढ़ा, उसे पढ़कर मुझे अपार आनन्द हुआ। 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक अगर देखा जाय तो सभी धर्मावलम्बियोंके लिये उतना ही हितकर है जितना सनातन धर्मावलम्बियोंके लिये। इसकी विषय-सूची देखनेसे मालूम होता है कि वास्तवमें अगर मनुष्य इसके एक-एक विषय पर प्रकाश डाले तो गृहस्थ-धर्म में रहते हुए भी भगवद् प्राप्ति कर सकता है।

२०७३—श्री महेश प्रसाद, ग्राम शेरपुर, पोस्ट दरवारा, पटना।

—आपको यह विदीत करते हुए हमें अति आनन्द एवं हर्ष हो रहा है कि आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक एवं अमूल्य दानसे जनताके समक्ष आप बहुत ही प्रशंसनीय व्यक्ति माने जा चुके हैं। मैं भी आपकी प्रशंसा एवं आपके उन्नतिके लिये श्री शंकरसे कर-बद्ध प्रार्थना करता हूँ। मैं एक युवक व गृहस्थ हूँ। आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' पढ़नेकी मुझे अत्यन्त जिज्ञासा है।

२०७४—श्री विशाल प्रसाद चन्द्रनाहू, मु०-पोस्ट वाहनीबाजार, बिलासपुर।

—मैंने अपने सहपाठी के पास 'गृहस्थ-धर्म' की पुस्तक देखी और उसके कुछ अंश पढ़ा भी है। उसमें लिखा हुआ नियम गृहस्थोंके लिये मुझे बहुत ही उपयोगी मालूम हुए। आप जो यह धर्म-प्रचारके लिये धर्मार्थ कर रहे हैं, इसके लिये आप हार्दिक धन्यवाद है।

सम्मतियाँ और उद्गार !

२०७५—श्रीयुक्त पं० दिवाकर पाण्डेय 'मधुप',
मु॰ कटौली, पो॰ अत्तासराय, पटना।

आपके यहां जो धर्म प्रचार के हेतु 'गृहस्थ-धर्म' नामक किताब छपा है। वह अत्यन्त हितकर, समाज सुधारक तथा सत्पथ-प्रदर्शक का काम करती है। अतः ऐसी किताब की परमावश्यकता है।

"प्रत्येक गृहस्थ की अनिवार्य आवश्यकता"

२०७६—श्रीयुक्त पं० रामरतन आचार्य, बी० ए० एल एल-बी० एफ० आई सी० ए० आचार्य चौक, बीकानेर (राजस्थान)।

आपके द्वारा रचित 'गृहस्थ-धर्म' को आद्यन्त पढ़ गया। समयाभाव होनेपर भी पुस्तक अवलोकन के लोभ को सम्वरण न कर सका। पढ़कर इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि ऐसी सुन्दर पुस्तक प्रत्येक गृहस्थी के घर रहनी चाहिये।

२०७७—पं० श्री देवकीनन्दन 'कर्मकाण्डी', वैदेहीजी का मन्दिर, चिरगांव (झाँसी)।

मैंने आपके यहां से प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक देखी। जिसे पढ़कर मैं अत्यन्त प्रभावित हुआ। निःसन्देह आपका परिश्रम सराहनीय है।

"दिल अतृप्त ही रहा"

२०७८—श्री श्यामसुन्दरी देवी, होरिलबिघा, पो॰ हिल्सा (पटना)।

मैंने आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' का अवलोकन किया। वास्तव में यह हिन्दू संसार के लिये रामबाण है। अतः मेरे लिये भी एक प्रति भेजें।

२०७९—श्री गोविन्द प्रसादजी, रिटायर्ड डिपुटी डाइरेक्टर एगरीकलचर, ८९५ राइट टाउन, जबलपुर।

मेरे एक मित्र ने 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक मुझे पढ़ने को दी। धन्य है आपको जिनने ऐसी अनुपम पुस्तक संग्रह की। इसका जितना प्रचार हो सके किया जाय। जिससे जन-कल्याण हो।

२०८०—पं० श्रीचन्द्रदीप शर्म्मा, मु॰ मई पो॰ पिन्जोरा (गया)।

आपकी संग्रहीत 'गृहस्थ-धर्म' को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पुस्तक क्या है ज्ञान का भण्डार है। इसके वि[illegible] में जो कुछ कहा जाय वह सूर्य को दीपक दिखलाना है। उसपर भी जन-समाज के उत्थान के लिये आप निर्मूल्य वितर[illegible] रहे हैं। आपके इन सत्कार्यों के लिये कोटिशः धन्यवाद है।

...ी रामज
विहार ...मंग...
...बत... जि...
हम लाग... आपके ज्ञान तथ...

सम्मतियाँ और उद्गार !

"मानवीय गुणों से परिपूर्ण है"

२०८१—पं० राजेन्द्र झा; बेसिक स्कूल, बनदीप, पोः चुड़ी (रांची)।

—एक पूर्ण व्यक्ति में जिन गुणों की अनिवार्य आवश्यकता है। प्राचीन भारतीय संस्कृति को ध्यान में रखते हुए 'गृहस्थ-धर्म' में उनका पूर्णतः समावेश किया गया है। भारतीय संस्कृति के प्राणाधार राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का दृष्टिकोण पूर्णतया व्यक्त किया गया है।

२०८२—पं० रामआश्रय राम, मु० पो०, सालिमपुर, बिहटा (पटना)।

..................आप 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक निःशुल्क बांटकर 'जनता की निस्वार्थ सेवा कर रहे हैं। मैं इस पुस्तक को पढ़कर मंत्र मुग्ध-सा हो गया।

२०८३—श्री पं० जोगेश्वर शर्म्मा, मु० धापचक पो० उसरदेवरा (गया)।

—आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' की ख्याति भारत के कोने-कोने में फैल रही है। मैंने भी इसे पढ़ा तथा पढ़कर इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि यह अपने ढंग की अनूठी पुस्तक है।

२०८४—श्री विश्वनाथ पाठक, मु० मधुसूदनपुर, पो० लाई (पटना)।

—किसी व्यक्ति विशेष के हाथ से मैंने 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक जो आपके द्वारा संग्रहीत की गई है पढ़ी। वास्तव में आपने सागर में गागर रख देने का प्रयास किया है। आपका परिश्रम श्लाघनीय है। आप ही के ऐसे उदार व्यक्तियों द्वारा सच्चे हृदय से मानव-समाज का कल्याण तथा उद्धार किया जा सकता है। इस पुस्तक के अवलोकन से भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति की पुनर्स्मृति हो जाती है। आध्यात्मिक ज्ञान की मानो आपने त्रिवेणी बहा दी है।

२०८५—श्री पं० जगतराज पाण्डेय शास्त्री, मु० महुअरी पो० जमुआंव (शाहाबाद)।

'गृहस्थ-धर्म' अध्ययन करने पर इतनी खुशी हुई कि जिसको वर्णन करने में असमर्थ हूँ। आप जैसे धार्मिक सज्जनों के उपर ही वसुन्धरा ठहरी हुई है।

२०८६—पं० नर्मदा प्रसादजी मिश्र, मु० पो० बोदरो (बिलासपुर)।

—आपके द्वारा रचित 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक को पढ़कर हृदय आनन्द विभोर हो गया। इस पुस्तक में वेदों तथा उपनिषदों का गूढ़ तत्व भरा हुआ है।

२०८७—श्री रामस्वरूप सिंह द्वितीय शिक्षक, अ० प्रा० स्कूल मखरा, पो० ओवरा (गया)।

—आपकी संग्रहीत 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक पूर्णरूप से हम गृहस्थियों का मार्ग निर्देश करती है। मैं इस धर्म पुस्तक ...ने समाज के लिये परमोपयोगी समझता हूं आपके सत्प्रयत्नों के लिये हार्दिक साधुवाद।

सम्मतियाँ और उद्गार !

२०८८—जीवनदास बाबाजी, मुकाम पोष्ट बनता (रांची)।

—मैं एक धर्म प्रचारक हूं आपके द्वारा संग्रह किया हुआ 'गृहस्थ-धर्म' मेरे लिये अतीव उ[illegible] जाता हूँ इसके सिद्धान्तों का प्रतिपादन ही करता हूँ। जनता मन्त्र मुग्ध हो ऐसे सुन्दर विषयों को सुनने को लालायित रहती है। कृपया ५ प्रति और प्रचारार्थ भेजियेगा।

२०८९—श्री रामचन्द्र जगरनाथ, मुः सरकार पाड़ा, पोः पुरुलिया (मानभूम)।

—मैं 'गृहस्थ-धर्म' का लम्बे अर्से से पाठक हूं, प्रति संस्करण कोई नूतन उपादेय बातें सिद्धान्त रूप से प्रतिपादित मिला करती है। सचमुच आपने संसार और विशेष रूप से हम गृहस्थियों का बहुत भला किया। आनेवाली पीढ़ी आपका गुणानुवाद गायेगी। आपके इस सत्प्रयत्न के लिये शतशः धन्यवाद।

२०९०—सूर्यदेव सिंह शिक्षक, लोअर प्राइमरी स्कूल, मुकाम सोनहथू, पोस्ट सिहारी (गया)।

— अपने जीवन में जिन ग्रंथों ने मुझे प्रेरणा और प्रोत्साहन दिया उनमें आपकी संग्रह की हुई 'गृहस्थ-धर्म' प्रमुख है। मैं इसमें लिखित सिद्धान्तों के अनुसार जीवन यापन कर सुखी बनूंगा ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है। कृपया नूतन संस्करण १ प्रति भिजवा दीजिये।

२०९१—श्री इन्द्रमणी गोप, मुकाम बगोदरडीह, पोस्ट बगोदर (हजारीबाग)।

—जो जीवन की अमूल्य निधि है वह आपने 'गृहस्थ-धर्म' में संग्रह कर दी है जीवन को सुखमय बनाने की और उसकी सफलता की कुंजी इसमें है। कृपया मुझे १ प्रति और भिजवावें।

२०९२—राजदेव सिंह, मुकाम धनकौल पोस्ट मखदुमपुर (गया)।

—आपके कार्यालय से जो 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक निकली है। उसकी ख्याती साहित्य-संसार में दिन दूनी रात चौगुनी हो रही है।

२०९३—पं० शशिनाथ झा, श्री ला० उदितनारायण हाई-स्कूल, शकरपुरा, पो० बखरी बाजार (मुंगेर)।

—जीवन संघर्ष है। शास्त्रों की अमूल्य निधि आपने मञ्जूषा में 'गृहस्थ-धर्म' के रूप में सुरक्षित कर दी है इससे जनता को सत्यपथ प्रदर्शन होगा। आप ऐसे उपयोगी ग्रन्थ को हम लोगों तक अमूल्य वितरण करने में धन्यवाद के पात्र है।

२०९४—श्री रामादेवी, मु० मनवाँ, पो० हसुआ (गया)।

—गृहस्थ की नौका में स्त्री-पुरुष अपने-अपने कार्यों को करते हुए भवसागर पार कर सफल हों इस उद्देश्य से लिखी हुई आपकी 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक हम स्त्रियों के अतीव उपयोगी है। स्त्रियों को आदरपूर्वक समाज में स्थान के लिये आप धन्यवा[illegible] पात्र हैं।

सन्मतियाँ और उद्गार !

"सुख की सीमा न रही"

२०९५—श्री दशरथलाल यादव, मु० पो० खरौद (बिलासपुर) ।

—प्रथम अवसर पर ही मुझे आपके 'गृहस्थ-धर्म' ने इतना आकर्षित किया कि अवकाश में जब कभी बैठता तो उपन्यास पढ़ने का स्थान इस उपादेय ग्रन्थ ने ले लिया। आपके सुन्दर मधुर शब्दयोजना से हृदय आप्लावित हो गया और मेरे एकान्त चिन्तन में आपके 'गृहस्थ-धर्म' ने जो स्थान लिया है उसे करते-करते सुखकी सीमा न रही।

२०९६—श्री रामचन्द्र प्रसाद करप्रदाज, सिविल कोर्ट जहानाबाद (गया) ।

—आपकी कृति 'गृहस्थ-धर्म' ने मुझे प्रकाश दिया। जीवन को न्याय पथ से प्रशस्त करने के लिये यह चीनी लगी हुई कटु औषध है। अवश्य ही ऐसे महान उपकार के लिये आपको जितने धन्यवाद दिये जाय थोड़े हैं।

२०९७—पलकभाई ठाकर, ५, करबलामहम्मद स्ट्रीट, कलकत्ता १

—कलकत्ता जीवन की अस्वस्थ निराश और अस्थिर घड़ियों में जब तब आपके द्वारा संग्रहीत 'गृहस्थ-धर्म' से बहुत अधिक सन्तोष और आत्मतृप्ति होकर कार्य करने की प्रेरणा मिलती है। कृपया नये संस्करण की एक प्रति मेरे लिये सुरक्षित रक्खें। सधन्यवाद।

२०९८—कृष्ण चौधरी, मु० पो० शशनी (पटना) ।

—आपने 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक निकाल कर जनता-जनार्दन का बहुत बड़ा उपकार किया है। यह पुस्तक बहुत ही समुचित और सुन्दर ढङ्ग से प्रकाशित की गई है। सचमुच में इसको खूब अध्ययन करने की जरूरत है।

२०९९—ला० बंशीधर मुन्नालाल जैन (गढ़ीवाले, चौकी दरवाजा (फिरोजाबाद) ।

—सेठजी के धर्म प्रेम की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है 'गृहस्थ धर्म' का विषयनिरूपण सेठजी के जीवन की गुण शीलता, शालीनता और गुणग्राहकता बताता है। 'गृहस्थ-धर्म' से समाज का बहुत भला हो रहा है हमें नवीन संस्करण एक कापी जरूर भिजवावें।

२१००—पं० सुखदेव त्रिवेदी, हेड पण्डित हाई स्कूल, बन्धुगंज, पोः मोदनगंज (गया)

—बड़े-बड़े ग्रन्थों का सार संग्रह कर जो इतना कठिन परिश्रम इस ग्रन्थ में किया गया है उसकी वास्तविक सफलता जनता में इस ग्रन्थ की बढ़ती हुई मांग है। 'गृहस्थ-धर्म' हम गृहस्थियों का सच्चा उपकारक है।

२१०१—जकुल्लाह साकिब, नबीनगर पोः बेलहोवंरी (पटना)

—खुदा का शुक्र है कि आपने हर खास व आम के भलाई के वास्ते ऐसी निहायत उम्दा चुस्त मज़मून की पोथी तैयार करके मोत-मोत काबिले तारीफ काम किया है……..मुझे आपके इस मज़मून के हर पहलू को गौर से पढ़ने पर यह महसूस कि आपके उसूल नेचर जरूरी और आम फहम कायदों को लेकर लिखे गये हैं इसमें किसी मजहब फिरकेवाले को कोई नुकसान नहीं होगा। परवरदीगार कसरत से दौलत बख्शे यह मेरी दिली मन्शा है।

मानव कल्याणमें अपनी शानी नहीं रखते

२१०२—श्री हुकुमचन्द भादानी
श्री विश्वम्भर भवन बीकानेर
(राजस्थान)

आपने ये पुस्तक प्रकाशित कर भारत की होनेवाली राज-भाषा व मानव-समाज का जो उपकार किया है, उसके लिये प्रत्येक मानव आपका आभारी रहेगा। आप इस सम्बन्ध में हमारी ओर से भी बधाई के पात्र हैं। इन पुस्तकों के उच्चकोटि के उद्देश्य मानव कल्याण की भावना से ओत-प्रोत है। हमारा विश्वास है कि इन अमूल्य प्रकाशनों से प्रासादों में रहनेवाले अमीर व झोपड़ी में रहनेवाले दरिद्रनारायणोंका असीम उपकार होगा।

...डत लालविहारी दूबे, मुकाम पोष्ट शिवरीनारायण (बिलासपुर)

...त्या हुआ 'गृहस्थ-धर्म' हम सब का परम मित्र है। अवश्य ही इससे हम गृहस्थियों को सच्चा मार्ग प्रेरणा और उत्साह मिला है। जिससे वीरतापूर्वक गृहस्थ के संघर्षमय जीवन से निस्तार होता रहे इस उद्देश्य से किये गये संग्रह के लिये कोटिशः धन्यवाद है।

२१०४—श्री करोड़पतिनारायण सिंह मु० धुरिआरी पो० बंसीविशहा (गया)।

—स्वरचित 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़ने का सुअवसर मिला। वास्तव में 'गृहस्थ-धर्म' यथा नाम तथा गुण है। सभी सन्मार्ग पर प्रवृत हों यह आपकी शुभकामना शीघ्र ही भगवान सफल करे यह मेरी शुभकामना है।

२१०५—पण्डित रामसूरत शर्म्मा, मुकाम महेरनं पोस्ट गुतवन (जौनपुर)।

—एक बार 'गृहस्थ-धर्म' ध्यान से पढ़कर जब मैं एकान्त में बैठा तो पुस्तक के सिद्धान्त रह-रहकर मेरे मस्तिष्क में आने लगते। आपने किस ईश्वरी प्रेरणा से ऐसा मौलिक अद्भुत ग्रंथ संग्रह किया इसे सोचते ही परमपिता परमात्मा के प्रति हृदय गद्गद् हो जाता है। सचमुच इस पुस्तक की सामयिक आवश्यकता जनता में धर्म भावना जागृत करने में पूर्ण सहायक होगी। एतदर्थ आपको जितने धन्यवाद दिये जायं उतने ही थोड़े हैं।

२१०६—श्री मेवालाल रामशरण प्रसाद, मु० धरमपुर टोला, पो० अजैपुर (पटना)

—आपके द्वारा प्रकाशित 'गृहस्थ-धर्म' का अवलोकन किया। वास्तव में आपका परिश्रम सराहनीय है। मैंने पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' के कुछ अंश पढ़े जिनमें 'तत्वमसि' 'पितृपूजा का तात्विक विवेचन' आदि विषय आपकी विलक्षण बुद्धि के परिचायक हैं।

२१०७—श्री भागीरथ महतो, मुकाम पोस्ट नूरसराय (पटना)।

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक कुछ समय के लिये पढ़ने को मिला। पुस्तक की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। 'गृहस्थ-धर्म' में भारतीयता कूट-कूट कर भरी है। ऐसा सामयिक ग्रंथ आजतक भी देखने को नहीं मिला। अतः सानुरोध प्रार्थना है कि मुझे भी एक कापी भेजकर पुण्य के भागी बने।

२१०८—पण्डित नारायणदत्त शर्म्मा जोशी, मुकाम पोस्ट सिरसा (हिसार)।

—आपका ग्रंथ 'गृहस्थ-धर्म' आजकल के मानव समाज को पतन के गर्त से निकालने का एक मात्र साधन है। आज कल के नौजवानों को इससे ब्रह्मचर्य, सदाचार, संयम-नियमादि की शिक्षा प्रचुर मात्रा में प्राप्त होगी। जिससे राष्ट्र समृद्धि-शाली बनकर आपकी यश पताका विश्व में फहरायेगा।

२१०९—पंडित श्यामव्रती शास्त्री, मुकाम लालापुर पोस्ट गोपीगंज (बनारस)।

—पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' पढ़नेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। पुस्तक क्या है अनमोल हीरा है। जो प्राणीमात्र की निःस्वार्थ सदुपदेश देकर मानवको मानवता का पाठ सिखाता है। एतदर्थ आप बधाई के पात्र हैं।

गृहजीवनके कर्तव्योंकी ओर एक संके

२११०---श्री पण्डित राघोलाल मिश्र
मुकाम कीसुनपुर पोष्ट टन्ड्वा
(हजारीबाग)

—आपका लिखा 'गृहस्थ-धर्म' पढ़ा। जिसमें गार्हस्थ्य-जीवन की सच्ची झलक मिली। वास्तव में यह अनुपम ग्रंथ भारतीय परिवार के लिये वरदसिद्ध हुआ है। सुधारक लेखक का प्रयत्न भी सराहनीय है।

२१११—श्री चन्द्रमोहन प्रसाद सिंह
मुकाम सगेड़ा बाबूयेला पोष्ट नवगै (मुंगेर)

—आपकी उदारता सराहनीय है। पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' बहुत ही उपयोगी है। वस्तुतः इसके द्वारा ग्रामीण जनता का बहुत उपकार होगा।

२११२—श्री रामसिंह-हेडमास्टर
प्राइमरी स्कूल—अहरौरो (मिर्जापुर)

पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' को देखकर मैं बहुत प्रभावित हुआ। इसके कतिपय अंशोंको पढ़ा, पढ़नेपर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि आजकी दुनियां में आप जैसे उदारचेता व्यक्ति विरले ही हैं जो मानव-उत्थान की भावना से अपने धन का सदुपयोग कर जनता की नि:स्वार्थ सेवा कर रहे हैं। भगवान आप को सकुटुम्ब दीर्घायु प्रदान करें।

...ी रामज...
विहार ... मंगल...

सम्मतियाँ और उद्गार !

...वत: ... जिक ... पाण्डे मुकाम गन्नय पोष्ट शेषपुरा (मुंगेर) ।

हम लोग ... आपके ... 'गृहस्थ-धर्म' का अमर नाम आज देश के कोने-कोने में गूंज रहा है। सचमुच यह भारतीय प्रजा को आपको अनूठा दान है। अतः मुझे भी एक प्रति देकर कृतार्थ करें।

२११४---श्री गोविन्दराम हजारीबाग (बिहार)।

—मुझे एक मित्र द्वारा आपका परिचय प्राप्त हुआ। आपके यश को सुनकर हृदय गद्गद् हो गया। आपकी प्रकाशित पुस्तकों को पढ़कर मैं आनन्दविभोर हो उठा तथा अपने-आपको भूल-सा गया। तात्पर्य यह है कि इसमें विश्वकल्याण के गूढ़ रहस्य कूट कूटकर भरे हैं।

२११५---श्री रमेश सिंह मुकाम पोष्ट सीतारामपुर (बर्दवान)।

—आपकी लोकोपकारी धर्मप्रचारिणी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' से सृष्टि का बहुत बड़ा उपकार हो रहा है। इसके लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूं।

२११६---श्री पंडित परमेश्वरदत्त मिश्र 'विशारद' मु: डेवड़िया पो: जम्होर (गया)।

—श्रद्धेय सेठजी श्री मनसुखरायजी ! आपके द्वारा संग्रहीत पुस्तक 'गृहस्थ धर्म' को देखने का सुअवसर मिला। आपका प्रयत्न स्तुत्य है। आपने तो 'स्वस्त्यस्तु-विश्वस्य खलः प्रसीदताम्' वाली उक्ति को साकार रूप दे दिया है। धन्य है आपकी विलक्षण बुद्धि को जिसने ऐसा अनुपम ग्रंथ जनता को निःशुल्क दिया।

धर्म पथपर चलने का परम पवित्र ग्रन्थ

२११७--श्री पंडित सदाशिव मेह, मु: दंगवाड़ा पो: चम्बल रेलवे स्टशन।

—आपने 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक जो अत्यधिक परिश्रम के साथ धर्म में श्रद्धा रखने के हेतु प्रकाशित की है। उसके अवलोकन से हृदय में प्राकृतिक तत्वों का स्फुरण होता है तथा आत्माको आध्यात्मिक शान्ति मिलती है। आप मुझे भी एक प्रति भेजकर अनुगृहीत करें।

२११८--श्री ज्ञानदत्त पाठक—सहायकाध्यापक, म्युनिसिपल दादर हिन्दू स्कूल--बम्बई २८

—मैंने आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' पढ़ी। विषयों की दृष्टि से यह अति रुचिकर प्रतीत हुई। कृपया मुझे भी एक प्रति भेजें।

२११९---श्री मंत्रीजी; श्री जनहितैषी पुस्तकालय---माधोपुरचक पो: फतहपुर (पटना)

—आपका 'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक मुझे देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसके गूढ़ तत्वों के विवेचन को पढ़कर ...से सा हो गया। प्रकृति प्रदत्त साधनों से ही मानव का कल्याण सम्भव है यह आपकी भावना प्रशंसनीय है।

सम्मा... ...के उद्गार !

२१२०---श्री गिरीश वर्मा, पिलग्रिम हस्पताल, (...

- आपकी पुस्तक बहुत ही उपयोगी है। अतः मुझे भी इसका नवीन संस्करण भेजक... ...नाथझा-

"रसायनरूपो ग्रन्थ"

२१२१---पं० बनवारीलाल "विशारद", मु० पो० खास-सफीदोमण्डी (पटयाला)

—वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, पुराणादिकों का सार भूत 'गृहस्थ-धर्म' समस्त प्राणिमात्र के इहलौकिक पारलौकिक अभ्युदय का निर्भर श्रोत है। इसके लिये मैं आपको हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

२१२२---श्री राममोहन साहु, मुकाम सेनहा, पोष्ट, लोहरदगा (राँची)

—वस्तुतः उपकार परायण सत्पुरुष ही संसार में धन्य हैं। आपने 'गृहस्थ-धर्म' द्वारा भारत के सद्गृहस्थवृन्द का अधिकांधिक उपकार किया है इसमें कोई अत्युक्ति नहीं आपकी परोपकारिता सदाचार निष्ठा के लिये जितने धन्यवाद दिये जाय थोड़े हैं।

२१२३---श्री अगरनाथ कूर, मुकाम भटखिजरी, पोष्ट लोहरदगा (राँची)

—आज के बिगड़े वातावरण में सचमुच सही मार्ग बतलानेवाली 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक का खूब प्रचार हो ऐसी मेरी शुभ कामना है। आप से ऐसे उत्तम काम सदैव सम्पादित होते रहें यह मेरी परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना है। प्रभु आपको चिरायु रक्खें।

२१२४---पं० कपिलदेव शर्मा, सहायक शिक्षक पोष्ट नौबतपुर (पटना)

—आपके द्वारा संगृहीत 'गृहस्थ-धर्म' का अवलोकन कर मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि मानव-जातिका उत्कर्ष करने में यह राम बाण उपचार सिद्ध होगा। आप जनता का इसी प्रकार उपकार साधन करते रहें यह हमारी प्रभु से अमरकामना है।

२१२५---श्री कमला प्रसाद श्रीवास्तव, रेलवे गवर्नमेन्ट कन्ट्राक्टर (बनारस)

—जहां तक मनुष्य विचार की खोज जाती है आपने गूढ़ विषयों को बहुत सरल साधारण जनता के समझने योग्य भाषा में 'गृहस्थ-धर्म' प्रकाशित कर एक खटकनेवाले अभाव की पूर्ति की है। तदर्थ धन्यवाद।

२१२६---श्री महादेव सिंह, ब्रांच पोस्टमाटर, पोष्ट त्रिलोजन बड़ागांव (जौनपुर)

—आपके सत्प्रयत्नों को परमात्मा चिरस्थायी रूप दें। आज जिस बुरे संग से मानव जैसे नीचे की ओर देख रहा है आपके 'गृहस्थ-धर्म' से उस नीची वृत्तिको तुरन्त मिटाने में शोधन का काम करेगा। आपका किन शब्दों में कृतज्ञताज्ञापन करें।

२१२७---श्री शिवप्रसाद सिंह, मु० पो० रामबिलासनगर (गया)

—जहां तक मानव धर्म का सम्बन्ध है 'गृहस्थ-धर्म' ने नवीन दृष्टिकोण देकर जनता की धार्मिक भावना को पु... ...जीवित किया है। आज की विषम परिस्थिति से बचाने में आपका ग्रन्थ जनता का महान् सहायक होगा।

ी रामज

विहार मंगा ... र उद्गार !

बतः जि भ पा

हम लोग आपके ... हारी पाठक "साहित्यरत्न", मुकाम पोष्ट फतुहा (पटना)

... दे दिन है। ... उपादेय पुस्तक जो आपके द्वारा निशुल्क वितरण होता है पढ़ा। पुस्तक बहुत ही लाभप्रद है। कृपया ... एक प्रति भेज देने की कृपा करें ताकि स्वयं लाभ उठाते हुए दूसरों को भी यथासाध्य लाभ उठाने का मौका दें।

२१२९---श्री पंडित राधाकृष्ण पाण्डेय शास्त्री
मुकाम डेढ़गांव पोष्ट वारसलीगंज (गया)

......जब जनता किसी संक्रमण काल के आगमन से पथभ्रष्ट होती है तो प्रभु ऐसे ही अवसरों पर अपने प्रतिनिधियों द्वारा उनमें सद्विचार सद्भावना और धर्म विवेचन का प्रचार कराते हैं 'गृहस्थ-धर्म' ऐसा ही प्रयत्न है। धन्यवाद !

२१३०---श्री सियाराम शर्मा
नयामिल, मुड़सानगेट हाथरस,
(यु० पी०)

आपकी इस अनुपम देन के लिये किन ढूंढ़े शब्दों से साधुवाद दें। वास्तव में जगत् को प्राकृतिक नियमों का आभास देने में आपकी पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' बहुत सहायक होगी ऐसी मेरी मान्यता है।

सम्मतियाँ और उद्गार !

२१३१---पंडित कलेश्वर प्रसाद पाण्डेय

मुकाम गौगई, पोष्ट निरकोना (विलासपुर)

—जो मनुष्य जीवन के लिये खाओ पीओ मौज उड़ाओ का ही एकमात्र उद्देश्य रखते हैं [illegible] का [illegible] में 'गृहस्थ-धर्म' अवश्य ही उपनेत्र का काम करेगा। आपको ऐसे सत्पुरुषार्थ के लिये हार्दिक साधुवाद !

२१३२---श्री बाला प्रसाद पसरी, मुकाम पोष्ट चरखारी (हमीरपुर)

—मुझे जीवन के धार्मिक पक्ष के प्रति बहुत अधिक शंकायें थी आपके द्वारा संगृहीत 'गृहस्थ-धर्म' के मौलिक विचारों से वे दूर हो गई हैं। क्या आपकी कृपा से साधुभोग्या वसुन्धरा कभी बनेगी ? आपको हार्दिक धन्यवाद !

२१३३---श्री ब्रह्मदेव प्रसाद, मु० सर्फराजनगर कुम्हरा पो० सरमेरा (पटना)

जितनी अधिक विषमतायें हमने अपनी दुर्वासनाओं और बुरी इच्छाओं से उत्पन्न की है उनका सीधा और निर्णयकारी समाधान आपके 'गृहस्थ-धर्म' में मिलता है।

२१३४—मुन्नीसाह भगवानदास,

मु० कचहरी रोड, पोष्ट शेखपुरा (मुंगेर)

—मेरे जीवन में आध्यात्मिक भावना का श्रीगणेश आपके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'गृहस्थ-धर्म' से हुआ है। मैं आपका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ कि सच्चा मार्ग मुझे प्रदर्शित किया गया है।

२१३५---चन्देश्वर प्रसाद सिंह, मु० जहानपुर, पोष्ट पभेड़ा (पटना)

—जन्म-जन्म के असंख्य लाभों का सार जैसा मानव-जीवन है वैसे ही सम्पूर्ण सदाचारों का सार आपका 'गृहस्थ-धर्म' है इसमें दो राय नहीं हो सकती। आपको क्या उपमायें दूं आप स्पृहणीय एवं धन्य हैं।

२१३६---श्री लालबहादुर सिंह, मु० पो० बख्तियारपुर (पटना)

—जितना अधिक गोता मैं 'गृहस्थ-धर्म' में प्रतिपादित तत्त्वों में लगाता हूँ उतनी ही नवीनता अध्यात्म भावों की प्रेरणा में मुझे मिलती रहती हैं अपने जीवन को मैं इसके अनुसार ढालना चाहता हूं।

२१३७---श्री पुण्यदेवनारायण शर्म्मा, मु० महेशपरागो, पोष्ट गोह (गया)

—जो प्रभु जड़जङ्गम स्थावर चराचर के सर्जक हैं उन्होंने आपके ऊपर 'गृहस्थ-धर्म' ऐसे सुन्दर ग्रन्थ के संग्रह करने की प्रेरणा देकर आप से मानव नहीं सम्पूर्ण सृष्टि की भलाई के लिये काम कराने की कृपा की है। यह पुस्तक पढ़ने से स्पष्ट है।

२१३८---श्री दिवाकरनारायण सिंह, मु० सांई पो० हजरत साई (पटना)

—जो जीवन के मूल्य को जानना चाहें उन्हें 'गृहस्थ-धर्म' अवश्य ही पूर्ण सहायक होगा। आपको जितना धन्यवाद दिया जाय उतना ही थोड़ा है। आपके चिरायुष्य की प्रभु से मंगल कामना करता हूं।

...ी रा...

बिहा... में

...डव ...जे... ...न्द सिंह, पो० मु० खवासपुर (भागलपुर)

—... आपके ... ...संपूर्ण 'गृहस्थ-धर्म' को पढ़ने का कुछ समय के लिये मौका मिला। चन्दपृष्ठों को पढ़ने से ही ...ा दन है। है। कृपया ... एक हो गया। आप जैसे उदारचेता महानुभावों के बलपर ही समाज एवं राष्ट्र की सर्वाङ्गिण उन्नति में निर्भर है।

२१४०---श्री मणीलाल जोशी,

मु० पो० फलासिया (राजस्थान)

—धर्म प्रधान भारतवर्ष के आध्यात्मिक विकाश के लिये आपका परिश्रम सराहनीय है। आपकी पुस्तक भारतीय प्रजाजनों का चरित्र निर्माण करने में पूर्णरूप से सहायक सिद्ध होगी।

२१४१---पं० रामरत्न मिश्र, मु० वेदानी पो० तरहसी (पलामू)

—आपकी भावना का ज्वलन्तरूप 'गृहस्थ-धर्म' बहुत ही उपादेय है। इससे ग्रामीण जनता के जीवनयापन में बहुत मदद मिलेगी।

२१४२---श्री रामचन्द्र दूबे, मु० पो० किरारी (रायगढ़)

—श्री मोरजी सहर्ष धन्यवाद। आपके उज्वल चरित्र में इस 'गृहस्थ-धर्म' रूपी कृति ने चार चाँद लगा दिये हैं। ऐसी भावना बिना भगवत् कृपा के जाग्रत नहीं होती इसपर भी बिना मूल्य ऐसी विश्वकल्याणमयी पुस्तक निस्वार्थ रूपेण प्रदान करते हैं। इसके लिये प्रभु आपको निरन्तर शक्ति प्रदान करें।

२१४३---पंडित श्री जयनारायण त्रिपाठी,

मु० रामगढ़ा पो० तिलोरा (जौनपुर)

जन्मजन्मान्तर संचित पुण्यों के प्रभाव से मानव शरीर प्राप्त होता है। मानव जन्म की सफलता प्राणी मात्र की सेवा में है। इस बात को मूर्तरूप देने के लिये ही आपने-अपने जीवन को पूर्णरूप से मानव उत्थान के लिये न्योछावर कर पथिक यथा बन गये हैं। आपकी सफलता ईश्वर से चाहते हैं।

२१४४---पंडित कालूराम शास्त्री; मुकाम पथराड़ पोष्ट नावा (मध्यभारत)

—आपकी संग्रहीत 'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक आधुनिक ह्रास के युग में संशयात्म मनुष्यों के लिये शान्तिप्रद एवं कल्याण-दायिनी है। विद्वद्वर्य इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं।

२१४५---श्री इन्द्रानन्द मंडल, मु० कदवा टोला, पो० ढोलबजा (भागलपुर)

—आपकी चिरसंचित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' आद्योपान्त पढ़ी। जिसमें स्त्री-पुरुष का कर्तव्य तथा कृषियज्ञादि विषय विशेष ...नीय है। जो साधारण जनता को उचित मार्ग पर ले जाने का सुगम तरीका है।

२१४५---श्री गोपीमोहन मिश्र, सिविल होस्पिटल गिरीडिह

—'गृहस्थ-धर्म' पुस्तक लोककल्याण की दृष्टि से अद्वितीय है। इससे जनता की सर्वत

२१४७--पं० श्रीनिवास कौशिक मु० मानपुर दत्तराम, पो० ठाकुरद्वारा (मुरादाबाद)

'गृहस्थ-धर्म' को पढ़कर अत्यन्त सुख का अनुभव हुआ। इसको मुद्रित करनेमें आपने तन, मन, धन से प्रयत्न किया है। इसके लिये मैं परब्रह्म से स्तुति करता हूं कि आप को धर्मप्रचार में समर्थ बनावें।

२१४८---श्री लेदरू उरांव, मु० हिरही टोला टूंगरी, पो० लोहरदगा (राँची)

आप पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' का प्रचार कर धर्म का उत्थान कर रहे हैं। इसके द्वारा मानव अपने जीवन तथा समाज को ऊँचा बना सकते हैं। पुस्तक को पढ़कर मुग्ध हो गया। आनंद के मारे शरीर रोमांचित हो गया।

२१४९---श्री अयोध्या प्रसाद, पुरानी गोदाम (गया)

—पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' पढ़ी। उसमें लिखित नियम गृहस्थों के लिये बहुत ही उपयोगी है। भगवान् आपको इस प्रयत्न में मदद दें।

२१५०---श्री श्यामचरण सिंह, मु० छतई, पोष्ट कुष्ठा (गया)

—आपकी पुस्तक समाजसेवा के लिये अत्यन्त हितकर है। इसमें षट्शास्त्रों का सार भरा पड़ा है। चित्त चाहता है कि इसको हरदम पढ़ता ही रहूँ।

२१५१---श्री रामचन्द्र प्रसाद सिंह, मुकाम करकायन, पोष्ट सरमेरा (पटना]

—सर्व शास्त्रानुमोदित 'गृहस्थ-धर्म' सर्वजनोपयोगी एवं सन्मार्ग में सहायक है। कृपया मुझे भी एक प्रति भे अनुगृहीत करें।

बिहार ... मं...न सिंह (कोल मर्चेन्ट) मुकाम पोष्ट बुनियादगंज (गया)

...बतः जि... ...धर्म' से हमें बहुत उत्साह मिल रहा है। मेरी यह दृढ़ धारणा है कि इससे हम लोगों के नैतिक स्तर को आपके... ...दन है ... मदद मिलेगी। इसके अध्ययन से मनुष्य को गृहस्थ-जीवन का सम्यक ज्ञान प्राप्त होगा।

२१५३---श्री कुलदीपनारायण सिंह, मु० नौनी-रेगनियां, पो० वार (गया)

---आपकी ख्याति इस बदलती हुई दुनियां में बिजली की तरह प्रस्फुरित हो रही है। जहां कहीं भी देखो 'गृहस्थ-धर्म' की चर्चा सुनाई देती है। इससे विश्व का बहुत बड़ा उपकार होनेवाला है। हिन्दी के समुचित विकाश में यह बहुत सहायक होगी।

२१५४—पं० श्री सुरजनारायण चौबे, चितरंजन (बर्दवान)

—मुझे यह सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष होता है कि आपकी अमूल्य पुस्तक "गृहस्थ-धर्म' ने दुनियाँ को सही मार्ग पर लाने का सतत प्रयत्न कर विश्व में आपकी ख्याति अमर कर दी है। एतदर्थ आप धन्यवाद के पात्र हैं। मुझे भी एक किताब भेजकर उत्साहित करें।

२१५५---श्रीयुक्त बाबू रामदयाल उरांव, मु० पो० लोहरदगा (रांची)

'गृहस्थ-धर्म' नामक पुस्तक की कीर्ति अखिल भारत में गूंज रही है। इसकी गुणगाथा मेरे कर्णान्ध्र में प्रवेश कर कोमल हृदय को स्पर्श करने से वंचित न रह सकी।

२१५६---श्री परमेश्वरदत्त मिश्र 'विशारद' मु० पो० जाहोर (गया)

—पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' क्या ? रत्नों का बेशकीमती खजाना है जिसके प्राप्त होनेसे दुनियां की किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं रहती। अतः मुझे भी प्रदान कर यश के भागी बनें।

२१५७---श्री बन्धन साहु, मु० सेनहा, पो० लोहरदगा (राँची)

—आपका प्रयास सराहनीय है कि जो मानव उत्थान की भावना से प्रेरित होकर मानव हितकारी पुस्तकों का प्रचार कर देश, समाज तथा राष्ट्र की बहुत बड़ी सेवा कर रहे हैं। इससे भावी पीढ़ीका उज्वल प्रभात होगा।

२१५८---पं० गंगा प्रसाद आर्य, पो० बल्लारपुर (चांदा)

—आपके यहां से प्रकाशित पुस्तक 'गृहस्थ-धर्म' की प्रशंसा मैंने अपने मित्र द्वारा सुनी। सुनकर मुझे भी एक प्रति मंगाने की इच्छा हुई, कारण इसमें भारतीय संस्कृति कूट-कूटकर भरी हुई है।

२१५९---श्री पं० अमृतलालजी शर्म्मा, मु० पो० खम्हरिया (विलासपुर)

आपके यहां से निःशुल्क वितरण होनेवाला 'गृहस्थ-धर्म' मैंने पढ़ा। पढ़कर जो आनन्द हुआ वह अकथनीय है। पुस्तक क्या है सनातनियों के लिये 'अमर बूटी' है। विशेष धन्यवाद देना सूर्य को दीपक दिखाना है। अतः मुझे भी ...ति भेजकर कृतार्थ करें।